जिन्दगी दो। मुझे फिर से शक्तिशाली और बलवान बनाओ, मुझे आगे बढ़ने दो। मैं सिर ऊँचा करके खड़ा होऊँगा। मुझे महान् होना है। मुझे आज़ाद होना है।

हर रोज, हर रात यही एक प्रार्थना इंडिया के आसमान में गूँजने लगी। जो अध्याय १९९० में एक दिन शुरू हुआ था, वह १९९२ में जाकर पूरा हुआ। मृत्यु और अत्याचार के बूते पर नहीं; क्षमा, त्याग और प्रेम की राह से हम लोग नये सिरे से महाजीवन आरम्भ कर रहे हैं।

•

राजा रोहित तब भी चल रहे हैं। उन्हें न थकन है, न विश्राम की आवश्यकता। वह अभी भी कह रहे हैं—कुन्ती, तुम मुझे माफ कर दो! मेरे भारत को, मेरी दुनिया को माफ कर दो। सभी ने बाहरी विचरण को संकुचित बनाकर अपने में अपने को छिपा रखा है। सभी की अकाल-मृत्यु शुरू हो गयी है। तुम मुझे इससे छुटकारा दिलाओ, इससे मुझे बचाओ, इससे हमें रिहाई दिलाओ।

जो चलते-चलते थक जाता है उसकी मृत्यु अनिवार्य है। महान्-से-महान् व्यक्ति भी अगर व्यक्ति के अन्दर ही समाया रहेगा तो उसकी भी श्री नष्ट होगी। जो आगे बढ़ता है इन्द्र उसका मित्र है, वरुण उसका सहायक है। जो चलता है उसके शरीर का हर अंग स्वस्थ रहता है, उसकी आत्मा का विकास होता है, उसकी हीनता और दीनता खत्म हो जाती है। जो बैठा है उसका भाग्य भी बैठा रहता है। जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है। जो सोता है वह खोता है। जो आगे बढ़ता है, उसका भाग्य भी उसके साथ आगे बढ़ता है। सोये रहना कलि है, जाग *उठना द्वापर है, उठ खड़े होना त्रेता है और चलना सतयुग है। इसलिए* आगे बढ़ो। राजा रोहित, आगे बढ़ो—चरैवेति, चरैवेति!

चलते-चलते राजा रोहित और भी आगे बढ़े। मिस्र की नील नदी पार कर बाकू। बाकू पार कर कश्यप सागर। कश्यप सागर पार कर कृष्ण सागर। कृष्ण सागर पार कर जिस समय नील नदी पार कर रहे थे—सभी चारों ओर से है-है कर उठे—"राजा रोहित, रुको, रुको!"

लेकिन तब कौन किसकी सुनता है! राजा रोहित तब भी कहे जा रहे थे—कुन्ती, तुम मुझे माफ कर दो! मेरे पिताजी को माफ कर दो! मेरे देश को, मेरे भारत को, मेरी दुनिया को तुम माफ कर दो!

हिन्दुस्तान पार्क में उस समय भी पेंशन-होल्डर बाबुओं के सामने

इकाइ, दहाइ, सैकड़ा

४५३
उपन्यास

भूमिका

१९३८ का अगस्त का महीना। यूनिवर्सिटी का घेरा अभी लाँघा ही था। अपने कर्मजीवन की उस शुरुआत के साथ मैं चुपचाप एक निश्चय कर बैठा। निश्चय था—जिस देश में मैं पैदा हुआ हूँ, एक खास समय से शुरु करके जीवन की एक विशेष तारीख तक, धारावाहिक रूप से ऐतिहासिक पटभूमि में विभिन्न भागों का एक उपन्यास लिखूँगा। उस समय कलम सशक्त नही थी लेकिन जवानी का असीम साहस साथ था। उसी साहस के भरोसे एक दिन 'साहब बीबी गुलाम' लिखना शुरु किया। अपने गुपचुप मे किये निश्चय का पहला भाग। यह उपन्यास १९५३ मे पूरा हुआ। पाठको ने उस उपन्यास को पढ़कर मुझे अगाध स्नेह और कृतज्ञता की डोर मे कस लिया लेकिन साहित्य-महारथियों ने उतनी ही गम्भीरता के साथ दारसन्धान शुरु कर दिया। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलों में कुछ नज़ीरें अभी तक मौजूद हैं। शोधक लोग शायद पता रखते होंगे।

लेकिन इसके बावजूद मैं हतस्वास्थ्य ज़रूर हुआ, हतोद्यम नहीं। 'खरीदी कौड़ियों के मोल' इसका सबूत है—भारतीय भाषाओं मे सबसे वृहत् ही नहीं, सर्वजन समादृत उपन्यास। सौभाग्य से इस उपन्यास को पढ़कर मेरे पाठकों ने आशातीत समादर से मुझे अभिनन्दित किया और साहित्य-महारथियों ने भी यथारीति अपने कर्तव्य मे कोई त्रुटि न रखी। यह नज़ीर भी भविष्य मे किसी से छिपी हुई न रहेगी।

लेकिन अब तक मुझे साहित्य-महारथियो की इस मनोवृत्ति का पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका था, इसीलिए अपनी उसी निष्ठा के बूते पर मैंने शुरु किया अपने निश्चय का तीसरा भाग। यह उपन्यास आज इतने दिनों बाद पूरा हुआ है—इस 'इकाई, दहाई, सैकड़ा' के रूप में। अपने पुराने अनुभव से मैं कह सकता हूँ इस पुस्तक के ललाट पर भी नहीं भाग्य लिखी हुई

है। इसी से अपने जीवित रहते मैं अपने निश्चय को पूरा कर पाया हूँ, इस आनन्द का मूल्य आँकना शायद मुश्किल होगा।

सन् १९६० की २४वीं अगस्त से १९११ तक 'साहब बीवी गुलाम' की पटभूमि है। यानि कि कलकत्ता की नींव पड़ने से शुरू कर भारतवर्ष की राजधानी के दिल्ली चले जाने तक।

इसके बाद १९१२ में 'खरीदी कौड़ियों के मोल' के नायक का जन्म होता है। १९१२ से लेकर १९४७ की १४वीं अगस्त तक 'खरीदी कौड़ियों के मोल' की पटभूमि है। यानि कि दो महायुद्धों के बीच का सन्धिकाल।

और अब है 'इकाई, दहाई, सैकड़ा'। १९४७ की १५वीं अगस्त से लेकर १९६२ की २०वीं अक्तूबर के चीनी हमले तक।

करीब पौने तीन सौ साल के इस समय को अपने उपन्यास में लिपिबद्ध करते मेरी जिन्दगी के पचीस साल कहाँ से कहाँ चले गये उस बारे में सोचने का अभी तक कोई मौका ही नहीं मिला। मेरा प्रयास सार्थक हुआ या नहीं इसका विचारक मैं नहीं हूँ। शायद वर्तमान काल भी उसका विचारक नहीं है, इसका विचार होगा आनेवाले समय में। मैं सिर्फ कारक हूँ, कर्त्ता अवाङ्मनसगोचर।

एक बात और। अलैक्जेन्ड्रिया के कवि कार्लीमचस् ने कहा 'ए बिग बुक इज ए बिग ईविल'—सौभाग्य या दुर्भाग्य जैसे भी हो, मेरे उपन्यास दीर्घ ही बन पड़े है। इसलिए मैं भी इसी अपराध का अपराधी हूँ। लेकिन ये बृहत् ग्रन्थ लिखकर भी मैं पाठक के धैर्य की सीमा को लाँघ नहीं पाया, इसका सबूत भी मेरे पास है। मैं अपने पाठकों के साथ स्नेह और कृतज्ञता की डोर में कसा हुआ हूँ।

अपने निश्चय की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में ये शब्द कहकर मैं इस भूमिका पर पूर्णच्छेद लगाता हूँ। इति—

विमल मित्र

राज्य-परिक्रमा के बाद राजा रोहित राजधानी वापस आये। एक बूढे ब्राह्मण ने सामने आकर रास्ता रोक लिया।

"कौन ?"

"मैं हूं, राजा रोहित !"

ब्राह्मण ने पूछा, "लौट क्यों आये ?"

राजा रोहित ने कहा, "मैं थक गया हू।"

ब्राह्मण ने कहा, "चलते-चलते जो थक जाते हैं, वही तो अन्त-श्री हैं। जो सत्यकाम है वे भी अगर निष्क्रिय बैठे रहें तो उनका भी पतन अनिवार्य है। इसलिए तुम चलते चलो, आगे बढ़ो, चरैवेति-चरैवेति !"

राजा इसके बाद घर नही लौट पाये। वे फिर से परिक्रमा करने निकल पड़े। लेकिन फिर एक दिन राजधानी लौट आये। उसी ब्राह्मण ने फिर से रास्ता रोक लिया।

"घर क्यों लौट आये ?"

राजा रोहित ने कहा, "इस तरह लगातार चलते रहने से क्या लाभ है ?"

ब्राह्मण ने कहा, "बहुत लाभ है। जो चल सकता है वही तो स्वस्थ है। स्वस्थ आदमी ही स्वस्थ मन का अधिकारी है। उसकी आत्मा का विकास होता है। यह क्या चरम लाभ नहीं है ? तुम चलते चलो, आगे बढ़ो—चरैवेति-चरैवेति !"

राजा इस बार भी घर नही लौट पाये। फिर निकल पड़े। लेकिन राजा रोहित फिर एक दिन लौटे। ब्राह्मण देवता भी खड़े थे।

"फिर क्यों लौट आये ?"

"अब चला नही जाता।"

ब्राह्मण ने कहा, "यह क्या ? जो आराम करता है, उसका भाग्य भी आराम करता है। जो उठ खडा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है। जो लेटता है उसका भाग्य भी धराशायी हो जाता है। जो आगे बढ़ता

है, उसका भाग्य भी आगे बढता है। तुम आगे बढ़ो ! रुको मत—चरैवेति-चरैवेति !"

इस पर राजा रोहित को फिर लौटना पड़ा। घूमते-घूमते जब फिर से वापस आये, तो वही ब्राह्मण फिर मिला।

"मैं और नही घूम सकता। मैं आपका उपदेश भी अब और नही सुन पाऊँगा। आप मुझे क्षमा करें। सतयुग मे, हो सकता है, यह उपदेश काम आता: इस युग मे बेकाम है।"

ब्राह्मण मुसकराया। बोला, "नही, सोये रहना ही कलियुग है, जाग उठना द्वापर है, उठ खडे होना त्रेता, और चलते रहना सतयुग है। इसलिए तुम आगे बढो, राजा रोहित, और आगे बढो, चरैवेति-चरैवेति ! रुको मत—रुकने का नाम मृत्यु है !"

और लौटना नही हुआ। राजा रोहित ने फिर से चलना शुरू किया। हिमालय से कन्याकुमारी, सिन्धु से पूर्वी सीमान्त। काशी, कौशल, अयोध्या, मिथिला, कलिंग, द्रविड, भारतवर्ष के सारे भूखंड पर फिर से उनकी परिक्रमा शुरू हुई। इसके बाद शुरू हुई भारत के बाहर और फिर विश्व-ब्रह्माण्ड मे।

इसी तरह काल-प्रवाह आगे बढता रहा। आखिर मे युग-युगान्तर के बाद आया १९४७ साल। वह राजा रोहित भी नही है, वह ब्राह्मण भी नही है। उपदेश देनेवाला भी नही है, उपदेश सुननेवाला भी कोई नही है। उपदेश-उपदेष्टा सभी एकाकार हो गये हैं।

यह उपन्यास वही से शुरू करता हूँ।

□　□　□
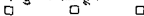
शुरू मे जब इस मुहल्ले मे मकान बनना शुरू हुआ, कोई नही जानता था। कब जमीन खरीदी गयी, कब रजिस्ट्री हुई, किसी को पता नही था। इस मुहल्ले के लोग साधारणत. इन सब बातों पर सिर नही खपाते। सब अपने-अपने घर अपने मे मस्त रहते। इसी जमीन पर राज और मजदूरो ने दिन-रात एक कर यह मकान खडा किया है। उन दिनों कभी-कभी एक बड़ी गाड़ी आकर खड़ी होती थी। साथ में एक महिला होती। जिनका मकान था, वे आकर देख जाते, काम कैसा चल रहा है, कहाँ तक आगे बढ़ा। उनकी पत्नी भी देखती। तभी से लोगो को पता लगा कि यह मकान शिवप्रसाद गुप्त का है। कलकत्ता के मशहूर आदमी, प्रसिद्ध देशभक्त ! एक समय के पॉलिटिकल मकरर शिवप्रसाद गुप्त का नाम किसी के लिए अनजाना नही था।

बड़े आदमियों का नाम फैलने से जितने फायदे हैं, उतनी मुश्किलें भी है।

शिवप्रसाद पहले-पहल जब इस मकान मे आये उस समय मुहल्ले के कितने ही लोग उनसे मिलने आये। उस समय जो आना-जाना शुरू हुआ, वह फिर कभी नही रुका।

लोग कहते, "बड़े आदमी होने से क्या हुआ, मिजाज बिलकुल 'शिव' की तरह पाया है।"

शिव का मिजाज असल मे कैसा है, किसे पता! लेकिन शिव को ठंडे मिजाज वाला मान लेने पर उपमा को ठीक-ठीक बैठाने मे आसानी होती। इसके अलावा शिवप्रसाद बाबू का शिव के चेहरे से भी मेल था।

शिवप्रसाद बाबू कहते, "अरे, नहीं, आप लोग कहते क्या है, आजकल जो हाल है उसमें दिमाग ठंडा रखना मुश्किल हो गया है।"

फिर कहते, "दिमाग गर्म रखकर क्या पब्लिक के साथ काम चलता है, बंकू बाबू?"

अकेले बंकू बाबू ही नही, मुहल्ले के कई रिटायर्ड वृद्ध शाम के समय सिर, गला और कान ढँके आ बैठते। अखबार को लेकर बहस होती, कांग्रेस और कम्युनिस्टों को लेकर बातें होती। हरेक के पास कहने लायक एक विषय, वह था उनका अतीत। वर्तमान और भविष्य से ज्यादा वे लोग भूत को लेकर सिर खपाते। सभी के दिल में बीते दिनों की तसवीर खिल उठती—क्या दिन थे वे भी, जनाब! कहाँ गया वह सोने-सा देश! उस समय पढ़ाई-लिखाई की कद्र थी, भगवान और ब्राह्मण मे लोगों की श्रद्धा थी। अब तो सब-कुछ बदल गया है। लड़कियाँ ऑफिस जाती हैं नौकरी करने। सड़क पर, रास्ते और पार्कों में अकेली घूमती है। मर्दों की तो जैसे परवाह ही नही करती।

हर रोज ही ये बातें उठती। लेकिन किसी हल पर पहुंचने से पहले ही बद्रीनाथ आ पहुंचता।

बद्रीनाथ आकर कहता, "आपके लिए पूजा की जगह हो गयी है।"

बद्रीनाथ का उस समय कमरे मे आना ही शिवप्रसाद बाबू के लिए पूजा की जगह होना था, यह सब जान गये हैं। शुरू-शुरू में जरा अजीब लगा। मतलब एकदम शुरू-शुरू में। शिवप्रसाद बाबू ने हँसते-हँसते कहा था, "यही एक ढकोसला नहीं छोड़ पा रहा हूं, इसी से…"

बंकू बाबू ने कहा, "लेकिन आप इसे ढकोसला क्यो कह रहे हैं? पूजा करना क्या ढकोसला है, जनाब! आज भी इंडिया सारी दुनिया मे इतना आगे है, यह किसलिए, जरा बतलाइये? वह सब है, इसी से तो दुनिया

अभी भी टिकी हुई है। चन्द्र-सूर्य चल रहे हैं। नहीं तो देखते, इंडिया ने कब का कम्युनिस्ट-ब्लॉक ज्वाइन कर लिया होता..."

शिवप्रसाद बाबू ठठाकर ज़ोर से हँसते। एकदम दिल खोलनेवाली हँसी। कहते, "वह सब तो नहीं जानता, भाई, पूजा करके मन को तृप्ति होती है, इसी से करता हूँ। बचपन की आदत पड़ गयी है, छोड़ नहीं पाता..."

बात चौंकने-जैसी ही थी। सभी पूछते, "आप क्या बचपन से ही पूजा करते आये हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "हाँ, दस-बारह साल की उम्र से ही करता हूँ। माँ ने करने को कहा था, इससे करता हूँ। आज भी माँ के आदेश के अनुसार ही चलता हूँ—वह देखिये न, मेरी माँ का फोटो..."

कहकर, माँ के नाम पर दोनों हाथ जोडकर नमस्कार किया।

सोने के फ्रेम मे मढ़ा माँ का एक पोर्ट्रेट दीवार पर टँगा था। काफ़ी बडा ऑयल-पेंटिंग। पूरी दीवार को ढँके पोर्ट्रेट झूल रहा था। सब लोग उस ओर ही देखने लगे।

शिवप्रसाद बाबू कहने लगे, "माँ के मन की कोई भी साध पूरी नहीं कर पाया, इसी से आज दु:ख होता है। मैं माँ का नालायक लड़का हूँ भाई, अपनी माँ को जीवन में काफी दु:ख दिये है..." शिवप्रसाद बाबू का गला भर आया।

पडोसी लोग और नहीं रुकते। कहते, "नहीं-नहीं, आप पूजा करने जाइये, आपको और नहीं रोकेंगे।"

□ □ □

रात के नौ बजे से साढ़े नौ बजे तक शिवप्रसाद गुप्त का पूजा करने का समय है। उस समय कोई गोलमाल नहीं कर सकता। केवल इतना ही नहीं, सुबह से रात होने तक सारे दिन इस घर में जैसे सुखपूर्ण शान्ति छायी रहती है। यहाँ सभी खुश है, इस युग के लिए शायद अजीब बात है। अगर कहीं कोई शिकायत है भी, तो वह किसी के कान में नहीं जाती। हरेक का मन जैसे खुशी से भरा था। सोकर उठने पर सभी कहते—वाह ! फिर रात को सोने जाते समय भी निश्चित होकर कहते—वाह ! इस युग में यह कैसे सम्भव हो पाया, यह इस मुहल्ले के लोगों के लिए एक समस्या है। कुछ लोग सोचते, इसका कारण शायद पैसा है। ज़रूरत से ज्यादा पैसा होने पर शायद ऐसी शान्ति का साम्राज्य सम्भव हो सकता है। लेकिन पैसा क्या कलकत्ता शहर में अकेले शिवप्रसाद गुप्त के पास ही है ? और

किसी के पास नही है ? बकू बाबू के पास क्या पैसे की कमी है ? अविनाश बाबू को ही क्या पैसे का अभाव है ? अनाथ बाबू के तीनो लड़के दिगपाल हैं—तीनों ही गजेटेड ऑफिसर है, रुपया चारो ओर बिछा पड़ा है। सभी इस मुहल्ले की बड़ी-बड़ी बिल्डिगो के मालिक हैं। फ्लोरेसेंट लाइट, रेफ्रिजरेटर, रेडियोग्राम सभी-कुछ तो बाहर से दिखलायी देते है। नजर मे आनेवाली सभी चीजो का इन लोगो के यहाँ इन्तजाम है। लेकिन सभी यहाँ, शिवप्रसाद बाबू के घर आकर जैसे थोड़ी देर खुली हवा का सेवन कर जाते। शिवप्रसाद गुप्त के साथ दो बात करने पर जैसे सभी की उम्र बढ जाती। लेकिन ऐसा क्यो होता है, कोई भी नही समझ पाता।

सुबह ऑफिस जाते समय मन्दा आकर खडी होती। शिवप्रसाद बाबू की चीजें सम्हालने के लिए नही। उस काम के लिए अलग आदमी है। वह काम बद्रीनाथ का है। उसकी नौकरी इसीलिए है।

शिवप्रसाद बाबू ने मन्दा की ओर देखकर कहा, "पता है, बद्रीनाथ आजकल गाना सीख रहा है, आर्टिस्ट बनेगा।"

बद्रीनाथ शर्म से जैसे सिटपिटा गया।

"क्यो रे, कलाकार बनेगा ? उस्ताद रखा है ? कितना लेता है ?"

मन्दा को भी आश्चर्य हुआ। बोली, "क्या कह रहे हो ? वह और गायेगा, तब तो हो चुका !"

"अरे, नही, तुम्हे पता नही है, सुबह मैंने अपने कानो सुना। ठड से ठिठुर रहा था और सुनता हूँ, खूब सगीत चल रहा है। पहले तो समझ ही नहीं पाया; मैंने सोचा, शायद सदाव्रत गा रहा है, फिर लगा कि यह सुरीला गला तो बद्रीनाथ को छोड़ और किसी का हो ही नही सकता।"

मन्दा ने कहा, "अच्छा, छोड़ो इन बेकार की बातो को ! फिर कहोगे, ऑफिस के लिए देर हो रही है।"

"अरे, बेकार की बात नही है; उसी से पूछ लो न ! कौन-सा गाना गा रहा था, रे, बोल न ? 'मुहब्बत करके रुलाते हो क्यो ?' इसके बाद क्या है, रे ?"

मन्दा से न रहा गया। बोली, "देखती हूँ, तुम्हे किसी बात का होश ही नहीं है, मुंह मे कुछ रुकता ही नही है।"

"वाह, उसके तो प्यार करने में भी कुछ नही बिगड़ा और मेरे कहने मे ही आफ़त हो गयी ?"

मन्दा ने कहा, "तू जा तो, बद्रीनाथ, भाग इस कमरे से !"

बद्रीनाथ ने भागकर जान बचायी।

लेकिन शिवप्रसाद बाबू हँसने लगे।

बोले, "काफ़ी दिन से तो घर नहीं गया, बीवी की याद आती होगी, और क्या? उसे कुछ दिनों की छुट्टी दे दो न, क्या कहती हो?"

"वाह, उसे छुट्टी देने से तुम्हारा काम कैसे चलेगा? उसके बिना रह पाओगे? बद्रीनाथ के बिना तो तुम्हारा एक मिनट भी काम नहीं चलता।"

"क्यों, उसका काम तुम नहीं कर पाओगी?"

"मेरी क्या आफत आयी है!" कहकर मन्दा ने चेहरे को ज़रा भारी करने की कोशिश की।

शिवप्रसाद बाबू बोले, "पर पहले तो मेरा सारा काम तुम्ही देखती थी!"

'जब करती थी तब करती थी। तुम्ही क्या अब पहले-जैसे रह गये हो?"

"क्यों, मैं कब बदल गया?"

"बदल नहीं गये? पहले इतना घूमना-फिरना नहीं होता था, न इतना बडा मकान था, न इतना पैसा ही था।"

"लेकिन पैसा क्या अपनी मर्जी से इकट्ठा किया है? तुम्हें तो मालूम ही है, पैसे का लोभ मुझे कभी भी नहीं था। पैसा, मकान, गाडी, रेफ्रिज-रेटर, रेडियोग्राम, मैंने कुछ भी नहीं चाहा, सब अपने-आप आ गया। वास्तव में यह सब तुम्हारे भाग्य से ही आया है।"

मन्दा ने ज़रा गुस्सा दिखलाया। बोली, "जाओ, जाओ, तुम्हें देरी हो रही होगी।"

शिवप्रसाद बाबू हँसने लगे। कुर्ता पहन चुके थे। चीज़-वस्त भी सब ठीक हो चुकी थी। शिवप्रसाद बाबू ने कमरे से निकलने के पहले पूछा, "कुंज ने गाड़ी निकाल ली क्या?"

बद्रीनाथ बाहर ही खडा था। वहीं से बोला, "जी हाँ, निकाल रहा है।"

गाडी की बात सुनकर शायद मन्दा को ध्यान आया। पीछे से बोली, "तुमने सदाव्रत के लिए गाड़ी खरीद देने को कहा था!"

शिवप्रसाद बाबू घूमकर बोले, "हाँ, कहा तो था। सदाव्रत कुछ कह रहा था क्या?"

"उसकी गाडी पुरानी हो गयी है न, इसी से कह रहा था! मुझे डर लगता है, पता नहीं कब एक्सिडेंट कर बैठे।"

शिवप्रसाद बाबू—"कह रहा है तो खरीद दो न! और मैं खुद तो उसकी उम्र में गाडी पर चढ़ ही नहीं पाया।"

"लेकिन अभी से इतनी शौकीनी क्या अच्छी होगी ?"

"गाड़ी रखना क्या शौकीनी है ? बस-ट्राम में कॉलिज जाने पर तो एक्सिडेंट होने के ज्यादा चांस हैं। उस दिन अपने ऑफिस ही का एक क्लर्क बस के नीचे दबकर मर गया।"

अचानक टेलीफोन की घंटी बजने से बात बीच में ही रुक गयी। घंटी की आवाज़ सुनते ही बद्रीनाथ ने जाकर रिसीवर उठाया। शिवप्रसाद बाबू कभी भी खुद टेलीफ़ोन नहीं उठाते।

मन्दा तब तक अपने कामकाज निपटाती। दिन में जितनी देर के लिए शिवप्रसाद बाबू घर रहते ,उतनी देर टेलीफ़ोन। हज़ारों लोगों के साथ सम्पर्क रखना पड़ता। यही जो ऑफिस जा रहे हैं, शाम को सात-आठ बजे घर लौटेंगे। अगर कहीं मीटिंग हुई तो और भी देर होती। और मीटिंग भी क्या एक-दो होती ! इन मीटिंगों से लौटते-लौटते ही किसी-किसी दिन दस-ग्यारह बज जाते। मुहल्ले के बंकू बाबू, अनाथ बाबू वगैरह बाबू को न पा लौट जाते। इतनी रात को लौटने पर भी शिवप्रसाद बाबू पूजा करने बैठते। पूजा नियम से होनी चाहिए, फिर खाना।

शिवप्रसाद बाबू फ़ोन रखकर जा रहे थे।

मन्दा ने पूछा, "क्या आज भी तुम्हारी कोई मीटिंग है ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे, नहीं, बड़ी मुश्किल में डाल दिया है उन लोगों ने।"

"किन लोगों ने ?"

"और कौन ? वही पी० एस० पी० वाले। मुझे लेकर खींचतान कर रहे हैं। कह रहे हैं कि आप हमारी तरफ से इलेक्शन लड़िये। मैं जितना ही कहता हूँ कि भाई, मैं किसी भी दल का नहीं हूँ, बचपन से निःस्वार्थ-भाव से देश का काम करता आया हूँ,आज भी कर रहा हूँ, जब तक जिन्दा रहूँगा, करूँगा। हाँ, तो देश-सेवा के लिए राज़ी हूँ, लेकिन तुम्हारी पार्टी-वार्टी में नहीं हूँ, लेकिन वे लोग किसी भी तरह सुनने को तैयार नहीं होते। सिर्फ मुझे अपनी पार्टी में घसीटना चाहते हैं—या तो डॉ० प्रफुल्ल घोष की पार्टी ज्वाइन करनी होगी, नहीं तो अतुल्य घोष की, बीच की गाड़ी नहीं चलेगी।"

मन्दा के दिमाग में यह सब नहीं घुसता। पूछा, "तब क्या तुम मीटिंग में जा रहे हो ? तुमने फिर क्या कहा ?"

"और सब से जो कहता हूँ, वही कहा। कह दिया कि बिना माँ की आज्ञा के तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता। माँ से पूछूँगा—देखूं, माँ क्या कहती हैं।"

कहकर और नही रुके। बरामदे से होकर एकतल्ले की ओर चलने लगे। बद्रीनाथ भी कागज-पत्र की गठरी लिये पीछे-पीछे चल दिया। यह गठरी रोज शिवप्रसाद बाबू के साथ गाड़ी मे जाती है और फिर साथ ही वापस आती है। बद्रीनाथ भी साथ-साथ जाता है, और बाबू के साथ ही लौटता है। नेताजी सुभाष रोड पर दो तल्ले के फ्लैट में शिवप्रसाद बाबू का ऑफिस है। लैंड डेवेलपमेंट सिंडीकेट। शिवप्रसाद बाबू के यहाँ क्लर्क है, टाइपिस्ट है, ड्राफ्ट्समैन है। पूरा ऑफिस खचाखच भरा है। कलकत्ता जब तालाब और पोखरो में डूबा हुआ था तब की बात अलग है। धीरे-धीरे मकानों की गिनती बढ़ी है। आदमी बढ़े है। पार्टीशन के बाद शहर जैसे लोगो से अँट गया है। उस समय से ही शिवप्रसाद बाबू की बुद्धि ने रंग दिखलाया। तभी यह ऑफिस खोला। उन्होंने सोच लिया था कि आगामी पाँच-दस साल मे कलकत्ता ऐसा ही नही रहेगा। और बढ़ेगा। जगल और झाडियों के पार पश्चिम में चन्दननगर, चूँचडा और बैंडल तक पहुँचेगा। दक्षिण मे जादवपुर और गरिया से परे डायमंड हार्बर तक फैलेगा। उत्तर मे बड़ानगर, दमदम को पीछे छोड कहाँ तक पाँव फैलायेगा, कुछ ठीक नहीं है। डी०वी० सी० प्रोजेक्ट है, दुर्गापुर है, कल्याणी है। जादवपुर, गरिया और नरेन्द्रपुर सभी उनके प्लान के अनुसार बने हैं। शिवप्रसाद बाबू अपनी दूरदर्शिता पर मन-ही-मन प्रसन्न होते। जैसे यह उन्ही का कलकत्ता है। यह ग्रेटर कलकत्ता जैसे उन्ही के हाथों गढा गया है। पैसा जो आ रहा है सो तो आ ही रहा है; साथ ही एक और दामी चीज हाथ लगी है, वह है आत्मतृप्ति। यह आत्मतृप्ति ही गुप्त-परिवार का सबसे बडा प्रॉफिट है। इस 'प्रॉफिट' के बूते पर ही शिवप्रसाद गुप्त ने हिन्दुस्तान पार्क में बँगला बनवाया है।

ऑफिस में घुसते ही देखा, एक अजनबी बैठा है। बगाली नही है। शिवप्रसाद बाबू के आते ही वह उठकर खड़ा हो गया। नमस्कार किया।

"आप कौन हैं, मैं ठीक से पहचान नही पा रहा ?"

"आप मुझे नही पहचान पायेंगे। मैं एक और काम से आया हूँ, जमीन की खरीद-फरोख्त का काम नही है।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "लेकिन मेरा काम तो जमीन की खरीद-फरोख्त करना ही है।"

"जानता हूँ, लेकिन मैं उस काम से नही आया हूँ। मैं जयपुर से आ रहा हूँ।"

"जयपुर !"

"हाँ, सुन्दरियाबाई ने आपके नाम चिट्ठी भेजी है," कहकर एक चिट्ठी शिवप्रसाद बाबू के हाथ में दी।

चिट्ठी लेकर शिवप्रसाद बाबू ने बद्रीनाथ को बुलाया। बद्रीनाथ बाहर था। आते ही उससे बोले, "देख, इस समय आधा घंटे किसी के साथ बात नहीं कर पाऊँगा, अगर कोई आये तो बैठाना, अन्दर मत आने देना।"

इसके बाद बद्रीनाथ को बुलाकर फिर कहा, "और ऑपरेटर से कह दो कि मुझे रिंग न करे, मैं व्यस्त हूँ।"

□ □ □
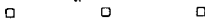
कलकत्ता के भिन्न-भिन्न मुहल्लों के अलग-अलग रूप है। हिन्दुस्तान पार्क का आकाश जब नीला होता है, बहूबाजार की मधुगुप्त लेन में उस समय धुएँ की कालोंच भरी होती है, जबकि शिवप्रसाद बाबू के शुरू के दिन इसी मुहल्ले में कटे हैं। इसी मुहल्ले की अँधेरी गली में मन्दाकिनी ने लड़के को पाला-पोसा। इसी मुहल्ले मे सदाव्रत बड़ा हुआ। इसी मुहल्ले में अपने मकान की खिड़की से वह कोलतार की सड़क पर लड़कों को क्रिकेट खेलते देखता। इसके बाद जरा बड़े होने पर मुहल्ले के लड़कों से मिलने की इजाजत मिली, लेकिन दूर से। ज्यादा मेल-मिलाप से माँ नाराज होती, जरा-सी देर बैठकबाजी करते ही डाँटती। माँ उसे आँखों के सामने रखती।

माँ कहती, "मुहल्ले के लड़कों के साथ इतना मिलना-जुलना अच्छी बात नहीं है।"

सदाव्रत कहता, "लेकिन माँ, वे लोग खराब तो नहीं है!"

"वह सब तुम्हें नहीं देखना होगा, मैं कहती हूँ वे लोग खराब है, उनके साथ तुम्हारी इतनी दोस्ती ठीक नहीं है।"

वे शिवप्रसाद बाबू के बढ़ती के दिन थे। उनका समय कहाँ और कैसे कटता, कब कहाँ रहते, क्या करते, कुछ भी ठीक नहीं था। सारे दिन इज्जत और प्रतिष्ठा के लिए भूत की तरह मेहनत करते। सुबह घर से निकल जाते और फिर जिस समय लौटते, मधुगुप्त लेन सुनसान हो गयी होती। थके-हारे आते ही सो जाते। मन्दा भी तब निश्चिंत होकर चैन की साँस लेती। उस समय सदाव्रत नहीं था। वे मब चढ़ती जवानी की कड़ी मेहनत के दिन थे। उन दिनों के बारे में सदाव्रत को कुछ भी पता नहीं है। केवल इतना ही मालूम है कि उसके पिता अपनी कोशिशों और मेहनत से अपने पैरों पर खड़े हुए हैं। और सिर्फ़ इतना मालूम है कि उसकी माँ ने परिन्दों की तरह साथ रहकर उसे बड़ा किया है, किन्तु उसके कारण माँ की चिन्ताओं

का अन्त नही है—कि दुनिया के हर मुहल्ले में जितने भी लडके हैं, माँ की नज़रों में सभी खराब है।

सदाव्रत मन-ही-मन ज़रा हँसा। इसके बाद नम्बर खोजकर एक मकान के सामने जाकर दरवाज़ा खटखटाने लगा।

क्या मज़े की बात है! बचपन मे इसी शभू के यहाँ माँ आने नही देती थी। शंभू के पिता किसी ऑफ़िस में क्लर्की करते थे। हाथ में टिफ़िन का डिब्बा लिये सुबह साढे आठ बजे बस-स्टॉप की ओर दौडते हुए जाते थे। तभी से पता नही क्यों, माँ को इन लोगो से बडी घृणा हो गयी थी। वैसे अब सदाव्रत बडा हो गया है। लोगों के घर जाने में अब उसे कोई झिझक नही है। वह शभू के साथ गप्प लगा सकता है, बैठ सकता है। किसी को पता भी नही लगेगा। वह अब इस मुहल्ले का रहने वाला नही है। इसी से कोई आपत्ति भी नहीं करेगा।

"कौन ?"

अन्दर से ज़नानी आवाज़ आयी और साथ ही किसी ने दरवाज़ा खोल दिया। फ्रॉक पहने छोटी-सी लडकी।

"शभू है ?"

"भैया तो क्लब गये हैं। घर नही है।"

"क्लब ! कौन-से क्लब ? शभू का कोई क्लब भी है क्या ?"

लड़की ने कहा, "सामने गली का मोड है न, मोड़ पर ही देखेंगे एक बताशेवाले की दूकान। उसी के पीछे भैया का क्लब है।"

सदाव्रत ने पहले तो सोचा, जाने दो, अब क्लब तक कौन जाये ! घर पर मिल जाता तो कुछ देर बैठ लेता। फिर कोई खास काम भी नही है। किताबें खरीदने के लिए कॉलिज स्ट्रीट आया था। किताबें ले चुकने के बाद अचानक पुराने मुहल्ले की याद आयी और इधर चला आया।

सदाव्रत लौटते-लौटते भी आगे बढने लगा। एक बार हाथ में बँधी घड़ी में समय देखा। काफ़ी समय है। जानी-पहचानी वही गली। इतने दिनों मे कुछ भी नही बदला है। लम्बी-लम्बी दुमंजिली-तिमंजिली इमारतें। ठसाठस भरी और एक-दूसरे से सटी हुई। मोड पर की वह ड्राई-क्लीनिंग की दूकान अभी भी वैसे ही है। पहले घर में गैरेज नही था। पिताजी को सड़क पर के एक मकान के गैरेज मे गाड़ी रखकर आना पड़ता था। ऑफ़िस के बाबू लोग लौट रहे हैं। सँकरी गली होने से क्या हुआ, भीड खूब थी। इतनी-सी गली मे एक गाड़ी भी आ जाती तो मुश्किल होती—लोगों को

मकानों की चौखड़ियों पर चढ़कर खड़े होना पड़ता।

गली के मोड़ पर आकर सदाव्रत रुका। खपरैल-पड़ी एक छोटी-सी दूकान दिखलायी दी। दूर से ही मालूम हो जाता है, मूड़ी-बताशे की दूकान होगी।

सदाव्रत ने दूकान के पीछे की ओर देखने की कोशिश की। वहीं तो होना चाहिए शंभू का क्लब। एक बार सोचा, दूकानदार से पूछे। लेकिन दूकानदार उस समय अपने ग्राहकों को सम्हालने में लगा था। दूकान की बाजू से ही एक पतली सीमेंट की गली चली गयी है। वहाँ से मकान के अन्दर की रोशनी दीख रही थी। दो-एक लोग अन्दर जा रहे थे।

सदाव्रत सोच रहा था, अन्दर जाये या नहीं। अचानक एक आदमी को अन्दर जाते देख सदाव्रत ने पूछ लिया, "यहाँ कोई क्लब है क्या ?"

आदमी ने मुड़कर देखा। सदाव्रत को लगा, चेहरा जैसे पहचाना-पहचाना-सा है। उम्र में उससे कुछ ही बड़ा होगा।

आदमी ने जवाब में कहा, "हाँ।"

सदाव्रत ने पूछा, "अन्दर शंभू है क्या ? शभू दत्त !"

अन्दर से काफी शोरगुल की आवाज आ रही थी—हँसी-चुहल, सब एक साथ।

उस आदमी ने सदाव्रत की ओर अच्छी तरह देखा। फिर कहा, "अच्छा, जरा ठहरिये, देखता हूँ।"

सदाव्रत वहीं सड़क पर खड़ा रहा।

अन्दर जा उस आदमी ने आवाज दी, "शभू, तुम्हें कोई बुला रहा है !"

बाहर अच्छी तरह से सुनायी दिया। इस बात के साथ ही अन्दर का सारा शोरगुल रुक गया।

"कौन बुला रहा है ?"

"वही अपने मुहल्ले के शिवप्रसाद बाबू का पोष्य पुत्र।"

"कौन ?" शभू जैसे तब भी नहीं समझ पाया।

"अरे, याद नहीं है, अपने मुहल्ले में पहले जो शिवप्रसाद बाबू थे, अब बालीगंज में मकान बनवाकर चले गये हैं।"

फिर भी जैसे किसी ने पूछा, "किसका पोष्य पुत्र ? पोष्य पुत्र क्यों कह रहे हो ?"

"पोष्य पुत्र को पोष्य पुत्र नहीं तो जमाई कहूँगा ! बुढ़ापे तक जब कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ, तो उसे गोद लिया…"

"सदाव्रत, अपने सदाव्रत की बात कर रहे हो? वह आया है? कहाँ है ?"

"बाहर खड़ा है। तुझे बुला रहा है।"

शभू ने गिरते-पड़ते गली के बाहर आते ही उसे बाँहों में जकड़ लिया। "अरे, तू ! सदाव्रत, बात क्या है ? अचानक इस मुहल्ले मे ? तेरी गाडी कहाँ है ? पैदल ही आया है ?"

उस अँधेरी गली मे खडे सदाव्रत को लगा, जैसे वह पत्थर हो। जैसे वह होश मे नही था। मर चुका था। एकदम फॉसिल। मधुगुप्त लेन के कलकत्ता की मिट्टी के नीचे दबकर फॉसिल हो गया हो। युग-युग की घुटन-भरे अंधकार मे जैसे उसकी आखिरी समाधि हो। वह नहीं है। वह ख़त्म हो चुका है। दुनिया से जैसे उसका अस्तित्व ही मिट चुका है।

"क्यो रे, पहचाना नही ? मैं ही तो हूँ शभू ! पैदल क्यों आया है ? तेरी गाड़ी कहाँ गयी ?"

सदाव्रत कोई भी उत्तर नहीं दे पा रहा था।—वह उस घर का कोई नही है···उसके माता-पिता, जिन्हे वह अपना समझता आया है, उसके कोई नही है···इतने दिन उसने नकली जिन्दगी बितायी है। इतने दिन की पुरानी सब बातें एक-एक कर याद आने लगी। वह अब तक समझ भी नही पाया। उससे छिपाया गया। सच बात कह देने से क्या उसका यह नुकसान होता ? वैसे लाभ भी क्या होता ! लेकिन किसी ने बतलाया क्यो नही ?

"क्यो रे, तेरी तबीयत ठीक नही है क्या ? सिर दर्द कर रहा है ?"

सदाव्रत के मुँह मे जैसे इतनी देर बाद शब्द फूटे। बोला, "आज चलूँ, भाई, फिर किसी दिन आऊँगा। आज अच्छा नही लग रहा।"

"इतनी दूर आकर ऐसे ही वापस चला जायेगा ! आ न, अन्दर क्लब में आकर ज़रा देर बैठ, एक कप चाय पीकर चले जाना, और नहीं तो···"

सदाव्रत ने कहा, "नही, आज चलूंगा। फिर किसी दिन आऊँगा।"

"तो फिर कब आयेगा ?"

"अभी से नही कह सकता; समय मिलते ही एक दिन चला आऊँगा।"

कहकर सदाव्रत वहां और नही रुका। रुक ही नहीं पाया···किसी ने उसे बतलाया क्यों नही ? उसे बतला देने से किसी का क्या बिगड़ता ? किसी ने उस पर विश्वास क्यों नही किया ? वह क्या विश्वास करने लायक भी नहीं है ! सदाव्रत मधुगुप्त लेन की सँकरी गली मे जल्दी-जल्दी चलने लगा। ज्यादा देर यहाँ रुकने पर जैसे उसे कोई पहचान लेगा। हाँफते-हाँफते सदाव्रत सीधे बस-स्टॉप पर आकर रुका।

□　□　□

बंकू बाबू ने कहा, "क्या बात है, जनाब ? आजकल तो आपका पता ही नहीं रहता, धन्धे में शायद बुरी तरह फँसे हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "धन्धे की बात छोड़िये, अब तो धन्धे को समेटने की सोच रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"अब क्या वे दिन रहे हैं ! अब तो गवर्नमेंट ने ही ज़मीन का धन्धा शुरू कर दिया है। मैंने तो उस दिन डॉ० राय को कह दिया कि क्या सब कुछ ही नेशनलाइज़ कर डालियेगा ? बस, ट्राम, इलेक्ट्रिसिटी, सभी तो ले रहे हैं। अब अगर ज़मीन-वमीन का काम भी न करेंगे तो हम लोग कहाँ जायें ? हम लोग क्या खाकर ज़िन्दा रहें ?"

"तो डॉ० राय ने क्या कहा ?"

"सुनकर हँसने लगे। डॉ० राय मेरे पुराने दोस्त हैं।"

अनाथ बाबू चौंके, "डॉ० राय आपके पुराने दोस्त हैं क्या ?"

"वाह, आपको नहीं मालूम ! आज भले ही चीफ़ मिनिस्टर हो गये हैं, हम लोगों ने तो एक साथ एक सभा में लेक्चर दिये हैं। कलकत्ता में जिन दिनों रॉयट्स हुए थे, तब मैंने और श्यामाप्रसाद बाबू ने ही तो दिन-रात घूम-घूमकर सारा काम किया। उस समय मधुगुप्त लेन के मकान में रहता था। मेरे घर दिन में दो-दो बार मीटिंग होती। कांग्रेसवाले उस समय समझ ही नहीं पा रहे थे कि क्या करें।"

ये सब सिर्फ़ बातें ही नहीं थीं। ये बातें कुछ ही लोग जान पाते थे। किसी-किसी दिन अचानक टेलीफ़ोन आ जाता। शिवप्रसाद बाबू रिसीवर उठाते। कुछ देर बात करते। फिर झुँझलाकर टेलीफ़ोन छोड़ देते। कहते, "लगता है, ये लोग मेरी जान लेकर छोड़ेंगे।"

सभी पूछते, "क्यों, क्या हुआ ? किसने टेलीफ़ोन किया था ?"

"और कौन करेगा ? वही आप लोगों का मेयर !"

मेयर का नाम सुनकर सभी को आश्चर्य होता। सारा कलकत्ता जैसे शिवप्रसाद बाबू की राय लेने के लिए लालायित रहता है। शिवप्रसाद बाबू की राय लिए बिना जैसे मिनिस्ट्री टूट जायेगी, सारा कलकत्ता तहस-नहस हो जायेगा। कोई फ़ोन ऐसे समय पर आता कि सभी मुश्किल में पड़ जाते।

मन्दा पूछती, "अब फिर से कहाँ जा रहे हो ?"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "हो आऊँ, अचानक बुलाया है। नहीं जाने से खराब लगेगा। सोचेंगे, मैं किसी की परवाह ही नहीं करता।"

...गयी। तभी से शिवप्रसाद बाबू को जैसे थोड़ा आराम मिला।

लेकिन तब भी बैठकखाने में मीटिंगें जमती। बार-बार चाय आती, ...ान आते। कितनी ही बार कान लगाकर सारी बातें सुनी हैं। कुछ भी समझ में नहीं आया। पार्टीबाजी, दल में फूट। जोर की बहस चल रही थी। इसी बीच एक बार अन्दर आकर पूजा कर गये। फिर वही। राम बाबू मिनिस्टर होंगे कि श्याम बाबू। कौन मेयर होगा, कौन डिप्टी-मेयर होगा, इसी फैसले के लिए उन लोगों की नींद हराम थी।

उस समय कहाँ-कहाँ नहीं घूमे हैं। आज जलपाइगुड़ी गये तो दूसरे ही दिन बरासात में मीटिंग होती। वहां से लौटते ही फिर आसनसोल। मन्दा को कभी-कभी डर भी लगता। इस तरह घर को अंधेरा छोड़ मस्जिद में दीया जलाते कहीं खुद का धन्धा न ठप्प हो जाय।

मन्दा पूछती, "इधर तुम कई दिनों से ऑफिस नहीं जा रहे हो, तुम्हारा ऑफिस कौन देख रहा है?"

शिवप्रसाद बाबू सवाल में जवाब देते, "बिजनेस पहले कि देश पहले?"

"देश देखनेवाले तो कितने ही हैं। तुम्हारे न देखने से कुछ जानेवाला नहीं है।"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "मैं क्या जानकर देखता हूं? अगर नहीं देखना हो तो शायद बच जाऊँ। लेकिन पता है, इस देश के लिए कितने लोगों ने प्राण दिये हैं! हजारों लोगों को कैद हुई, और जेल में टी० बी० के शिकार हो गये। खुदीराम और गोपीराम साहा को फाँसी हुई, यतीनदास अनशन करके मरे—अगर आज हम लोग न देखें तो उन लोगों का प्राण देना बेकार ही गया। आँखों के सामने इधर-उधर के आदमी लूट-पाट कर मजे उड़ायें, यह तो और देखा नहीं जाता, इसी से तो मरता हूँ। नहीं तो मेरा क्या है? अपना बिजनेस करता रहूँ और आराम से खा-पीकर पड़ा रहूँ।"

मन्दा ये सारी बातें सुनती, लेकिन उसमें विरोध करने का साहस नहीं था। और उसके विरोध करने पर शिवप्रसाद बाबू सुननेवाले आदमी नहीं हैं। शिवप्रसाद बाबू हमेशा से अपनी मर्जी के मुताबिक चले हैं, आज भी चल रहे हैं। आज भी किसी-किसी दिन कहाँ चले जाते हैं, कुछ पता नहीं चलता। कहने का समय ही कहाँ मिलता है!

बाहर के कमरे से अचानक पति को अन्दर आते देख मन्दा अवाक् रह गयी। पूछा, "क्या हुआ?"

शिवप्रसाद बाबू—"बद्रीनाथ कहाँ गया?"

"वह तो तुम्हारी पूजा का इन्तजाम कर रहा है।"

शिवप्रसाद बाबू जीना चढते-चढते बोले, "कुंज से गाड़ी निकालने के लिए कहलाना है।"

"क्यों, इतनी रात में क्या फिर कहीं बाहर जाना है ?"

"हाँ, एक बार जाना ही होगा।"

"कोई ज़रूरी मीटिंग है ?"

मन्दा पीछे-पीछे चलती रही। बद्रीनाथ भी खबर पाकर मालिक के पास आया। बोला, "कुंज ने गाडी बाहर कर ली है, हुजूर !"

जल्दी से कपड़े बदलकर शिवप्रसाद बाबू फिर नीचे उतर गये। उन्हें जैसे किसी के साथ बात करने की फुरसत नही है।

बद्रीनाथ भी जानेवाला था। मन्दा ने पूछा, "बाबू कहाँ जा रहे है, तुझे कुछ पता है ?"

"जी, नही।"

"कोई टेलीफोन आया था ?"

"यह तो नही मालूम, मालिक को तो बाहर के कमरे में बकू बाबू के साथ बातें करते देखकर आ रहा हूँ।"

"तो इस समय अचानक बाहर जाने की क्या ज़रूरत आ पड़ी ?"

तभी बाहर से गाडी के स्टार्ट होने की आवाज आयी। बद्रीनाथ बाहर भागा, लेकिन उसके बाहर पहुँचने से पहले ही गाड़ी चल दी थी। कुंज से इस सब के बारे मे कुछ पता नही लगता। बाबू कहाँ जाते हैं, कहाँ नहीं जाते, उससे कुछ भी मालूम करना मुश्किल है। बडा ही गुमसुम है। दिन-रात गूंगे की तरह काम किये जाता है। जहाँ कहीं जाता है, लौटकर उसके बारे मे कोई बात नही करता। गैरेज के दरवाज़े पर बिछौना खोलकर लेट जाता और महाराज के आवाज देने पर खाकर फिर आ पडता। जैसे आदमी न हो, मशीन हो। मशीन की तरह आज इतने दिनों से शिवप्रसाद बाबू के यहाँ काम कर रहा है।

शिवप्रसाद बाबू पहले श्यामबाज़ार की एक गली मे गये। मालिक को उतारकर कुंज गाडी की झाड़-पोंछ करने लगा, फिर गाड़ी मे बैठ गया। मालिक को कहाँ-कहाँ जाना होना है। मकान के बाहर और भी कितनी ही गाड़ियाँ खड़ी थी। यहाँ कितनी देर रुकना होगा, कुछ ठीक नही है। देखते-देखते और भी कितनी ही गाडियाँ आकर खड़ी होने लगी। कुछ देर बाद शिवप्रसाद बाबू बाहर आये, गाड़ी मे बैठते-बैठते बोले, "चलो !"

कुंज ने एक्सीलेटर दबाकर इंजिन चालू कर दिया। इसके बाद सब चुप ! कुंज चुपचाप ही गाड़ी चलाता है। ड्राइवर का बेकार बोलना शिवप्रसाद बाबू को पसन्द नही है। कार्नवालिस स्क्वायर के सामने पहुचते ही शिवप्रसाद बाबू सीधे बैठ गये। बोले, "कुंज, एक टैक्सी तो रोक !"

सड़क के किनारे पर गाड़ी लगाकर कुंज बाहर निकला। 'टैक्सी चाहिए' कहते ही तो टैक्सी मिलती नही। ज़रा देर लगती है। इन्तजार करना पडता है।

शिवप्रसाद बाबू को शायद कोई जरूरी काम था। टैक्सी के आते ही झट से बैठ गये। फिर कुंज से बोले, "यही रुकना, मैं अभी आया।"

कार्नवालिस स्क्वायर के कोने पर गाड़ी लगाकर कुंज चुपचाप बैठा रहा। रात के नौ बज रहे थे।

□ □ □

वास्तव मे इसकी शुरुआत १९४७ के पहले से ही हुई थी। कलकत्ता शहर के लोग समझ गये थे, एक और नया युग आनेवाला है। जिस किसी के लिए ही हो, आजादी आनी ही है। लेकिन आजादी किसकी ? गरीबों की या बड़े लोगों की ? असल मे एक बात समझ में नही आयी, वह समझी भी नही जा सकती। जब बाढ़ आती है तो सब-कुछ डूब जाने पर भी आखिर में कही ऊसर बालू छोड़ जाती है और कही उर्वर कछार। कहीं बंजर होता है तो दूसरी जगह सोने की खेती होती है। कुंज यह सब नही सोचता। उसके दिमाग में ये बातें आती ही नही। मन्दा भी नही सोचती। बद्रीनाथ भी इन सब बातो में सिर नही खपाता। अनाथ बाबू, बंकू बाबू, अविनाश बाबू कोई भी यह सब नही सोचता। सब-के-सब अपनी पेंशन के हिसाब को लेकर मशगूल रहते है। यहाँ तक कि मधुगुप्त लेन क्लब के लड़के भी नही सोचते, सोचा सिर्फ एक आदमी ने। ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा तो होना नही चाहिए था।

सदाव्रत ने पहले-पहले उन्ही से सुना था। उस समय सदाव्रत की उम्र कम थी। मधुगुप्त लेन वाले मकान में रोज शाम को पढ़ाने आते थे। सारा दिन स्कूल में रहने के बाद शाम को कही निकलने की मनाही थी। किसी तरह दोपहर कटने के बाद दिल बड़ी बेचैनी के साथ शाम का इन्तजार करता था। शाम होते ही मास्टर साहब आते। मास्टर साहब की सोहबत में, उनके साथ बातें करते-करते सदाव्रत जैसे सब-कुछ भूल जाता।

इतने दिनो बाद हठात् आज उन्ही मास्टर साहब की याद

मन्दा ने पूछा, "महाराज, छोटे बाबू को अभी तक खाना खाने के लिए नहीं बुलाया ?"

"छोटे बाबू तो घर में नहीं हैं।"

मन्दा को भी आश्चर्य हुआ। अभी जरा देर पहले ही तो देखकर आयी हूँ, कमरे में ही था। फिर पूछा, "थोड़ी देर पहले ही तो था, फिर कहाँ चला गया ? गाड़ी लेकर गया है ?"

मन्दा खुद भी एक बार सदाव्रत के कमरे में गयी। दूसरी मंज़िल पर एक कोने में उसका कमरा था। वहाँ उसने अपनी अलग गृहस्थी बसा रखी है। जाने कहाँ-कहाँ की किताबें इकट्ठी कर रखी है। उन्हें सजाकर रखा है। आजकल वह किस समय कमरे में रहता है और कब निकल जाता है, मन्दा को कुछ पता ही नहीं लगता। लड़के बड़े होने पर जैसे माँ के लिए पराये हो जाते हैं। कमरा खाली देखकर मन्दा को बड़ा अजीब-अजीब-सा लगा। पहले फिर भी दिन में एकाध बार दीख जाता था; आजकल तो कब घर में है, कब नहीं है, कुछ पता ही नहीं रहता। उस दिन काफ़ी रात गये घर लौटते ही माँ ने जाकर पूछा, "क्यों रे, तू खाना नहीं खायेगा ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं।"

"क्यों, खायेगा क्यों नहीं ? क्या हुआ ? तबीयत ठीक नहीं है ?"

सदाव्रत तकिए में सिर छिपाये बिस्तरे पर पड़ा था। माँ की बात सुनकर भी उसने मुँह नहीं उठाया। बोला, "नहीं, तबीयत ठीक है, ऐसे ही नहीं खाऊँगा।"

"ऐसे ही क्यों, कुछ मालूम भी हो ? कहीं पार्टी-वार्टी थी ?"

"नहीं।"

मन्दा ने लड़के के सिर पर हाथ रखकर देखा, बुखार तो नहीं है। सदाव्रत ने माँ का हाथ हटा दिया।

"आखिर कुछ कहेगा भी, क्या हुआ ? खायेगा क्यों नहीं ?"

"नहीं, तुम यहाँ से जाओ। मुझे कुछ नहीं हुआ है।"

मन्दा फिर भी कुछ नहीं समझी। पूछा, "तब बतला, क्या बात है ?"

सदाव्रत ने कहा, "तुमसे कहना बेकार है, तुम नहीं समझोगी।"

"कल भी खाया नहीं, आज भी नहीं खा रहा, तुझे हुआ क्या है ?"

"तुम रोज ही क्या मुझे सब-कुछ बतलाती हो !"

"तुझे सब बातें नहीं बतलाती ? तू कह क्या रहा है ?"

"माँ, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, तुम यहाँ से जाओ। मुझे जरा देर

अकेले रहने दो।"

इसके बाद मन्दा ने और कुछ नहीं कहा। लड़का बड़ा हो गया है, उसकी इच्छा अपनी इच्छा हो सकती है। सदाव्रत भी उस दिन के बाद से न जाने कैसा हो गया। अपने पिछले जीवन की एक-एक घटना याद करने लगा। उसने कब क्या चाहा, क्या मिला और क्या नहीं मिला। उसके बारे में किसी ने भी तो नहीं सोचा। उसके भले-बुरे को लेकर किसने सिर खपाया है? पिताजी! उन्हें वह घर में कितनी देर के लिए देखता है। वह सारे दिन बिजनेस और अपने दूसरे कामों में लगे रहते हैं। और माँ! उन्हें घर-गृहस्थी में ही फुरसत नहीं है।

मास्टर साहब के मकान के पास पहुंचते ही देखा, गली के अन्दर बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी हुई हैं। एक उसके पिताजी की भी है। गाड़ी के अन्दर कुंज चुपचाप बैठा था। सदाव्रत लौट पड़ा, घूमकर दूसरे रास्ते से गली के अन्दर आया। इस ओर भीड़ नहीं थी। मास्टर साहब के मकान के सामने पहुंचकर सदाव्रत ने दरवाज़ा खटखटाया।

"मास्टर साहब!"

"कौन?"

केदार बाबू ने अन्दर से ही कहा, "दरवाजा खुला ही है, आ जाओ!"

सदाव्रत को देखकर केदार बाबू बड़े खुश हुए, "अरे, तुम आये हो! अभी ज़रा पहले तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था।"

"मेरे बारे में ही सोच रहे थे?"

केदार बाबू ने कहा, "हाँ, सोच रहा था, पहले तो रोज ही तुम्हारे घर जाता था, उस समय तुम्हारे पिताजी की हालत इतनी अच्छी नहीं थी, लेकिन देखो, अब तो तुम लोगों की हालत काफी अच्छी हो गयी है—हो गयी है न?"

सदाव्रत एकदम से इस बात का जवाब नहीं दे पाया। केवल बोला, "जी, हुई तो है।"

"लेकिन देखो, तुम लोगों की तरह सिर्फ दो-चार लोगों की हालत अच्छी हुई है, देश की हालत तो अच्छी नहीं हुई, देश के आम लोगों की हालत तो शायद पहले से भी ख़राब हो गयी है। बात सच है न?"

केदार बाबू अचानक यह सब क्यों पूछ रहे हैं, सदाव्रत कुछ भी नहीं समझ पाया। एक छोटे-से तख्त पर बिछी दरी, मैला-चीकट एक तकिया; उसी दरी के ऊपर अधलेटे जाने क्या लिख रहे थे। सारे कमरे में गर्द जमी

थी, चारों ओर किताबें-कॉपियाँ-कागज बिखरे पड़े थे।

"सच है कि नहीं, बोलो ?"

सदाव्रत ने कहा, "सच है।"

"मैं भी यही सोच रहा था। मन्मथ ने सवाल तो ठीक ही उठाया।"

"मन्मथ कौन ?"

"मेरा एक विद्यार्थी। मैं उसे हिस्ट्री पढ़ाता हूँ। एंशियेंट हिस्ट्री। पढ़ते-पढ़ते आज चट से मन्मथ ने मॉडर्न हिस्ट्री का यह सवाल पूछ लिया। मैंने भी सोचकर देखा, मन्मथ ने कोई गलत बात तो नहीं कही। यह बात तो मैंने पहले कभी नहीं सोची थी। तभी तुम लोगों का ध्यान आया। इसके बाद काफी देर सोचता रहा। सोचते-सोचते जवाब मिल ही गया।"

कहते-कहते केदार बाबू उत्तेजित हो उठे। बोले, "समझे सदाव्रत, जवाब मिल ही गया। रूसो की किताब में देखा, साफ-साफ लिखा है—'आदमी पैदा तो स्वतन्त्र हुआ है, लेकिन हर जगह उसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं।' मैंने मन्मथ से कहा कि देश को फ्रीडम मिलने से ही आम आदमी भी फ्री हो जायेगा, ऐसी कोई बात नहीं है।"

सदाव्रत केदार बाबू की बात जरा भी नहीं समझ पाया।

"तुम कुछ समझ पा रहे हो या नहीं ?"

सदाव्रत ने कहा, "मैं आपसे एक और बात पूछने आया था।"

"लेकिन तुम पहले मेरी बात का उत्तर दो, अपने पिताजी की ही मिसाल ले लो। अब तो तुम लोग काफी बड़े आदमी हो गये हो, तुम्हारे पिताजी के मन में कोई दुःख नहीं है ? कोई कष्ट ? कोई यन्त्रणा ?"

सदाव्रत ने कहा, "यह तो मुझे नहीं मालूम।"

"लेकिन 'मालूम नहीं' कह देने से तो काम नहीं चलेगा। तुम्हारा काम चलने पर भी मेरा तो नहीं चलेगा। मुझे लड़कों को पढ़ाना होता है, मुझे तो उत्तर देना ही होगा—इसीलिए मैं तभी से सोच रहा था, यह सवाल सदाव्रत से पूछना होगा। मतलब—देश को फ्रीडम मिलने से आदमी को फ्रीडम मिलती है या नहीं ? और अगर मिलती है तो अपने इंडिया में किसे मिली है ? कितनों को मिली है ? अभाव से छुटकारा पाना भी तो एक तरह की फ्रीडम ही है—ठीक है न ?"

सदाव्रत ने बीच में ही कहा, "इस विषय पर फिर बात करूँगा।"

"मुझे बतला सकते हो, इस समय तुम्हारे पिताजी की इनकम कितनी है ? तुम्हारे पिताजी तो जमीन की खरीद-फरोख्त का काम देखते हैं, इसलि-

डेंस के बाद उनके बिजनेस में एकाएक इतनी उन्नति कैसे हो गयी ? कांग्रेस के लोगों के साथ मेलजोल है, इसीलिए न ?"

"नहीं, पिताजी तो किसी पार्टी के मेम्बर नहीं है। पिताजी ने बिजनेस मे पैसा कमाया है।"

"लेकिन उनकी इन्कम कितनी है ?"

सदाव्रत—"मुझे माफ कीजिये, मास्टर साहब, मुझे कुछ भी मालूम नही है। मेरे माता-पिता मुझे कुछ भी नहीं बतलाते—मैं उस घर का कोई भी नहीं हूँ, असल मे मैं उन लोगों का लडका नही हूँ—यही बात बतलाने मैं आपके पास आया था।"

केदार बाबू अचम्भे मे पड गये। बोले, "लड़के नही हो, माने ?"

"कई दिनों से अच्छी तरह सो नहीं पा रहा, खा नहीं पाता—समझ मे नही आता, किसके पास जाऊँ, किसके पास जाकर अपनी बात कहूँ—ठीक नही कर पा रहा था, इसी से आपके पास चला आया। अब चलूँ, शायद आपके साथ मेरी यह अन्तिम मुलाक़ात हो।"

"अरे, सुनो-सुनो ! जा कहाँ रहे हो ?"

लेकिन सदाव्रत तब तक सड़क पर पहुँच चुका था। इतनी जगहों के रहते वह मास्टर साहब के पास ही क्यों आया ? अपने में खोये इन भोला-नाथ से अपना दुःख कहकर वह कौन-सी सहानुभूति चाहता था ? जो आदमी खुद अपना भला-बुरा नही समझता, उस पर दूसरे की भलाई-बुराई का बोझ डालकर क्या सदाव्रत बच पायेगा ? चलते-चलते जैसे सदाव्रत के सिर का बोझ भी बढ़ गया। आस-पास मे कितने लोग चल रहे हैं। *गरीब, अमीर—गाड़ी, रिक्शा, ट्राम।* सदाव्रत को लगा, जैसे वह अकेला है, उसका अपना कोई नही है। गृहस्थी की छोटी-मोटी बातें जैसे उसकी आँखों के सामने आकर कौंधने लगी। उसके कमरे में बिस्तरे की चादर समय पर क्यों नही बदली जाती, खाते समय उससे क्यों नहीं पूछा जाता कि उसे और कुछ चाहिए या नहीं। सब बिलकुल छोटी-छोटी बातें, जिनको उसने पहले कभी सोचा भी नही था। लेकिन आज हीब बातें जैसे बड़ी दीख पड़ने लगी। कार्ल मार्क्स किसी पर भी विश्वास नहीं करता था—उसकी बायोग्राफी में लिखा है। इतने दिनों बाद सब-कुछ समझ मे आया है। हालांकि माँ-बाप पर भरोसा कर उसने कितनी ही बार हठ किया है, अपना अधिकार मनवाने की कोशिश की। वही झूठा विश्वास जैसे आज सदाव्रत के जीवन पर बोझा बनकर लदा था। वैसे सदाव्रत हरेक

से यही उपदेश सुनता आया है कि अविश्वास करके फायदा करने से भरोसे से ठगना ज्यादा अच्छा है।

केदार बाबू फिर से अपने ध्यान मे मशगूल होने जा रहे थे कि अचानक पीछे का दरवाज़ा खुला।

"कौन आया था ?"

"कोई भी नही, तू जा इस समय, अभी खाना नही खाऊँगा।"

"खाना खाने नहीं बुला रही, मैंने सब-कुछ सुन लिया है। तुम भी कैसे हो, काका ! कुछ भी नही समझते। उसे इस तरह से क्यो जाने दिया ?"

"क्यो···क्या मैंने जाने दिया, वह तो स्वय ही चला गया। सदाव्रत की बात कर रही है न ?"

"चला गया, इसलिए तुम ऐसे ही जाने दोगे ? उसका चेहरा, आँख-मुह नही देख पाये ? अगर अभी रास्ते मे गाड़ी के नीचे आ दब जाये ? अगर आत्महत्या कर बैठे ? मैं अन्दर से सब-कुछ देख रही थी···"

"आत्महत्या करेगा ? क्यो ? क्या हुआ है उसे ?"

"ओफ, तुम भी क्या हो, काका ? सुना नही, उसने क्या कहा ?"

इतनी देर बाद जैसे होश आया। बात का महत्त्व अब समझ मे आया। बोले, "अब क्या करूँ ? यह तो बडी गड़बड़ हो गयी। सच ही तो मुझे समझना चाहिये था। उस हालत मे उसे जाने देकर मैंने बडी गलती की···"

"तो अब जाओ न ! अभी-अभी तो गया है···शायद अभी बस के रास्ते तक भी नही पहुचा होगा।"

"वही ठीक रहेगा··· उसे पकड़ लाऊँ।"

कहकर केदार बाबू और नही रुके। उसी हालत मे सड़क पर निकल पड़े। शैल दरवाजे पर आकर खड़ी रही। अँधेरी गली। दूरी पर चलते लोग ठीक से दिखलायी नही देते थे। फिर भी सामने की ओर देखती रही। देखा, केदार बाबू जल्दी-जल्दी बस-स्टॉप की ओर जा रहे थे।

□　　□　　□

सारा कलकत्ता न जाने कैसा लग रहा था। सिर्फ उसकी अपनी अनिश्चितता के लिए नही। यह सारा शहर जिस समय अनिश्चितता के बीच झूल रहा था, उस समय सदाव्रत को लगता, उसकी अपनी जिन्दगी की तरह इस शहर का इतिहास भी नकली है। यह सड़क, बस, ट्राम—कुछ भी असली नही है। मास्टर साहब को जाकर सब-कुछ बतलायेगा—सोचकर ही वह उनके पास गया था, लेकिन फिर लगा कि कहकर कोई भी फायदा

नहीं होगा। एक समय था जब मास्टर साहब उसके घर आते थे। पचास रुपये महीना लेते थे। लेकिन एक दिन पता नहीं क्या सूझी, एकाएक बोले, "अच्छा, देखकर तो आओ, तुम्हारे पिताजी घर में हैं या नहीं ?"

उस समय सदाव्रत छोटा था। घर के अन्दर देख आने के बाद बोला, "नहीं, पिताजी तो नहीं हैं।"

केदार बाबू ने कहा था, "किस समय घर पर रहते हैं, समझ में नहीं आता···बड़ी मुश्किल हुई।"

फिर कुछ सोचकर कहा, "कब आने पर मिल सकेंगे ?"

"सुबह के समय।"

"तब सुबह ही आऊँगा।"

कहकर मास्टर साहब चले गये। दूसरे दिन सुबह होते ही आ पहुँचे। पिताजी उस समय बैठकखाने में बैठे थे। शिवप्रसाद बाबू मास्टर साहब को पहचान ही नहीं पाये। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं हुआ।

"आप कौन हैं ?"

"मैं खोका का मास्टर हूँ, आपके लड़के सदाव्रत का मास्टर केदारनाथ राय। आपसे कुछ कहना था।"

"क्या कहना चाहते हो, कहिये। रुपये बढ़ाने होंगे ?"

"जी···"

शिवप्रसाद बाबू काम के आदमी हैं, बातों के नहीं। पूरी बात सुने बिना ही बोले, "देखिये, मैं एक साधारण आदमी हूं, चोटी का पसीना एड़ी तक बहाकर पैसा पैदा करता हूँ। मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार आपको दे रहा हूँ। वैसे आपको कितना मिलता है ?"

"पचास !"

"पचास रुपये से एक पैसा भी ज्यादा देने की ताकत मेरी नहीं है। अगर होती, तो मैं जरूर देता। आप शायद सोचते होंगे—मैं बिजनेस करता हूँ, ज़मीन खरीदने-बेचने की दलाली करता हूँ, लेकिन वास्तव में बिज़नेस की ओर देखने का समय ही नहीं मिलता। कल ही देखिये न, ऑफिस से सीधे मेदिनीपुर चले जाना पड़ा।"

"मेदिनीपुर ? क्यों ? वहाँ शायद आजकल कुछ ज़मीन का काम···"

"नहीं-नहीं, बाढ़ की वजह से। बाढ़ में वहाँ सब-कुछ बह गया है। लेकिन वह सब छोड़िये, इससे ज्यादा देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।"

केदार बाबू ने कहा, "मैं यही बात कहने तो आया था, आप मेरी

तनख्वाह कुछ कम कर दीजिये।"

"कम !" शिवप्रसाद बाबू जैसे चौंक पड़े। अच्छी तरह से केदार बाबू को देखा। साधारण कपड़े। साफ़ घने बाल। पैरों में पुरानी चप्पल। आँख पर मोटा चश्मा। डबल एम० ए० है, सुनकर लड़के को पढ़ाने के लिए रख लिया। भले आदमी का दिमाग तो खराब नहीं हो गया !

"कम कर दीजिये ! मतलब ?"

केदार बाबू ने कहा, "आजकल बाजार की जो हालत है, उसे देखते हुए पचास रुपये लेना मेरी ज्यादती है—आप कुछ रुपये कम कर दीजिये। चारों ओर बाढ़ वगैरह आ रही है। इस हालत में कितनों ही के लिए गृहस्थी चलाना मुश्किल हो रहा होगा, आजकल लोग बड़ी तकलीफ में हैं।"

शिवप्रसाद बाबू और उत्सुक हो उठे। बोले, "बैठिये न, खड़े क्यों हैं ?"

ऐसा अजीब आदमी शिवप्रसाद बाबू ने अपनी सारी जिन्दगी में नहीं देखा। यह क्या इस शताब्दी का आदमी है ? लेकिन केदार बाबू बैठे नहीं। बोले, "इस समय मेरे पास बैठने का समय नहीं है, दो जगह और पढ़ाने जाना है, दोनों ही लड़के बी० ए० में पढ़ रहे हैं।"

"ट्यूशन करने के अलावा आप और क्या करते हैं ?"

केदार बाबू ने कहा, "समय ही नहीं मिलता; और क्या करूँगा ! मेरे पास क्या एक ही ट्यूशन है—दिन-भर में छः लड़कों को पढ़ाता हूँ।"

"तब तो आप काफी रुपया कमाते होंगे ?"

"सो तो कमाता ही हूँ।"

"कुल मिलाकर कितने रुपये होते हैं ?"

"आप देते हैं पचास और तीन लोग तीस-तीस रुपये देते हैं, इसी में गुजारा हो जाता है।"

शिवप्रसाद बाबू ने हिसाब लगाकर कहा, "ये तो केवल एक सौ चालीस रुपये हुए, और दो जने ?"

"उन लोगों की बात छोड़ दीजिये, वे दोनों कुछ भी नहीं दे पाते।"

"तब आपकी गुजर कैसे होती है ?"

"वही तो बात कह रहा था, बड़ी मुश्किल से गुजर होती है—हिस्ट्री में *कोई-कोई ऐसा समय आता है, जब इसी तरह मुश्किल से गुजारा करना* होता है, इंडिया में इसी तरह की सिचुएशन एक बार १७७० में आयी थी। उस समय तो फिर भी राशन-शॉप हो गयी हैं। १८६६ के अकाल के समय वे भी नहीं थी···अच्छा, अब मैं चलूँ, कई काम हैं।"

कहकर केदार बाबू जा ही रहे थे कि शिवप्रसाद बाबू ने रोका। पूछा, "आप एक नौकरी करेंगे ?"

बात सुनकर केदार बाबू भौंचक्के-से खड़े रहे।

"मेरे ऑफ़िस में नौकरी करेंगे ? दो सौ रुपये महीना दूँगा।"

केदार बाबू एकदम से कुछ भी नहीं कह पाये। कुछ देर ठहरकर बोले, "मेरे पास समय कहाँ है ? मैं छः-छः ट्यूशन करता हूँ, नौकरी कब करूँगा?"

"ट्यूशन छोड़ दीजिये; ट्यूशन करके जो मिलता है उससे ज्यादा पायेंगे, आप-जैसे ऑनेस्ट आदमी की ही मुझे ज़रूरत है।"

"लेकिन लड़कों का क्या होगा ?"

"उन लोगों को और कोई मास्टर मिल जायेगा।"

केदार बाबू हँस पड़े, बोले, "तब तो हो लिया। मेरे सभी स्टूडेंट अच्छे हैं...खराब मास्टर के हाथ पड़ते ही उनका कैरियर चौपट हो जायेगा—सभी तो धोखा देते हैं। इसके अलावा यह तो आप जानते ही हैं कि देश की हालत कितनी खराब है ! कितनों ही के पास किताबें खरीदने को भी पैसा नहीं है।"

कहते-कहते केदार बाबू के चेहरे और आँखों का भाव न जाने कैसा हो गया। वह वहाँ और ज्यादा नहीं रुके। सदाव्रत को याद है, पिताजी अगले दिन से मास्टर साहब को दूसरी नजर से देखने लगे। पढ़ने-लिखने की बाबत फिर किसी दिन कुछ नहीं पूछा। केदार बाबू के हाथों उसे सौंपकर जैसे निश्चित थे। बचपन से शुरू कर सालों पढ़ाते रहे। एक बार भी फीस बढ़ाने के लिए नहीं कहा। एक दिन भी नागा नहीं किया। बारिश में भी एक टूटा छाता लिए भीगते-भीगते आकर पढ़ा जाते। पढ़ने के सिवाय सदाव्रत जैसे कुछ जानता ही नहीं था। आज इतने दिनों बाद जैसे अचानक दुनिया के साथ पहली मुलाकात हुई। पहली दोस्ती। उस पहली निकटता में ही एक ज़ोर का धक्का लगा।

सुबह होते ही माँ कमरे में आयी। सदाव्रत ने सिर उठाकर एक बार देखा, फिर मुँह फेर लिया।

"हाँ रे खोका, कल किस समय आया ?"

सदाव्रत अचानक कोई जवाब नहीं दे पाया।

"क्यों रे, तुझे हुआ क्या है ? कल गाड़ी भी नहीं ले गया ! बात क्या है ? वह कह रहे थे कि तेरी गाड़ी पुरानी हो गयी है, एक नयी गाड़ी खरीदनी होगी। गाड़ी के लिए गुस्सा हो तो गाड़ी चाहते ही तो नहीं

मिल जाती ! आजकल एक साल पहले से नाम रजिस्ट्री कराकर रखना होता है।"

फिर भी सदाव्रत ने कुछ नही कहा।

तभी एकाएक शिवप्रसाद बाबू कमरे में आये।

"अरे, क्या हुआ ? कल रात इतनी देर तक कहाँ थे ? यार-दोस्तों के चक्कर मे पड गये हो क्या ?"

सदाव्रत कभी भी पिता के सामने सहज होकर बात नही कर पाता था। पिताजी के साथ उसका सम्पर्क ही कितना है ! दिन-भर मे उनके साथ मुलाकात ही कितनी देर के लिए होती है ! बचपन से ही उसने घर मे अकेले किताबों के बीच दिन काटे है। दोस्त नही, भाई-बहन नही। मुहल्ले के लडके थे, लेकिन उनसे बोलना मना था।

शिवप्रसाद बाबू को क्या उत्तर दे, वह ठीक नही कर पाया।

"आज मेरे साथ ऑफ़िस चलना। अब तुम्हे अभी से सब-कुछ समझ लेना चाहिए।"

मन्दाकिनी को भी सुनकर ज़रा आश्चर्य हुआ। बोली, "तुम क्या उसे भी ऑफिस मे बैठाओगे ?"

शिवप्रसाद बाबू—"तुम चुप रहो, हर बात मे क्यों बोलती हो ! वह ऑफिस मे बैठेगा या पढाई-लिखाई करेगा, यह मैं ठीक करूँगा। मै जो कुछ कहूँगा वही उसे मानना होगा।"

कहकर शायद जा ही रहे थे, लेकिन जाने कौन-सी बात याद आ गयी कि लौट पडे। बोले, "मैं आज दस बजे निकलूंगा, तैयार रहना।"

मन्दा ने कहा, "इसकी गाडी का क्या हुआ ? तुमने तो कहा था, इसके लिए नयी गाडी ले दोगे—गाडी के लिए हो तो नाराज है।"

सदाव्रत ने इतनी देर बाद सिर उठाया। माँ की ओर देखकर बोला, "मैंने तो गाड़ी के बारे मे कब कहा, मुझे गाड़ी नही चाहिए ! मेरा क्या दिमाग ख़राब हो गया है !"

शिवप्रसाद बाबू लड़के की ओर देखकर अवाक् रह गये। इस तरह मे तो कभी बात नही करता था खोका ! उनकी आँखों के सामने ही यह लडका इतना बदल गया ! शक्ल देखकर भी जैसे विश्वास नही हुआ। इस लड़के को उन्होंने ज़रा-सा देखा है। आज वह इतना बड़ा हो गया। सदाव्रत के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ आ गयी है। इतना लम्बा हो गया है। शिवप्रसाद बाबू के ही करीब होगा। उन्होंने लड़के को जैसे दूसरी नज़रों से देखा। दुनिया

इतनी जल्दी-जल्दी बदलती है। इतनी जल्दी वह बूढे हो गये।

सारे दिन न जाने कैसी बेचैनी-सी रही। ऑफ़िस जाकर उन्होंने ज्यादा देर काम नही किया। कर ही नही पाये। सदाव्रत साथ गया था। दो-तीन टेलीफ़ोन आये। हेड क्लर्क हिमांशु बाबू काम लेकर आये। शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अब यह और क्या ले आये ?"

"कल आपने यह प्लान देखने को कहा था।"

"कौन-से प्लान ?"

"चन्दननगर और दुर्गापुर की ज़मीनवाले---पार्टी जल्दी मचा रही है।"

"पार्टियों को जल्दी मचाने दो, उन लोगों की जल्दीबाज़ी के लिए ही कल्याणी में इतना नुक़सान हो गया, फिर से नुकसान उठाना है क्या ? दुर्गापुर की ज़मीन की तो दर बढ़ गयी थी, अब क्या हुआ ? स्पेक्यूलेशन क्या इतना ही आसान है ! उस समय तो उन लोगों ने सोचा था, बाद में एकदम से ज़मीन का भाव बढ़ेगा, कहाँ बढ़ा ?"

शिवप्रसाद बाबू ने काफी डाट लगायी। छोटा-सा ऑफिस। अन्दर बात करने पर सारे ऑफिस में सुनायी देती। सभी चुपचाप सुनते रहे। निःस्तब्ध ऑफिस में टाइपराइटर की खट्-खट् कानों को बड़ी खराब लगती।

नन्दी बाबू ने टाईपिस्ट की ओर इशारा कर कहा, "ए मिस्टर, इतनी खट्-खट् क्यों कर रहे हो ? सुनते नही, अन्दर कितनी चिल्ल-पों मची है !"

"चिल्ल-पों हो रही है तो मैं क्या करूँ ?"

"ओफ़, ज़रा धीरे-धीरे काम करिये न, सुनाई नही दे रहा।"

□ □ □

वैसे सुनने लायक कुछ है भी नही। एकदम व्यापारिक बातें। कलकत्ता के पचास-साठ-सत्तर मील के बीच की सारी बेकार ज़मीन सस्ते भाव पर खरीदकर यहा ज्यादा दाम पर बेची जाती है। दो सौ रुपये बीघा के हिसाब से खरीदकर यहा दो हज़ार का दाम लिया जाता है। आज न हो, पर एक दिन तो कलकत्ता बड़ा होगा। और भी बड़ा होगा। १९४७ के पार्टीशन के बाद कलकत्ता इतना बढ़ जायेगा, यह क्या कोई सोच पाया था ? कोई भी नही सोच पाया। सोच पाये थे सिर्फ़ शिवप्रसाद बाबू।

शिवप्रसाद बाबू की इसी फ़र्म ने लाखों बीघा ज़मीन खरीदकर, पोखरे पाटकर, सड़क बनाकर, जंगल को शहर में बदल दिया है। उन सब जगहों का भाव आज एक हज़ार, डेढ़ हज़ार रुपया कट्ठा है। वहीं से इलेक्ट्रिक ट्रेन में चढ़कर आजकल के कलकत्ता के ऑफिसों के बाबू लोग डेली पैसेन्जरी

करते हैं। लेकिन उनमें से कोई नहीं जानता, इसी कलकत्ता में अभी कितनी ही रद्दो-बदल होगी। लोग जिस समय उत्तरपाड़ा, वाली, डायमंड हार्बर से पान चबाते-चबाते कलकत्ता आते हैं, जब क्रुश्चेव, आइजनहावर और चर्चिल को लेकर बहस करते हैं, जब नेहरू, विधान राय, गोआ को लेकर माथापच्ची करते हैं, उस समय भी दिमाग में नहीं आता कि उनकी धरती छोटी हुई जा रही है और शहर में आबादी बढ़ रही है। सोच ही नहीं पाते कि यही कलकत्ता किसी दिन दुर्गापुर तक जा पहुंचेगा। मधुगुप्त लेन की बताशे की दूकान के पीछे जिस समय बहूबाजार में संस्कृति-केन्द्र के शंभू आदि ड्रामे के लिए नया नाटक चुनने के लिए मीटिंग करते हैं, वे भी नहीं जान पायेंगे। बकू बाबू, अविनाश बाबू, अखिल बाबू—हिन्दुस्तान पार्क के पेंशन-होल्डर्स को भी पता नहीं चलेगा कि अन्दर-ही-अन्दर क्या षड्यन्त्र चल रहा है, क्या सलाह हो रही है, क्या जालसाजी हो रही है। फड़ेपुकुर लेन के केदार बाबू भी नहीं जान पाते कि ऐंशियेंट हिस्ट्री के पेजों में कब नाथूराम गोडसे ने महाराज अशोक का खून किया और कब भगवान् बुद्ध की हत्या करता है माओ-त्से-तुंग। रातोंरात कलकत्ता बदल जाता है, दुनिया बदल जाती है। सदाव्रत भी बदल जाता है।

शिवप्रसाद बाबू जब सारी दुनिया की चिन्ता में पड़े होते हैं, तब अचानक पाते हैं कि रातोंरात उनका खुद का नक्शा भी बदल गया है। सदाव्रत बड़ा हो गया है।

सदाव्रत सब सुन रहा था। सुन रहा था और देख रहा था। बचपन से ही बाबा के कारोबार की बातें सुन रखी हैं। आँखों से आज ही देखा। आँखों में आतंक और हाथ में कलम लिये लाइन-की-लाइन क्लर्क बैठे हैं, वह उनका भावी मालिक है। उसे भी क्या यही एक दिन इन लोगों का भाग्य-विधाता बनकर बैठना होगा! इसी ऑफिस के अन्दर ज़मीन के भाव में कमी-बेशी होने वाले बैरोमीटर की ओर नज़र रखे सारी ज़िन्दगी गुजारनी होगी! लॉस और प्रॉफिट? पौंड, शिलिंग, पैंस की लेजरबुक!

"चलो!"

अचानक जैसे सदाव्रत की विचारधारा टूट गयी। शिवप्रसाद बाबू खड़े हो गये थे।

"*दिस इज़ माई लाइफ। माई क्रिएशन।* अभी से यह सब देखने को मैं तुमसे नहीं कह रहा। यह भी नहीं कह रहा कि तुमको अभी से यहाँ बैठना होगा। लेकिन तुम्हें जानकारी रखना ज़रूरी है। अपने लिए तुम

कौन-सा प्रोफ़ेशन चुनोगे, यह तुम्हीं को ठीक करना होगा। मैं तुम्हारे ऊपर कुछ भी फोर्स नहीं करना चाहता।"

सदाव्रत चुपचाप सब-कुछ सुनता रहा।

"इतने दिन तक मैंने तुमसे यह सब नहीं कहा। लेकिन वर्ल्ड धीरे-धीरे बड़ी हार्ड होती जा रही है। हमारी हिस्ट्री, बायोग्राफी, महाभारत, गीता, रामायण सब-कुछ फिर से लिखने का समय आ गया है। आज भले ही इंडिया फ्री हो गया है, लेकिन इतने दिनों बाद यह सोचने का टाइम आया है कि हम इस आजादी के लायक हैं या नहीं। और लायक बनने के लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए। मैं जिस शहर में पैदा हुआ हूं उसमें तुम पैदा नहीं हुए। मैंने जो बंगाल नहीं देखा, तुम वही बंगाल आज देख रहे हो। यह और भी बदलेगा। तुम लोग ज्यादा उपभोग कर रहे हो, इसी से हम लोगों की अपेक्षा तुम लोगों की जिम्मेदारी भी ज्यादा है, तुम लोग ही देश को आगे बढ़ाओगे। स्कूल-कॉलिज में इतने दिन जो पढ़ाई-लिखाई की, वह बहुत ही कम है, तुम लोगों की असली एजूकेशन तो अब शुरू हुई है। और कोई भी फ़ादर होने पर तुमको अभी से बिजनेस या नौकरी में लगा देता, लेकिन मैं तुम्हारा कैरियर खराब नहीं करना चाहता। तुम सोचो। खूब अच्छी तरह से सोचो कि तुम कौन-सा कैरियर पसन्द करोगे। तुम जो कुछ चाहोगे, मैं वही देने की कोशिश करूंगा। रुपये की चिन्ता न करना, अगर इच्छा हो तो अमेरिका जा सकते हो, यू० के० जा सकते हो। टोकियो या वेस्ट जर्मनी, जहाँ भी तुम्हारी इच्छा हो, जा सकते हो—मैं सब इन्तज़ाम कर दूंगा। आजकल डालर की बड़ी दिक्कत है, एक्सचेंज-ट्रबुल तो है ही, लेकिन तुमको शायद पता ही है, मिनिस्ट्री में मेरा इन्फ्लुएंस है। मैं सब ठीक कर दूंगा, उस बारे में तुम्हें कुछ भी नहीं सोचना होगा।"

फिर अचानक ही क्या मन में आया। बोले, "चाहो तो अपने प्रोफ़ेसर से इस मामले में सलाह ले सकते हो। देखो न, क्या कहते हैं!"

शिवप्रसाद बाबू ने अचानक बात बदल दी।

"अच्छा, तुम्हारे एक ट्यूटर थे, जाने क्या नाम था उनका?"

"केदारनाथ राय, रीसेंटली उनके साथ मेरी मुलाकात हुई है।"

"क्यों? उनके साथ मुलाकात कैसे हुई? वैसे आदमी सच्चा है, वेरी ऑनेस्ट। यह भी मानता हूं कि ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पॉलिसी। आज भी मुझे वह घटना याद है।

"भले आदमी ने एक दिन मेरे पास आकर अपनी फीस में दस रुपये

'कम कर देने को कहा। एकदम मिली, तुम्हीं कहो। सुनकर उस दिन मुझे खूब हँसी आयी थी। वैसे मैं हँसा नहीं था, लेकिन उसी दिन समझ गया कि इस आदमी से जीवन में कुछ भी नहीं होगा। उसी समय जान गया, आदमी कम्प्लीटली फेल्योर है—उससे कुछ भी नहीं होगा।" इसके बाद कुछ देर के लिए शिवप्रसाद बाबू रुके, फिर कहने लगे, "असल में तुम्हें यह सब बतलाना बेकार है, तुम क्वाइट क्वालीफ़ाइड, क्वाइट एजूकेटेड। ये बातें तुम मुझसे ज्यादा अच्छी तरह से जानते हो, यह सब ऑनेस्टी आज के ज़माने में नहीं चलती। यह 'सर्वाइवल ऑफ द फ़िटेस्ट' का ज़माना है। यह भी एक तरह की लड़ाई है। यह दुनिया ही लड़ाई का मैदान है। हम लोग जो मास-मछली खाते हैं, क्यों खाते हैं? क्योंकि खुद जिन्दा रहने के लिए उन्हें मारना ही होगा। हिंसा-अहिंसा की बात नहीं है। इसी तरह हम लोगों को मारकर कोई बचे रहना चाहता है तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। उसे क्या दोष दिया जा सकता है ? तुम्हीं बोलो। इसीलिए हमें हमेशा अपनी आत्मरक्षा के लिए सतर्क रहना है। इस आत्मरक्षा के लिए कभी-कभी डिस-ऑनेस्ट होना होगा। यह भी एक तरह का धर्म है। और धर्मयुद्ध की बात तो अपने हिन्दू-शास्त्रों में है ही—इसी से कह रहा था कि आदमी एकदम फेल्योर है, कहीं तुम भी उसके प्रिंसिपल पर अमल न कर बैठना। अरे, हाँ—जाने क्या नाम था उसका ?"

"केदारनाथ राय।"

"हाँ, तो वे सब बातें छोड़ो। यह सब कहने के लिए ही आज तुम्हें यहा ले आया। आज गोआ के मामले पर मीटिंग है, मैं यहीं उतरूंगा, इसी हाज़रा पार्क में। कुज तुम्हें घर पहुचाकर मुझे यहा से ले जायेगा।"

कहकर शिवप्रसाद बाबू गाड़ी से उतर पड़े। बोले, "कुज, इधर फुट-पाथ पर गाड़ी रखना।"

हाज़रा पार्क में उस समय अपार भीड़ जमा थी। चारों ओर बड़े-बड़े पोस्टर झूल रहे थे 'पोर्तुगीज सालाजार, गोआ छोड़ो!' 'गोआ के बन्दियों को आज़ाद करो!' शिवप्रसाद बाबू मीटिंग की भीड़ में घुस गये।

कुज ने गाड़ी स्टार्ट कर दी थी। सदाव्रत ने कहा, "कुज, अभी घर नहीं जाऊँगा, मुझे ज़रा बहूबाजार-स्ट्रीट छोड़ दो।"

"बहूबाज़ार ?"

"हाँ, वहीं मेडिकल कॉलिज के सामने—मधुगुप्त लेन।"

कुज ने मिट्टी के पुतले की तरह स्टियरिंग ह्वील घुमा दिया।

□ □ □

खोज में देखने पहुँचते ।

किसी को दिखलाकर शभू कहता, "यह कैसी रहेगी ? देख, तो इसके पीछे का लोअर पार्ट वड़ा स्टिफ है।"

इसी तरह कोई-न-कोई कमी निकल ही आती । किसी का लोअर पार्ट स्टिफ है, किसी का फ्रंट व्यू एकदम फ्लैट होता तो किसी का स्टेपिंग वैड । जैसी होनी चाहिए, वैसी एक भी न मिलती । शंभू जिसको भी क्लब मे लाता, कालीपद रिजेक्ट कर देता । आखिर जब 'मरी मिट्टी' का स्टेज होना लगभग कैंसिल हो गया, कुन्ती नाम की लडकी आयी ।

शभू दत्त ने कालीपद के कान के पास मुह ले जाकर धीरे से पूछा, "क्यो रे, पसन्द है ?"

कालीपद उस समय एकटक कुन्ती की ओर देख रहा था । वैक, फ्रंट, साइड—हर ओर से देख लेने के बाद कालीपद एक कप चाय लेकर सोचता और बीच-बीच मे लडकी की ओर देखता ।

चाय पीते-पीते कुन्ती ने पूछा, "इतना क्या देख रहे हो ?"

कालीपद जरा झेंप गया । बात वदलकर वोला, "आपने कौन-कौन से ड्रामो मे भाग लिया है ?"

"मैंने बेलेघाटा क्लब के 'स्वर्णलता' नाटक मे कनक का पार्ट किया है; तरुण समिति के 'जिसकी जैसी मर्जी' नाटक में अन्नदा का पार्ट किया है, टर्नर मारिसन ऑफ़िस क्लब के 'भक्तिस्नान' ड्रामे मे···"

कालीपद ने टोका, "ब्लैंक-वर्स बोल सकती है ?"

कुन्ती अनजान की तरह देखती रही, "ब्लैंक-वर्स माने ?"

"गिरीश घोप के नाटक नही पढे ?"

कालीपद ने चाय की चुस्की ली । गिरीश घोप का नाम नही सुना, इन लोगो को लेकर ड्रामा करना भी आफत है । क्या कहे, समझ मे नही आ रहा था ।

पास बैठे शभू ने धीरे से कहा, "इसी को ले-ले, कालीपद, ऐसी फिगर और नही मिलेगी—बड़ी मुश्किल से ढूढा है।"

"शभू !"

अचानक अपना नाम सुनकर शंभू ने मुडकर देखा । लेकिन पहचान नही पाया । कोट-पैंट-टाई पहने । ध्यान से चेहरा देखकर ही पहचान पाया ।

"अरे सदाव्रत, क्या हाल है ?"

शभू ने उठकर सदाव्रत को दोनों हाथो से जकड़ लिया ।

यहाँ लड़कियाँ भी आ सकती हैं, सदाव्रत ने नहीं सोचा था। ज़रा संकोच हुआ। क्लब के सारे मेम्बर उसकी ओर ताक रहे थे।

सदाव्रत ने कहा, "तुझसे एक काम था, ज़रा वाहर आयेगा? बड़ा ज़रूरी काम है।"

"वाहर क्यों, यहीं बैठ न। उस दिन यहाँ तक आकर चला गया, आज बैठ न ज़रा।" कहकर सदाव्रत का हाथ खींचकर उसे बैठा लिया।

सदाव्रत की बैठने की ज़रा भी इच्छा नहीं थी, लेकिन न बैठना भी अच्छा नहीं लगता था। सदाव्रत को ऐसी अजीब वातावरण में आने का पहले कभी मौका नहीं हुआ था। टीन की छत। दीवार पर बहुत-सी तसवीरें टँगी थीं। रामकृष्ण परमहंस की फोटो। गिरीश घोष की फोटो। और भी कितनी ही फोटो फ्रेम में मढ़ी झूल रही थीं। सिगरेट का धुआँ, चाय के कपों की खन-खन। सभी सदाव्रत की ओर देख रहे थे। शायद इन लोगों के किसी ज़रूरी काम में बाधा पड़ी।

सदाव्रत ने पूछा, "तुम लोग शायद कोई काम कर रहे थे?"

शंभू ने कहा "नहीं-नहीं, तू बैठ। कालीपद, तू अपना काम कर।"

कालीपद फिर पूछने लगा, "अच्छा, आप गा सकती हैं?"

कुन्ती ने कहा, "मैंने तो पहले ही शंभू बाबू को बतला दिया था कि मैं गाना नहीं जानती। अगर जानती होती तो स्टार में चांस मिल जाता, आप लोगों के यहाँ नहीं आना होता!"

कालीपद ने कहा, "अरे नहीं, गाने-वाने की मुझे ज़रूरत नहीं है। वैसे ही पूछा, अगर जानती तो 'मरी मिट्टी' में एकाध गीत डाल देता। खैर, कोई बात नहीं है। नाच जानती हैं?"

सदाव्रत क्लब में बैठा-बैठा बोर हो गया था। वैसे यह भी एक जगह है। मास्टर साहब से जानी दुनिया जैसे यहाँ एकदम झूठी पड़ जाती है। एक ओर हिस्ट्री और दूसरी ओर रियलिज़म। यह रियलिज़म ही एक दिन हिस्ट्री हो जायेगा। तब केदार बाबू जैसे लोग उसी पर रिसर्च करेंगे। प्रोफ़ेसर लोग मोटी-मोटी थीसिस लिखेंगे। डॉक्टरेट लेंगे। सदाव्रत ने लड़की को अच्छी तरह से देखा। इतने सारे लोगों के बीच वही एक लड़की थी। कहीं किसी तरह का संकोच नहीं। चाय पीकर एक पान मुँह में रख लिया। सिर्फ़ दस साल पहले तक इस घटना की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी; जबकि आज यह सत्य है—पानी की तरह सहज और सच! लड़की की बातें कानों तक नहीं आ रही थीं। आँखें, मुंह, चेहरा—कुछ भी

दिखलायी नही दे रहा था। लेकिन आज की सारी घटनाओं ने जैसे उसे पागल बना दिया था। सुबह देखा अपना जमीन की खरीद-फरोख्त का ऑफिस, शाम को हाजरा पार्क की गोआ-अभियान मीटिंग, और उसी के बाद मधुगुप्त लेन के अन्दर बहूबाजार सस्कृति-सघ का यह वातावरण, सब कुछ जैसे बडा बेमेल-बेमेल-सा लग रहा था। सदाव्रत को लगा, सब-कुछ जैसे छिन्न-भिन्न है। एक-दूसरे से बिलकुल अलग ! कही भी जैसे मेल नही है !

अचानक शभू की ओर घूमकर सदाव्रत ने कहा, "तुझसे एक काम था, शभू, जरा बाहर चल !"

शभू उठ खडा हुआ। बोला, "चल !"

□ □ □

क्लब के बाहर आकर सदाव्रत खडा हो गया, शभू भी आया। पूछा, "क्या कह रहा था ? अब कह !"

सदाव्रत क्या कहते-कहते क्या कह गया, खुद भी नहीं समझ पाया। पूछा, "वह लडकी कौन है ? क्या करने आयी है ?"

शभू ने कहा, "ट्रायल ले रहा हूँ। पता नही, कर पायेगी या नही।"

सदाव्रत ने कहा, "कितने ही दिनो से तेरी ओर 'जाऊँ-जाऊँ' सोच रहा था—मैं अब शायद ज्यादा दिन कलकत्ता नही रहूँगा। क्या करूँगा, कुछ तय नही कर पा रहा।"

"विलायत चला जा !"

"इस समय कैसे जा सकता हूँ ?"

"क्यों ? अखबार मे रोज ही तो देखता हूँ, कितने ही लोग जर्मनी, चीन और रूस मे घूमने जा रहे है। गवैये और साहित्यिक भी जाते है, आजकल तो सभी इग्लैंड-रिटर्न है !"

"लेकिन मुझे कौन ले जायेगा ? डालर-एक्सचेंज ही नही मिलता, आजकल बडी सख्ती हो गयी है।"

शभू ने कहा, "इसमे तुझे क्या ! तेरे पिताजी तो हैं, उनके साथ तो कितने ही मिनिस्टरों की जान-पहचान है।"

"वह सब रहने दे। असल मे मेरा एक और ही प्लान है—तेरे पास मैं एक दूसरे ही काम से आया हूँ। तेरा वह दोस्त कहाँ है ? वही, उस दिन वाला, जो कह रहा था…"

शभू ने कहा, "कौन ? क्या कह रहा था ? तेरे बारे में ?"

सदाव्रत सहज स्वर में बोला, "वैसे मैंने उसकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया है, उस बात के लिए जरा भी 'बरोड' नहीं हूँ, लेकिन बात जब उठी है, तब जरूर ही कहीं कुछ हुआ है।"

"कौन-सी बात ?" शंभू कुछ भी समझ नहीं पाकर, सदाव्रत की ओर एकटक देखता रहा।

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा, तुझे क्या लगता है ? तू तो काफी दिनों से मुझे जानता है, मेरे पिताजी को भी देखा है।"

"लेकिन असल में बात क्या है ?"

"आज मैं पिताजी के ऑफिस गया था। सोचा, बात चलाऊँगा। लेकिन किससे पूछूँ, यही ठीक नहीं कर पाया। लेकिन कभी सोचता हूँ—आदमी का विचार क्या उसकी बर्थ पर ही होगा ? आदमी का बर्थ, उसकी हेरिडिटी—क्या इतना ही इम्पॉर्टेण्ट फैक्टर है ? फिर सोचता हूँ…"

"लेकिन मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा।"

"लेकिन वह आदमी कहाँ है, जिसकी ज़बान से पहली बार सुना कि मैं अपने पिताजी का 'ऐडाप्टेड सन' हूँ। मुझे गोद लिया गया है। लेकिन मैं दत्तक या कुछ भी हूँ, इतना जानने का तो मुझे भी अधिकार है कि मैं किस फ़ैमिली का हूँ—असल में मेरे माँ-बाप कौन हैं ? वे लोग कहाँ रहते हैं ? जिन्दा हैं या नहीं ?"

शंभू ने इतनी देर बाद सदाव्रत के चेहरे की ओर अच्छी तरह से देखा। आश्चर्य ! एक समय इसी सदाव्रत से मुहल्ले के सारे लड़के जलते थे। आज इतने दिनों बाद शंभू को लगा, जैसे सदाव्रत टूट चुका है।

"तेरी गाड़ी का क्या हुआ ?"

"कई दिनों से गाड़ी लेकर नहीं निकलता, भाई। लगता है मेरा कुछ भी नहीं—किसी चीज़ पर भी मेरा राइट नहीं है। मैं 'लाइफ' की इस दुनिया में जैसे 'ट्रैसपासर' हूँ।"

"अरे, तू भी किन बातों में पड़ा है ! देख तो, तू कितना बड़ा आदमी है ! ऐवरेज लड़कों के साथ खुद का मुकाबला करके देख न ! कितने ही लड़के अपने निजी कमरे में अकेले सो भी नहीं पाते, खाने-पहनने की बात तो छोड़ ही दे। और शायद तुझे नहीं मालूम, मैं जानता हूँ, बस, ट्राम और टैक्सी में जो सफ़ेदपोश टेरीलिन की बुशर्ट और गैबर्डिन ट्राउज़र पहने घूमते हैं, असल में वे कितने पानी में हैं ? यही देख न, सारे दिन ऑफ़िस में काम करके यहाँ क्लब में आकर बैठते हैं। आखिर क्यों ? हम

लोगों के घरो मे जगह नही, पाता है ? भाई-बहन लिखते-पढ़ते हैं, इसी से यहाँ पत्ते के नीचे कुछ समय काट जाते है—हम लोगों की तेरे साथ क्या बराबरी ! अगर तुझे राइट नही है तो क्या हम लोगो को राइट है ? असल मे हम लोग ही इस वर्ल्ड के ट्रेसपासर है।"

कहकर शभू हँसने लगा। हँसकर शायद कुछ और कहनेवाला था, अचानक रुकना पडा। वही लड़की क्लब से निकल रही थी। शभू भौचक देखता रहा। लडकी वैनिटी-बेग लिये गली पार कर मधुगुप्त लेन की ओर जा रही थी। शभू जाकर सामने खडा हो गया। पूछा, "यह क्या, आप तो जा रही है !"

सदाव्रत ने भी देखा, वही लडकी। कुन्ती।

कुन्ती ने कहा, "देखिये, अभी तक आप लोगो का कुछ भी ठीक नही है, पहले ठीक करिये, फिर मुझे बुलाइयेगा !"

कहकर वह जाने लगी। शंभू की बात पर रुकी। बोली, "देखिये, आपने कहा था, इसी से मैं आप लोगों के क्लब में आयी हू। नही तो मुझे और भी काम है।"

"लेकिन कालीपद ? कालीपद ने ही तो 'मरी मिट्टी' लिखा है, कालीपद ने आपसे क्या कहा ?"

कुन्ती ने कहा, "देखिये, मैं ब्लैक-वर्स जानती हू या नही जानती, मैंने गिरीश घोष का नाम सुना है या नहीं सुना, इन बातों का इम्तिहान देने आपके यहा नही आयी हू ! मुझे जो लोग पार्ट देते हैं, वे मुझे देखकर ही पार्ट देते हैं, मेरी परीक्षा लेकर पार्ट नही देते !"

"लेकिन जरा देर और रुकिये न ! मैं कालीपद से पूछता हू।"

लेकिन कुन्ती और नहीं रुकी। जाते जाते कह गयी, "मुझसे काम कराना हो तो पहले मेरे घर जाकर पिचहत्तर रुपये दे आइयेगा, तब काम करने आऊंगी, बिना हाथ मे नकद रुपए आये अब कहीं भी नहीं जाऊंगी।"

कहकर लडकी चली गयी। उसे वापस लाने के लिए शभू की सारी कोशिश, सारी खुशामद बेकार गयी।

शंभू चुपचाप खड़ा था। सदाव्रत ने कहा, "वह कहां रहती है ? क्या करती है ?"

सड़क की ओर देखते हुए शंभू ने कहा, "करेगी क्या, मुहल्ले-मुहल्ले नाटक करती फिरती है। देखा न, आजकल कितना घमंड हो गया है इन लोगों को ! और कालीपद भी अजीब है, करना तो है अम्येचोर ड्रामा,

उसके लिए इतनी पूछताछ क्यों ? और जब हम लोग पिचहत्तर रुपए से ज्यादा दे नहीं पायेंगे तो इतनी जांच-पड़ताल की क्या जरूरत ?"

"देखने में तो ठीक ही है; शायद पार्ट ठीक से नहीं कर पाती ?"

"अरे, यह बात नहीं है। वह एकदम बर्नार्ड शॉ हो गया है—यही अपना कालीपद ! हम लोग कोई नाट्य साहित्य की उन्नति के लिए तो ड्रामा कर नहीं रहे, कर रहे हैं, जिसमें एक रात चॉप-कटलेट खा पायें, जरा मौज-मजा करें, और क्या ! इसके अलावा दो नाइट प्ले कर पाने पर गवर्नमेंट से एकाध हजार रुपया वसूल कर लेंगे। हां, तो इसीलिए इतनी खुशामद करनी पड़ रही है।"

"उन लोगों को पैसा देना होगा न ?"

"सिर्फ रुपये ? रुपये भी देने होंगे, ऊपर से खुशामद भी करनी होगी। गाड़ी से घर तक पहुंचाना भी होगा, सो अलग। आजकल इन लोगों की खूब डिमाण्ड है न ! इससे तो भाई पहले अच्छा था, लड़के दाढ़ी-मूंछ साफ कराके लड़की का पार्ट करते थे···खैर, इन सब बातों को छोड़, तू इन बातों पर दिमाग मत खराब कर।"

सदाव्रत ने कहा, "मैं दिमाग नहीं खराब कर रहा, लेकिन मैं उस आदमी से एक बार पूछना चाहता हूँ कि उसे खबर कहां से मिली ?"

"लेकिन दुलाल-दा तो आज आये नहीं हैं, मैं पूछ रखूंगा।"

"लेकिन मेरा नाम मत लेना। मैंने पूछा है यह न कह देना। मैं फिर आऊँगा। अगर बात सच है तो मुझे सब-कुछ नये सिरे से सोचना होगा, जिन्दगी को अब तक जिस तरह देखा है अब उस तरह काम नहीं चलेगा।"

शंभू ने पीठ थपथपाकर उसकी हिम्मत बढ़ायी, "अरे, तू पढ़ा-लिखा है, इन सब बातों पर इतना ध्यान क्यों देता है ? तू हम लोगों की तरह मूर्ख तो नहीं है। मैं तो समझता हूँ दुलाल-दा ने मजाक में कहा होगा !"

"मजाक !"

शंभू को शायद अन्दर क्लब में काम था। उसने कहा, "ठीक है, फिर किसी दिन आना, मैं पूछ रखूंगा। अब जरा अन्दर जाकर देखूं, आखिर हुआ क्या ? लड़की नाराज होकर क्यों चली गयी ? अच्छा !"

कहकर अन्दर पहुंचते ही देखा—कालीपद गुमसुम बैठा है। सभी का पारा चढ़ा हुआ है। शंभू ने कहा, "क्यों कालीपद, क्या हुआ ? कुन्ती लाल-पीली होकर क्यों चली गयी ?"

कालीपद ने एक सिगरेट सुलगायी। बोला, "ऊँह, उससे नहीं होगा।

मेरा सब्जेक्ट है रिफ्यूजी-प्रॉब्लम, उसके गले अभी तक वही मेलॉडी लगी हुई है! अरे बाबा,यह डी० एल० राय का 'चन्द्रगुप्त' तो है नहीं, या 'मेवाड़-पतन' भी नही है—काँपती आवाज मे एक्टिंग करने का समय कब का जा चुका है, कोई खबर ही नही रखता। इब्सन के आने से ड्रामा की वर्ल्ड मे कितना बड़ा रिवोल्यूशन हो गया है, इसका भी किसी को पता नही है—और टेनेसि विलियम्स के बाद से अमेरिकन ड्रामा होलसेल चेंज हो गया है। बाँगला देश मे कोई इसे जानता भी नहीं।"

उस ओर शक्तिपद बैठा था। उसने कहा, "लेकिन हम लोग ड्रामा फेस्टीवल में तो नाम लिखा नही रहे है। हम लोग तो मजा करने के लिए ही ड्रामा कर रहे है।"

कालीपद गुस्सा हो गया। बोला, "तब वही करो। मौज करके ही अगर देश की उन्नति करना चाहते हो, करो, लेकिन बाबा, मुझे तब माफ़ करो। इससे ही अगर बंगाली जाति का नाम रोशन होता हो तो वही करो, कोई भी नहीं रोकेगा। लेकिन मैं कहे देता हूँ, एक दिन इस बंगाल मे ही इब्सन, टेनेसि विलियम्स और आर्थर मिलर पैदा होंगे। मेरी यह 'मरी मिट्टी' ही एक दिन बंगाली कल्चर का 'गौरव' होगी।"

फिर शंभू की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, "ला, एक सिगरेट निकाल, दम लगाता-लगाता घर जाऊँ।"

□ □ □

कुंज को यहाँ आते ही छोड़ दिया था। चलते-चलते सदाव्रत मधुगुप्त लेन पार कर ट्राम के रास्ते पर आ गया। इस ओर फुटपाथ पर चलना मुश्किल है। रास्ते मे ही बाजार लग गया है। एक बार बस मे चढ़ने की कोशिश की। झूलते-लटकते लोग। बड़ी-बड़ी डबल-डेकर बस। ट्राम से जाने पर एस्प्लेनेड चेंज करना होगा। क्या करे, सदाव्रत ठीक नही कर पा रहा था। काफ़ी देर फुटपाथ पर चलता रहा। सीधे एकदम दक्षिण की ओर। अचानक एक खाली टैक्सी रोककर सदाव्रत बैठ ही रहा था। टैक्सीवाले ने पूछा, "कहाँ जायेंगे?"

"बालीगंज!"

लेकिन दरवाजा खोलकर टैक्सी में बैठते ही एक गड़बड़ हुई।

"देखिये, ये लोग मेरे पीछे लगे हैं!"

सदाव्रत पीछे देखते ही भौचक्का रह गया। वही लड़की। कुन्ती को भी आश्चर्य हुआ। शंभू बाबू के क्लब मे इसी आदमी को तो देखा था!

"कौन ? पीछे-पीछे कौन आ रहा है ?"

कुन्ती ने पीछे की ओर इशारा कर दिया। अँधेरे के कारण साफ दिखलायी नहीं दे रहा था। फिर भी सदाव्रत उस ओर बढा। लेकिन भीड कुछ भी पता नही चला। कुछ लोग सिर्फ सन्देहजनक लगे।

सदाव्रत ने पूछा, "कहाँ ?"

शायद कुन्ती भी खोज रही थी। बोली, "वह है न !"

लेकिन भीड में उसने किसे दिखलाया, ठीक से समझ में नही आया। सभी इनोसेंट। सीधे-सादे आदमी। अपने-अपने काम मे जा रहे थे। कोई भी अपराधी-जैसा नही लगता था। कम-से-कम किसी के चेहरे से तो ऐसा नही लगता था। और खड़े रहना भी ठीक नही था। साथ में कुन्ती भी थी।

सदाव्रत लौटकर टैक्सी की ओर आया। पूछा, "तुम कहाँ जाओगी ?"

कुन्ती ने कहा, "आप अगर जरा छोड देते मुझे..."

"कहाँ रहती हो तुम ?"

"आप किस ओर जायेंगे ?"

टैक्सी काफ़ी देर से खडी थी। सदाव्रत ने कहा, "तुम बैठो, मुझे बाली-गंज जाना है। तुम्हें जहाँ जाना हो, छोड़ दूँगा।"

टैक्सी चलने लगी। सीधे वेलिंग्डन स्क्वायर की ओर जाकर मोड़ पर घूमी। कुन्ती चुपचाप बैठी थी। सदाव्रत ने अचानक पूछा, "उन लोगों ने क्या तुमको लिया नही ?"

कुन्ती ने सदाव्रत की ओर देखा। बोली, "आप भी तो उसी क्लब के मेम्बर हैं ?"

"मेम्बर ! मैं तो वहाँ किसी को पहचानता भी नहीं। संघ में थोड़ा काम था, इसी से गया था।"

कुन्ती ने कहा, "आप शायद नही जानते, वहाँ फिर मत जाइयेगा !"

"क्यों ?"

"वे सब कम्युनिस्ट हैं !" कुन्ती ने कहा

सदाव्रत को इससे पहले शायद इतना आश्चर्य कभी नहीं हुआ था। कम्युनिस्ट ! उसने जरा ध्यान से लड़की की ओर देखा। जाने कैसा सन्देह सा होने लगा। चेहरे से तो वैसी नहीं लगती। अब समझ में आया—वे पीछे क्यों लगे थे।

लेकिन कुन्ती ने खुद ही सफ़ाई दी। बोली, "शायद आप स. मैं बेकार में उन लोगों को बदनाम कर रही हूँ। शायद सोचते

कोई खराब मतलब है, लेकिन विश्वास करिये, मैं किसी भी दल की नहीं हूं। मैं काग्रेस के साथ भी नही, कम्युनिस्टो के साथ भी नही हूं। सिर्फ़ पैसे के लिए, पेट पालने के लिए यह पेशा करना पड रहा है। मेरी साड़ी, होंठों की लिपस्टिक देखकर शायद आपको लगेगा कि मेरी हालत अच्छी है, लेकिन सच मानिये, मेरे इस बैग मे सिर्फ़ तीन रुपये हैं। सोचा था, इन लोगों से आज कुछ एडवास मिलेगा, लेकिन कुछ भी नहीं मिला। ऊपर से मेरी पढाई-लिखाई और बुद्धि पर टिप्पणी कसी। यही सब देखकर मुझे गुस्सा आ गया, मैं चली आयी।"

सदाव्रत चुप ही रहा। सच ही तो लडकी ने सिल्क की साडी पहन रखी है, वह इतनी देर बाद दिखलायी दी। होंठों की लिपस्टिक भी अब साफ़-साफ नजर आने लगी। बदन मे सेंट लगाया है। खुशबू आ रही थी।

एक और मोड़ आते ही सदाव्रत ने पूछा, "तुम कहा जाओगी ?"

लडकी ने कुछ भी जवाब नही दिया। अचानक सदाव्रत ने देखा— लडकी की आखें भरी है। बीच-बीच मे चेहरे पर सड़क की रोशनी आकर पडती। लेकिन क्या कहे, क्या कहना ठीक होगा—कुछ भी समझ मे नहीं आ रहा था। लडकी का भी आखिर इरादा क्या हो सकता है...

अचानक लडकी सीधे होकर बैठी, "यही !"

"यही ? क्यो ? अचानक क्या हो गया ?"

कुन्ती ने कहा, "अचानक नही, आपको मैं जानती-पहचानती नही, इस तरह आपसे सब-कुछ कहना भी नहीं चाहती थी। आपने ही मुझे गाड़ी मे क्यों बैठाया ? मैं चोर, डाकू या खराब लडकी भी तो हो सकती हूं ? आप मुझे पहचानते तक नही है, आपको ब्लैक-मेल भी तो कर सकती हू ?"

'ब्लैक-मेल' शब्द सुनकर सदाव्रत को और भी आश्चर्य हुआ। बोला, "ब्लैक-मेल शब्द के माने जानती हो ?"

"ठीक-ठीक नही जानती, लेकिन कितने ही मुंह सुना है, मैं भी तो वही हो सकती हू ? आपने मुझ पर विश्वास कर गाडी में क्यों बैठा लिया ?"

सदाव्रत ने कहा, "गाडी में बैठने के लिए तुमने ही तो कहा था !"

"लेकिन मैं तो आपके लिए अनजान हू। इस तरह अनजान लडकियों को गाडी मे बैठाकर मुश्किल में पड सकते हैं, यह भी क्या आपको मालूम नहीं ?"

सदाव्रत हँस पडा।

बोला, "अपनी फ़िक्र मैं कर लूगा, तुम्हे चिन्ता करने की जरूरत नही

है। तुम्हें जाना कहां है, मुझे बतला दो, मैं पहुंचा दूगा।"

कुन्ती तब तक थोड़ी सम्हल चुकी थी। बोली, "मैंने उन लोगो को कम्युनिस्ट कहा है, क्या इसीलिए आप नाराज हो गये है ?"

"नाराज़ ? लेकिन कम्युनिस्ट माने क्या होता है, तुम जानती हो ?"

कुन्ती ने सदाव्रत की ओर देखा। फिर पूछा, "आप भी क्या कम्युनिस्ट है ?"

"देखता हूं, तुम कम्युनिस्टों से काफी नाराज हो ! कम्युनिस्टों के साथ तुम्हारा इतना मेल-जोल कैसे बढ़ा ?"

कुन्ती ने कहा, "हम लोगों का मेल-जोल नही है तो किसका होगा ? पता है हम अपना वतन छोड कर यही चले आये है, एक कपड़े में, सब-कुछ छोड़कर। यहां हम लोग जानवरों की तरह, गाय-बकरियों की तरह गुजर कर रहे है। जहा आये है, वह क्या अपना देश है ? यहीं चारों ओर रोशनी, चमक-दमक, मोटरें—यह सब क्या हमारा अपना है ?"

"तुम लोगों का नही है तो किसका है ? यह देश तुम लोगों का ही तो है ! और किसका है ?"

"अमीरों का ! वे लोग क्या हम लोगों के बारे में सोचते है ? हम लोग क्या खाते हैं, किस तरह जिन्दा हैं, कोई परवाह करता है ? वे लोग क्यो परवाह करने लगे ! हम लोग मरें या जियें, उन लोगों का क्या जाता है ?"

सुनकर सदाव्रत को जैसे हँसी आने लगी। थोडा मजा भी लगा। पूछा, "यह सब तुम्हें किसने सिखलाया ? कम्युनिस्टो ने ?"

कुन्ती ने कहा, "सिखलायेगा कौन ? हम लोगों के क्या आँखें नहीं हैं ? हम लोग क्या अखबार नही पढते ? हम लोग गरीब हैं इसलिए क्या हमारे दिमाग़ नही है ? कलकत्ता आये आज सात साल हो गये। जिस समय आयी, फ्राक पहनती थी, अब साड़ी पहनती हूँ। बहुत-कुछ देखा-सुना है, तब भी क्या कहना चाहते हैं कि दूसरे के कन्धे पर रखकर बन्दूक चला रही हूं ?"

टैक्सी-ड्राइवर सरदार था। एक मोड़ के पास अचानक रुक गया।

"किधर जाना है, सा'ब ?"

ड्राइवर को जगह बतलाकर सदाव्रत ने कुन्ती से पूछा, "तुम कहाँ रहती हो ?"

कुन्ती ने कहा, "बालीगंज में रहना मेरे बूते के बाहर है।"

"वह ठीक है, फिर भी जगह का कुछ नाम तो होगा ?"

"समझ लीजिये फुटपाथ पर।"

"लेकिन मैं बडा आदमी हूँ, यही कैसे सोच लिया ? मेरी सूरत देखकर? कपडे देखकर ?"

कुन्ती ने कहा, "वह तो मालूम नही। और आप अमीर आदमी हैं या गरीब, यह जानने की भी मुझे कोई जरूरत नहीं है। उन लोगों के क्लब से निकलने के बाद से मन बडा खराब हो गया था, इसी से गुस्से मे बहुत-कुछ कह गयी। आप बुरा न मानियेगा।"

कुछ देर तक दोनो ही चुप रहे। फिर सदाव्रत ने ही पहले शुरु किया। कहा, "अभी तुम्हारी उम्र कम है, लेकिन एक बात याद रखना—आदमी का ऊपरी रूप ही सब-कुछ नही है। सुख-दु ख, खुशी-रंज यह सब गरीब-अमीर की परवाह नही करते। मैं जिन्दगी में कितने ही गरीब आदमियों से भी मिला हूँ और कितने ही रईसो को भी जानता हूँ, फर्क सिर्फ बाहर ही पाया, भीतर दोनो ही एक है।"

"अगर आप मेरी हालत जानते होते तो यह बात नही कहते।"

फिर एकाएक सदाव्रत की ओर देखकर बोली, "जानते है, बिना खाये रहना क्या चीज़ होती है ? जानते है, फाके करना किसे कहते है ? और किसे कहते है खाली पेट भरे होने का बहाना करना ?"

कहकर जरा देर चुप रही, फिर अचानक बोली, "अच्छा, नमस्ते, हाजरा पार्क आ गया है, टैक्सी रोकने को कहिये।"

तभी एक आवाज़ सुनकर दोनों चौंक पडे। पार्क में लगे लाउडस्पीकर से भाषण की आवाज़ आ रही थी। आगे-पीछे हर तरफ भीड़ थी। अन्दर ऊँचे प्लेटफार्म पर खडे वक्ता लेक्चर दे रहे थे—और हज़ारो लोग मुग्ध होकर सुन रहे थे।

वक्ता कह रहे थे, "फिलॉसफर कांट रोज सुबह ठीक पाँच बजे घूमने जाते थे। लेकिन उस दिन एकाएक खबर आयी, फ्रास की जनता के हाथो अपना सिंहासन छोड़कर वहाँ का राजा बन्दी हो गया। खबर आयी, बैन्टिल का पतन हो गया। फ्रास की राज्यशक्ति के इस पतन ने सारी दुनिया में खलबली मचा दी। जिन्दगी में सिर्फ इसी दिन उन्हें घूमने जाने मे देर हुई। वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, हेजलिट ने इस विद्रोह का स्वागत किया। सभी ने मान लिया कि खून-खराबी में से अतीत के साथ जो विच्छेद आया, वह विश्व के लिए मंगलकारी होगा। भारत में आज हम पूँजीपति-वर्ग द्वारा

शोषित समाज-व्यवस्था नहीं चाहते। शोषण-रहित समाज-तन्त्र ही हमारा लक्ष्य है। जो धर्म खटमल को तो खून पिलाये और आदमी का खून चूसे, उसे हम अहिंसा नहीं मानते···"

चारों ओर से पटापट तालियाँ पिटने लगीं।

वक्ता ने फिर से बोलना शुरू किया, "आज देश आज़ाद है, हमारी आज़ादी में कहीं भी कोलोनियलिज़्म की बू नहीं है। लेकिन इसी देश के एक हिस्से में आज भी पुर्तगीज़ कॉलोनी का ज़हरी फोड़ा रह गया है। वैसे आज यह बहुत ही छोटा और मासूम लगता है, लेकिन मैं कहे देता हूँ, एक दिन यह ज़हरी फोड़ा ही जानलेवा हो जायेगा। आज हम गोआ की बात कर रहे हैं। भारत सरकार इसे मुक्त करने का भार अगर अपने ऊपर नहीं लेना चाहती तो हमारे ऊपर छोड़ दे। हम क्रान्ति चाहते हैं, और क्रान्ति का क्या मूल्य देना होता है वह भी जानते हैं। इसी क्रान्ति के सैनिकों के लिए हम···"

गाड़ी अभी भी भीड़ काटती चल रही थी।

कुन्ती ने एकाएक मुँह खोला, "देखा, ये लोग भी कम्युनिस्ट हैं!"

"किसने कहा, कम्युनिस्ट हैं?"

"मुझे मालूम है, मैं सबको जानती हूँ।"

"तुम उन्हें कैसे जानती हो?"

कुन्ती फिर से हँसी। बोली, "मैं सारे क्लबों में तो जाती हूँ। मेरा धन्धा ही तो नाटक करना है। सोचते होंगे—दूसरी औरतों की तरह मैं भी रसोईघर में दाल-भात पकाती हूँ और अखबार पढ़ती हूँ! आप भी जो नहीं जानते मैं जानती हूँ, आपसे बहुत ज़्यादा जानती हूँ। इसी से तो कह रही थी···।"

सदाव्रत बोला, "जानती हो वह कौन हैं? वही जो भाषण दे रहे हैं? वह हैं मेरे पिता। मैं शिवप्रसाद गुप्त का लड़का हूँ।"

सामने साँप देखकर भी लोग इतना नहीं डरते। अँधेरे में सदाव्रत ठीक से देख नहीं पाया, लेकिन नाम सुनते ही कुन्ती डर से सिकुड़ गई।

हाज़रा पार्क में बाबू शिवप्रसाद गुप्त अभी भी बोले जा रहे थे—"गोआ हमारा है—हमारी मातृभूमि का अभिन्न अंग है। यही अभिन्न अंग आज दूसरे के पंजे में है। इसे छुड़ाना ही होगा, ज़रूरत होने पर क्रान्ति भी करनी होगी। ज्ञान, कर्म और त्याग-निष्ठा अगर हमारे जीवन में नहीं है, चरित्र की दृढ़ बुनियाद अगर हम नहीं बना पाते हैं तो एक बार फिर

जरा-सी ब्रिटिश शक्ति की तरह यह गोआ ही सारे भारत को हज़म कर जायेगा, यह चेतावनी दिये देता हूँ…"

□ □ □

दुनिया में बहुत-कुछ होता है जो नज़र नहीं आता। या नज़र आने पर भी उसका महत्त्व समझ में नहीं आता। १९४७ के बाद से शहर में यही चल रहा था। बात न चीत, कोई-कोई आदमी एकाएक बड़ा आदमी हो गया, और दूसरा शिक्षा, बुद्धि और क्षमता के होते हुए भी धीरे-धीरे नीचे की ओर जाने लगा। या एक दूसरी श्रेणी कोई सहारा न पाने के कारण अफीम की पीनक में डूबी थी। दूसरी ओर अखबार की कोई बड़ी-सी ख़बर थोड़ी देर के लिए लोगों को चौंका देती। रूस के स्टालिन की मृत्यु हो गयी या रूस ने स्पूतनिक छोड़ा। सुबह-सुबह जो लोग बस-ट्राम में झूलते-झूलते ऑफिस जाते, वे साथ में अखबार लेकर चलते। समय मिलने पर कभी पढ़ लेते। कभी बड़ी चमक-दमक वाली कोई फ़िल्म आने पर सिनेमाघरों के सामने जाकर लाइन लगाते। देश आज़ाद है, अब क्या चिन्ता! कंट्रोल खत्म हो गया, अच्छा ही हुआ। सीमेंट, चीनी, कपड़ा सभी चीज़ों के दाम बढ़ गये। ठीक है, बढ़ें, वही लेकर जिसे सिर खपाना है, खपाये। 'यह आज़ादी झूठी है'—कहकर चिल्लानेवाले चिल्लाएँ। मोनूमेंट के नीचे लाउडस्पीकर पर गरमागरम भाषण दें। हम लोगों से वह सब नहीं होगा, जरूरत भी नहीं है। हम लोग हमेशा खाते-पीते, रोते-गाते हैं, अब भी वही करेंगे। बख्तियार खिलजी के समय से कल की ब्रिटिश हुकूमत तक वही किया, आज भी वही करेंगे। हम लोग अपने झंझटों से ही परेशान हैं, जनाब! यह सब सोचने का समय हमारे पास कहाँ है?

उस दिन केदार बाबू यही सोच रहे थे। उन्हें लड़कों को पढ़ाना होता है। ये सब बातें भी तो हिस्ट्री की हैं। मन्मथ ने ध्यान दिला दिया, अच्छा ही हुआ।

यह सब सोचते-सोचते ही घर लौट रहे थे। रास्ते में बड़ी भीड़ थी। हाथ में बहुत-सी किताबें लिये मन-ही-मन सोचते आ रहे थे। 'वार' के बाद एक नयी पुस्तक निकली है, 'ए सर्वे ऑफ वर्ल्ड सिविलाइज़ेशन'—यह पुस्तक पढ़नी होगी। आदमी को भी कितनी परेशानियाँ हैं। केदार बाबू चलते-चलते रुके गये। सारी गड़बड़ इस नेपोलियन के कारण ही हुई। फ्रेंच रिवोल्यूशन जैसी घटना को एकदम से उलट दिया!

सोचते-सोचते कब घर के पास आ गये, ध्यान ही नहीं रहा। दरवाज़ा

खटखटाते-खटखटाते आवाज दी, "शैल ! ओ शैल !"

अन्दर से दरवाजा खोलकर किसी ने पूछा, "किसे चाहते हैं ?"

केदार बाबू सकपका गये। किसे चाहते हैं—मतलब ? अपने घर आने में भी मुश्किल !

केदार बाबू ने पूछा, "आप कौन हैं ?"

उन्होंने भी पूछा, "आप कौन हैं ?"

"अरे, क्या अपने घर में भी नहीं घुसने देंगे ?"

तभी शायद अन्दर नजर पडी। सब-कुछ नया-नया-सा लगा। सोचने पर कुछ अजीब-सा लगा। क्या भूल से दूसरे के घर में घुस आये ! बीस साल से इस घर में रह रहे हैं, फिर भी यह गलती कर बैठे ! चारों ओर देखकर बोले, "रुकिये, मैंने शायद गलती की है।"

घर के मालिक जरा मुसकराये। फिर पूछा, "आप शायद इस मोहल्ले में नये हैं ?"

केदार बाबू ने कहा, "नया क्यों होने लगा ? इस फड़ेपुकुर स्ट्रीट में रहते मुझे बीस साल हो गये है।"

"यह फड़ेपुकुर स्ट्रीट तो नही है, यह तो मोहनबागान-रो है।"

"अजीब तमाशा है !" केदार बाबू ने कहा, "बुरा न मानियेगा, जरा गोलमाल हो गया।"

कहकर सडक पर आ गये। इस बार भूल करने का चास नहीं आया। अपने घर के सामने पहुँचते ही हरिचरन बाबू ने कहा, "अरे, मास्टर साहब…"

केदार बाबू ने कहा, "कौन, हरिचरन बाबू ! आज तो गजब हो गया, मैं गलती से आज मोहनबागान-रो पहुँच गया, वैसे आज मुझे यहाँ रहते बीस साल…"

हरिचरन बाबू ने बीच में ही रोक दिया। बोले, "आपसे एक बात कहने के लिए कई दिन से चक्कर काट रहा हूँ। आप तो मिलते ही नही। काफ़ी अरसे पहले मैंने आपसे कहा था, शायद याद होगा…"

केदार बाबू—"हाँ-हाँ, याद क्यों नहीं होगा ?"

"आपने कहा था, मकान खाली कर देंगे।"

केदार बाबू ने हामी भरी, "हाँ, कहा तो था।"

"और यह भी कहा था कि दो-एक महीने में ही छोड़ देंगे। सो आज करीब एक साल हो आया, लेकिन अब और राह देखना तो मेरे लिए

मुश्किल है। आखिर मैं भी तो साधारण आदमी हूँ, ज़रा मेरी भी तो सोचिये। कितनी मुश्किल से गुज़र कर रहा हूँ वह मैं ही जानता हूँ।"

केदार बाबू ने कहा, "आप बिलकुल ठीक कहते हैं। जैसा समय आया है, गुजर करना बड़ा ही मुश्किल हो गया है। मैं एक लड़के को पढ़ाता हूँ, उसका नाम है वसन्त। लड़का खूब ही अच्छा है, ब्रिलियंट बॉय। पता है, उसके पिता ने आज कह दिया—समय बड़ा खराब है, मेरी छः महीने की तनख्वाह नहीं दे पायेंगे।"

हरिचरन बाबू बोले, "वह सब सुनकर तो मेरा कोई लाभ होगा नहीं; आप घर कब खाली कर रहे हैं, यह बतलाइये? एक डेफिनेट-डेट बतला दीजिये, अब और नहीं रुक पाऊँगा।"

"डेफिनेट-डेट?"

केदार बाबू सोचने लगे। फिर बोले, "ज़रूर, कोई डेफ़िनेट-डेट तो देनी ही चाहिए। आपको काफी तकलीफ हो रही है, समझ रहा हूँ। लेकिन मैं भूल गया था चटर्जी साहब, एकदम भूल गया था। कई दिनों से एक और ही बात सोच रहा था। हिस्ट्री में एक समय आता है जब इसी तरह की स्केयरसिटी, इसी तरह के खराब दिन आते हैं। एक बार ऐसा ही समय आया था सेवेन्टीन-फिफ्टी-सेवेन में। अब इस युद्ध के बाद, आप सोचते हैं क्या शान्ति आयी है? बेकार की बात—देखिये न, जर्मनी में पार्टीशन हो गया, इंडिया में पार्टीशन हो गया, कोरिया में पार्टीशन हो गया···"

हरिचरन बाबू ने बीच में ही कहा, "ये सब बातें मैंने पहले भी कितनी ही बार सुनी हैं। अब आप मेरा मकान खाली कर दीजिये।"

केदार बाबू ने कहा, "ज़रूर खाली कर दूँगा। मैंने कब कहा कि आपका मकान नहीं छोड़ूँगा!"

"लेकिन कब छोड़ेंगे, यह भी तो बतलाइये? मुझे इसी महीने के अन्दर मकान चाहिए।"

केदार बाबू बोले, "खाली कर दूँगा। कह तो रहा हूँ इसी महीने···"

"काका···!"

अन्दर से एकाएक शैल की आवाज़ आयी। केदार बाबू ने एक बार अन्दर की ओर देखा। बोले, "देखते हैं मेरी भतीजी ने मेरी आवाज़ सुन ली है···आ रहा हूँ री, चटर्जी साहब के साथ दो-एक बात कर रहा हूँ।"

"काका, तुम ज़रा अन्दर तो आओ—एक काम है।"

केदार बाबू ने अन्दर जाकर पूछा, "क्यों री, क्या हुआ?"

"अच्छा, तुम क्या हो? तुमने क्या सोचकर इसी महीने के अन्दर मकान खाली कर देने को कह दिया है? यह घर छोड़कर कहाँ जाओगे? कहाँ मिलेगा घर? कलकत्ता में मकान मिलना क्या इतना ही आसान है?"

"लेकिन उसे बड़ी तकलीफ हो रही है। उससे वायदा कर लिया है।"

"तुमने वायदा क्यों कर लिया? इसीलिए तो मैंने तुम्हें बुलाया। जाओ, उससे जाकर कह दो कि जब मकान मिलेगा तब जाएँगे।"

"यह कैसे हो सकता है! मैंने उससे वायदा जो कर लिया है।"

"क्या वायदा ही सब-कुछ है? मकान छोड़कर हम लोग जाएँगे कहाँ?"

"उसके लिए कुछ-न-कुछ तो होगा ही, पता है आज भवानीपुर होकर आ रहा था, सुना खूब मीटिंग-वीटिंग हो रही है।"

"किस बात की मीटिंग?"

"और किसकी, गोआ की! इन लोगों की अक्ल तो देख, इंडिया में आज भी जमे हैं! सभी चले गये, ब्रिटिश गये, फ्रेंच गये, पुर्तगीज अभी जमे रहना चाहते हैं—यह तो ठीक बात नहीं है। हम लोगों को जो तकलीफ हो रही है वह नहीं समझते—यही जिस तरह हम लोगों के कारण चाटुज्जे साहब को हो रही है। हम लोग एकदम जमकर बैठे हैं।"

शैल और नहीं सह पायी। बोली, "तुम रुको तो! गोआ के लिए क्या हो रहा है, यह जानकर मुझे क्या करना है! तुम जाकर चाटुज्जे साहब से कह आओ कि हम लोगों को जब मकान मिलेगा तभी जाएँगे।"

"लेकिन मैंने तो कह दिया है!"

"तुम्हारे कहने की कोई कीमत नहीं है। जाओ, जल्दी से कह आओ।"

केदार बाबू ने कहा, "जाऊँ?"

"जरूर जाओगे, तुम तो सारे दिन बाहर रहते हो, और मैं यहाँ कितनी मुश्किल से समय काटती हूँ, तुम्हें क्या पता! मकान छोड़कर अब अगर सड़क पर खड़े होना पड़े, तो क्या करोगे? एक महीने के अन्दर तुम्हें कहाँ मकान मिलेगा? जाओ!"

केदार बाबू बाहर आये। हरिचरन अब वहाँ नहीं थे। चले गये थे।

शैल ने कहा, "जरा आगे बढ़कर देख आओ न, अभी भी शायद ज्यादा दूर नहीं गये होंगे। तुम जाकर कह आओ कि जब मकान मिलेगा तभी जाएँगे, इससे पहले जाना सम्भव नहीं होगा। फिर हम लोग बिना भाड़ा दिये तो रह नहीं रहे। हर महीने किराया तो ठीक से दे रहे हैं।"

केदार बाबू उसी हालत में फिर से सड़क पर आये। फड़ेपुकुर स्ट्रीट

पर भी अनगिनती लोग थे। केदार बाबू सोचने लगे—सच ही तो काफ़ी दिन पहले चाटुज्जे ने मकान खाली करने को कहा था। उसे घर की ज़रूरत है। इसलिए उसने कोई खराब बात तो नहीं की। फिर भी अगर एक महीने के अन्दर घर न मिले तब ? "चाटुज्जे साहब ! चाटुज्जे साहब !"

सामने ही हरिचरन बाबू जा रहे थे। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा।

केदार बाबू ने कहा, "देखिए, चाटुज्जे साहब···एक बात···"

कहते-कहते रुक गये। कोई और था। अनजान आदमी भी सकपका गया। केदार बाबू ने कहा, "मैं ठीक से पहचान नहीं पाया, मैंने सोचा हरिचरन बाबू हैं—आप कुछ सोचिएगा नहीं···"

ट्राम-लाइन तक जाकर केदार बाबू लौट रहे थे। मकान-मालिक महीने की ठीक दूसरी तारीख को बराबर किराया लेने आता। केदार बाबू बहुत पुराने किरायेदार हैं। बीस रुपया महीना किराया देते हैं। तीन कमरे। बहुत पुराना मकान है। शैल ने कितनी बार ज़रा मरम्मत कराने के लिए कहा है। कभी सफ़ेदी भी नहीं कराता, मरम्मत की बात कहते ही घर छोड़ देने को कहता है। क्या किया जाय ! वैसे उसे तकलीफ़ तो ज़रूर हो रही है। हम भी तो पुर्तगीज़ लोगों से गोआ छोड़ देने को कहते हैं।

लौट ही रहे थे। एकाएक दाहिनी ओर से कुछ गोलमाल सुनाई दिया। केदार बाबू ने चश्मा ठीक कर लिया। बड़ा लम्बा प्रोसेशन आ रहा था। अब फिर किस बात का प्रोसेशन ? गली के आस-पास जो इधर-उधर जा-आ रहे थे धमककर खड़े हो गये।

"क्या हुआ, जनाब ? किस बात का प्रोसेशन ?" केदार बाबू ने मुड़कर पास के आदमी की ओर देखा, "कौन आया है ?"

थोड़ी दूर से आवाज आ रही थी :

'हमारी माँगें पूरी करो !'

'नहीं तो गद्दी छोड़ दो !'

"ये लोग कौन हैं ? क्या कह रहे हैं ?"

'अत्याचारियों को सज़ा दो—सज़ा दो !'

कोई नहीं समझ पा रहा था ये लोग कौन हैं। देखते-देखते जुलूस काफ़ी पास आ गया। केदार बाबू देखने लगे—जुलूस की लाइन के सिरे पर के लाल कपड़े पर न जाने क्या-क्या लिखा था।

"बंगालियों की आँखें अभी भी नहीं खुली हैं। हाय रे बंगाली जात !"

"क्या हुआ, जनाब ? किस बात का प्रोसेशन है ?"

एक ने कहा, "सुना नहीं डलहौजी स्क्वायर में गोली चली है ? डेढ़ सौ बेक़सूर पुलिस की गोली के शिकार हो गये। फिर भी···"

"क्या किया था उन्होंने ?"

"करते क्या, सिर्फ़ जुलूस लेकर विधान राय से मुलाक़ात करना चाहते थे, अपना अधिकार मांगना चाहते थे—यही उनका क़सूर था। देख आइये, रास्ता खून से भर गया है।"

जो लोग सुन रहे थे सभी कहने लगे, "क्यों ? क्यों ? निहत्थे लोगों पर यह अत्याचार क्यों ?"

"यही तो है जनाब कांग्रेसी राज्य ! इसी के लिए खुदीराम और गोपीनाथ साहा फांसी के तख्ते पर झूले ! इससे तो ब्रिटिश राज्य कहीं अच्छा था। कम-से-कम विदेशी राज्य है, यह तो मालूम था। आज के ये लोग तो वेश बदले डाकू हैं, ब्रिटिशों की गोली खाकर हमने आज़ादी हासिल की और ये लोग मजे से मोटी-मोटी तनख्वाह डकार रहे हैं !"

जुलूस सामने से गुजर रहा था। देहाती किसान-परिवार की औरतों का झुण्ड। पलंग लिए आगे-आगे वे ही चल रही थीं, और पीछे थे लाइन-की-लाइन आदमी। नंगे पांव, फटे कपड़े, पिचके गाल, धँसी आँखें। बेक़सूर, भूखे। सभी के चेहरे उत्तेजित। जुलूस के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर कुछ लीडर जैसे लोग थे। वे ही चिल्ला रहे थे :

'अत्याचारियों को सजा दो !'

और सभी गला फाड़कर चिल्लाते :

'सज़ा दो !'

फिर आवाज़ बदलकर कहते :

'हमारी मांगें माननी होंगी !'

सब जोर से कहते :

'हमारी मांगें माननी होंगी !'

उसी आवाज़ से लीडर चिल्लाते :

'नहीं तो गद्दी छोड़ दो !'

भीड़ भी चिल्लाती :

'नहीं तो गद्दी छोड़ दो !'

आस-पास के लोगों में भी फुसफुसाहट शुरू हो गयी। यह सरकार अत्याचारी है, इसका पतन जरूरी है। विधान राय क्या इसके बाद भी चुपचाप गद्दी सँभाले बैठे रहेंगे ! और हम लोग खड़े-खड़े यह सब सहेंगे !

धिक्कार है बंगाली जाति को !

आस-पास के लोगों का ठंडा खून जैसे एक सेकंड में खौलने लगा।

एक ने कहा, "आप लोगों ने ही वोट देकर उन्हें गद्दी पर बैठाया है।

पास के आदमी ने कहा, "नहीं जनाब, मैंने कम्युनिस्टों को वोट दिया है।"

केदार बाबू खड़े-खड़े चुपचाप देख रहे थे और सुन रहे थे। हरिचरण बाबू को ढूंढने जो निकले, अब वह बात ध्यान से उतर चुकी थी। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उन्होंने मकान-मालिक से कोई वायदा किया है, या एक महीने के अन्दर उन्हें घर छोड़ना होगा। उनके मन में बार-बार एक ही बात आ रही थी। देश के लोग सचमुच दुःखी हैं। उस पर गवर्नमेंट के अत्याचारों का अन्त नहीं है। तब क्या होगा ? लड़के पढ़ाई कैसे करेंगे ? वसन्त के पिता ने मँहगाई के कारण उनको छः महीने की तनख्वाह नहीं दी। मन्मथ ने तो ठीक ही कहा। संसार में बहुत-कुछ होता है जो दिखलाई नहीं देता। इसी में से कोई-कोई आदमी तो अमीर हो जाता है। सदाव्रत के पिता ने तो खूब टीमटाम कर ली है। इस मँहगाई के जमाने में वे एकाएक इतने बड़े आदमी कैसे हो गये ?

सोचते-सोचते दिमाग चकराने लगा। केदार बाबू धीरे-धीरे घर की ओर लौटने लगे।

□ □ □

सरदार टैक्सी-ड्राइवर एक मन से गाड़ी चला रहा था।

सदाव्रत ने कहा, "गाड़ी घुमा लो—घुमाओ गाड़ी !"

कहते-कहते सदाव्रत विचारों में खो गया। अचानक केदार बाबू की याद आ गई। सच ही तो, केदार बाबू ने ही एक दिन पूछा था—'तुम्हारे पिताजी की इन्कम कितनी है ?' सदाव्रत खुद भी नहीं जानता कि उसके पिता की इन्कम कितनी है।

लड़की को ज़रा पहले रासबिहारी ऐवेन्यू के मोड़ पर उतार दिया था।

सदाव्रत ने पूछा था, "यहाँ से कहाँ जाओगी ?"

कुन्ती ने कहा, "पास ही कालीघाट क्लब है। कुछ रुपये बाकी हैं।"

"तब तुम रहती कहाँ हो ?"

"जोड़ा साँको।"

शायद अनजान आदमी को पता बतलाना नहीं चाहती थी। अपनी असली हालत का परिचय कौन देना चाहता है ? कुन्ती को मेहनत करके

खाना होता है। उसकी बातें सुनकर लगता था—कम्युनिस्टों से भारी नाराज है। सिर्फ कम्युनिस्टों पर ही नहीं, अमीरों पर भी गुस्सा है। कुन्ती को उतारकर उसी के बारे में सोचते-सोचते सदाव्रत को और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहा। टैक्सी किधर जा रही है, यह भी भूल गया। इतने दिन कॉलेज में पढ़ा। उसके कॉलिज में भी कितनी ही लड़कियाँ पढ़ती थीं। उनमें से किसी के भी साथ उसकी जान-पहचान नहीं हुई। शायद वह सभी से बचकर रहता था, इसी से परिचय नहीं हुआ। सिर्फ लड़कियाँ ही नहीं, लड़कों से भी उसका ज्यादा मेल-जोल नहीं था। क्लास शुरू होने के ठीक पहले उसकी गाड़ी कॉलिज पहुँचती और क्लास खत्म होते ही स्टार्ट हो जाती। यह शायद बचपन की आदत थी।

कोई-कोई उसकी ओर इशारा कर कहता—'घमंडी !'

सदाव्रत का किसी के साथ ज्यादा मेल-जोल नहीं बढ़ाना भी लोगों को घमंडीपन लगता था। दो-एक ने बातचीत करने की कोशिश भी की। सिगरेट बढ़ायी। शायद उसकी गाड़ी में बैठने का लोभ था। उसकी गाड़ी में बैठकर उसी के पैसे से सिनेमा देखना चाहा, जैसा सब कॉलिजों में होता है। लेकिन सदाव्रत की ओर से ज्यादा लिफ्ट न मिलने के कारण ही शायद दोस्ती नहीं जम पायी। और लड़कियाँ ? ऐसा नहीं कि लड़कियों से बात-चीत करने की सदाव्रत की इच्छा नहीं हुई। क्लास में ही कई बार एक लड़की के साथ आँखें भी लड़ीं। लेकिन वहीं शुरू और वहीं अन्त। न जाने कैसा एक संकोच सदाव्रत की आँखों, मुँह और चेहरे पर छा गया। फिर कभी उस ओर नहीं बढ़ा।

और भी पहले की बात है। उस समय सदाव्रत फर्स्ट-ईयर में पढ़ता था। उस दिन शायद स्टुडेंट-स्ट्राइक थी। तय हुआ था कि सभी कॉलिज से मार्च करते-करते मोनूमेंट के नीचे जाकर इकट्ठे होंगे। उस जुलूस में लड़कियाँ भी शामिल होंगी, शायद इसीलिए लड़कों में बड़ा जोश था। सभी जब कॉलेज-कम्पाउंड में इकट्ठे हो गये, तभी कुंज गाड़ी लेकर आ पहुंचा।

एक लड़की ने, जिसका नाम आज याद नहीं है, पूछा था, "आप क्या हम लोगों के साथ नहीं जायेंगे ?"

सदाव्रत शर्म से सिमटकर रह गया। वैसे मन-ही-मन वह कितने ही दिनों से उसके साथ बात करना चाह रहा था, लेकिन पता नहीं, क्या हुआ उसे, जवाब तक नहीं दे पाया। किसी तरह सिर्फ 'नहीं' कहकर ही

गाड़ी में बैठकर घर चला आया। बचपन से ही सदाव्रत बड़ा शर्मीला था। अभी भी शर्मीला है, लेकिन पहले जितना नहीं। अब तो फिर भी कुन्ती के साथ एक टैक्सी में बैठकर उससे कितनी ही बातें कर डालीं, कितने ही सवाल पूछ डाले, काफी उत्सुकता दिखलायी।

लड़कों में से कोई-कोई पीठ पीछे से कहता—'लाडला बेटा !'

शायद इतने दिनों वह माँ-बाप का लाड़ला ही था। जन्म से उसे कोई कमी, कोई तकलीफ़ नहीं हुई। अब लगता है कि दूसरे लडकों की तरह अभाव की जिन्दगी ही उसके लिए अच्छी रहती। उन लोगों की तरह आवारागर्दी करते घूमना ही उसके लिए अच्छा होता। तब उसे इस नयी दुनिया के आमने-सामने खड़े होते यह झिझक नहीं होती। वह भी आज मधुगुप्त लेन में शंभू के क्लब में निःसंकोच बैठा होता। तब इस तरह कुन्ती को सडक के मोड पर उतारकर जैसे वह आफत टल गयी, नहीं सोचता। केदार बाबू के अलावा और किसी भी ट्यूटर से पढ़ने पर उसका यह हाल नहीं होता।

"किधर जाना है, सा'ब ?"

सदाव्रत अचानक जैसे सोते से चौंक पड़ा। इतनी देर तक अपने पिछले दिनों की याद में इतना खोया था कि पता ही नहीं रहा किधर जा रहा है। सदाव्रत ने बाहर की ओर देखा। इससे पहले कभी इस ओर तो नहीं आया। शायद यही टालीगंज है। दोनों ओर टीन की चालियाँ और खपरैल के झोपड़े। यहाँ जो लोग रहते हैं, वे ही शायद शरणार्थी हैं। रास्ते में और सड़क पर देखा है। पाकिस्तान बनने के बाद से ही ये लोग आ रहे हैं और शहर की भीड़ बढ़ रही है। ये ही लोग जुलूस निकालते हैं, सड़क और रास्ते गन्दे करते हैं, गडबड करते हैं। अखबारों में वह इन्हीं लोगों के बारे में पढ़ता रहता है।

सदाव्रत ने कहा, "हिन्दुस्तान पार्क चलो।"

टैक्सी घूमकर उल्टी ओर चलने लगी। टैक्सी-ड्राइवर को भी शायद जरा अचम्भा हुआ था। बाबू बहूबाजार से एक लडकी को साथ लिये आ रहा है। फिर एक जगह उसे उतार भी दिया। क्यों तो बैठाया और क्यों उतार दिया, वह किसी भी तरह ठीक नहीं कर पा रहा था। और फिर इतनी दूर टालीगंज की ओर ही क्यों बढ़ता रहा ! अब फिर वही कालीघाट, जिधर से आया था।

रासबिहारी ऐवेन्यू के मोड़ पर एक जानी-पहचानी सूरत देखकर सदा-

व्रत चौंक उठा। तो कुन्ती अभी तक खड़ी है ! आस-पास और बहुत-से लोगों की भीड़ है। वे लोग पता नहीं किस बात को लेकर बहस कर रहे थे।

फुटपाथ के पास गाड़ी रुकते ही कुन्ती की नजर भी उस पर पड़ी। बाहर मुंह निकालकर सदाव्रत ने पूछा, "तुम अभी तक खड़ी हो ?"

इस तरह से पकड़ी जाएगी—कुन्ती ने नहीं सोचा था।

सदाव्रत ने फिर पूछा, "अभी तक घर नहीं गयी ?"

कुन्ती ने सिर हिलाया, कहा, "नहीं !"

"कालीघाट क्लब जानेवाली थी ? रुपये मिले ?"

"नहीं।"

"तब ? इस तरह अकेली खड़ी हो ? घर नहीं जाना ?"

कुन्ती ने कहा, "मैं चली जाऊँगी, आप जाइये !"

सदाव्रत ठीक नहीं कर पा रहा था, क्या कहे। फिर जैसे डरते-डरते कहा, "जोड़ा साँको तो काफी दूर है, जाने में देर लगेगी।"

कुन्ती ने कहा, "लेकिन जाऊँगी कैसे ? बस-ट्राम तो सब बन्द हैं।"

सदाव्रत ने सड़क की ओर देखा। बस या ट्राम कुछ भी नहीं है। "क्यों, बस-ट्राम बन्द क्यों हैं ?"

"धर्मतल्ला में गोली चली है। टियर-गैस छोड़ी गयी है। क़रीब डेढ़-सौ आदमी मरे हैं।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन हम लोग तो अभी उसी ओर से आये हैं। उस समय तो कुछ भी नहीं था।"

"उस समय नहीं था, उसके बाद ही हुआ।"

"फिर तुम घर कैसे जाओगी ?"

कुन्ती ने जवाब नहीं दिया।

सदाव्रत ने जल्दी से दरवाजा खोल दिया। बोला, "बैठो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ! कहीं और ही पहुँचा दूँ, जहाँ तुम्हें जाना हो।"

कुन्ती ने आनाकानी नहीं की। टैक्सी में बैठ गयी।

"स्यालदा की ओर से चलो। उधर से तुम्हें घर छोड़ दूँगा।"

"नहीं, मेरे लिए बेकार इतना पैसा किसलिए खराब कर रहे हैं ?"

"इसलिए कि तुम मुसीबत में हो।"

कुन्ती ने कहा, "मुसीबत में क्या मैं अकेली पड़ी हूँ, मेरी तरह और भी दो-तीन सौ आदमी मुश्किल में पड़े हैं।"

"लेकिन उन्हें तो मैं पहचानता नहीं। तुम्हें जानता हूँ, इसी से तुम्हें

गाड़ी में बैठा लिया।"

"लेकिन आप मुझे जानते ही कितना हैं ? मेरा क्या जानते हैं ? सिर्फ़ मेरा नाम छोड़कर मेरे बारे में और क्या जानते हैं ?"

सदाव्रत जरा मुसकराया। कहा, "यह और जानता हूँ कि तुम अमेचोर क्लबों में ड्रामा करती हो। और भी एक बात जानता हूँ···"

"क्या ?"

"तुम कम्युनिस्टों से घृणा करती हो और बड़े आदमियों से डरती हो।"

लेकिन कुन्ती यह बात सुनकर हँस नहीं पायी। वैसी ही गम्भीर रही। सिर्फ़ कहा, "यह बात छोड़िए, आपको तकलीफ करके इतनी दूर तक नहीं जाना होगा। मुझे देशप्रिय पार्क के पास ही उतार दें तो बड़ी कृपा होगी।"

"यहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"मेरे एक रिश्तेदार हैं।"

"पहले तो यह नहीं बतलाया था ?"

"पहले बतलाने की जरूरत नहीं हुई।"

सदाव्रत ने फिर भी कहा, "लेकिन अपने घर जाने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? मुझे जरा भी तकलीफ नहीं होगी।"

"नहीं, फिर भी रहने दीजिए।"

"इसलिए कि वहाँ मैं तुम्हारा पता न मालूम कर लूँ, यही बात है न ?"

कुन्ती ने कहा, "नहीं, नहीं, आप मेरा पता जान लेंगे तो इसमें नुकसान क्या है।"

"कभी-कभी तुम्हें तंग करने पहुँच सकता हूँ न !"

"मुझे तंग करनेवाले लोगों की वहाँ कमी नहीं है। कितने ही आते हैं। मैं कोई पर्दानशीन तो हूँ नहीं।"

"तुम्हें डरने की कोई जरूरत नहीं है। मैं किसी क्लब का मेम्बर नहीं हूँ, मैं ड्रामा भी नहीं देखता हूँ और एक्टिंग तो खैर करना जानता तक नहीं। आज का दिन लेकर सिर्फ़ दो दिन शंभू के क्लब गया हूँ, वह भी अपने ही जरूरी काम से···"

तभी कुन्ती ने कहा, "मुझे यहीं उतार दीजिए। देशप्रिय पार्क आ गया।"

टैक्सी रुकी। कुन्ती खुद ही दरवाजा खोलकर उतर गयी। बोली, "अच्छा, चलती हूँ। नमस्कार।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन तुमने अपने घर का पता तो बताया ही नहीं?"

कुन्ती ने कुछ देर सोचा। फिर कहा, "हमारा मकान आपके लायक नहीं है।"

"फिर भी जान तो लूं, शायद कभी किसी काम आ जाऊँ।"

"इतना ही है तो सुनिए—बत्तीस बी, अहीर टोला, सेकंड बाई लेन!"

सदाव्रत ने कहा, "ठीक है, याद रहेगा, बहुत-बहुत शुक्रिया।"

इसके बाद और ज्यादा रुकना अच्छा नहीं लगा। टैक्सी चल दी। सदाव्रत ने पीछे मुड़कर देखा—कुन्ती एक बड़े बंगले के पोर्टिको के अन्दर घुस गयी। इसके बाद उसको और कुछ नहीं दीख पड़ा। सरदारजी ने टैक्सी की रफ्तार बढ़ा दी।

पोर्टिको का फ़र्श सीमेंटेड था। कुन्ती उसी के अन्दर जाकर खड़ी हो गयी। मोटे खम्भे के पीछे खुद को ढँक लिया। सड़क के आदमी उसे नहीं देख सकते थे। एक गाय फ़र्श पर आराम से बैठी, आँखें बन्द किये जुगाली कर रही थी। वार्निश किये दरवाज़े के ऊपर पीतल की प्लेट में बंगले के मालिक का नाम लिखा था। अंधेरे के कारण ठीक से दिखलायी नहीं दे रहा था। कुन्ती काफी देर वहीं खड़ी रही। अब तक वह जा चुका होगा। फिर तनिक बाहर की ओर झाँककर देखा। टैक्सी नहीं है। चली गयी।

इसके बाद धीरे-धीरे पोर्टिको से निकल आयी।

· नहीं, टैक्सी नहीं है।

फुटपाथ पार कर कुन्ती सड़क पर आयी। फिर सड़क पार कर बस-स्टॉप पर आ खड़ी हो गयी। वहाँ और भी कई लोग खड़े हैं। उनमें से कई उसकी ओर तेज़ नज़रों से देख रहे थे। देखें। अब तक शायद बस भी चलने लगी होंगी। काफी दूर पर एक डबल-डेकर दिखलायी दी। कुन्ती ने साड़ी अच्छी तरह सम्हालकर किसी तरह आगे की सीट पर जगह कर ही ली।

□ □ □

हाजरा पार्क की मीटिंग काफी देर पहले खत्म हो चुकी थी। जो लोग आस-पास रहते हैं, वे इस पार्क में घूमने आते हैं। ऑफिस से लौटने के बाद शाम को ज़रा हवाखोरी भी होती, साथ ही बिना पैसे का तमाशा भी देखने को मिलता। पहले से कोई खबर नहीं मिलती। खबर जानने की किसी को खास दिलचस्पी भी न थी। सिनेमा और ड्रामा देखने के लिए फिर भी टिकट लेनी होती है। यहाँ तो बिलकुल फ्री। किसी दिन कांग्रेस की मीटिंग तो किसी दिन जनसंघ की। कभी पी० एस० पी० का कुछ, ध

आर० एस० पी० या फॉरवर्ड ब्लॉक का कुछ। अनगिनत पार्टी, अनगिनत राय। सभी मिनिस्ट्री कैप्चर करना चाहते हैं। ऊपर से हर कोई देश सेवा करना चाहता है। सब ग़रीबों की भलाई करना चाहते हैं। सभी गरीबों के शुभचिन्तक हैं।

कुंज गाड़ी को पार्क किये नियत जगह पर खड़ा था।

शिवप्रसाद बाबू अच्छा भाषण देते हैं। पार्क की सारी जनता उनके भाषण से मन्त्रमुग्ध हो गयी थी। उनकी एक-एक बात से जैसे आग बरस रही थी। वह कह रहे थे, "जिन्दगी के साथ सुलह हो सकती है, लेकिन मौत के साथ नहीं। मौत की मौत नहीं होती, मृत्यु अविनाशी है..."

जिस समय वह मंच से उतरे उस समय हर कोई सोच रहा था कि नेताजी सुभाष बोस अगर जिन्दा होते तो वह भी इतनी आग नहीं बरसा सकते थे।

गाड़ी के पास आते ही कुंज ने दरवाज़ा खोल दिया। गाड़ी में बैठकर शिवप्रसाद बाबू ने खादी की चादर पास में रख ली। बोले, "चल !"

फिर एकाएक बोले, "कुंज !"

"जी।"

"मेरा भाषण सुना ? कितना सुना ? शुरू से ?"

"जी, हाँ !"

यह सवाल सुनने की कुंज को आदत है। हर मीटिंग के बाद कुंज को इस सवाल का जवाब देना होता है। हर बार ही बाबूजी का भाषण उसे अच्छा लगता है।

"तुझे कैसा लगा ?"

"बहुत अच्छा।"

शिवप्रसाद बाबू इतने पर ही नहीं माने। पूछा, "मेरा अच्छा लगा या त्रिदेव चौधरी का ?"

"आपका ही ज्यादा अच्छा था।"

"सभी मन से सुन रहे थे ? किसी ने गड़बड़ नहीं की ?"

ऐसे कितने ही सवालों का जवाब कुंज को देना होता। यही नियम है। सब-कुछ अच्छा मानना होता। कुंज ने यह सीख लिया है। शिवप्रसाद बाबू की गाड़ी की ड्राइवरी करने के लिए यह सब करना ज़रूरी है। नौकरी माने ही गुलामी। कुंज सिर सीधा रखे गाड़ी ड्राइव करने लगा।

□ □ □

सदाव्रत जिस समय घर के सामने पहुंचा, काफ़ी रात हो चुकी थी।

जेब से नोटबुक निकालकर उसने पता लिख लिया। बत्तीस बी, अहीर टोला, सेकंड बाई लेन। यह भी उस ओर ही है। चितपुर पार कर उत्तर की ओर जाना होगा। बाई लेन—इसलिए ज़रूर ही काफी छोटी और संकरी गली होगी। लड़की ने कहा था—हम लोगों का घर जाने लायक नहीं है। कलकत्ता में जाने लायक कितने घर हैं!

टैक्सी रुकते ही किराया चुकाया, लेकिन सदर दरवाजे की ओर देखते ही चौंक पड़ा। गैरेज में गाड़ी नहीं थी। तब क्या पिताजी अभी तक नहीं लौटे? मीटिंग से क्या और कहीं चले गये?

तभी माँ दिखलायी दीं। देखने से काफी परेशान लगती थीं। सदाव्रत को देखते ही बोलीं, "इतनी देर कर दी? आजकल कहाँ जाते हो? उधर कलकत्ता में गोली चली है, इतनी रात कर दी, मुझे फ़िक्र नहीं होती?"

सदाव्रत हमेशा की तरह अपने कमरे की ओर ही जा रहा था।

मन्दा ने फिर कहा, "तुम भी घर पर नहीं रहते, वह भी बाहर जायें। फिर मैं किसके लिए यह गृहस्थी सम्हाले बैठी रहूं?"

सदाव्रत ने कहा, "पिताजी मीटिंग से नहीं लौटे?"

"आने से क्या होता है! फिर निकल गये हैं।"

"कहां गये हैं?"

"और कहां जायेंगे? देश-सेवा! अपने कारोबार के लिए जायें, यह तो समझ में आता है, लेकिन कहाँ मेदिनीपुर में बाढ़ आयी, वह जायेंगे। गोआ में कौन जाने क्या हो रहा है, वहां भी जायेंगे। घर में एक लड़का है, उसका भी यही हाल! फिर मैं किसके लिए घर की चौकीदार करूँ?"

"लेकिन पिताजी को क्या किसी ने बुलाया है?"

"उन्हें खबर देनेवाले लोगों की क्या कमी है! पूजा करके उठे ही थे। मैं खाना परोस रही थी, तभी टेलीफोन आया—पता नहीं विधान राय, अतुल्य घोष या प्रफुल्लचन्द्र किससे बातें कीं। बस एकाएक चले गये।"

सदाव्रत ने और कुछ नहीं कहा। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चला गया।

□ □ □
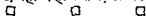
अब चितपुर। शहर की यह एक खास और ज़रूरी जगह है। हिन्दुस्तान पार्क, मधुगुप्त लेन, डलहौजी स्क्वायर और फड़ेपुकुर स्ट्रीट की तरह इसे भी बिना माने काम नहीं चलता। चितपुर रोड जहाँ बीडन स्क्वायर के बाद सीधी उत्तर की ओर चली जाती है, उसी के आस-पास के इलाके

की बात कर रहा हूँ। दिन के समय यहाँ आकर कुछ भी पता लगाना मुश्किल है। पांच दूसरे बाजारों की तरह इसके पास भी जोड़ा बाजार है। सडक के दोनो ओर बरतन, हुक्का और तम्बाकू या हारमोनियम-तबले की दूकानें है। ट्राम-बस की खिडकियो से बाहर ताकने पर दोनों ओर एक दूसरे से सटी लाइन-की-लाइन दूकानें दिखलायी देंगी। वैसे उनमें कोई खास बात नही है। या तो सोने-चादी की, नही तो हुक्के-गुड़गुड़ी, चना-मुरमुरा या हारमोनियम-तबलों की बिक्री ही रही है। सारी बे-मजा, सूखी चीजें। लेकिन रात को यह जगह रंगीन हो उठती है। तब इस जगह का चेहरा ही बदल जाता है। सडक के दोनो ओर संकरा फुटपाथ और उस पर चलते सैकड़ों-हजारों लोग।

पहली मंजिल पर लोगों की भीड़। लेकिन दूसरी मंजिल पर ?

ठुन्-ठुन् करती ट्रामों की आवाज के बीच ही अचानक हल्ला मचता—'गया-गया-गया...'

चारो ओर से भीड आ जमती।—"क्यों साहब, जरा-सा और होने पर ट्राम के नीचे आ जाते न ! इस तरह ऊपर की ओर ताककर चला जाता है ? जरा देख-सुनकर चला कीजिए !"

उस ओर की सुरंग से खिलखिलाहट की आवाज आती। लड़कियाँ कहती, "बेचारा···"

सुरंग कहना ही ठीक होगा। उसी सुरंग के रास्ते एकदम सीधे नाक की सीध पर नरक, या कुछ लोग स्वर्ग भी मानते हैं, तक पहुँचा जा सकता है। जो पहुँचते हैं ये भी होशियार लोग हैं। लेकिन रात के समय ठीक उसी हालत में शायद उनकी सारी होशियारी न जाने कहाँ गायब हो जाती है। यह ठीक है कि कोई-कोई आदमी ट्राम या बस की चपेट में आने से बच जाता है। लेकिन कोई-कोई सचमुच चपेट में आ ही जाता है। और तब ट्राम-बस-टैक्सी या भैंसागाड़ी की कतार लग जाती। तब ऊपर की रेलिंग से झुककर सभी नीचे का तमाशा देखते हैं। ऊपर के लोग नीचे की ओर देखते हैं, और नीचे के लोग ऊपर की ओर। ऊपर की ओर देखते-देखते ही कोई-कोई फिर छुटाये तीर की तरह सुरंग के अन्दर जा घुसते।

लेकिन पचगली के पर्दे के कायदे-कानून दूसरे ही हैं।

पचगली पुराने जमाने की औरत है। कहती, "तीन-चौथाई गुजरकर यह चोटी आ गयी, अभी तक मुँह देखकर आदमी नहीं पहचान पाती बेटा, और तुम चोर आदमी पहचानोगी ?"

दूसरी मंजिल पर सीढ़ी के सहारे ही पद्मरानी का कमरा है । परदा उठाते ही वहाँ से एकदम सदर दरवाजे तक नजर जाती है। चाहने पर सब-कुछ देखा जा सकता है। सुवह दरवाजा खुलने से लेकर रात के एक-दो वजे तक—कभी-कभी रात के तीन वजे तक भी सदर दरवाजा खुला रहता है। किसी-किसी दिन तो बन्द ही नहीं होता लेकिन कुलफीवाला ही हो, या फूलवाला ही हो, या गुंडा-बदमाश, गिरहकट ही हो, सभी नजर आते हैं। एक बार चेहरा देखते ही पद्मरानी आदमी को पहचान लेती है। लड़कियों को भी यही सिखलाती। कहती—'काठ की बिल्ली हो या मिट्टी की, परवाह नहीं, बेटी, चूहा पकड़ पाना ही असली चीज है।'

यानी रुपये मिलने चाहिए । पद्मरानी खुद भी पैसे का दाम अच्छी तरह से जानती। इस मुहल्ले में और भी कितने ही मकान है। मकान भी कम नहीं हैं, लड़कियों की भी कमी नहीं है। एक बार जाल फेंकते ही खेप भर जाने की तरह। लेकिन जो लोग यहाँ रहते हैं उनमें से वह अलग है। जो लोग यहाँ आते हैं वे भी जानते हैं कि यहाँ पैसा ही सब-कुछ है। पैसा फेंक, भरपेट खातिर कराकर रूमाल से मुह पोंछते घर चले जाते हैं। लेकिन खातिर ऐसी करनी होगी कि लौट-फिरकर यहीं आना पड़े। एक बार जो पद्मरानी के फ्लैट में आता है भूलकर भी और कहीं नहीं फटकता।

पद्मरानी इसी से सवको सुनाती हुई कहती—'फेंको कौडी, खाओ घी, तुम क्या पराए हो, राजा?'

और जगह जो होता है, यहाँ नहीं चलता। सभी को मालूम है कि खालिश शराब नाम की चीज़ सिर्फ पद्मरानी के यहाँ ही मिलती है। पद्म-रानी पैसा पकड़ती है, लेकिन नमकहराम नहीं है। कहती है—'मैं पैसा लूगी, असली माल दूगी, बाद में तुम्हारा धरम तुम्हारा, मेरा धरम मेरा। आज अगर मैं तुम्हें ठगती हूं, कल तुम मुझे ठगोगे। तब तो मेरा लोक भी गया, परलोक भी गया।'

पास में ही सुफल की दूकान है। सुफल कॅकड़े की भुनी हुई टांग और चिंगड़ी मछली का कलिया बड़ा जायकेदार बनाता है। दूर-दूर से खरीददार आते हैं। कांच के शो-केस में माल सजाकर रखता है। देखते ही लार टपकने लगती है। जब कि भाव एकदम सस्ता है। रात के समय ही ज्यादा भीड़ रहती है। फिर भी काम-काज के बीच ही किसी तरह समय निकाल पद्मरानी के कमरे के सामने आकर आवाज देता, "माँ!"

"कौन, सुफल? क्या बात है, बेटा?"

"टगर दीदी के कमरे में ताला लगा है। क्या टगर दीदी है नहीं?"

"क्यों? तेरा कुछ पैसा बाकी है क्या?"

सुफल कहता, "हाँ, माँ, यही कोई तीन रुपया छः आना बाकी थे।"

"लेकिन पैसे बाकी छोड़े ही क्यो? पैसे भी क्या कभी बाकी रखने चाहिए, बेटा! तुम लोग रंगीन चेहरा देखते ही सब-कुछ भूल जाते हो। इस लाइन में बाकी रखकर कोई काम करता है? मैंने तुमसे पहले ही कहा था, बेटा..."

सुफल फिर भी खड़ा रहता। पूछता, "क्यों, टगर दीदी कहाँ गयी है? आयेगी नहीं?"

"आयेगी नहीं तो जायेगी कहाँ, बेटा? यही जो वासन्ती थी न, सत्रह नम्बर कमरे मे, अब बारह नम्बर में आ गयी है, पहचानता है न? हाँ तो, यह वासन्ती ही एक दिन मिजाज दिखाकर कुनबा बसाने चली गयी थी। कहती थी—ब्याह करके कुनबा बसाऊँगी। मैंने भी कह दिया—तो जाओ न बेटा, गृहस्थी मे क्या-क्या सुख हैं, कुनबा बसाकर देख आओ न। हाँ तो, गयी भी। मैंने माग मे सिन्दूर भर दिया। दोनों को आशीष दिया। दो साल पटलडांगा में घर लेकर रही भी। फिर एक दिन कांख में एक बच्चा दबाये रोती-बिलखती आ पहुंची—समझ गयी, पिरीत पूरी हो गयी है!"

ये सब पुरानी बातें है। ये किस्से सुफल भले ही न जाने, पर और सब किरायेदार लड़कियाँ जानती है।

अगर कोई पूछता—'फिर?'

तब पद्मरानी कहती—'फिर क्या! फिर यह पद्मरानी का फ्लैट ही आसरा था—अढाई सौ रुपए का फ्लैट नुकसान सहकर डेढ़ सौ रुपये में दिया, तब पेट पल रहा है। इसीलिए तो वासन्ती से अब कहती हूँ—मू क्या हम लोग खाना नही जानती, बेटा? जानती हैं। खाती क्यों नही? बदबू है इसलिए...'

पद्मरानी की बातें कुछ भी हो सुनने लायक होती हैं। सारे दिन अपने कमरे में खाट पर बैठी-बैठी फ्लैट चलाती है। सिरहाने एक गॉदरेज की आलमारी है, उसमें रुपये रखकर पल्ले मे चाबी बाँधती है। और काम हो या न हो, बिन्दू को पुकारती। कहती—'बिन्दू! ओ बिन्दू!'

पद्मरानी का भरोसा है—बिन्दू। बिन्दू ही पद्मरानी के लिए खाना बनाती है। इतनी बड़ी गृहस्थी सम्हालती है। एक दरबान है, वह नाम के लिए। वह कब कहाँ रहता है, कोई नही जानता। वास्तव में बिन्दू ही सब

लोगों की देखभाल करती है और पद्मरानी के हुक्म की तामील करती है। पद्मरानी के कमरे मे टेलीफ़ोन है। ज्यादातर ऐसे ही पड़ा रहता है। मालिक अगर कभी टाइम पाते हैं तो टेलीफ़ोन करते हैं, नहीं तो नहीं। उन्हें भी कितने ही काम रहते है। बीच-बीच में दारोगा-पुलिस-सिपाहियों का फोन आता है। वे लोग जिस दिन आनेवाले होते है, उससे पहले ही पद्मरानी को होशियार कर देते हैं—'बोतल वगैरह ज़रा सम्हाल कर रखिएगा, हम आ रहे है।'

इसी पद्मरानी के फ़्लैट के सामने ही आकर हाज़िर हुआ जॉर्ज टामसन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड ऑफिस के रिक्रिएशन क्लब का सेक्रेटरी दुलाल सान्याल। साथ में था असिस्टेंट सेक्रेटरी अमल घोष और उसका साथी संजय। संजय सरकार। संजय के लम्बे-लम्बे घुंघराले बाल हैं। शाहजहाँ का पार्ट किया है आलमगीर औरंगज़ेब मे। माइथोलॉजिकल, हिस्टॉरिकल, सोशल किसी भी तरह का नाटक बाकी नहीं छोड़ा।

दुलाल सान्याल ज़रा आनाकानी कर रहा था। लेकिन ऑफिस से निकलकर आखिर में तीनों ही साथ हो लिए। ट्राम से उतरकर खोजते-खोजते तीनों ही असली जगह आ पहुँचे। ज़रा-ज़रा डर भी लग रहा था। हिचक भी रहे थे। लेकिन फीमेल-रोल के लिए जब बिना फीमेल लिये काम नहीं चलेगा तो इतना सोचने से क्या फ़ायदा!

अमल ने कहा, "धत्तेरे की, यह कहाँ ले आया तू? यह तो रंडियों का मुहल्ला है!"

संजय ने कहा, "उससे क्या हुआ? हम लोग कोई इस काम से तो आये नहीं हैं—हम लोग तो आर्टिस्ट खोजने आये है।"

दुलाल सान्याल तनिक गम्भीर आदमी है। हाथ में एक पोर्टफोलिओ बैग है। उसमें पैड, कांट्रैक्ट फ़ॉर्म साथ ले आया है। कुछ नकद रुपये भी है। अगर एडवांस माँग बैठे।

दुलाल सान्याल, ने पूछा, "कौन-सा घर?"

सुफल अपनी दूकान पर बैठा गोश्त की घुघनी पका रहा था। मिर्च-मसाला और प्याज डालकर ऐसी घुघनी बनाई है कि सोंधी-सोंधी सुगन्ध से सारी चौहद्दी गुलज़ार हो गई है। घुघनी उतारकर परांठे सेंकने शुरू करेगा। इस मुहल्ले के रहनेवाले ज्यादातर रात को खाना नहीं पकाते, सुफल के यहाँ की चाट और परांठे खाकर ही गुज़र कर लेते हैं। पद्मरानी के फ़्लैट के अधिकांश किरायेदार रात को खाना पकाने का समय नहीं पाते।

बाबू लोगों के पैसे से खाना वसूल करते हैं।

सुफल ने घुघनी बनाते-बनाते ही कहा, "गोरे, जा तो, अन्दर ज पूछ आ डिम-करी कितनी प्लेट चाहिए ? और टगर के कमरे का अगर खुला हो तो आकर मुझे बतलाना।"

"क्यों भाई, यहाँ पद्मरानी का फ्लैट कौन-सा है बता सकते हैं ?"

सुफल ने मुड़कर देखा। उसे बात करने की फुरसत नहीं है। बदली छायी है, भीनी-भीनी हवा। ऐसे ही दिनों में बाबू लोगों की भीड़ ज्यादा होती है।

"पद्मरानी का फ्लैट ?"

सुफल ने ठीक से देखा। चेहरे देखते ही पहचान गया, ऑफ़िस के बाबू हैं। चन्दा करके मज़ा लूटने आये है।

"यही है, इधर से सदर दरवाज़े से अन्दर चले जाइए।"

लेकिन दुलाल को इससे सन्तोष नहीं हुआ। बोला, "एक बात बतला सकते हो, भाई ? तुम तो यहीं के रहनेवाले हो। हम लोग एक काम से आये है।"

"क्या काम है, कहिये न ?"

"यहाँ कुन्ती गुहा नाम की कोई एक्ट्रेस···मतलब, नाटक वगैरह में काम करती है ?"

कुन्ती गुहा ! सुफल सभी लड़कियों को पहचानता है। बोला, "नाटक करती है ? नहीं बाबू, नाटक तो कोई भी नहीं करता, नाटक करनेवाली कोई लड़की यहाँ नहीं रहती, यह तो खराब लड़कियों का मकान है।"

अमल ने कहा, "खराब लड़की होने से क्या बिगड़ता है ? हम पैसे देंगे, पार्ट करके चली आयेगी। इस नाम की कोई लड़की है या नहीं ?"

सुफल ने कहा, "मैं तो इतना सब नहीं जानता। आप माँ से पूछ लें।"

"माँ !"

सुफल ने कहा, "हाँ, उस दरवाज़े से सीधे अन्दर चले जाइए। अन्दर ऊपर जाने की सीढ़ी है। सीढ़ी से ऊपर चढ़कर सामने ही देखेंगे परदा-लगा एक दरवाज़ा। वहीं पूछ लेना।"

सञ्जय ने कहा, "दुलाल दा, तुम लोग न जाओ, बाहर ही खड़े रहो, मैं अकेला ही जाता हूँ।"

लेकिन धीरे-धीरे तीनों ही अन्दर घुसे। अन्दर अच्छा-खासा मकान था। ईंटों का पक्का आँगन, बीच में एक खम्भे पर इलेक्ट्रिक बल्ब झूल रहा

था। आंगन के कोने से धुआं आ रहा था। उस ओर शायद रसोईघर है। नल-पाखाना सब-कुछ। एक बिल्ली पैर कुड़मुड़ाए चुपचाप बैठी थी। दूसरी मंज़िल पर भी हर ओर लाइन-की-लाइन कमरे थे। कुछ कमरों के दरवाज़े बन्द थे। किसी-किसी कमरे से हारमोनियम और घुंघरुओं की आवाज़ आ रही थी : 'चांद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख।' एक लड़की सीढ़ी पर रेलिंग के सहारे खड़ी-खड़ी सिगरेट पी रही थी। आंखें चार होते ही झुककर देखा। बोली, "आइए न।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "खबरदार, अमल, आगे मत बढ़ना !"

"कौन है ?"

शायद कोई औरत हाथ में कटोरा लिये रसोईघर की ओर से आ रही थी।

"इसी से पूछ, अमल !"

अमल आगे बढ़ा। पूछा, "क्योंजी, यहां कोई कुन्ती गुहा रहती है ?"

बिन्दु में शरम-हया भी है, यह मानना होगा। बाएं हाथ से बदन की धोती सम्हालकर ठीक की। मुंह ज़रा ढंककर कहा, "आप मां से पूछिए।"

"ए बिन्दु, कौन है री ?"

पद्मरानी ने शायद ऊपर से सुन लिया था। परदे की सद से सब दीखता है।

बिन्दु ने ऊपर चढ़ते-चढ़ते कहा, "मा, ये भले आदमियों के लड़के आये हैं, पता नहीं किसे खोज रहे हैं।"

फिर दुलाल की ओर देखकर कहा, "आप लोग ऊपर आइए !"

नये आदमियों की आवाज़ सुनकर और भी कई लड़कियां रेलिंग के पास आ जुटीं। एक-दूसरे के ऊपर गिरती-पड़ती सब-की-सब हँस रही थीं। संजय एकटक उसी ओर देखता सीढ़ी चढ़ रहा था। बोला, "अरे, इतना मत हँसो, दांत पर मक्खी बैठ जाएगी !"

साथ-ही साथ और भी ज़ोर की खिलखिलाहट। उनमें एक काफ़ी चंचल थी। बोली, "इधर आइए न, मक्खी मारने की मशीन हमारे पास है।"

दुलाल सान्याल भी पीछे-पीछे ही था। डांटकर बोला, "ए संजय, खबरदार, मज़ाक मत कर !"

तब तक पद्मरानी का कमरा आ गया था। बिन्दु ने अन्दर घुसकर परदा उठा दिया। फिर कहा, "मां, ये लोग आये हैं।"

"क्या, बेटा, तुम लोगों को कैसी चाहिए ?" कहते-कहते चारपाई पर

बैठे-ही-बैठे पद्मरानी ने बदन पर की साड़ी को सम्हाला। बोली, "तुम लोग बैठो, बेटा। बिन्दू, जरा कुर्सियाँ खींच ला तो!"

दुलाल सान्याल बैठ नहीं पा रहा था। अमल भी कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। वह भी खड़ा था। लेकिन संजय बैठ चुका था। कमरा काफ़ी तरतीब से सजा था। चारपाई के नीचे एक काँसे की पीकदानी रखी थी। सारा कमरा अगरबत्ती की गन्ध से महक रहा था। खिलौनों से भरी काँच की आलमारी रखी थी। दूध का प्याला हाथ में लेते हुए पद्मरानी ने पूछा, "तुम्हें कौन-सी पसन्द है? तीनों क्या एक ही कमरे में बैठेंगे?"

सजय ने कहा, "हम लोग कुन्ती गुहा को चाहते हैं। वही जो ड्रामा करती है—हम लोग नाटक खेल रहे हैं न!"

"नाटक?"

"जी हाँ, हम लोग जॉर्ज टामसन (इडिया) प्राइवेट लिमिटेड ऑफ़िस से आ रहे है, हमारे रिक्रिएशन क्लब की ओर से 'जो एक दिन आदमी थे' नाटक खेला जाएगा। हम लोग हीरोइन खोज रहे है। सुना है, आपके यहाँ कुन्ती गुहा नाम की कोई लड़की है। उसे ही खोज रहे हैं।"

पद्मरानी ने कहा, "कुन्ती नाम की तो कोई लड़की नही है, टगर है, वासन्ती है, जूथिका है—लड़कियाँ मेरी कई है, सभी देखने-सुनने में अच्छी है, चाल-चलन भी अच्छा है।"

सजय ने पूछा, "लेकिन उन्होंने क्या कभी ड्रामे में पार्ट किया है? वे लोग क्या नाटक में भाग ले पाएँगी?"

"तुम लोग देख लो न, तुम लोगों के देखने मे क्या बुराई है? ओ बिन्दू, जरा जा तो, उन सबको बुला ला। कहना, ऑफिस से भले घर के लड़के आये है।"

और कहने की देर नही हुई। चार-पांच लड़कियाँ खिलखिलाती हुई आ पहुँची।

पद्मरानी ने कहा, "हाँ री, टगर कहाँ गयी? कमरे में नहीं है?"

"हाँ तो, टगर नहीं है तो न सही। वासन्ती है, जूथिका है, गुलाबी है, सिन्दू है। पद्मरानी के फ़्लैट की मशहूर सुन्दरियाँ महफ़िल रोशन करती आ खड़ी हुईं। पद्मरानी के सामने किसी की बोलने की हिम्मत नहीं होती। सभी एक-दूसरे से सटी खड़ी थी। बड़ी बेचैनी लग रही थी। दुलाल सान्याल का तो जैसे दम घुट रहा था। लेकिन पद्मरानी आदमी पहचानने मे गलती नही करती। बोली, "तुम लोग बातचीत करो न, दूसरे कमरे मे जाकर इन

लोगों से बात करो। बड़ी अच्छी लड़कियाँ हैं—मैं तो बेटा सीधी-सादी बात पसन्द करती हूँ। मेरी लड़कियों का भी वही हाल है। तभी तो इनसे कहती हूँ मैं, गुन दीखते ही रीझो और नमक पाते ही रांधो, मेरी लड़कियों के गुनों का पार नहीं पाओगे।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "गुलाबी, बोल न! बात कर न, बेटा! भले घर के लड़के आये हैं ऑफ़िस से, प्ले कर सकेगी? ये लोग रुपये देंगे, सोने की मेडल देंगे—बोल न!"

आखिर में दुलाल सान्याल की ओर देखकर पद्मरानी ने कहा, "देख रहे हो न बेटा, इन लड़कियों को देख रहे हो न, ऐसी लड़कियाँ तुम्हें सोनागाछी में ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगी···अच्छा, एक काम करो, तुम ज़रा खुद ही इस गुलाबी के कमरे में जाकर अकेले में बातचीत कर लो, भाव-ताव कर लो, लड़की बड़ी नाज़ुक है। मेरे सामने बात करते शर्माती है। जा न, गुलाबी, बेटे को अपने कमरे में ले जा न—जा!"

दुलाल सान्याल ने कहा, "लेकिन हम लोग तो कुन्ती गुहा को खोज रहे हैं। सुना है, बड़ा अच्छा एक्टिंग करती है।"

वासन्ती तभी बोल उठी, "हम लोग क्या पसन्द नहीं आयीं?" और कहने के साथ ही उसने आँख फिराकर एक बाँका-सा कटाक्ष किया।

संजय देख रहा था, वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "ठीक है, दुलाल दा, मैं ज़रा टेस्ट करके देखता हूँ···आपने क्या पहले कभी प्ले किया है?"

वासन्ती के कुछ कहने से पहले ही दुलाल सान्याल ने टोका। बोला, "नहीं, रहने दो, कोई ज़रूरत नहीं है। कुन्ती गुहा अगर होती तो हम लोगों का काम चलता।"

"माँ!"

तभी बाहर की आवाज़ को पहचानकर पद्मरानी बोल उठी, "लो, टगर आ गयी—आ बेटा, टगर, यहाँ आ!"

इतने सारे अजनबियों को कमरे में देखेगी, कुन्ती ने नहीं सोचा था। सबको देखकर ज़रा चौंक गयी। पद्मरानी ने कहा, "यह लो, मेरी टगर बेटी आ गयी। तुम्हें यह पसन्द है, बेटा? सिखलाने पर यह तुम्हारा प्ले कर लेगी। क्यों री टगर, बाबू लोगों को ड्रामे के लिए लड़की चाहिए—तू कर पायेगी?"

कुन्ती ने दुलाल सान्याल की ओर देखा। ये लोग क्या उसे पहचानते हैं? फिर पद्मरानी की ओर देखकर कहा, "मैं प्ले करना तो जानती नहीं,

माँ, मैं प्ले कर सकती हूँ किसने कहा ?"

"कहेगा कौन बेटा, ये कुन्ती नाम की किसी लड़की को खोज रहे हैं। मैंने कहा कुन्ती नाम की तो कोई है नहीं, इनमे से कोई पसन्द हो तो चुन लो।"

दुलाल सान्याल और अमल घोष तब तक उठ खड़े हुए थे। बोले "असल मे हम लोग कुन्ती को खोजने आये थे। सुना था कुन्ती गुहा यहीं रहती है, इसी पद्मरानी के फ्लैट मे···"

कुन्ती को कैसा एक सन्देह हुआ। "आप लोगों को किसने बतलाया ?"

"हम लोगो की जान-पहचान के एक आदमी ने।"

कुन्ती ने फिर पूछा, "आप लोगो ने उसे देखा ?"

"उसका प्ले देखा है, कभी उसके साथ प्ले किया नही है।"

अचानक टेलीफोन की घंटी बज उठी। चारपाई के पास से रिसीवर उठाकर पद्मरानी ने कहा, "हलो !"

कुन्ती ने दुलाल सान्याल की ओर घूमकर कहा, "नही, आप लोगों को गलत खबर मिली है। कुन्ती नाम की इस फ्लैट में तो कोई नही है। यहाँ मैं हूँ, मेरा नाम टगर है, इसका नाम वासन्ती है, उसका जूथिका और उसका गुलाबी है। और जो है, उनके कमरो में इस समय मेहमान हैं। एक्टिंग जनाब हममे से कोई नहीं करता। जो लोग यहाँ ऐश करने आते हैं, हम उन्हे अपने कमरे मे बैठाती हैं। अभी तक नही समझ पाए आप कि यह वेश्याओं का कोठा है।"

दुलाल सान्याल ने और देरी नही की। अमल को खींचता हुआ बाहर चला गया। सजय शायद तब भी अन्दर ठहरना चाहता था। बोला, "तब आप ही करिए न, आपके होने से ही हम लोगों का काम चल जाएगा।"

बाहर मे दुलाल ने फिर आवाज़ दी, "ए सजय, चला आ !"

सजय फिर नही रुका। बाहर नीचे के आँगन से भी कई लोगों की आवाज कान मे आयी। हो सकता है बाबू लोगों ने आना शुरू कर दिया हो। अब पद्मरानी के फ्लैट के गुलजार होने का टाइम हो गया। अब मुफ्त की दूकान मे केंकड़े की टाँग, गोश्त की घुघनी और मुगलाई पराँठों का आना शुरू होगा। और उसके बाद बंजू की दूकान से बोतलों का आना शुरू होगा। फिर रात के आठ बजने के बाद पद्मरानी के निजी भण्डार से बोतलें निकलेंगी। ये दूसरी तरह की बोतल। उस बोतल मे मान के साथ ऐण्टी मिला रहता है। यह तुम जितनी चाहोगे उतनी ही मिलेगी। पद्मरानी सारी रात सप्लाई कर सकती है। फिर आयेगा कुल्फी-मलाई, आलू-टिकिया

और चाट-पकौड़ीवाला, तब आयेगा बेला का हार और जूड़े बेचनेवाला और तभी हारमोनियम और तबले के साथ शुरू होगा— चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नजरों से न देख !'

◻ ◻ ◻

पद्मरानी ने टेलीफोन रखकर मुँह घुमाया। वासन्ती वगैरह चली गयी थी। कुन्ती तब भी खड़ी थी।

पद्मरानी ने कहा, "क्यों री लड़की, दो दिन से तेरा पता ही नहीं है। बाबू लोग आकर लौट जाते हैं। बात क्या है, री ? सुफल के तीन रुपये साढ़े छः आना बाकी रख छोड़े हैं ! आखिर हुआ क्या है तुझे ? कहती हूँ धन्धा उठा रही है क्या ?"

कुन्ती ये सारी बातें सुनाने के लिए ही शायद आयी थी। बोली, "सुफल के पैसे अभी-अभी चुकाकर आयी हूँ ।"

"और जुलाई के महीने से मेरा किराया बाकी पड़ा है सो···"

"वह भी लायी हूँ," कहकर पर्स से दस-दस रुपये के दस नोट निकालकर पद्मरानी के हाथ में दिये—"यह एक सौ रुपये आज बड़ी मुश्किल से ला पायी हूँ। इस समय यही रखो माँ, बाद मे और रुपयों का इन्तजाम करूँगी। मेरा बाप बड़ा बीमार है, माँ···"

पद्मरानी ने हाथ के रुपये गॉदरेज की आलमारी में रखते हुए कहा, "सो ही तो कहूँ, धन्धे में मन नहीं लगाएगी तो रुपये कहाँ से आएँगे, बेटा ? रुपये क्या पेड़ मे फलते हैं ? और फिर मेरी ओर भी तो देखना चाहिए, बेटी टगर, मैं भी गरीब आदमी हूं, मेरा दूध-घी कहां से आएगा ? इसके सिवाय घर का टरेक्स है। तुम लो । अगर किराया नहीं दोगी तो मेरी गुजर कैसे होगी, बेटा ? मैं क्या अब जवान हूं जो इस उम्र में अपने कमरे में ग्राहक बैठाऊंगी ! तू अगर कमरा छोड़ दे तो मैं आज ही अढ़ाई-सौ रुपये मे उठा दूं। लेकिन मेरे तो करम मे ही नुकसान लिखा है ! तुम लोग तो वह देखती नहीं हो। उस समय सोचा था टगर की उम्र कम है, अभी जरा जमा ले। फिर खूब कमाएगी, बाद मे ही देगी—तुम तो समझदार हो बेटा ! मां के बारे में एक बार भी नहीं सोचती।"

कुन्ती ने अपराधी की तरह सिर नीचा किये कहा, "बाप बीमार है, इसी से···"

"···बाप तो बीमार आज हुआ है, पहले क्या हुआ था ? इसके पहले तुमने कितने दिन गंगाजल छिड़ककर दूकान खोली है, जरा गिनकर

बताओ ? व्यापार लक्ष्मी है। वह लक्ष्मी ही अगर चचला हो ज ... बार टिकता है ? भले-भले घर के लडके आकर पूछते हैं—'टगर कहा, टगर कहा है ?' हाय, बेचारे दिल बहलाने आते हैं, उतरा मुंह लिये ... जाते है। देखकर तरस आता है, बेटी। आती लक्ष्मी को इस तरह ठुकरा... नही चाहिए। इसमे तुम्हारा भला नही होगा, बतला देती हूं। इससे तो बेट... तुम मेरा कमरा खाली कर दो। अढ़ाई-सौ रुपये में नयी लड़की रखूंगी... अपना भी नुकसान मत करो, मुझ गरीब मां का भी नुकसान मत करो।

कुन्ती ने कहा, "अब मैं रोज आया करूंगी।"

पद्मरानी प्यार-भरे शब्दो मे बोली, "मैं तो तुम्हारे भले के लिए कहती हू। तुम्हारी मा अगर जिन्दा होती तो वह भी यही कहती। ... तो गुलाबी है न। गुलाबी की गृहस्थी है, मालिक है, बच्चे-कच्चे भी हैं वह कैसे आती है ? वह तो कभी नागा नही करती ? घर का काम-क... निबटाकर, बच्चों को खिला-पिलाकर रोज छ बजे के अन्दर आकर दूक... खोलती है। बाद मे रात के बारह बजे या एक बजे ठीक घर चली जा... है। मुझे कहना भी नही होता। तुम्हारी तरह महीनो तक किराया ब... बाकी नही रखती, ग्राहक भी नही लौटाती।"

कुन्ती चुप रही, कुछ भी नही बोली।

पद्मरानी ने दूध के कटोरे मे घूट भरते हुए कहा, "मैं तुमसे यह तो नही कहती कि अपनी बहन को मत देखो, बूढे बाप को मत देखो—खाली यहा आकर सारे दिन गुलछर्रे उडाओ। यह तो नही कह रही, बेटी ! तुम गृहस्थ घर की लडकी हो, पेट के लिए यहां आयी हो, हालत अच्छी होने पर ब्याह-शादी करके अपनी गृहस्थी सम्हालोगी। तुमसे वह करने को क्यों कहने लगी, बेटा ? मैं क्या पिशाच हूं ? नही, बेटा टगर, ऐसे मां-बाप से पैदा नही हुई हू।"

अब कुन्ती ने कहा, "कई रोज से बडा झंझट चल रहा है, क्या करू कुछ समझ मे ही नही आता..."

पद्मरानी ने बीच मे ही टोका, "झंझट किसे नही है, बेटा ? किसके झझट नही है ? इस झंझट के मारे ही तो भले-भले घर के लड़के यहां दौड़े आते है, आकर बोतल मुह में ढालकर थोड़ी देर के लिए शान्ति खोजते हैं।"

कुन्ती ने कहा, "नही, यह दूसरा ही झंझट है—लगता है अब घर छोड़ना होगा, मा !"

"क्यो, छोड़ना क्यो होगा ? किराया नही देती ?"

कुन्ती ने कहा, "मुसीबत तो यही है ! बस्ती का मकान ठहरा। दस
रुपये किराया दे रही थी। इधर कई साल से बढ़ाकर चौदह रुपये कर दिया
। अब कहते हैं कि बस्ती खत्म करनी होगी, जबकि उस मकान के पीछे
ने डेढ़ सौ रुपये खर्चे हैं। जंगला तक नहीं था, जगला लगवाया है । कल
रबान आया था। बोला, मकान छोड़ना होगा । छः महीने का समय
या था, अभी तक किसी ने घर नहीं छोड़ा। अब सुना है गुण्डे लगाकर
स्ती में आग लगवा देंगे।"

"कौन लगवायेगा ?"

"जमींदार, जमीन का मालिक । बड़े-बड़े फ्लैट बनेंगे, उससे काफ़ी
राया आयेगा। इस समय मैं वहीं से आ रही हूं ।"

पद्मरानी ने कहा, "तब तेरा बाप क्या कहता है ? उसकी नौकरी है
ा छूट गयी ?"

अचानक तभी सुफल कमरे में आया । बोला, "आज एग-करी बड़ी
टपटी बनी है। एक प्लेट लाऊँ क्या, माँ ?"

पद्मरानी ने मुंह बनाया।

"तूने क्या दिमाग़ बेच खाया है ! तुझे पता नहीं आज पूनो है ? पूनो
े दिन मुझे गोश्त, मछली, अंडा, केंकड़ा कुछ भी छूते देखा है ? यह देख
, दीखता नहीं, गरम दूध पी रही हूँ !"

फिर जैसे अचानक याद आया।

"ओ बिन्दू, बिन्दू, कहाँ गयी री, मेरे लिए जरा बात का तेल तो गरम
र ला !"

इसके बाद कुन्ती की ओर घूमकर कहा, "कई दिन से बेटी, पता नहीं
या हो गया है, कमर में ऐसे चपके चलते हैं, सीधे खड़ी भी नहीं हो
ाती। बदन जैसे टूट रहा है। अब देखती हूँ कि दिन पूरे हो आए।"

सुफल तब तक दूसरे कमरे में चला गया। उसके पास वक्त नहीं है।
कुन्ती भी शायद कुछ और कहनेवाली थी कि अचानक फिर से टेलीफोन
की घंटी बजने लगी। कुन्ती ने कहा, "आज जाती हूँ, माँ !"

"कल आ रही है न ?"

"हाँ, माँ, कल मैं ज़रूर आऊँगी। बिना आये काम कैसे चलेगा ?"
कहकर सीधी कमरे से निकल गयी। पद्मरानी ने टेलीफोन का रिसीवर
हाथ में लेकर कहा, "हलो !"

□ □ □

एक लम्बा-चौडा ब्लू-प्रिण्ट प्लान टेवल पर फैलाये शिवप्रसाद समझा रहे थे, "यह देखो, यह कलकत्ता की नॉर्थ-वेस्ट साइड हुई जोडा साँको, चितपुर सब। इस ओर सिटी मे कुछ भी रद्दोबदल नहीं होगी। किसी दिन इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट अगर हाथ लगाये तो दूसरी बात है। इस ओर के बारे मे नही सोच रहा हूँ। ईस्ट की ओर अभी भी काफी है। इधर सी० आई० टी० रोड के आस-पास देखो, यह रेलवे लाइन है इसके उस पार यह देखो सारी वजर ज़मीन पड़ी है—मार्शलैंड। देखना यहाँ भी एक दिन वस्ती होगी। एकदम यहाँ विद्याधरी तक—यह है एरिया ही वास्तव मे अभी तक 'पयालो' पड़ा था। मेरी ही नज़र इस ओर सबसे पहले पडी।"

सदाव्रत चुपचाप सुन रहा था।

"जिस समय पाकिस्तान बना, सभी के तो सिर पर हाथ था। रिफ्यूजी आ-आकर स्यालदा स्टेशन पर जमा हो रहे थे। तुम उस समय काफी छोटे थे। श्यामाप्रसाद बाबू और मैं इन सारी जगहों में घूमते थे। अगर पार्टीशन नही होता तो मैं भी ग्रेटर केलकटा सिटी अच्छी तरह से नहीं देख पाता। उधर बड़ाबाज़ार की मारवाड़ी कम्युनिटी ने काफ़ी पैसा दिया गवर्नमेंट ने भी करोडों रुपया खर्च किया। यहाँ जितनी मस्जिदें थीं अधिकाश मे रिफ्यूजी वस गये। जगह का अभाव फिर भी रहा। स्यालदा की ओर मुसलमानो की जितनी दूकानें थी, उनमें हिन्दू लोग घुस बैठे।"

इसके बाद ज़रा रुककर कहा, "यह जानना तुम्हारे लिए ज़रूरी है इसी से कह रहा हूँ। आज तुम भी एक इंडियन सिटिजन हो, तुम्हे वोट देने का अधिकार है—सो यू शुड नो। लेकिन आज तुम लोग देख रहे हो कश्मीर ट्रबुल, बॉर्डर ट्रबुल, कितना कुछ हो रहा है! इसका रूट तुम्हें जान रखना चाहिए। पाकिस्तान के न होने पर यह सब कुछ भी नहीं होता—और अगर पाकिस्तान नही होता तो मेरा यह लैंड-स्पेक्यूलेशन भी इतना फ्लॉरिश नही करता।"

शिवप्रसाद बाबू जैसे और भी उत्साहित हो गये। "सोचते होगे, बिजनेस की बात मे पॉलटिक्स लेकर डिसकशन क्यों कर रहा हूँ? लेकिन तुमने तो इकॉनोमिक्स पढ़ी है। तुम जानते होगे राजनीति के साथ अर्थनीति का कितना मेल है? प्राइम मिनिस्टर के एक लेक्चर पर शेयर-मार्केट के भावों में कैसी तेज़ी-मन्दी आ जाती है? इस लैंड-स्पेक्यूलेशन का भी यही हाल है। अगर पाकिस्तान नही होता तो मेरा बिजनेस भी फ्लॉरिश

नही करता। लेकिन पाकिस्तान आखिर बना क्यों, तुम जानते हो?"

बचपन से ही सदाव्रत को पिता के लेक्चर सुनने की आदत है। आज भी जैसे वह छोटा हो। सदाव्रत छोटे बच्चे की तरह चुपचाप सुनता रहा।

"पाकिस्तान किसने बनाया, कुछ पता है?"

सदाव्रत ने कोई जवाब नहीं दिया।

"अखबारों मे तुम तरह-तरह की बातें पढोगे। हिस्ट्री की किताबो में भी बहुत-कुछ लिखा है। मैं उस सब के बारे में नही कह रहा। असल मे, मैं इनसाइड सर्किल में था न, इसी से सीक्रेट जानता हूं। पाकिस्तान को जन्म किसने दिया, कहो न। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने?"

सदाव्रत ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

"नही, ब्रिटिश गवर्नमेंट नही। तब किसने? कौन? महात्मा गाधी? जवाहरलाल नेहरू? सरदार पटेल? मुहम्मद अली जिन्ना? लियाकत अली खा? सुहरावर्दी? नही, नाजिमुद्दीन साहब? वह भी नही तो कौन?"

शिवप्रसाद बाबू जैसे किसी सभा में भाषण दे रहे हों।

"असल में इनमे से कोई भी जिम्मेदार नहीं है, इसके पीछे न हिन्दू है, न मुसलमान—पीछे है···"

कहकर सामने की ओर जरा झुके। आवाज जरा धीमी की। बोले, "मैं उस समय हाई कमान्ड के इनर सर्किल मे था, असली सीक्रेट तुम्हे मैं बतलाता हू···तुम्हारा जान रखना जरूरी है···असल सीक्रेट थी···"

कौन जाने क्या सीक्रेट थी। शायद कोई सीक्रेट होगी, लेकिन वह ओपिन नही हो पायी। अचानक टेलीफोन की आवाज में सब गोलमाल हो गया। शिवप्रसाद बाबू ने रिसीवर उठाकर कहा, "हलो!"

फिर कहने लगे, "हां-हा, जरूर। दस्तावेज, डीड्स—सब मेरे ऑफिस में ही हैं, लोकल पुलिस को भी कह रखूगा। इतनी जिम्मेदारी मेरी है। लेकिन मुझे लगता है रिफ्यूजी लोग कुछ गड़बड़ जरूर करेंगे। लेकिन जब डिक्री हो चुकी है, इजेक्टमेंट ऑर्डर निकल गया है, तब दखल करने के लिए मारपीट छोड़ उपाय ही क्या है? जबर्दस्ती कब्जा जब साबित हो ही गया है···समझ गया, मैं पेपर्स लेकर अपने लड़के को आपके पास भेज रहा हू—हा, मेरा लड़का। उसको सारा कारबार समझा रहा हूं, और क्या! अच्छा, नमस्कार!"

रिसीवर रखकर आवाज दी, "बद्रीनाथ, बड़े बाबू को बुला!"

हिमांशु बाबू हड़बड़ाते-हड़बड़ाते अन्दर आये। शिवप्रसाद बाबू ने कहा,

"हिमाशु बाबू, जादवपुर की ज़मीन के जो पेपर्स अपने ऑफ़िस में हैं, वह फ़ाइल लाइए ज़रा। सदाव्रत वह सब लेकर गोलक बाबू के पास जायेगा।"

हिमांशु बाबू चले गये। शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "तुम्हें भेज रहा हूं, क्योंकि तुम्हे भी कुछ-कुछ समझ लेना चाहिए। अपनी फ़र्म के एडवोकेट गोलक बाबू, गोलकविहारी सरकार। उनके साथ मुलाकात भी होगी, जान-पहचान भी हो जायेगी। हा, जादवपुर की बस्ती भी तुम्हें एक दिन दिखला लाऊगा। रिफ़्यूजियो ने उस ज़मीन पर मकान बनाकर मौरुसी-पट्टा कर लिया है। ज़रा सोचो, उस प्लॉट को अगर बेच भी दूं तो इस समय कितना फ़ायदा होगा ! और कुछ नही, कम किराये के फ़्लैट ही अगर बनवा दिये जाएं, तो भी हर महीने कम-से-कम फिफ्टी-टू-सिक्स्टी परसेंट प्रॉफ़िट होगा। इसीलिए कह रहा था कि पाकिस्तान बनने से अपना तो कोई नुकसान नही हुआ। तुम्ही कहो न, पाकिस्तान न होने पर क्या रिफ़्यूजी यहां आते ? रिफ़्यूजी लोग अगर नही आते, तब क्या ज़मीन का भाव इतना बढ जाता ? तुम्ही कहो न—यह तो एक तरह से अच्छा ही हुआ।"

तभी फाइलें लिये हिमाशु बाबू आ गये। शिवप्रसाद बाबू ने सारे पेपर्स सदाव्रत को दिखला दिये। फिर कहा, "यह लो, और गोलक बाबू का मकान अहीर टोला लेन में है। अहीर टोला लेन पहचानते हो न। और अगर नही भी मालूम तो कुंज जानता है। कुज बतला देगा। जाओ ! कुछ कहना नही होगा, सिर्फ पेपर्स दे देना। वह खुद ही सब समझ जायेंगे।"

अहीर टोला ! सदाव्रत जैसे चौक उठा।

फाइलें सम्हालकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "अच्छा !"

□ □ □

कुज ठीक जगह पर ही ले गया। वह कितनी ही बार बाबू को यहा वकील साहब के मकान पर लाया है। इस जगह को अच्छी तरह से पहचानता है। शाम के समय चितपुर रोड पर ट्रैफिक ज्यादा रहता है। सडक संकरी है। उसी में ट्राम-लाइन। कभी-कभी काफ़ी समय के लिए ट्रैफिक जाम हो जाता है। लेकिन कुज सधा हुआ ड्राइवर है। मिजाज का भी ठंडा। आगे की गाड़ी को ओवर-टेक करने की भी कोशिश नहीं करता। *वह आराम से गाड़ी ड्राइव कर रहा था।*

"अच्छा, कुंज···"

सदाव्रत पिछली सीट पर बैठा था। लेकिन जैसे और नही रोक पाया। गाड़ी चलाते-चलाते ही कुंज ने पीछे मुड़कर देखा। सदाव्रत पूछ ही बैठा

"अहीर टोला सेकंड बाई लेन पहचानते हो ?"

कुंज सब जानता है। ड्राइव करते-करते पक्का हो चुका है। बोला, "जानता हूँ, छोटे बाबू !"

"पहले वकील साहब का घर पड़ेगा या सेकंड बाई लेन पड़ेगी ?"

"सेकंड बाई लेन। लेकिन उस गली में गाड़ी तो जा नहीं सकती।"

सदाव्रत ने कहा, "पहले तुम वहीं चलो। मुझे एक मिनट से ज्यादा नहीं लगेगा। तुम गली के बाहर ही गाड़ी लगा देना। मैं पैदल ही जाकर अपना काम निपटा आऊँगा।"

सच ही तो ज्यादा टाइम लगने की बात ही क्या है ! ऐसा कोई खास काम तो है नहीं ! इसके अलावा जब एक्टिंग करनेवाली लड़की है तो बाहरी आदमियों का आना-जाना भी होगा ही। फिर भी लड़की ने कहा था—वह घर जाने लायक नहीं है। शायद किसी पुराने टूटे-फूटे मकान में दो-एक कमरे लेकर रहती होगी। उसमें शर्म की क्या बात है, जबकि रिश्तेदारों में कोई-कोई बड़े आदमी भी हैं। उस दिन रात को टैक्सी से उतरकर जिस बंगले के पोर्टिको में गयी, वह तो काफी बड़े आदमी लगते हैं। उनका खुद का घर न भी हो, वह मकान किराये का ही हो, तब भी कुछ कम नहीं है। कम-से-कम अढ़ाई-सौ रुपये किराया तो देते ही होंगे। लेकिन खुद इतनी गरीब क्यों है ? उस दिन लड़की ने काफ़ी सुनाया। कम्युनिस्टों से नाराज, बड़े लोगों से नाराज़। अजीब बात है ! कलकत्ता में भी कैसे-कैसे लोग हैं !

"यही है सेकंड बाई लेन, छोटे बाबू, इसके अन्दर गाड़ी नहीं जाएगी।"

सदाव्रत ने गाड़ी से बाहर निकलकर गली की ओर ताका। सँकरी, घिच-पिच। बदबू से भरी डैम्प आबहवा ! दोपहर को ही जैसे शाम लगती थी। दोनों ओर की दीवारों के प्लास्टर में से ईंटें जैसे दांत दिखला रही थीं। एक खुजैला कुत्ता। डस्टबिन। नाले में पास के मकान की सँडास का मैला सड़सड़ करके बह रहा था। पीछे की ओर चमड़े के सूटकेस का कारखाना था। सुनार की दूकान।

सदाव्रत ने पॉकेट से नोटबुक बाहर निकाली। वैसे पता याद ही था, फिर भी एक बार मिला लेना अच्छा होता है। बत्तीस-बी, अहीर टोला, सेकंड बाई लेन।

दीवार पर लिखे मकान-नम्बरों को देखता हुआ सदाव्रत गली के अन्दर घुस गया।

□ □ □

हिमाशु बाबू पिछले सोलह माल से इस 'लैंड डेवेलपमेंट सिण्डीके' ऑफिस मे काम कर रहे है। एक बार नक्शा देखते ही समझ जाते। जमीन कैसी है। पानी रुकता है या नही। जमीन ढालू है या एकसार। हिमाशु बाबू को यह सब किसी ने सिखलाया नहीं है। पहले एक वकील के यहा मुशीगिरी करते थे। शिवप्रसाद बाबू उन्हें वही से ले आये थे। उस समय ऑफिस छोटा था। इतने क्लर्क नही थे। हिमांशु बाबू ही मैनेजर, अर्दली सब-कुछ थे। शिवप्रसाद बाबू को ऑफिस देखने का समय ही कितना मिलता था। ब्रिटिश गवर्नमेंट अभी जाने ही वाली थी। हर ओर बदइन्तज़ामी फैली थी। श्यामाप्रसाद बाबू सेंटर में मिनिस्टर हो गये। यार-दोस्त सभी मिनिस्टर, नही तो पार्लमेंटरी सेक्रेटरी। सभी ने सोचा, शिवप्रसाद बाबू भी कही मिनिस्टर हो जायेंगे। या तो मिनिस्टर, नही तो स्टेट मिनिस्टर, नहीं तो डिप्टी। बार-बार दिल्ली जा रहे थे।

लेकिन कुछ भी नही हुए। शायद सोचा होगा कि मिनिस्टर बनकर ही क्या करेंगे ! साथ मे पगड़ी पहने चपरासी घूमेगा, गाड़ी मिलेगी, हो सकता है मोटी तनख्वाह भी मिले। घर के दरवाज़े पर हर वक्त लाल पगडी का पहरा रहेगा। लेकिन बस इतना ही। मिनिस्टर तो वैसे भी हाथ में रहेंगे ही। कांग्रेस पार्टी भी हाथ में रहेगी। फ़ायदा अन्दर से ही होना है। फिर बेकार मे स्टाम्प लगाने की क्या ज़रूरत। ठीक किया, किंग होने से किंग-मेकर होना कही अच्छा है। शिवप्रसाद बाबू वही हुए। इधर ऑफिस का काम हिमाशु बाबू ने सम्हाल लिया।

शिवप्रसाद बाबू ने आदमी अच्छा चुना था।

ऑनेस्ट, मेहनती और हिसाबी—हिमांशु बाबू मे तीन गुण थे। शिवप्रसाद बाबू दिल्ली गये थे। हिमाशु बाबू सदाव्रत को कामकाज समझाने लगे।

हिमाशु बाबू कहते, "ये पुरानी फ़ाइलें पढकर देखिए !"

एक गट्ठर फाइल टेबल के ऊपर रख गये। पिताजी नही हैं। दूसरे दिन से ही सदाव्रत ठीक वक्त पर ऑफिस जा पहुंचता। मालिक के नाम पर अकेला सदाव्रत था। शुरू-शुरू में पिताजी की चेयर पर बैठते ज़रा झिझक होती। नेताजी सुभाष रोड की एक बड़ी बिल्डिंग की तीसरी मंजिल का एक फ़्लैट। नीचे झाककर देखने पर दिखलायी देती लाइन-की-लाइन गाड़िया और चींटी-जैसे आदमियो की लाइनें। ठीक जैसे दीवार पर लाइन लगाकर चींटिया मरे कीड़े को खाने जाती हैं। और सिर पर भरी फाइलों

सदाव्रत ने मुह से कुछ नही कहा। सिर्फ़ साढे चार सौ रुपये ! पिता जी की इन्कम इतनी कम है ? इतना बड़ा मकान, यह गाड़ी, ड्राइवर, नौकर-चाकर, महाराज-महरी—सब साढे चार सौ रुपये में ! लेकिन कुंज की तनख्वाह ही तो अस्सी रुपये है। और भी कितने ही खर्चे हैं। अभी तक उसके कॉलेज की फीस थी, मास्टर साहब की फीस थी। फिर उसकी किताबो का खर्चा। उसने खुद ही तो न जाने कितने रुपयों की किताबें खरीद डाली हैं। जब जो चाहा उसे मिला। उसकी गाड़ी पुरानी हो गयी है, फिर भी उसका खर्चा तो है ही !

हिमांशु बाबू शायद सदाव्रत के मन की बातें समझ गये। बोले, 'अपनी फर्म ज्यादा रिच तो नही है। इस समय उतना प्रॉफिट कहां हो रहा है ? अब तो कितने ही लैंड-स्पेक्यूलेशन ऑफिस हो गये हैं, कई राईवल कम्पनियां हो गयी है। पहले-जैसा प्रॉफिट अब कहां है !"

सदाव्रत ने जवाब मे सिर्फ कहा, "ओह !"

"इसी से तो अपने स्टाफ की तनख्वाह भी नही बढ़ा पाते।"

"एक क्लर्क को कितना मिलता है ?"

हिमांशु बाबू ने कहा, "जो देना चाहिए उतना नही दे पाता। वह जो नन्दी नाम का लड़का है, आज पाच साल हो गये, अभी तक उसे सत्तर रुपये से ज्यादा नही दे पा रहा।"

"लेकिन सत्तर रुपये मे क्या उसका काम चलता है ? अपने ड्राइवर कुंज को ही तो अस्सी रुपये मिलते हैं।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "शिवप्रसाद बाबू प्राय. ही कहते हैं—इन लोगों को भरपेट खाना दे पाऊं मेरी यह हालत भी नही है। उन्हें मन-ही-मन बड़ा अफसोस होता है। इसी से कोई कुछ नही बोलता। शिवप्रसाद बाबू को मन-ही-मन दु.ख होता है, यह सिर्फ मैं ही समझता हूं।"

"आपको खुद कितना मिलता है ?"

"मेरी मुसीबत के समय उन्होंने मेरी जो सहायता की उसे मैं कभी भी नही भूल पाऊंगा। तनख्वाह न मिलने पर भी मैं इस ऑफिस को छोड़कर नहीं जा पाऊंगा। मैं डेढ़ सौ रुपये लेता ज़रूर हूं, लेकिन वह भी लेते समय मेरा हाथ कांपता है।"

"और डिवीडेंड ?"

सदाव्रत पिताजी की अनुपस्थिति का सुयोग पाकर जैसे अनधिकार प्रवेश की कोशिश कर रहा था। बोला, "यह सब पूछ रहा हूं, आप कुछ

औ रत समझिएगा, हिमांशु बाबू ! असल में पिताजी कुछ दिनों से सब-कुछ समझ लेने को कह रहे हैं।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "अरे नहीं, यह क्या कह रहे हैं आप ? आपको सब-कुछ जानना ही चाहिए। शिवप्रसाद बाबू मुझसे भी तो कह गये हैं कि आप जो कुछ जानना चाहें, बतला दूं। असल में बात यह है कि आजकल कम्पनी कुछ अच्छी नहीं चल रही—माने, जितनी अच्छी चलनी चाहिए उतनी अच्छी नहीं चल रही।"

सदाव्रत ने अचानक बीच में ही टोका, "अच्छा देखिये, उस दिन जयपुर से किसी ने ट्रंक-कॉल किया था। उसका नाम शायद सुंदरियाबाई था—वह कौन है ? सुंदरियाबाई को पहचानते हैं आप ?"

"सुंदरियाबाई ?"

हिमांशु बाबू ने कुछ देर सोचा। फिर बोले, "मैं तो समझ नहीं पा रहा कुछ। क्यों ? उन्होंने क्या कहा ?"

"नहीं, कहा कुछ भी नहीं। पिताजी को पूछ रही थी। मैंने कह दिया दिल्ली गये हैं।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "ओह, समझा, शायद पार्क-स्ट्रीटवाली प्रॉपर्टी के बारे में बात करना चाहती होगी, मैं ठीक से नहीं जानता। अंग्रेज़ लोग तो जा रहे हैं न, अब सब-कुछ मारवाड़ी लोग खरीद लेना चाहते हैं।"

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा, आप जाइये, मैं फ़ाइल देखूं।"

कहकर जैसे हठात् याद आया। बोला, "एक बात और, हिमांशु बाबू, उस बस्ती के मामले का क्या हुआ ? वही जिसकी फाइलें लेकर मैं उस दिन गोलक बाबू के यहां गया था ? उसका क्या हुआ ?"

"उसका सारा इन्तज़ाम हो गया है।"

"क्या इन्तज़ाम ?"

"वकील का काम वकील ने किया। उन्होंने पेपर्स [illegible] । [illegible] लोगों की ओर से कोई फ्लॉ नहीं है। अब सिर्फ़ क़ब्ज़ा [illegible] है।"

"क़ब्ज़ा करना माने ?"

हिमांशु बाबू ने कहा, "ये सब रिफ़्यूजी [illegible] न ! किसकी ज़मीन है कुछ ठीक नहीं, [illegible] जम गया है। जबकि देखिये, इन्हीं लोगों [illegible] और कॉम्पनसेशन के मिले हैं; [illegible] सेधूमते है। पाकिस्तान में जो [illegible]

ट्राम तक मे जगह नही मिलती। आपको तो मालूम ही है। जैसे यह इन्हीं का देश हो। हम लोगों को तो जैसे आदमी ही नही मानते।"

"तो नही मानें, अब क्या मुक़दमा करके इन्हें हटायेंगे ?"

हिमांशु बाबू ज़रा मुसकराये। बोले, "नही-नही, मुकदमा करके क्या इन लोगों को हटाया जा सकता है ! जहाँ जो जम गया है उसे वहाँ से हटाना मुश्किल है। गवर्नमेंट भी उन लोगों से कुछ कहने की हिम्मत नहीं कर सकती !"

"क्यों, गवर्नमेंट क्या डरती है ?"

"डरेगी नहीं ? उन लोगों को भी तो वोट देने का अधिकार है। चुनाव होने वाले हैं, इसी से उन्हें नाराज नहीं करना चाहती। कम्युनिस्ट लोग भी तो उन्ही लोगों की बैकिंग पर चुनाव लड़ रहे हैं। गवर्नमेंट और अदालत से कुछ भी नही होगा।"

"तब उन लोगों को कैसे हटायेंगे ?"

"मारकर ! रातों-रात काम खत्म कर देना होगा। नहीं तो उन लोगों के पीछे कम्युनिस्ट पार्टी है। अगर रॉयट जैसा कुछ हो जाये तो हम लोग क्रिमीनल-केस मे फस जायेंगे ! इसी से वह सब झमेला नही करता है। हम लोगो का सब इन्तज़ाम है। किसी दिन मिड-नाइट में जाकर सब झोपड़े वगैरह तोड़-फोड़कर कब्जा कर लेंगे।"

"लेकिन वे लोग जायेंगे कहां ?"

"यह वे लोग समझें। रीजेन्ट पार्क की दस बीघा ज़मीन हम लोगों ने इसी तरह रिक्लेम कर ली। और अपने इसी मुहल्ले के एक बिजनेसमैन है। उनकी भी कुछ जमीन रिफ्यूजियो ने दबा ली थी। उन्होंने भलमनसाहत करके अदालत में केस चलाया। आज सात साल हो गये, मामला भी चल रहा है, गांठ के रुपये भी खर्च हुए सो अलग। अभी तक कोई फैसला नहीं हो पाया है। शिवप्रसाद बाबू से मैंने इसीलिए कहा कि बिना मार भगाये ये लोग जानेवाले नही है। जब तक दो-चार का सिर नही फूटेगा, इन लोगों की समझ में नही आयेगा !"

उस दिन रात को तो सदाव्रत टैक्सी लेकर टालीगंज रिफ्यूजी कॉलोनी देखने गया था। उसी दिन की बातें उसे याद आने लगी। सड़क के किनारे की अच्छी-खासी जमीन पर फटे-चिथड़ों, टाटों, टूटे बांसों और खपचियों से रानीगंज के झोपडे तैयार किये हैं। सदाव्रत ऑफिस की चेयर पर बैठा-बैठा उस बस्ती की कल्पना करने लगा। हिमांशु बाबू जैसे बड़े बाबू के कारण

शायद लैंड-डेवेलपमेंट सिण्डीकेट चल रहा है। सभी ऑफिसों में शायद एक-एक हिमांशु बाबू होते हैं। उन लोगों के लिए ऑफिस ही ज़िन्दगी है। ऑफिस की छोटी-छोटी बातों से लेकर बड़े-बड़े बजट और बैलेन्स-शीट इन लोगों की ज़बान पर रहते हैं। कुछ ही दिनों में सदाव्रत को पता लग गया कि हिमांशु बाबू खुद भी एक फाइल है। हज़ारों-लाखों धूल-जमे कागजों के बीच एक मरा हुआ कागज।

हिमांशु बाबू ऑफ़िस आते ही अपनी चेयर-टेबल खुद ही डस्टर से झाड़ते। हिमांशु बाबू काम करते-करते कहते, "तुम लोग सारे काम चपरासी से कराते हो, यह तो कोई अच्छी बात नहीं है। चपरासी है ऑफिस के काम के लिए, उसे चाय लेने क्यों भेजते हो ? चपरासी क्या तुम लोगों के घर का नौकर है ?"

नन्दी कहता, "तो हम लोगों को टिफिन की छुट्टी दीजिये !"

हिमांशु बाबू कहते, "बंगालियों में यह बड़ा भारी दोष है। हर बात में बहस करेंगे। बंगाली बहस करने मे ही गये। मिलिटरी मे क्या ऐसे ही बंगालियों को नही लेते !"

सदाव्रत केबिन में बैठा-बैठा सब सुनता। सुनने मे खूब मज़ा आता।

"कहता हूं, टिफिन करने का अगर इतना ही शौक है तो गवर्नमेंट ऑफिस में नौकरी करो न ! सारे दिन बैठे-बैठे घंटा-भर टिफिन-रूम में बिताकर मजे से घर चले आते, यहां क्यों आ गये ! हम लोग कोई खुशामद करने तो गये नहीं थे ! तुम लोगों को बुलाने भी नहीं गये थे कि अरे भाई, तुम लोग आओ, तुम लोगों के बिना सारा काम-काज रुका पड़ा है।"

एकाएक गले की आवाज़ बदलकर कहते, "दत्त, चिट्ठी टाइप हुई ?"

टाइपिस्ट दत्त कहता "जी, ज़रा देरी होगी, इस मशीन से और काम नहीं चलेगा। एक नयी मशीन मंगाइए।"

हिमांशु बाबू कहते, "वह तो कहोगे ही। एक दिन मैंने अकेले ही उस मशीन पर टाइप किया है। अकेले ही ऑफ़िस की सारी फ़ाइलें क्लीयर की है, और आज उसी काम के लिए इतने सारे लोग हैं। मैंने मालिक से तभी कहा था, ज्यादा आदमी न लीजिए। ज्यादा लोगों से जो काम होगा सो तो दीख रहा है।"

नन्दी से शायद और सहा नहीं गया। बोला, "लेकिन हम लोग काम नहीं करते हैं तो करते क्या है। आपके सामने ही तो बैठे है !"

ऐसी छोटी-छोटी बातों की वजह से सारा ऑफ़िस जैसे पत्थर हो गया

था। सदाव्रत इसके पहले भी नही जानता था कि जहाँ से उसके घर आय हो रही है, जिस पैसे से उसकी गृहस्थी चलती है, जिस आय के पर उसकी खुद की पढ़ाई-लिखाई हुई, वही से इतनी शिकायतें, इत असन्तोष। इनमे से कोई भी तो खुश नही है। इन लोगों को साठ रुपये महीना मिलते हैं। और सदाव्रत अपनी गाड़ी के पेट्रोल पचास रुपये उड़ा देता है!···

एक दिन हिमांशु बाबू केबिन में आये। सदाव्रत ने कहा, "हिमांशु बाबू, एक बात पूछनी थी।"

"कौन-सी बात, कहिए?"

"कह रहा था कि क्या इन लोगो की, माने इन्ही कुछ क्लर्कों तनख्वाह नही बढ़ायी जा सकती? यही कोई चार-पाँच रुपये महीने।"

"चुप, चुप।" हिमांशु बाबू ने धीरे-से कहते हुए अपने होंठों पर रखी और बोले, "वे लोग सुन लेंगे। इतनी जोर से न बोलिए!"

सदाव्रत ने आवाज़ धीमी करते हुए कहा, "नही, एक दिन देखा, टिफिन के समय कुछ भी नही खा पाये। सिर्फ चाय पीकर ही रह गये। और कोई बात नही है। लेकिन बद्रीनाथ घर से मेरे लिए खाना लाता है, यह उन लोगों को मालूम है?"

हिमांशु बाबू फुसफुसाए, "वे और आप? उन लोगों के साथ अपनी तुलना कर रहे हैं?"

"नहीं, तुलना नही कर रहा, लेकिन खाते समय जाने कैसा लगता है बद्रीनाथ जब प्लेटें धोता है, वे लोग देखते होंगे।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "अरे नही, आप ज़रा भी फिक्र न करिए। उन लोगों ने पढ़ाई-लिखाई कुछ भी नही की है। इस नौकरी के बूते पर ही पेट पाल रहे हैं। यहाँ नौकरी न मिलने पर क्या करते, जरा सुनूँ? आप तनख्वाह बढ़ाने का नाम न लीजिए। इन लोगों को शह मिलेगी।"

सदाव्रत ने कहा, "नही, मैं तो ऐसे ही कह रहा था। अगर बढ़ा सकते···"

"नही, छोटे बाबू! यह सब मैंने बहुत देखा है, दो रुपये महीने बढ़ने से उन लोगों के घर नही पहुँचेगा। या तो रेस में जायेगा, नहीं तो शराब की भट्ठी में। मैं इन लोगों को पहचानता हूँ।"

इसके बाद और कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके बाद सदाव्रत और कुछ नही बोल पाता। अखबार, टेक्स्ट-बुक्स मे इतने दिनों जो कुछ पढ़ा है

हिमांशु बाबू की बात के सामने झूठ मालूम देता है।

हिमांशु बाबू ने जाते-जाते कहा, "और एक दिन मैंने शिवप्रसाद बाबू से यह बात कही थी। चीज़ों की कीमतें बढ रही है, यह तो देखता ही हूँ। मुझे भी तो गृहस्थी चलानी होती है। मैं क्या समझता नही हूँ ? हाँ, तो शिवप्रसाद बाबू ने सब-कुछ सुना, बोले कुछ नही। गरीबों का दु:ख नही देख पाते न !"

सदाव्रत ने पूछा, "आपका अपना खुद का काम कैसे चलता है ?"

हिमांशु बाबू ने समझाने की मुद्रा में कहा, "वह आदत की बात है। ख़र्चा बढ़ाने से ही बढ़ता है। तब लगता है, बिना गाड़ी के नही चलेगा, रेफ्रिजरेटर न होने से काम नही चलेगा, एअर-कन्डीशन्ड कमरे के बिना काम नही चलेगा। शिवप्रसाद बाबू ने क्या गाडी खरीदनी चाही थी ? मैंने ही तो कह-कहकर खरीदवायी। कहा—हम लोग गरीब पैदा हुए, गरीब ही मर जाएँगे, लेकिन आपको तो पाँच भले आदमियो के साथ सरोकार पड़ता है, मिनिस्टरों के साथ मुलाकात करनी होती है, आप गाडी खरीदिए। वह तो फिर गीता का भी पाठ करते हैं न। असल मे यह बात मैं ही जानता हूँ। ऊपर से जैसे दीखते हैं, वास्तव मे वह वैसे नही हैं। अपने निजी रहन-सहन में भी उसी गीता के अनुसार चलना चाहते हैं। रुपये-पैसे का तो कोई लोभ है ही नही। लोभ होता तो क्या कम्पनी की यह हालत होती ! इस कम्पनी को मैं, सिर्फ मैं ही सोने से मढ देता। और फिर जो कुछ भी कमाया सभी तो दान कर डाला।"

सदाव्रत को और भी आश्चर्य हुआ।

कुछ रुककर फिर कहा, "ये बातें कहीं उनसे न कहिएगा। यह सब किसी को भी नही मालूम। उन्हें अपनी उदारता का ढोल पिटवाना पसन्द नही है। इन शरणार्थियों को ही लीजिए। इन लोगों के लिए क्या उन्होंने कुछ कम किया है ! वे तो दान करते-करते ही फक्कड़ हो गये।"

अचानक एक ट्रंक-कॉल आने से बात बीच में ही रुक गयी। हिमांशु बाबू ने रिसीवर उठाकर कहा "हलो···नही···वह तो नही हैं।" कहकर फ़ोन छोड दिया।

सदाव्रत ने पूछा, "कौन फ़ोन कर रहा था ? कहाँ से ?"

हिमांशु बाबू ने कहा, "ऊँह, जयपुर से था, मैंने कह दिया कि नहीं हैं।"

सदाव्रत को अजीब-सा लगा।

"जयपुर से ?

"वह तो पता नही। नाम नही बतलाया।"

□ □ □

उस दिन टेलीफोन उठाते ही उधर मे किसी ने कहा, "सदाव्रत गुप्त है क्या ?"

"मैं सदाव्रत बोल रहा हूँ।"

"मैं शभू हूँ। ऑफिस मे बोल रहा हूँ। मैंने इस बात का पता लगा लिया है। दुलाल दा से मुलाकात हुई थी।"

"क्या कहा ?"

"टेलीफोन पर वह सब नही कहा जा सकता। हमारे यहाँ ऑफिस से टेलीफोन करने की मनाही है। मैं जैसे-तैसे लुक-छिपकर कर रहा हूँ। आज मेरे घर चले आना। मैं बन्द कर रहा हूँ।"

कहकर जल्दी से लाइन काट दी। और कुछ सुनायी नही दिया। सदाव्रत ने हाथ की फाइल रख दी। जैसे कुछ भी अच्छा नही लग रहा था। अचानक सब-कुछ फिर से याद आ गया। रोज़ ऑफिस आने और ऑफिस से घर लौटने मे जैसे उस बात को भूल ही गया था। हर रोज़ कुंज आकर गाडी लिये खड़ा रहता, और सदाव्रत उसमे बैठकर यहाँ चला आता। वही एक रास्ता और वही एक चेहरा। कितने ही दिन और कही जा ही नही पाया। माँ कही जाने ही नही देती। कह दिया था, ऑफ़िस से सीधे घर आना। वे हैं नही, वह भी कही देरी करके घर न लौटे। जब कि पिताजी न जाने कहाँ-कहाँ जाते हैं, उनका कोई ठीक ही नही है, माँ उन्हें तो बाँध नही पायी। सदाव्रत को शायद इसीलिए शुरु से ही आस-पास रखना चाहती है। किसी-किसी दिन ऑफिस में भी टेलीफोन करती।

माँ कहती, "क्यों रे, टिफिन कर लिया ?"

सदाव्रत कहता "हाँ, कर लिया।"

"खाना ठीक था न ? जयनगर की मिठाई थी, फेंक तो नही दी ?"

सदाव्रत गुस्से हो जाता। वह क्या छोटा-सा बच्चा है ! कहता, "मैंने तो कह दिया था खा लूंगा, फिर टेलीफ़ोन क्यों किया ?"

"तुझे याद दिला दिया, नही तो तू जैसा भुलक्कड़ है !"

"नहीं, मुझे याद दिलाने की कोई ज़रूरत नही है, तुम इतना खाना क्यों भेज देती हो ? मुझे खाने में शर्म आती है।"

"क्यों, शर्म किसी बात की ? मेहनत करनी पड़ती है, बिना खाये शरीर कैसे चलेगा ?"

"तुम कुछ भी नहीं समझती। मुझे कोई काम नहीं है। मैं सिर्फ़ चुप-चाप बैठा रहता हूँ। इसके अलावा ऑफिस का और कोई भी क्लर्क नहीं खाता। बद्रीनाथ जब प्लेटें धोने जाता है तब सब देखते हैं—मैं क्या खाता हूँ, क्या नहीं खाता।"

माँ शायद ठीक से समझ नहीं पाती। कहती, "वे लोग तो गरीब हैं, क्या खायेंगे ? उन लोगों के साथ तू ?"

सदाव्रत ने बात और नहीं बढ़ायी। माँ के साथ बात करना दिमाग खराब करना है। जल्दी-जल्दी दो-एक बात कहकर रिसीवर रख दिया। प्रायः रोज़ ही ऐसा होता। घर पहुँचकर भी कितने ही दिन माँ को समझाया। और सब लोगों को जब खाना नहीं मिलता, उस समय उसका खाना ठीक नहीं। यह बात माँ को किसी तरह नहीं समझा पाया। उस दिन भी फूड-क्राइसिस को लेकर ही गोली चली। कितने ही लोग पकड़े गये, कितने ही मारे गये, और कितने ही अभी तक अस्पताल में पड़े थे।

शंभू !

ऑफिस से निकलकर घर की ओर न जाकर सदाव्रत सीधा बहूबाजार पहुँचा। मधुगुप्त लेन का जाना-पहचाना मकान।

काफी दिनों बाद फिर से इस ओर आने पर बड़ा अच्छा लगा। शंभू के यहाँ बाहर के कमरे में शायद भाई-बहनों को मास्टर पढ़ा रहा था। अन्दर से पढाने की आवाज़ आ रही थी।

लेकिन शंभू शायद तैयार ही था। सदाव्रत के पहुँचते ही बाहर आ गया। बोला, "आ गया ? चल !"

बाहर गाड़ी देखकर बोला, "आज गाड़ी लेकर आया है ?"

सदाव्रत ने कहा, "ऑफिस से सीधा आ रहा हूँ न ! पिताजी कलकत्ता में नहीं हैं···और क्या हाल है ?"

"अरे, वह सब बेकार की बात थी।"

"बेकार की बात ?"

"दुलाल दा ने खुद ही मुझे बतलाया। कह रहे थे वह तो मजाक में कह दिया था। मैंने कहा, तुमने मजाक में भी वह बात क्यों कही ? लेकिन दुलाल दा तो हैं ही ऐसे। हर बात में मजाक करते हैं। मैंने तुझसे उसी दिन कहा था, मजाक की बात है। तूने बेकार में इस बात को लेकर अपना दिमाग खराब किया। चल, क्लब चल। घर में मास्टर आया है, बैठने की जगह नहीं है। चल, आज दुलाल दा से भी आने को कहा है, उनके मुँह

ही सुन लेना।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, रहने दे। इस तरह की सीरियस … कोई मजाक करता है ?"

"मैंने भी यही कहा। कहा, मजाक करने की भी तो एक लिमिट होती है।"

सदाव्रत को खींचते-खींचते शंभू एकदम गली के मोड़ पर क्लब के दरवाजे तक ले गया। सदाव्रत अन्दर जाते-जाते लौट आया। बोला, "नहीं भाई, मैं अब अन्दर नही जाऊँगा। तुम लोगों का प्ले क्या फिर से हो रहा है ?"

'वह तो वही-का-वहीं पड़ा है। हीरोइन ही नहीं मिल रही। मैंने भी कह दिया है कि मैं तो अब हीरोइन ढूंढने जाऊँगा नहीं। ढूंढना ही हो तो कालीपद ढूंढे, हम लोगों से कोई मतलब नही। प्ले हो या नहीं हो!"

सदाव्रत ने अचानक पूछा, "वह लड़की फिर नही आयी ?"

"कौन-सी लड़की ?"

"वही, शायद कुन्ती ही तो उसका नाम था ?"

शंभू ने कहा, "नहीं, कालीपद डायरेक्टर है। कालीपद ने ही उसे कैंसिल किया है। अब अगर कालीपद ही उसे बुलाकर लाये तो प्ले होगा, नही तो नही होगा। उसके बाद तो और भी कितनी ही लड़कियों का ट्रायल लेकर देखा गया, कोई भी सूट नहीं करती।"

"अच्छा, उस लड़की का घर कहाँ है ?"

शंभू ने कहा, "वह तो शायद जादवपुर की बस्ती में रहती है।"

"जादवपुर में ?"

सदाव्रत अवाक् रह गया। बोला, "लेकिन मुझसे तो उस दिन कहा था—अहीर टोला ?"

"तेरे साथ कब मुलाकात हुई ?"

"उसी दिन की तो बात है। मैं टैक्सी रोककर बैठ ही रहा था कि आकर बोली, 'मुझे अगर रास्ते में छोड़ दें।' मैंने बालीगंज उतार दिया। जाते समय बोली, 'अहीर टोला मे रहती हूँ।' लेकिन वहाँ तो उस नाम का कोई भी नहीं था।"

शंभू को थोड़ा अजीब लगा, "तू क्या उसे ढूंढने गया था ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ, हमारे वकील का घर तो उसी ओर है। जाकर देखता हूँ, जो पता दिया है, वहाँ लड़कों का मेस है। बड़ा खराब लगा।"

"वे लोग ऐसी ही होती हैं। उन लोगों की बात का कभी भी यकीन न करना—चल-चल, शायद दुलाल दा आ गये होंगे।"

कुंज से थोड़ी देर ठहरने को कहकर सदाव्रत अन्दर गया। क्लब खचाखच भरा था। अन्दर घुसते ही कुन्ती को देखकर सदाव्रत चौंक गया। फिर से यही मुलाक़ात होगी उसने नहीं सोचा था। हाथ में चाय का प्याला था। उस समय झुककर चाय पी रही थी। पहले तो देख ही नहीं पायी। लेकिन जूतों की आवाज सुनकर सिर उठाते ही सामने सदाव्रत को खड़ा पाया। और साथ ही चाय छलककर साड़ी पर बिखर गयी।

□ □ □

असल में शंभू को पता ही नहीं था कि उस दिन कुन्ती फिर से क्लब आयेगी। किसी को भी पता नहीं था। कालीपद की ही बहादुरी थी। उस दिन बाम-लॅरी ऑफ़िस से कालीपद जल्दी छुट्टी लेकर निकल पड़ा था। शंभू से पहले दिन जो बातचीत हुई थी उसी से पते का अन्दाज़ा कर लिया था। उसी के भरोसे निकल पड़ा।

बस से उतरकर जहाँ जादवपुर टी० बी० अस्पताल है, उसके पश्चिम की ओर जाना था। सिर्फ इतना ही मालूम था। इसके बाद ही शुरू हो गयी रिफ़्यूजी-कॉलोनी। छोटे-छोटे टीन पड़े मिट्टी के घर। लाइन-की-लाइन। उन्हीं में से किसी में वह रहती है। छाती पर हाथ रखकर या तो इस पार या उस पार सोचकर ही उस दिन कालीपद निकला था।

हमेशा की तरह उस दिन भी कुन्ती सज-धजकर निकल रही थी। बगल के जीवन बाबू की बहू ने आवाज़ दी, "ए, तुम क्या बाहर जा रही हो, भाई ? मेरा एक काम करोगी ?"

इन सब कामों के लिए कुन्ती कभी भी न नहीं कहती। बोली, "कहिए न, भाभी, क्या मँगाना है ?"

"एक साबुन लेती आओगी ? बदन में लगानेवाला।"

इस मुहल्ले से जो लोग बाहर नहीं निकलते, उन लोगों के लिए कुन्ती कितनी ही चीजें ला देती। शुरू-शुरू में जब आयी थी यहाँ, फ्रॉक पहने घूमा करती थी। उसी समय से लड़की के पैर में जैसे चक्कर पड़ गया था। सभी ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार झोपड़े बनाये थे। किसकी जमीन, कौन जमींदार, किसी को कुछ भी पता नहीं था। फरीदपुर से ईश्वर कयाल आया था। लगन का पक्का—कर्मठ आदमी। स्यालदा स्टेशन पर एक दिन रुककर, दूसरे दिन ही निकल पड़ा। कलकत्ता कोई छोटा-मोटा शहर तो

है नही। एक दिन मे घूम लेना नामुमकिन है। घूमते-घूमते जान-पहचान वाले कितने ही लोग मिल गये। गुप्तापाड़ा के हरिपद काका, उत्तरपा का साधू सामन्त, विष्टू सान्याल। साधू सामन्त और विष्टू सान्याल में हमेशा होड़ रहती थी। पासा खेलते समय कोई भी दूसरे को नही देख पाता था। इसके बाद और भी कितने ही परिचित लोग मिल गये। इस सब सभी मे जोरो का मेल-जोल था।

हरिपद काका ने पूछा, "तुम लोग कहाँ हो, ईश्वर ?"

"जी, स्यालदा के प्लेटफार्म पर पड़े हैं, और लंगर मे खा लेते हैं।"

"कहते क्या हो ? वाल-बच्चे, बहू—सब कहाँ है ?"

ईश्वर ने कहा, "सभी किसी तरह से गुज़र कर रहे हैं। मारवाड़ी लोग चावल और दूध देते हैं, सो खा लेते हैं। लडकी बीमार है, सिर छिपाने को जगह नही। क्या करूँ, कुछ समझ में नही आता। आप ही कोई रास्ता बतलाइए, काका !"

हरिपद काका ने रास्ता दिखला दिया। खुद ने यहाँ आकर कैसे घर वसा लिया, वतलाया। चन्दा करके घर-आँगन वनाया है। मुर्गी पाली है कद्दू और काशीफल की वेल लगायी है।

"जमीन किसकी है ?"

हरिपद काका ने कहा, "कौन जाने किसकी है ? यह सब देखने का समय किसके पास था ? देखा, खाली पड़ी है, वस आ वसे। अव जिसमें हिम्मत हो आकर हटाये !"

"अगर पुलिस आकर मार भगाये ?"

"अरे, ऐसे भी तो मर रहे है ! न होगा तो वैसे भी मरेंगे। लेकिन ईश्वर, इस वार भागेंगे नही, मरने से पहले दो-चार को मारकर मरूँगा।"

हरिपद काका की हिम्मत देखकर ईश्वर कयाल को वड़ा आश्चर्य हुआ। जवानी में हरिपद काका वड़े अच्छे लट्ठवाज़ थे। अव उम्र ज्यादा हो गयी है। लेकिन हिम्मत उतनी ही है।

हरिपद काका ने कहा, "तुम लोग भी यहीं चले आओ न ! डर की कोई वात नही है—हम लोग हैं, और भी लोग हैं। उन लोगों का कहना है, वे भी हमारे साथ लड़ेंगे। सव जवान-जवान लड़के हैं।"

"वे लोग कौन ?"

"तुम लोग आओ न, देख लेना।"

"कांग्रेसी हैं क्या ?"

हरिपद काका ने कहा, 'वह तुम बाद में देखना। यह हँसिया-हथौड़े का दल है। तिरंगा झंडा तो नहीं है, लेकिन इन लोगों का भी झंडा है। इन लोगों का झंडा लाल रंग का है। उस पर हँसिया और हथौड़ा अंका है।"

हाँ तो, वहीं से शुरुआत हुई। ईश्वर कयाल गाँव के जितने भी आदमी थे, सबको स्यालदा से यहाँ ले आया। और सभी के साथ मधु सिकदार, मनमोहन गुहा, निरंजन हलदार भी इस मुहल्ले में आ बसे। बाद में यहीं पर सब लोगों ने अपनी-अपनी गृहस्थी जमा ली। चन्दा करके ट्यूब-वेल लगवा लिया। पोखर खुदवा ली। चन्दा करके ही स्कूल और लाइब्रेरी की इमारत भी खड़ी कर ली। फिर भी सभी के मन में एक डर समाया था। शुरू-शुरू में हँसिया-हथौड़ा-मार्का छोकरे आकर अभयदान कर गये। फार्म भरवाकर उन्हीं लोगों ने सरकार से रुपया भी वसूल करा दिया। उसी रुपये से शरणार्थियों ने शहर में जहाँ-तहाँ दूकानें खोलीं—कपड़े की दूकान, सौदागरी की दूकान। और भी कितनी तरह की दूकानें। इसी तरह सात साल गुज़र गये। लोग तरह-तरह से रुपया कमा रहे थे। लेकिन फरीदपुर के जनाब मनमोहन कुछ भी नहीं कर पाये। शरीर टूट चुका है, दिल टूट चुका है। कुन्ती जब यहाँ आयी थी, फ्रॉक पहनती थी। फिर एक दिन साड़ी पहनने लगी। लेकिन साड़ी पहनने के साथ ही लोग पीछे लग गए। उन लोगों के साथ कहाँ-कहाँ घूमती, कहाँ-कहाँ खाती—और न जाने कहाँ-कहाँ से रुपया लाकर बाप के हाथ में रखती।

मनमोहन बाबू को बड़ा अजीब लगता। गिनकर देखते—एक-दो नहीं, पूरे दस-दस रुपये।

पूछते, "रुपये कहाँ से मिले ? किसने दिये ?"

कुन्ती कहती, "उन लोगों ने !"

"वे कौन ? नाम नहीं है ?"

"वे ही, जो ले गये थे।"

"कहाँ ले गये थे ?"

"उन लोगों के वहाँ ड्रामा करने···"

बापजी तभी से समझते, लड़की ड्रामे में एक्टिंग करती है। घर लौटने में किसी-किसी दिन काफी रात हो जाती। आस-पास के लोग भी समझते, मनमोहन बाबू की बड़ी लड़की ड्रामों में एक्टिंग करती है। ड्रामा-क्लब के बाबू लोग काफी रुपया देते। उसी रुपये से मनमोहन बाबू ने घर के ऊपर फूस की जगह टीन का छप्पर छवा लिया। जरा-सी कुन्ती के बदन पर गहने

दीखने लगे। बाप के लिए कपड़े बने। छोटी बहन के लिए नया फ्रॉक आया। घर में दोनों समय चूल्हा जलने लगा। रसोईघर से हिल्सा-मच्छी के तलने की सुगन्ध आने लगी। यानी कि एक शब्द में मनमोहन बाबू के दिन फिर आये। अब लड़की को कुछ कहा नहीं जा सकता था। लड़की थी, इसी से बुढ़ापे में खा-पहन पा रहे हैं! बीमार होने पर डॉक्टर आता है, पथ्य के लिए फल आते हैं। छोटी लड़की को स्कूल में भर्ती करा दिया है। कुन्ती न होती तो क्या होता?

कालीपद ढूंढते-खोजते इसी मुहल्ले में आ पहुंचा।

मनमोहन बाबू कच्चे चबूतरे पर बैठे खांस रहे थे।

सामने जवान लड़के को देखकर बोले, "कौन?"

कालीपद ने कहा, "जी, मैं कुन्ती गुहा को खोज रहा हूँ, अपने क्लब के ड्रामे के सिलसिले में।"

मनमोहन बाबू बोले, "ड्रामेवाले बाबू? लेकिन तुम लोग मेरी लड़की को इतनी देर से क्यों छोड़ते हो? जरा जल्दी नहीं छोड़ सकते? बेचारी दुधमुही बच्ची इतना कैसे सह सकती है, तुम्हीं बोलो?"

कुन्ती उस समय अन्दर के कमरे में माथे पर बिन्दी लगाने में जुटी थी। पहचानी-पहचानी आवाज सुनाई दी। जरा बाहर की ओर झाँककर देखा। देखते ही पहचान गयी। जल्दी-जल्दी साड़ी लपेटकर शीशा रखकर बाहर आयी। बोली, "क्या हुआ? फिर से कैसे? फिर मेरे पास आये हैं?"

कालीपद ने कहा, "बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, मतलब कितने ही ट्रायल लिये, पार्ट के साथ कोई भी फिट नहीं बैठ रहा।"

"लेकिन मैं ही कर पाऊंगी, यह किसने कहा?"

"क्लब के मेम्बरों का कहना है, पार्ट तुमको ही करना होगा, नहीं तो क्लब तोड़ देंगे। इतनी मुश्किलों से लिखा मेरा 'मरी मिट्टी' नाटक चौपट हो जाएगा। मैं दिखला देना चाहता हूं, रियल नाटक किसे कहते हैं!"

"लेकिन रुपये? कितने रुपये देंगे?"

"पिचहत्तर रुपये, जो ठीक हुए थे।"

कुन्ती ने कहा, "नहीं, मुझे एक-सौ रुपये देने होंगे। आधे एडवान्स चाहिए—और रिहर्सल एक महीना दूंगी, एक दिन भी ज्यादा नहीं।"

कालीपद मन-ही-मन न जाने क्या सोचने लगा।

कुन्ती ने फिर कहा, "और रिहर्सल-रूम में फालतू आदमियों की भीड़ नहीं रह पायेगी।"

मनमोहन बाबू बीच में बोल उठे, "नहीं-नही, फ़ालतू आदमियों के सामने मेरी लड़की रिहर्सल नही देगी। यह भी कोई बात है! किसके मन में क्या है कुछ कहा जा सकता है?"

कालीपद ने कहा, "फालतू आदमी कहाँ है? सभी क्लब के मेम्बर है!"

"नही, उस दिन थे न? एक भले आदमी? लम्बे, गोरे-गोरे-से..."

कालीपद ने काफ़ी सोचा। पहले तो पहचान नही पाया। फिर बोला, "ओह, वह तो सदाव्रत था, शंभू का दोस्त। वह तो कभी भी आता नही, सिर्फ एक उसी दिन आया था।"

मनमोहन बाबू ने खांसते-खांसते कहा, "लेकिन एक दिन भी क्यो आयेगा? एक दिन-एक दिन करते बाद मे रोज ही आयेगा। यह तो ठीक बात नहीं है।"

कालीपद ने कहा, "अच्छा, ठीक है। फालतू आदमियो को नही घुसने दूगा। तुम आज ही चलो।"

इसके बाद पॉकेट से तीन दस-दस रुपये के नोट निकालकर बोला, "फिलहाल ये तीस रुपये रखो। क्लब पहुचकर बाकी बीस दे दूगा। और हाँ, मैं टैक्सी लेने जा रहा हूं।"

कुन्ती ने कहा, "रुपये पिताजी के हाथ में दीजिए।"

हाँ, तो कालीपद इस तरह कुन्ती को लेकर क्लब में आया। आते ही सभी से कह दिया कि अब से रिहर्सल के समय कोई बाहरी और फ़ालतू आदमी नही आ पायेगा। आने पर बाहर की बाहर विदा कर देना होगा। इसके बाद चाय आयी। कुन्ती को बीस रुपये भी दे दिये थे। कुन्ती ने उन्हें बैग में डाल लिये। अभी चाय पीना शुरू ही किया था, तभी शंभू और सदाव्रत आ पहुंचे।

सदाव्रत को देखते ही कुन्ती जैसे चौंक पडी। चौंकते ही चाय साड़ी पर छलक पड़ी।

कालीपद शायद शंभू से कुछ कहने ही जा रहा था, कुन्ती ने इशारे मे कहा, "नहीं, कुछ कहने की जरूरत नही है। उन्हें रहने दीजिए।"

□ □ □

'मरी मिट्टी' नाटक में फीमेल-रोल कई हैं। लेकिन वे सब साइड करेक्टर हैं। एक घर की आया है, एक माँ है। पहले अंक के पहले दृश्य में ही माँ का 'डेथ-सीन' दिखलाया गया है। इसके बाद और एपिरियेंस नही है। इसी तरह दो-चार छिटपुट रोल हैं जरूर, लेकिन शुरू से अन्त तक

शान्ति का ही रोल है। असल में शान्ति ही 'मरी मिट्टी' की हीरोइन है
इन्हीं लोगों ने स्यालदा स्टेशन पर आकर गृहस्थी जमायी है।
तुम्हारे बूढ़े पिताजी हैं। छोटे-छोटे भाई-बहन भी हैं। आस-पास में
भी परिवार है। सभी घरबार-हीन। और तुम्हारी माँ एक फटी-पुरानी
गुदड़ी पर पड़ी बुखार में तप रही है, मृत्युशैया पर। और थोड़ी देर में
तुम्हारी माँ मर जा सकती है। यही हालत है। फर्स्ट सीन के शुरू-शुरू में
कोई डायलॉग नहीं रखा है। सिर्फ एक्शन है। तुम माँ के सिरहाने बैठी हो
तुम्हारी आँखें छलक रही है। तुम्हारे छोटे-छोटे भाई-बहन प्लेटफार्म प
दूसरी ओर भीख माग रहे है। और तुम्हारी माँ के पैताने बैठा तुम्हा
निकम्मा बूढा बाप हुक्का पी रहा है। इसके साथ ही और भी कई 'सीनि
इफेक्ट्स' दूगा। विंग्स के पास इधर-उधर तरह-तरह के लोग आ-जा र
है। कोई-कोई तुम्हारी ओर अच्छी तरह से देखता भी है। तुम सुन्दर हो
तुम युवती हो, यह उन लोगों की दृष्टि से मालूम हो जाता है। चारों ओ
धुन्ध-सी छायी है, स्टेज की फुट-लाइट्स ऑफ है। बीच-बीच में इंजिन व
सीटी सुनायी देती है। तुम्हारा ध्यान किसी ओर भी नहीं है। बैकग्राउन्ड
फैन्ट्सी वॉयलिन की एक सैड ट्यून आ रही है—और विंग्स के ऊपर
तुम्हारे चेहरे पर एक फोकस आकर पड रहा है...

ये कालीपद के शब्द थे। कालीपद ही समझा रहा था। आस-पास
सब लोग चुपचाप बैठे थे। सभी ध्यान से सुन रहे थे। शंभू बैठा था औ
उसके पास ही सदाव्रत। सदाव्रत भी सुन रहा था।

...इसी बीच एक आदमी तुम्हारी ओर देखता हुआ दूसरी ओर च
जाता है। लगता है, जैसे उसके साथ एक और भी आदमी है। दोनों भू
निगाहों से तुम्हारी ओर देखते रहते हैं। फिर चेहरे का भाव बदलकर तुम्ह
पास आकर पूछते है—आपकी माँ क्या बीमार है? तुमने सिर उठा
एक बार देखा, फिर नज़र नीची कर ली। कुछ बोलती नहीं हो।

आदमी फिर पूछता है, "डॉक्टर को खबर की है?"

तुम्हारे पिताजी इतनी देर बाद सिर उठाकर देखते है। बोले, "डॉक्
कहाँ मिलेगा? पैसा कहाँ है? फिर डॉक्टर को बुलाने कौन जाये? अ
तो भगवान ही मालिक है, भैया!"

दूसरा आदमी कहता है, "आपके पास अगर रुपयों की कमी हो तो ह
दे सकते हैं।"

कहकर वह आदमी जेब से दस रुपये का नोट निकालकर तुम्हारे पि

को देने लगता है। तुम देखती रहती हो, इतनी देर बाद बोलती हो। यही होता है तुम्हारा फर्स्ट डायलॉग। तुम धीरे से पूछती हो—आप लोग कौन हैं?—लेकिन याद रखो, तुम गाँव की अनपढ़ लड़की हो। शहरी बदमाश लोगों की चाल-ढाल तुम्हारे लिए अनजान है। इससे पहले कभी भी तुमने शहर नहीं देखा। गुण्डा लोगों को भी तुम अच्छा आदमी समझती हो। तुम्हारे चेहरे पर सन्देह की छाया भी न आने पाये, नहीं तो सब स्पॉयल हो जायेगा। एक वर्जिन लड़की को सभी खराब करना चाहते हैं, यह तुम उन लोगों की शक्ल देखकर भी नहीं समझ पाती। तुम्हारा दिल बड़ा ही ···माने सरल है। और, इसके अलावा तुम्हारी माँ उस समय···

सदाव्रत ने शंभू के कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "क्यों रे शंभू, तेरे दुलाल दा को क्या हुआ? अभी तक नहीं आये।"

शंभू ने धीरे से कहा, "ज़रा देर बैठ न, अभी आयेंगे।"

कालीपद कुन्ती की ओर देखकर कहने लगा, "अच्छा, अब ज़रा देखूँ तो तुम्हारे मुँह से कैसा लगता है। तुम सोच लो-कि तुम्हारी उम्र सोलह साल है। तुम्हारी साड़ी फटी हुई है, बदन पर एक फटी समीज है, यानी कि तुम्हारी हालत बहुत ही खराब है···हाँ, बोलो। मान लो तुम्हारे सामने मैं आया हूँ। मैं तुम्हारे पिता से कहता हूँ—'आप लोगों को अगर रुपयों की ज़रूरत हो तो हम लोग दे सकते हैं।' अब तुम चेहरे को ज़रा उठाओ। उठाकर सीधे मेरी ओर ताको। ताककर पूछो—'आप लोग कौन हैं?' धीरे-धीरे कहो—'आप लोग कौन हैं?'"

कुन्ती शायद मन-ही-मन कोशिश कर रही थी। चेहरे को सहज और स्निग्ध बना रही थी। लेकिन ठीक से नहीं कर पा रही थी।

कालीपद ने प्रोत्साहन देते हुए कहा, "बोलो-बोलो, एक्सप्रेशन ठीक है। अब बोलो।"

तभी एकाएक शंभू की ओर घूमकर बोला, "शंभू, तू चुप रह न, डिस्टर्ब क्यों कर रहा है? अगर चुप नहीं रहा जाता तो बाहर चला जा!"

असल में बात सदाव्रत ही कर रहा था। बात भी उसी को लगी। वह खड़ा होकर शंभू से बोला, "मैं चलता हूँ, रे!"

कहकर बाहर निकल ही रहा था तभी शंभू भी उठा। लेकिन कुन्ती की बात से अचानक बाधा पड़ी।

कुन्ती ने कहा, "फालतू लोगों को आप लोग क्यों घुसने देते हैं?"

सदाव्रत जाते-जाते रुक गया। मुड़कर बोला, "मेरी बात कह रही

हो ?"

सदाव्रत की वात पर सारा क्लव सकपका गया।

कुन्ती भी कम नही थी। साथ-ही-साथ वोली, "हाँ, आपकी बात ही तो कर रही हूँ, आप तो इस क्लब के मेम्बर नही है। आप यहाँ बार-बार समय डिस्टर्व करने क्यों आते है ?"

इस वात से शभू ही सवसे अधिक लज्जित हुआ। वोला, "कुन्ती, तुम क्या कह रही हो ? किससे क्या कह रही हो ? सदाव्रत तो मेरा फ्रेंड है, मैं ही उसे यहाँ लिवा लाया हूँ।"

कुन्ती ने कहा, "आपके दोस्त हैं, यह मुझे मालूम है, लेकिन दोस्त है इसलिए क्या आदमी अक्ल भी खो वैठता है ! यह तो ठीक नही है।"

सदाव्रत को भी गुस्सा चढ आया। वोला, "इसका मतलव ?"

"अगर आप मे अक्ल होती तो मेरी वात का मतलव नही पूछते !"

तभी सदाव्रत ने अचानक कहा, "लेकिन उस दिन तुम्ही ने तो इस क्लव मे आने को मना किया था, कि ये लोग कम्युनिस्ट है ? तुम्ही ने तो कहा था कि तुम्हारा घर वत्तीस-बी, अहीर टोला लेन पर है !"

कुन्ती भी हार मानने वाली न थी। बोली, "लेकिन आप ही कहिए, अगर यह झूठ नही वोलती तो क्या आप मुझे अपनी टैक्सी से उतरने देते ?"

"तुम कहना क्या चाहती हो ?"

"हाँ, नही तो शायद किसी वगीचे में ले जाते मुझे। आपने सोचा होगा हम लोग कुछ समझते ही नहीं है ? इतने दिनो से कलकत्ता शहर में हूँ, आप समझते हैं यह छोटी-सी वात मैं समझ नही पाऊँगी ?"

सदाव्रत क्षणभर के लिए कुछ वोल ही नहीं पाया। फिर शान्त स्वर में वोला, "आज इतने सारे लोगों के सामने क्या तुम मुझे लम्पट प्रमाणित करना चाहती हो ?"

कुन्ती ने कहा, "अव वह वात मेरे मुँह से क्यों कहलवाते है ?"

सदाव्रत जैसे और नही रुक पाया। अचानक सव लोगों की ओर फिरा। बोला, "आप सभी शायद इसी की वात सही मानते होंगे, लेकिन आज मैं कहे जाता हूँ जिस काम के लिए मैं यहाँ आया हूँ उसे मेरा यह दोस्त शंभु ही जानता है। मैं यहाँ लड़कियाँ देखने नही आया हूँ। आप लोग यही बात जान रखिए—मैं और कुछ कहना नही चाहता।"

कालीपद ने अचानक पूछा, "तो क्या आपकी कुन्ती गुहा से पुरानी जान-पहचान है ?"

सदाव्रत ने कहा, "यह बात उसी से पूछिए न !"

लेकिन कुन्ती से पूछने की जरूरत नहीं हुई। शायद वह डर गयी थी। आँखें भर आयी थीं। बोली, "कालीपद बाबू, आप से पैसा लेकर मैं यहाँ काम करने आयी हूँ, लेकिन मैंने ऐसा क्या कसूर किया है कि एक आदमी मेरी बेइज्जती करे और मुझे वह सहनी पड़े ? मैंने इसीलिए तो कहा था कि रिहर्सल के समय फ़ालतू आदमियों को न आने दीजिएगा।"

"लेकिन मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं है, उसे शंभू ही लाया है।"

शंभू अभी तक चुपचाप बैठा था। अब उसने अपनी सफ़ाई पेश की, "वाह, तूने पहले से तो यह सब बतलाया नहीं, नहीं तो मैं आज क्लब में घुसता भी नहीं।"

कालीपद गर्म हो गया। "तुझसे क्या यह सब कहना होगा ? तू खुद नहीं समझ सकता ? तेरे भेजे में क्या बुद्धि नहीं है ?"

शंभू भी तैश में आ गया, "खबरदार, कालीपद ! ईडियट की तरह बात मत कर।"

"क्या ? तूने मुझे ईडियट कहा !"

शंभू ने कहा, "ईडियट तो कुछ भी नहीं है, अगर कुन्ती नहीं होती तो और भी बहुत कुछ कहता ! क्लब क्या तुझ अकेले का है ? किसने तुझे डायरेक्टर बनाया, किसने तेरे लिए कनवेंसिंग की, कह तो जरा ? इस समय तो बड़ी हुकूमत झाड़ रहा है !"

कालीपद उठ खड़ा हुआ। बोला, "क्या कहा ? डायरेक्टर के साथ किस तरह बात की जाती है, तुझे इतना भी नहीं मालूम ! याद रख, यह तरुण समिति नहीं है। यहाँ रंडियों को लेकर नाटक नहीं खेला जाता। हम भले घर की लड़की को लेकर प्ले कर रहे हैं। भले आदमियों के साथ किस तरह बात की जाती है, यह सीखकर इस क्लब में आना !"

"तूने मुझे अभद्र कहा ?"

शंभू और गुस्सा नहीं रोक पाया। कसकर एक तमाचा जड़ दिया कालीपद के गाल पर। और साथ-ही-साथ सब लोगों ने आकर दोनों को पकड़ लिया। क्लब के अन्दर उस समय धक्का-मुक्की और शोर शुरू हो गया था। गड़बड़ में किसी को कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। कालीपद जितना चीखता, शंभू उससे दूना।

सदाव्रत ने देखा, झगड़े की जड़ वही है। उसी की वजह से झगड़ा हो रहा है। उसने अचानक शंभू का हाथ पकड़ लिया। बोला, "छि: ! चल यहाँ

से ! चल, निकल आ !"

शंभू अभी भी चीख रहा था, "मेरे फ्रेंड की इन्सल्ट करे, यह
मेरे दोस्त की इन्सल्ट करना माने मेरी इन्सल्ट करना। मैं देख
तेरा नाटक खेला जाता है। जाने कहां का एक कूडा नाटक लिख लिया
वड़ाई मारता है। अरे, ऐसा नाटक तो मैं भी लिख सकता हूं।"

अक्षय पास ही खड़ा था। उसने कहा, "तुम लोग क्या हो !
जंगलियो की तरह झगड़ा कर रहे हो ? कुन्ती क्या सोचती होगी ?"

इतनी देर बाद कुन्ती की आवाज सुनायी दी, "ओ कालीपद
अब चलूंगी, मेरा टैक्सी का किराया दे दीजिए।"

सदाव्रत ने इस बार झटका देकर शंभू को खींचा। खींचकर
आया। बोला, "तू उन लोगो के मुंह क्यों लगा ? मैंने तो पहले ही
था, मैं क्लब के अन्दर नही जाऊंगा।"

शंभू अभी तक बड़बड़ा रहा था, "क्यों, अन्दर क्यों नही जायेगा ?
क्या बाप का क्लब है ? मैं मेम्बर नहीं हूं ? मैं चन्दा नही देता हूं ?
कोई अधिकार ही नहीं है ?"

"अच्छा, बस कर ! मुझे पहले से ही पता था। इन बेकार के
मे क्यों लगा रहता है ? तुम लोगों के पास और कोई काम नहीं है ?"

शंभू अभी तक गुस्से से कांप रहा था। सड़क पर चलते-चलते भी
जा रहा था, "मैं कालीपद को किसी भी तरह प्ले नही करने दूंगा, तू दे
लेना, जबकि मैंने ही सबको राजी किया था, पता है।"

कुंज गाड़ी के अन्दर चुपचाप बैठा था। सदाव्रत वहां पहुंचकर
हो गया। बोला, "मैं चलूं !"

शंभू ने कुछ नही कहा। वह अभी तक अपमान नही भुला पाया
सदाव्रत ने कहा, "मेरे लिए ही तेरा इतना अपमान हुआ, मैं अगर
में न जाता तो कुछ भी न होता।"

"तू देखना, मैं कालीपद का क्या करता हूं। वह कैसे ड्रामा करता है
मैं देख लूंगा।"

"मैं काफी दिनों से तुमसे कहने की सोच रहा था, तू इस क्लब और
ड्रामे मे इतना समय क्यों खराब करता है ? तुम लोगों के पास और
नहीं है करने को ? चारों ओर आदमी तरह-तरह की परेशानियों मे
पागल है, और तुम लोग ड्रामा-थियेटर करने मे मस्त हो !"

"लेकिन करूं क्या ? सारे दिन ऑफिस मे खिटने के बाद घर आ

थोड़ा देर रेस्ट कर लूं, इसके लिए भी जगह नहीं है। क्या करूँ, तू ही बोल ?"

"क्यों ? दुनिया में काम की कमी है ? एक समय तुम्हीं लोगों ने तो रिलीफ के समय चन्दा इकट्ठा किया था, लड़ाई के समय लंगर खाना खोला था। क्लब की जगह उसी कमरे में ग़रीब लड़के-लड़कियों को पढ़ाया भी तो जा सकता है।"

"छोड़, यह सब अब और अच्छा नहीं लगता।"

"यही देख न झंझटों की क्या कमी है। केदार बाबू जो मुझे पढ़ाते थे, कहते है कि देश के आज़ाद होने से ही सिर्फ़ काम नहीं चलता, असली प्रॉब्लम तो अब शुरू हुई है। अभी वह समय आया है जब सब कुछ नये सिरे से सोचना होगा। यह जो इतनी सारी मैन-पावर बेकार जा रही है, इसका क्या होगा ? मुझे ही ले न ! ज़रा मेरे बारे में ही सोचकर देख।"

"अरे, तुझे क्या है ! तेरे पिताजी के पास पैसा है, तू अगर कुछ न भी करे तो भी कोई नुकसान नहीं होगा।"

सदाव्रत ने कहा, "यही तो तुम लोगों की भूल है ! हमारे पास पैसा है, इसी से तो ज़्यादा चिन्ता है। किस लाइन में जाऊं, अभी तक ठीक नहीं कर पाया। कितनी ही ऑप्शन हैं, लेकिन कौन-सी चुनूं, ठीक नहीं कर पा रहा। पिताजी विलायत जाने को कह रहे हैं, लेकिन विलायत जाकर करूँगा क्या ? क्या सीखकर आऊंगा ? उससे मेरी या देश की क्या उन्नति होगी ? हर ओर देखता हूं, सभी 'हाय पैसा-हाय पैसा' कर रहे है। पैसा मिलना और भगवान का मिलना एक ही हो गया है। डॉक्टरी पास कर लेने से ही काम नहीं चलेगा, डॉक्टरी करके रुपया कमाना होगा। आस-पास के जितने भी लोग हैं सभी से बड़ा होना होगा।"

"लेकिन तुम लोग तो वही हो। तुम लोग तो रईस हो ही ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, और भी बड़ा होना होगा। लोगों का खयाल है ज़्यादा पैसा पैदा किये बिना ज़िन्दगी बेकार है। उन लोगों के लिए पैसे के बिना परमार्थ भी मिथ्या है। देखते नहीं, जिस आश्रम के पास जितना पैसा है, सब उसी के शिष्य होना चाहते हैं। बिना पैसे के आज की दुनिया में साधुओं को भी कोई नहीं पूछता।"

"वह तो ख़ैर देख ही रहा हूं, लेकिन देखने से फायदा ? हमारे पास पैसा भी नहीं है, हम लोग कोशिश भी नहीं करते।"

"लेकिन पैसा नहीं है तो न सही, इसलिए क्या इस तरह समय की बरबादी तुम लोगों को अच्छी लगती है ?" सदाव्रत ने कहा।

"हम लोगों की बात जाने दे, हम लोग सोसाइटी के लिए भारस्व हैं।" खिन्न-भाव से शंभू बोला।

"तुझसे यह सब कहा, इसका बुरा न मानना। चारों ओर यही सब देखकर यह बात मेरे ध्यान में आ गयी, लगता है इस बांगला देश के नसीब में काफ़ी बुरे दिन देखने को मिलेंगे।"

फिर जरा रुककर बोला, "अच्छा, मैं चलूं, भाई !"

"ठीक है, समय मिले तो कभी-कभी चक्कर लगा जाना। हां, व असली बात तो खैर मिट ही गयी। अब तेरे लिए चिन्ता का कोई बात नहीं है। मैंने दुलाल दा को काफी समझा दिया है। कह दिया है—इन सब बातों को लेकर क्या कोई मज़ाक करता है !"

शंभू चला गया।

सदाव्रत गाड़ी में बैठ गया।

घर पहुंचते ही बद्रीनाथ सामने मिल गया। बोला, "इतनी देर कर दी, छोटे बाबू ! मास्टर साहब आपके लिए काफी देर बैठे रहे।"

"कौन-से मास्टर साहब ? केदार बाबू ?"

बद्रीनाथ ने समझाकर कहा, छोटे बाबू को जो एक समय पढ़ाते थे।

"किसलिए आए थे ?"

"यह तो नहीं मालूम। मैंने कहा था छोटे बाबू अभी ऑफिस से आ जायेंगे, आप बैठिए। मास्टर साहब को बाहर के कमरे में बिठलाया था। काफी देर बैठकर अभी-अभी चले गये है।"

सदाव्रत ने पूछा, "किसलिए आए थे, कुछ कहा ?"

बद्रीनाथ ने कहा, "कह रहे थे एक मकान की ज़रूरत है। इसी महीने के अन्दर एक मकान का इन्तज़ाम होना चाहिए।"

'अच्छा' कहकर सदाव्रत धीरे-धीरे अन्दर चला गया।

□ □ □

सारे दिन ऑफ़िस की मनहूसी और उसके बाद मधुगुप्त लेन में शंभू के क्लब की कड़वाहट ने जैसे सदाव्रत को तोड़ दिया था। उसे अपने ही ऊपर घृणा हो रही थी। वह वहां गया ही क्यों ? उसके जाने के लिए क्या और कोई जगह नहीं थी ? कॉलेज में पढ़ते समय वह कितनी ही जगह गया है। वाई० एम० सी० की बिलियर्ड पार्टी ! वहां भी तो जा सकता है वह ! और क्या इतना ही ? कम-से-कम एक सिनेमा तो देख ही सकता है। आश्चर्य की बात है ! आखिर उसे हुआ क्या ? किसी चीज़ से जैसे उसे

लगाव ही नही है। यह कलकत्ता शहर ! सड़क-फुटपाथ-दूकान-स्टॉल सब कुछ जैसे बनावटी लगते है। होश सभालने के बाद से ही जैसे दूसरी निगाहों से देख रहा है। किसी का निश्चित एम नहीं है। दायें घूमते-घूमते अचानक वायीं ओर घूम जाते हैं; श्यामबाज़ार जाते-जाते अचानक दक्षिणेश्वर चले जाते है। सब आदमी जैसे पागल हो जाएगे ! फुटपाथ के ऊपर ही इतनी भीड़ क्यों है ? छुट्टी के दिन क्या करें, फिर कुछ ठीक न कर पाने पर बाहर निकल पड़ते है। पार्क में अगर मीटिंग होती है तो ज़रा देर वहा खडे हो लेते है। पार्क की रेलिंग पर फ्रॉक लटकाये दूकानदार सौदा बेचते है। वहां खड़े-खड़े फ्रॉक उलटते-पलटते हैं। फिर अचानक पूछते है—"इस फ्रॉक की क्या कीमत है ?"

दूकानदार जैसे झपटकर पास आता है। कहता है, "लीजिए न, बाबू ! सस्ती दे दूगा। बोहनी का समय है।"

"दाम कितना है, यह बोलो न ?"

"कितनी लेंगे ? दो ले लीजिए। सात रुपये मे दे दूगा। ले जाइये।"

ग्राहक हाथ खीच लेता है। कहता है, "नही, चीज़ कोई खास अच्छी तो है नही।"

इसके बाद थोड़ी दूर बढने पर देखते बनियान बिक रही है। यहा भी वही हाल। वहां भी सौदाबाजी। और बाद मे बिना खरीदे चल देना। फिर उसी तरह बेकार चक्कर काटना। इसके बाद घर लौट आना। घर आकर खाना और फिर सो जाना। दूसरे दिन फिर ऑफिस, फिर वही अनिश्चित यात्रा। इसी तरह दिन, महीने और साल कट जाते हैं। सदाव्रत भी कितनी बार इसी तरह ज़िन्दगी देखने निकला है। गाड़ी सड़क के किनारे लगाकर लॉक करके फुटपाथ पर आ जाता। यह एक और ही शहर है, कलकत्ता शहर के अन्दर एक अजीब कलकत्ता। इस कलकत्ता को ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर ने नहीं देखा, स्वामी विवेकानन्द ने नहीं देखा। रवीन्द्र-नाथ, शरतचन्द्र, किसी ने भी नहीं देखा। १९४७ के बाद के इस कलकत्ता को सिर्फ सदाव्रत ने ही देखा है। देखते-देखते बडा अजीब लगता। सिनेमा हाउस के सामने आदमियों की क्यू लगी है। घंटों क्यू लगाये खड़े रहते। सिनेमा में ऐसा क्या देखने जाते हैं ये लोग, बाहर की इस क्यू में क्या कुछ मज़ा कम है ? यह क्या कुछ कम देखने लायक है ? लाइन में खड़े-खड़े जब थक जाते तो कोई-कोई समय बरबाद न कर ताश खेलने लगता। सिगरेट फूंकते और ताश खेलते। सदाव्रत उन लोगो को देख-देखकर अवाक् रह

जाता। लगता जैसे यह बरबादी है। इतनी बरबादी जैसे अच्छी नहीं लगती
किसी दिन अचानक किसी पुराने दोस्त से मुलाकात हो जाती।
"क्यों रे, तू ? कहा जा रहा है ?"
विनय ! रोल नम्बर थर्टी-थ्री। प्रोफेसर जो भी कहता, मन लगा सुनता और नोट कर लेता।
"क्या बात है, पैदल ही कहाँ जा रहा है ?"
सदाव्रत कहता, "मैं भी घूम रहा हू।"
"गाडी कहा है ? गाडी नही है ?
इसके बाद सदाव्रत की ओर देखकर ज़रा श्लेष-मिले स्वर मे कहा "तुम लोगों को क्या फिक्र है ! तुम लोग मज़े में हो। मानव की क्या पर काव्य करने निकला है न !"
"लेकिन तू जा कहाँ रहा है ? तू भी लगता है काव्य करने निकला है
विनय जोर से हँस पड़ा। बोला, "वैसे तूने पकड़ा ठीक ही है— कैसे सोच लिया ?"
सदाव्रत ने कहा, "मुझे पता है। यहां फुटपाथ पर चक्कर लगायेगा फिर रमेश मित्र रोड से घूमकर जदु बाबू के बाजार के मोड पर निकलेगा रास्ते मे भाव-ताव करेगा, लेकिन खरीदेगा कुछ भी नहीं, सिनेमा की ... के सामने खड़ा तमाशा देखेगा, इसके बाद शायद बनियान की दूकान ... जाकर भाव पूछेगा, वहा से भी कुछ खरीदेगा नही, इसके बाद काफी रा... होने पर जब टायर्ड हो जायेगा तो घर आकर माँ से कहेगा—खाना लाओ।
"तू बडे घर का लडका होकर यह सब कैसे जान गया ?"
सच मे विनय अवाक् हो गया था। इतनी पढाई-लिखाई, कॉलिज ... फीस, इतने लेक्चर सुनना, इतने नोट लिखना, सब बेकार गया। ... फ्रसट्रेशन की हँसी विनय के चेहरे पर खिल उठी !
विनय बोला, "तू ठीक ही कह रहा है, लेकिन और करूँ भी क्या सदाव्रत ! घर मे चुपचाप बैठना अच्छा नही लगता। किसी-किसी दि... दोतल्ला बस में बैठकर श्यामबाज़ार चला जाता हूं। फिर उसी बस ... लौट आता हूं। फिर जाता हूं, फिर लौट आता हू, हमेशा यही करता हू लेकिन रोज़ नही कर पाता। आखिर पैसा खर्च होता है न !"
यही विनय कह रहा था—उसके घर के सामने के फ्लैट मे एक लड़... है। कुछ भी नहीं करती। सारे दिन जगले की रेलिंग के सहारे खड़ी सड़... की ओर ताकती रहती है। शाम के समय सज-धजकर बाहर निकलती है

हाथ में बड़ा-सा पर्स लिये। किसी दिन सिनेमा जाती है। किसी दिन सिनेमा भी नही जाती, कही भी नही जाती। मजकर मडक पर घूमती है।"

"फिर ?"

"फिर क्या! देखता हू वह भी मेरी ही तरह है। इस मडक से उस सडक पर। फिर उस सडक से घूम-फिरकर घर लौट आती है। फिर घर आकर शायद मेरी ही तरह माँ से कहती है—खाना लाओ।"

सदाव्रत ने पूछा, "शादी नही हुई ?"

"होगी कैसे ? कौन शादी करेगा ? करेंगे तो हम लोग ही करेंगे। लेकिन हम लोग भी कैसे करे ? और करें भी तो क्यों करें ?"

इसके बाद जरा रुककर कहा, "और शादी करने की जरूरत ही क्या है ? बस-ट्राम मे आजकल कितनी भीड रहती है। इस भीड मे अपने को तो बड़ा आराम है। भीड़ देखते ही ट्राम-बस के दरवाजे के पास खडे हो जाते हैं। लडकियों के साथ बदन रगड़ खाता है। बडा मजा आता है।"

शभू को देखने पर सदाव्रत के दिमाग मे ये बातें आयी थीं। लोग या तो शंभू की तरह क्लब में रिहर्सल देते है, नही तो बेमतलब सडक नापा करते हैं, या फिर सिनेमा में जा बैठते है। यही है कलकत्ता की जिन्दगी। उसके पिता की तरह कितने लोग देश की चिन्ता करते है! कितने लोग गोआ के मामले को लेकर सिर खपाते है! शिवप्रसाद बाबू के घर जितने पेंशन-होल्डर आते है, सभी बूढे है। उन लोगो ने तो गृहस्थी और नौकरी में जिन्दगी काट दी है। केदार बाबू जैसे लोग सारे दिन लड़कों को पढ़ा-पढाकर आदमी बनाने मे लगे रहते है। लेकिन ज्यादातर लोग ? और वह खुद किस दल मे आता है ? वह भी क्या ज्यादातर लोगो के दल मे है ?

"आज कुछ खाया नही, बात क्या है ? जो कुछ भेजा था, वैसे ही पड़ा है।" खाने के सामने बैठकर माँ ने जैसे कैफियत माँगी, "सारे दिन काम करता है। बिना खाये-पिये शरीर कैसे चलेगा ?"

सदाव्रत ने माँ के चेहरे की ओर देखा। आश्चर्य! इसी माँ को सदाव्रत आज शाम तक सन्देह की नज़र से देख रहा था।

जाने क्या कहने जा रहा था कि अचानक बद्रीनाथ ने आकर कहा, "छोटे बाबू, मास्टर साहब फिर आये हैं।"

"मास्टर साहब! केदार बाबू!" सदाव्रत बोला, "दरवाजा खोलकर बैठने को कह, मैं अभी आ रहा हूँ, पंखा खोल देना।"

सदाव्रत बिना ठीक से खाये ही उठ गया।

"यह क्या, ठीक से खा तो ले !"

लेकिन उस समय यह सब कौन सुनता ! बाहर की ओर जाते-जाते बोला, "मास्टर साहब को बैठाकर मैं खाऊँगा, क्या कह रही हो ?"

□ □ □

सत्रह नम्बर के कमरे में नयी किरायेदार लड़की आयी थी। एकदम कोरी। न बगला समझती, न और कुछ। पद्मरानी ने यहाँ के नियम-कायदे पहले ही दिन बतला दिये।

पद्मरानी ने कहा था, "यह अपना ही घर समझना, समझी, बेटी !"

लडकी का नाम कुसुम था। पद्मरानी ने कहा था, "बड़ा अच्छा नाम है, कुसुम नाम की मेरी एक और भी बिटिया थी। अहा, बड़ी अच्छी लड़की थी, लेकिन अच्छी बिटिया मेरे भाग्य में कहाँ टिकती है। एक दिन पेट में आ गयी और मर गयी। तुम बेटी नयी हो इस लाइन मे। तुमसे कहती हूँ—इस लाइन मे पिरीत की कि मरी। एक बात याद रखना बेटी, ढीली डोर ही ज्यादा टिकती है।"

बिन्दू पास ही खडी थी। बोली, "माँ, किससे यह सब कह रही हो ? कुसुम तो बगला समझती नही है।"

पद्मरानी अवाक् रह गयी, "ओ माँ, यह बात है क्या ? कब से बोलते-बोलते मेरी तो जबान थक गयी और तूने मुझे बतलाया भी नहीं।"

इसी तरह कितनी ही नयी लडकियाँ आतीं। कभी उडीसा से, कभी मद्रास से, कभी गुजरात से, कभी राजस्थान से। शुरू-शुरू में सभी शर्माती। फिर थोडी-थोडी बगला सीखती। बाद मे पूरी बगाली हो जाती। लेकिन बंगाली हो जाने पर भी रहन-सहन और पहनावा नही बदलता। जितने बाबू, उतने ही शौक। अचानक किसी को मद्रासी लडकी के कमरे मे जाने की इच्छा होती तो वह इन्तजाम भी है। पद्मरानी के फ्लैट मे शौक पूरा करने की चीजो की कमी है, यह बात कोई नहीं कह सकता।

पद्मरानी के लिए सभी एक-जैसे है। पद्मरानी सभी से कहती, "इसे अपना घर ही समझो, अपनी पसन्द का ही खाना बनाओ, मैं उसमे से भोग लगाने नही आऊँगी—मुझे तो तुम अपनी कमाई के रुपये में चार आना के हिसाब से देती जाओ। बस तुम्हारे साथ मेरा काम खत्म।"

पद्मरानी रोब दिखाना भी जानती है। कहती, "इस मयना को ही देख न। ठेके मे आज मयना के पास कितना है। यही दो कदम बढकर देख। इसी सोनागाछी मे मयना के तीन-तीन पक्के घर खड़े है, चालीस भरी

सोना, सन्दूक भरी अशर्फियाँ और मोहर, जवान-जवान मारवाड़ी बाबू—यह सब कहाँ से हुआ ? मैं कहूँ यह सब किसके बूते पर हुआ ?"

बिन्दू कहती, "मुझे तो सब मालूम है, माँ, और लोग जो भी कहें।"

"तभी तो मैं कहती हूँ; कहा है न, ताल पकते ही शाल हो जाता है।"

फिर कहती, "लेकिन दूसरो की भलाई में ही मैं तो अपना भला मानती हूँ। हर कोई सुखी हो, ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ। मालिक कहते है—तुम्हारा तो कुछ भी नही हुआ, पद्म। तुम तो जैसी-की-तैसी रह गयी। मैं कहती हूँ न हो, मुझे सुख नही चाहिए, मुझे नही दिखलानी जूते-चप्पल और फीतों की बहार—मालिक सुनकर हँसते है।"

हाँ, तो इसी बीच जब कुसुम आयी तब पद्मरानी ने उसे भी सब-कुछ सुना दिया, जो सभी को सुनाती। सत्रह नम्बर कमरा खाली था, उसी मे पहुँचा दिया गया।

कहा, "यही है तुम्हारा राजपाट, यही है तुम्हारी राजगद्दी। अब तुम्हारे हाथ मे ही सब-कुछ है, बेटा। आज की रात दरवाजे में अडगा लगाकर, नाक बजाकर आराम करो। आज के दिन तुम्हारे कमरे मे किसी को नही जाने दूंगी। कल से मैं ही सारा इन्तजाम कर दूंगी।"

फिर बिन्दू को भी वही हुक्म दे दिया। गुलाबी, वासन्ती, जूथिका—सभी कुसुम के कमरे के सामने जमा हो गयी थी। उनके दल मे एक और सदस्य बढा।

पद्मरानी ने कहा, "तुम लोग इस समय जाओ, बेटी। दो दिन रेलगाड़ी के झकोले खाती आयी है, उसे जरा सुस्ता लेने दो। बेटी, तुम रोओ मत—डर किस बात का ? जहाँ मुर्गे नही बोलते वहाँ क्या सुबह नही होती ?"

नयी कोई आने पर ही पद्मरानी का असली काम पड़ता। एकदम नयी। पंजाब या जयपुर या ग्वालियर से सप्लाई होकर आती। पद्मरानी पहले से ही सारा इन्तजाम कर रखती। जगह-जगह पर एजेन्ट रहते। वे ही जगह-जगह की लडकियाँ सप्लाई करते। कुछ अमृतसर और कुछ बम्बई तो कुछ कलकत्ता में। वे लोग कौन हैं, कोई नही जानता। ट्रेन से उतरते ही टैक्सी का माल लिये सीधे पद्मरानी के फ्लैट। कमरा पहले से ही खाली रहता। माल को वहीं रखा जाता। उसके बाद आजाद चिड़िया को किस तरह पालतू बनाया जाता है, पद्मरानी को यह आर्ट अच्छी तरह मालूम है। ऐसा-वैसा मामला होने पर दो-चार दिन अपने पास ही सुलाती। फिर

तो जो एक बार पत्ता डालती है वह हाथ भी फैलाती है। पद्मरानी ने यह सब बहुत देखा है।

पद्मरानी ने दरबान को बुलाया। कहा, "आज खूब सावधान रहना, दरबान। अगर माल खो गया तो मालिक मुझे भी खा डालेंगे और तुम्हें भी जिन्दा नही छोड़ेगे—यह कहे देती हूँ !"

इसके बाद अपने कमरे मे आकर कहती, "बिन्दू, तू ज़रा सनातन को तो खबर करवा दे। कहना, माँ ने बुलाया है, अभी !"

सनातन आया। सनातन इस घर का पुराना दलाल है। दलाली करते-करते उसका हाड़-माँस तक सूख गया है। साधारणतः उसकी बुलाहट नहीं होती। रास्ते के बाबुओं के साथ ही उसका धन्धा है। लेकिन माँ के यहाँ से जब उसकी बुलाहट होती है तो वह समझ जाता है। तब उसके बँधे मुँह मे हँसी फूटती है। हँसने पर सनातन का पिटा मुँह और भी बीभत्स लगता है।

पद्मरानी बोली, "क्यों रे सनातन, तेरा हाल क्या है आजकल ?"

"हुकुम करो न, माँ, सनातन हाज़िर है !"

पद्मरानी ने ज़रा मुँह बनाया। "तू बाबा, हँस मत, डर लगता है। वैसे तो झक मारता फिरता है, काम के समय कहाँ रहता है, पता ही नहीं चलता। कहती हूँ ठगनलाल को ख़बर दे पायेगा ? या रसिक को बुलवाऊँ ?"

"मैं जब माँ कह रहा हूँ, तो मैंने कौन-सा कसूर किया है, माँ ?"

"तो जा, ठगनलाल को खबर कर आ। कहना कि वह नया माल चाहता था, नया माल आया है। अगर नथ उतारना चाहे तो कल चला आए। कहना कि अब की पचीस हज़ार से कम मे माल नही छोड़ूँगी।"

"अभी जाता हूँ माँ, ठगनलालजी शायद अभी भी गद्दी पर होंगे।"

एकाएक कुन्ती कमरे मे आयी।

पद्मरानी ने कहा, "हाँ री टगर, यही है तेरी बात का दाम ! कल तो कह गयी थी आज जल्दी आयेगी ? तो यह तेरी जल्दी हुई है ?"

जब कि पद्मरानी को यह पता ही नहीं था कि आज शायद वह आ भी नही पाती। मधुगुप्त लेन क्लब से टैक्सी करके वह सीधी यहाँ चली आयी है। अभी भी रात ठीक से हुई नहीं है। पद्मरानी के फ्लैट के कारोबार का यही समय है। शाम को इसी समय शुरू होता है। इसी समय ऑफ़िस के बाबू लोग आना शुरू करते हैं। महीने के शुरू-शुरू मे बाज़ार ज़रा गर्म रहता है। इसके बाद ज़्यादा रात होने पर व्यापारी लोग आते हैं। सब

अधेड उम्र के लोग। सब खानदानी। किसी-किसी के साथ इनका महीना बँधा होता है। ये लोग ज्यादा रात होने पर आते हैं, और देर तक ठहरते है। उसके बाद अगर घर जा पाते हैं, तो जाते हैं, नहीं तो किसी-किसी दिन घर लौटने की हिम्मत ही नही रहती। टैक्सी में बैठते ही कुन्ती ने पहले तो सोचा कि सीधे घर ही लौट चले। पिताजी की तबीयत खराब है। घर जाना ही ठीक होगा। लेकिन रुपयों का खयाल आते ही सीधे इस ओर चली आयी। यहाँ आना उसे अच्छा नही लगता, लेकिन बिना आए भी नही रह पाती।

बैग से रुपये निकालकर बोली, "ये बीस रुपये लायी थी !"

पद्मरानी ने रुपये लेकर कहा, "बीस रुपये ? बीस रुपये लेकर क्या अपना अँगूठा चूसूँ ? बीस रुपये तुम क्या सोचकर माँ के हाथ मे रख रही हो ? मेरा दूध-घी···"

बात और पूरी नही हो पायी। अचानक सुफल दौडता-दौडता कमरे में आया। बोला, "माँ, पुलिस आयी है !"

कहकर रुका नही, पलक झपकते-न-झपकते ग़ायब हो गया। पद्मरानी ने झट से रुपये अपनी कमर मे खोस लिये। और साथ ही दो-तीन कान्स्टेबल कमरे मे घुस आये। पीछे-पीछे थाने का ओ० सी० था।

"क्या बात है ? आप लोग किसे चाहते है ?"

इन्स्पेक्टर ने कुन्ती की ओर देखा। कुन्ती डर से सिमटी खड़ी थी।

इन्स्पेक्टर ने पूछा, "इस मकान की मालकिन क्या आप ही हैं ?"

"हां ! आप ही शायद चितपुर थाने के दारोगा साहब हैं ? अपने वह अविनाश बाबू कहां गये ? अविनाश बाबू तो हम लोगों को जानते थे।"

इस बात का कोई जवाब दिये बिना दारोगा साहब ने पूछा, "यह कौन है ?"

"यह तो मेरी बेटी टगर है। बड़ी अच्छी लड़की है। मेरी अपने पेट की लड़की। आप खड़े क्यों हैं ? बैठिए न। ओ बिन्दू ...!"

इन्स्पेक्टर ने कान्स्टेबलों को न जाने क्या इशारा किया, उन लोगों ने बढकर कुन्ती का एक हाथ पकड लिया।

इन्स्पेक्टर ने कहा, "आपकी लड़की को ज़रा थाने ले जा रहा हूँ।"

कुन्ती का जैसे कलेजा फटा जा रहा था। माँ कहकर शायद एक बार चीखने की कोशिश भी की। लेकिन किसी भी तरह चीख नहीं पायी। कुन्ती कुछ भी नहीं कर पायी। उसकी आँखों के सामने जैसे अँधेरा छा गया।

पद्मरानी ने पता नही पुलिस को क्या कहा। उसके कान में कुछ भी नहीं गया। कुन्ती को लगा जैसे वह ज़मीन पर धम से गिर पड़ेगी। उसके कान नाक-मुंह, सब जैसे भांय-भांय कर रहे थे।

□ □ □
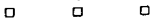
दूसरे दिन सुबह ही सदाव्रत ने खोज-खबर ली। एक-एक दिन करके कई दिन निकल जाने पर भी एक अच्छा-सा घर नही मिला। दो कमरे होने से ही केदार बाबू का काम चल जायेगा। एक होने से भी चल जायेगा। केदार बाबू को तो सड़क पर रहने में भी आपत्ति नहीं थी। केदार बाबू ने कहा था, "मैं अकेला आदमी और मेरी दस-पांच किताबें। मुझे अपने लिए फिक्र नही है। शैल की वजह से ही मुश्किल में पड गया हूँ।"

सदाव्रत ने कहा था, "हम लोगों के पास अगर मकान होता तो आपको ज़रूर दे देता, मास्टर साहब! हम लोगों का मकान तो है नही, सिर्फ ज़मीन का कारबार है।"

केदार बाबू ने साग्रह कहा था, "तब मेरे लिए तुम ठीक कर दो। मुझे तुम्हारा ही सहारा है।"

वास्तव मे सदाव्रत के ऊपर काफी भरोसा किया था उन्होंने। सारे दिन इतना काम रहता है। उसके बीच केदार बाबू को घर की बात का ध्यान ही नही आता। वायदा किया था एक महीने के अन्दर घर छोड़ देंगे। पन्द्रह-सोलह दिन गुज़र गये। इन पन्द्रह-सोलह दिनों में कहीं कोशिश भी नही की गयी। सब लड़कों से कहा। कोई भी घर नही दे पाया। बीस रुपया किराया देते आये है। अब बीस रुपये में घर मिलना मुश्किल है। न हो चालीस रुपये दे दिये जायँगे। लेकिन चालीस रुपये मे ही कौन दे रहा है! अगर सौ-दो सौ रुपये दे पाते तो शायद मिल भी जाता। लेकिन इतना कहाँ से देंगे? समय बड़ा खराब है न!

"तुम अपने घर का कुछ हिस्सा छोड दो न। मैं चालीस रुपये किराया ही दूंगा। न होगा तो एक ट्यूशन और ले लूंगा।"

"हम लोगों के यहाँ जगह कहाँ है?"

केदार बाबू ने कहा, "क्यों? यह कमरा? इस कमरे में तो कोई भी नहीं सोता, यह कमरा तो रात को खाली ही पड़ा रहता है।"

"रात को खाली पड़ा रहता है, लेकिन दिन मे पिताजी यहाँ बैठते हैं।"

"तो क्या हुआ? दिन में मैं बाहर घूमूंगा, रात को सोने आ जाऊंगा।"

सदाव्रत हँस पड़ा। बोला, "न होगा आप तो रह लेंगे, लेकिन आपकी

तीजी ?"

"वह तुम्हारी मां के साथ रह लेगी। न हो तो मैं तुम्हारी मां से बात रता हूं। मां को बुलाओ न ज़रा !"

सदाव्रत ने कहा, "मास्टर साहब, आप बात को ठीक से समझ नहीं हे है। यह एक दिन की बात नहीं है। जब हमेशा की बात है तो कुछ-न-छ पक्का इन्तजाम करना होगा।"

"अच्छा, तुम लोगों की छत पर ? छत पर टीन की बरसाती नहीं है या ? वहां कौन रहता है ?"

सब सुनने के बाद अन्त में बोले, "नहीं, देखता हूँ, मुझे घर देने की तुम्हारी इच्छा नहीं है—यही कहो न !" कहकर उठ खड़े हुए।

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा, मास्टर साहब, मैं वायदा करता हूँ। आपके लिए एक सस्ता-सा घर ठीक करूँगा ही।"

इतना दिलासा मिलने पर भी केदार बाबू खुश नहीं हुए। रात हो रही थी। केदार बाबू खड़े होकर बोले "देखो, मैं इतने दिन आँखें बन्द किये था, सिर्फ़ एंशियेंट हिस्ट्री में ही मस्त था। आज देखता हूँ—अन्दर-ही-अन्दर काफी कुछ हो गया है। मन्मथ ने ठीक ही कहा था।"

कहते-कहते केदार बाबू निकल गये। उस समय काफी रात हो चुकी थी। सदाव्रत ने पीछे से पुकारकर कहा, "सर, आपको गाड़ी से पहुँचा देता हूँ, जरा रुकिये !"

"नहीं रे, नहीं !" कहकर केदार बाबू जल्दी-जल्दी चले गये। और नहीं रुके।

सदाव्रत ने पीछे से जाकर फिर कहा, "सर, मैंने तो कह दिया है न एक सस्ता-सा मकान ढूंढ दूंगा।"

केदार बाबू नाराज हो गये। बोले, "कहाँ से ढूंढ लाओगे, जरा सुनूं ? देते तो तुम्हीं दे देते। तुम्हारे पिताजी तो इतने बड़े आदमी हैं। पिछवाड़े में भी तो इतनी जगह पड़ी हुई है। वहाँ दो कमरे नहीं बनवा सकते ? तुम्हारे पास क्या रुपये की कमी है ? कलकत्ता में तुम्हारे-जैसे बड़े आदमी कितने हैं और उनमें से कोई एक आदमी का भला नहीं कर सकता ? यह भी कोई बात हुई ? पैसा होने से क्या दया-माया खत्म हो जाती है ? तुम क्या यही चाहते हो कि मैं शैल को लेकर रास्ते में खड़ा रहूँ ? तुम लोगों को शायद यही अच्छा लगेगा ! चारों ओर कितने बड़े-बड़े मकान खड़े हैं, कितने ही कमरे वैसे ही पड़े हैं, चाहने पर क्या कोई दे नहीं सकता ? अब से

मै मॉडर्न हिस्ट्री पढना शुरू करूँगा । देखूगा, इंडिया के लोग अमीर कै
बन गये और हम लोग गरीब कैसे हो गये !"

केदार बाबू काफी नाराज हो गये थे ।

सदाव्रत जानता था कि केदार बाबू गुस्सा करनेवाले आदमी नहीं है
लेकिन मास्टर साहब ने कुछ बेजा तो नही कहा ।

अन्दर आते ही मा ने पूछा, "हाँ रे, इतनी रात में तेरे मास्टर सा
क्या करने आये थे ? ज़मीन खरीदना चाहते हैं या और कोई काम
तुम कही पुराने मास्टर साहब देखकर सस्ते मे ज़मीन मत दे बैठना । लौ
पर वह नाराज़ होंगे ।"

केदार बाबू की बातें सदाव्रत के कान में गूज रही थी । चारो
इतने मकान पड़े है, उनमे कितने ही कमरे खाली पड़े है, उनमें से
मास्टर साहब को रहने के लिए दो कमरे नही दे सकता ? सब ही
सदाव्रत खुद ही कैसे बडा आदमी हो गया ? और मास्टर साहब इत
पढाई-लिखाई करके भी क्यो गरीब हो गये ? किसने यह सब किया ? स
किया ?

उस दिन ऑफिस से सीधा फड़ेपुकुर स्ट्रीट पहुंचा । बीस दिन हो च
है और सिर्फ दस दिन बाकी हैं । इन कुछ दिनों के अन्दर मास्टर साह
को नया घर खोज लेना होगा ।

"मास्टर साहब !"

दरवाज़ा खटखटाते ही अन्दर से जाने किसने दरवाज़ा खोल दिया ।
खोलकर धीरे से हट गया ।

किवाड़ों को ढकेलकर सदाव्रत अन्दर घुसा । उसी तख्त के ऊपर ढे
सारी किताबें पड़ी थी । किससे क्या कहे सदाव्रत, ठीक नही कर पा र
था । काफी देर तक कमरे के अन्दर खड़ा रहा । लगता है शायद घर
नहीं । लौटने ही वाला था । कम-से-कम ज़रा खबर तो दे जाता । लेकि
चारों ओर देखा, कोई भी नहीं था ।

तभी अचानक लगा जैसे एक साड़ी के पल्ले का छोर दीख रहा है ।
उसी ओर देखकर सदाव्रत ने कहा, "आप मास्टर साहब से कह देना कि
सदाव्रत आया था ।"

फिर भी कोई जवाब नहीं मिला ।

सदाव्रत ने फिर कहा, "और यह भी कह दीजिएगा कि मैं एक मका
की तलाश कर रहा हूं । दो-एक दिन में खबर दूंगा ।"

अन्दर से शैल ने कहा, "आप बैठिए ! शायद अभी आते ही होंगे ।"
सदाव्रत तख्त पर बैठ गया। दो-एक किताबें उठाकर देखने लगा। कॉलेज की किताबें। लड़कों को पढाना होता है। कमरा सीलन से भरा डैम्पनेस की हलकी-हलकी बू आ रही थी। उसके बाद और कुछ को नही था।

सदाव्रत ने अन्दर की ओर मुंह करके कहा, "मैं अब चलूं। आप ाजा बन्द कर लीजिए।"

साडी के पल्ले का छोर फिर दरवाजे के पास दीखा।

सदाव्रत ने कहा, "कोशिश तो मैंने काफ़ी की हैं, लेकिन यहां क्या दिन और नही रहा जा सकता ?"

अन्दर से आवाज आयी, "आज मकान-मालिक ने नल काट दिया है।"

सदाव्रत अवाक् रह गया।

"यह क्या ? नल की लाइन काट दी ? तब काम-काज कैसे चल रहा कैसे चला रही है ?"

"बड़ी तकलीफ हो रही है। काका हैं नहीं। मैं तो बडी मुश्किल मे पड़ हूं।"

सदाव्रत उठ खड़ा हुआ, "मास्टर साहब को पता है कि नल काट दिया है ? कब काटा ?"

"आज सुबह।"

"मास्टर साहब खाना खाकर नही गये ?"

"वह मकान ढूढने गये है।"

"आप ? आपने खाना खा लिया ?"

कोई जवाब नही आया।

सदाव्रत क्या करे, कुछ ठीक नही कर पा रहा था। बोला, "आप ोच न करें। मैं केदार बाबू का विद्यार्थी हू। आप सारे दिन बिना खाये- ा बैठी हैं, और मैं यहा चुपचाप बैठा रहू, यह तो हो नहीं सकता। मेरी डी है। मैं दूकान से आपके लिए खाना ले आऊं !"

अन्दर से शैल ने कहा "नही, रहने दीजिये, उसकी जरूरत नही है।"

"लेकिन सारे दिन क्या बिना खाये ही रहेंगी ? यह भी कोई बात है ! र मास्टर साहब का भी अजीब दिमाग है। खुद तो निकल गये और पने कुछ खाया है, या नही खाया, इसका खयाल ही नही किया ! मैं भी ठीक करता हू।"

लड़की इस बार जैसे सामने आयी। आधा चेहरा दिख
बोली, "नहीं, रहने दीजिए! अगर जरा-सा पीने का पानी ला दें"
"तब कुंजा या कलसी या और जो कुछ भी हो, दे दीजिये, मैं
के टयूब-वेल से खुद पानी ले आता हूं।"
शैल अन्दर गयी। एक पीतल की कलसी सदाव्रत की ओर बढ़ा
सदाव्रत ने कलसी लेकर बाहर कुंज को देकर कहा, "कुंज, सड़क के
शायद अभी तक पानी है। यह कलसी भर लाओ तो—लाकर उन
ले आओ। मैं यहीं हूं।"
कहकर फिर से घर के सामने आते ही देखा कोई दरवाजे के
खड़ा-खड़ा अन्दर झांक रहा है।
"आप कौन हैं? किसे चाहते हैं?"
भले आदमी अपनी ढलती पर थे। उन्होंने भी सदाव्रत की ओर
से देखा। कहा, "आप कौन हैं?"
"मैं केदार बाबू का विद्यार्थी हूं। आप किसे चाहते हैं?"
"जनाब, मैं इस मकान का मालिक हूं। केदार बाबू को खोज रहा
'मालिक' शब्द सुनते ही सदाव्रत ने उस आदमी की ओर अच्छी
से देखा। फिर कहा, "आप ही मालिक हैं! तो पानी का कनेक्शन
काट दिया है? यह अधिकार आपको किसने दिया है?"
भले आदमी पहले तो एकदम सटपटा गये। बोले, "आप कौ
हूं, बड़ी-बड़ी बात बना रहे हैं?"
"मैं जरा भी बड़ी-बड़ी बात नहीं कर रहा हूं। मैं सीधे-सादे पूछ
हूं, आप घर के मालिक हो सकते हैं, लेकिन नल काट देनेवाले आप
हैं? पता है इस घर के लोगों को एक बूंद पानी नहीं मिला? पता
आपको पुलिस में दे सकता हूं?"
"क्या कहा आपने? आप मुझे पुलिस का डर दिखला रहे हैं?"
कहा-सुनी होती देखकर सड़क पर कुछ लोग आकर जमा हो गये
कोई-कोई तो अन्दर तक ही घुस आया।
सदाव्रत ने इस ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना कहा, "आप
का कनेक्शन काटनेवाले कौन होते हैं?"
भीड़ में से एक ने समर्थन किया, "सच ही तो नल काटकर
बड़ा खराब काम किया है।"
देखते-देखते मामला और भी बढ़ने लगा। कुंज ने पानी की क

र सदाव्रत के हाथ में दी। वह लेकर सदाव्रत अन्दर गया। बरामदे में
ा-थोड़ा अंधेरा था। वहीं खड़ी शैल शायद डर से थर-थर कांप रही
। सदाव्रत ने कलसी शैल के हाथ में देकर कहा, "यह थामिये और मैं
ी जाकर आपके लिए खाना ले आता हूं।"

शैल ने कलसी रखकर कहा, "नहीं-नहीं, आपके पांव पड़ती हूं। आप
र हंगामा न करें।"

सदाव्रत ने कहा, "आप जरा भी फ़िक्र न करिए। डरने की कोई बात
ी है। मैं तो हूं। मैं इस आदमी को पुलिस के हवाले करके छोड़ूंगा।"

शैल ने एकाएक सदाव्रत का हाथ पकड़ लिया और बोली, "नहीं।
प दया कर और कुछ न करिए। आप तो मुझे अकेला छोड़कर घर चले
येंगे, तब ? तब तो मुझे यहां अकेले ही रहना होगा ! उस समय मुझे
ाने कौन आयेगा ?"

हरिचरन बाबू शायद तब तक चले जाने की कोशिश कर रहे थे।

भीड़ में से कोई कह रहा था, "लेकिन आपने पानी का कनेक्शन क्यों
ाटा ? आप कोर्ट में नालिश कर सकते थे। इन लोगों ने क्या आपका
िराया बाकी रखा था ? इन लोगों ने क्या आपको किराया कम दिया
ा ? ये लोग क्या आपके साथ खराब व्यवहार करते हैं ?"

हरिचरन बाबू तैश में आ गये। वह कह रहे थे, "लेकिन आप लोग
ौन होते हैं यह सब कहनेवाले ? आप लोग हम लोगों की बातों में
ख़लन्दाजी क्यों कर रहे हैं ? कौन कहता है कि मैंने पानी का कनेक्शन
ाट दिया ? आपने क्या देखा है मुझे पाइप काटते ?"

सदाव्रत अन्दर से बात सुनते ही बाहर आया। बोला, "अगर पाइप
ही काटा तो इन लोगों को पानी क्यों नहीं मिला ? क्यों नहीं मिला,
सका जवाब दीजिए मुझे ?"

"पानी नहीं मिला तो मैं क्या करूं ? नल खराब नहीं होता ? मैं
कान-मालिक क्या हुआ, सब कसूर मेरा ही है ? नल का मिस्त्री नहीं है ?
गा खर्च करने पर क्या मिस्त्रियों की कमी है ? वह भी क्या मैं अपनी गांठ
 खर्च कर ठीक कराऊं ? क्या आप लोग यही कहना चाहते हैं ?"

इसके बाद जरा रुककर कहा, "और अगर मेरे मकान में उन्हें इतनी
ी तकलीफ़ है तो किसने उनसे यहां रहने को कहा है ? मकान छोड़ देने
 ही तो झमेला मिट जायेगा।"

सदाव्रत झल्लाया, "नहीं, मकान नहीं छोड़ेंगे ! आपके कहने से ही

मकान खाली कर देंगे ? आपके हुक्म से छोड़ देंगे !"

हरिचरन बाबू कुछ देर गुमसुम खड़े रहे। फिर अचानक बोले, "
मैं भी इन लोगों को मकान से निकालकर ही दम लूँगा !"

सदाव्रत ने कहा, "यहाँ खड़े होकर डर न दिखलाइए। आप
निकल जाइए ! मैं आपको इस मकान में और नहीं रुकने दूँगा।
बाहर चलिए !"

कहकर सामने की ओर बढ़ने लगा। हरिचरन बाबू पीछे हटे
कमरे से बाहर हो गये। फिर धमकी देकर बोले, "अच्छा, ठीक है !
देख लूँगा, इस मकान में ये लोग कब तक रहते हैं !"

हरिचरन बाबू और नहीं रुके।

लेकिन ठीक उसी समय केदार बाबू आ पहुँचे। अपने मकान के
इतने लोगों को देखकर पहले तो तनिक चौंके। फिर सामने ही हरि
बाबू और सदाव्रत को देखकर जैसे मामला समझ गये।

"क्या हुआ, हरिचरन बाबू ?"

हरिचरन बाबू ने उनकी बात का जवाब न देकर घुमाकर कहा, "
हुआ है, वह दो दिन बाद ही देख पायेंगे। आज इतने लोगों के सामने
जो अपमान किया, इसका फल तो आपको भुगतना पड़ेगा !"

आस-पास के मकानों की खिड़कियों से औरतें झाँक रही थीं।
चरन बाबू के चले जाने के बाद जो दूसरे लोग तमाशा देखने आ
वे भी धीरे-धीरे खिसकने लगे।

एक बोला, "कलकत्ता शहर में मकान-मालिक लोग सोचते हैं,
शहर उन्हीं का है। हम लोग कुछ नहीं हैं। इन लोगों के और ज्यादा
नहीं हैं। इनके दिन भी अब पूरे होने को है। ब्रिटिश गवर्नमेंट को
तरह खत्म किया, अब कैपिटलिस्टों को भी उसी तरह भगाना है।"

"लेकिन मकान-मालिकों का इसमें क्या कसूर है ? सभी क्या
तरह हैं ?"

एक और ने कहा, "कलकत्ता में मकान कितने लोगों के पास है,
है ? सिर्फ ट्वन्टी-फाइव परसेंट लोगों के पास ! और पिचहत्तर
किराये के मकानों में रहते हैं। पता है रूस में क्या हुआ है ? मास्को के
मकान गवर्नमेंट ने नैशनलाइज कर लिये हैं।"

"रूस के साथ इंडिया की तुलना कर रहे हैं ? मालूम है वहाँ के
कितने एडवान्स्ड हैं ?"

"अब देखो न बुल्गानिन और ख्रुश्चेव इस बार कलकत्ता आ रहे हैं। ठंडा हो जायेगा। देखिए न मन्ना—साली अपनी गवर्नमेंट का हाल ही व है। गरीबों की तकलीफ नहीं देखती! जब सब लोग कम्युनिस्ट हो गे तब समझ में आएगा!"

"अरे जनाब, अगर यह लोग समझ पाते तो उस दिन गवर्नमेंट की ी से कितने लोग मारे गये, सुना था न?"

बातें करते-करते लोगों ने धीरे-धीरे अपना-अपना रास्ता लिया। व्रत अभी तक कमरे में खड़ा था। केदार बाबू ने आवाज दी, "शैल, ाँ गयी री!"

शैल तब तक सामने आ गयी।

"क्या हुआ, री? हरिचरन बाबू क्या कह रहे थे? एकाएक इतने ल-पीले क्यों हो गये? मैंने तो कह ही दिया था कि एक महीने के अन्दर छोड़ दूंगा।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन क्या इतना सब होने पर भी घर छोड़ेंगे? ज पानी का कनेक्शन काट दिया है, कल हो सकता है गुण्डे लगाएँ। और पकी भतीजी घर में अकेली रहती है!"

"तो क्या करूँ? मैं किराया जो कम देता हूँ।"

"और आपकी यह भतीजी! आज सारा दिन एक बूंद पानी भी नहीं सकी, पता है? आप तो सुबह निकल गये और इस समय लौट रहे हैं? समय खाएँगे क्या?"

"क्यों? हाँ री, आज क्या खाना नहीं पकाया?"

सदाव्रत ने कहा, "आप क्या सपना देख रहे हैं, मास्टर साहब?"

केदार बाबू नाराज हो गये, "सपना नहीं देखूंगा तो क्या करूँगा, तुम्हीं हो? मुझे छः ट्यूशन करने होते हैं, यह मालूम है? जैसे आजकल के कूल हैं वैसे ही कॉलिज है। कहीं भी पढ़ाई नहीं होती, समझे? साली पॉलिटिक्स चलाते है। यूनियन और यूनियन! मैं तो देख-देखकर अवाक् ह जाता हूँ, कौन कम्युनिस्ट है, और कौन कांग्रेसी यही लेकर।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन मास्टर साहब, आपने सारे दिन खाया-पिया नहीं है, यह क्या एक बार भी याद नहीं आया?"

केदार बाबू नाराज हो गये। बोले, "तुम चुप रहो! तुम भी तो अमीरों के दल में हो!"

"इसका मतलब?"

अचानक उसके ऊपर इतना गुस्सा क्यों है, वह समझ नहीं पाया।

केदार बाबू ने कहा, "मन्मथ के बाप ने मुझे सब समझा दिया। मुझे अब तक मालूम नहीं था। मन्मथ के बाप गवर्नमेंट ऑफिस में ... करते हैं। उन्होंने बतलाया कि कलकत्ता में जितने बड़े आदमी हैं, सब ... करके बड़े बने हैं। उन्होंने मुझे सब समझा दिया है। कोई सेल्सटैक्स चोरी करता है, कोई लिमिटेड कम्पनी बनाकर पैसा मारता है, चैरिटेबल ट्रस्ट बनाकर चोरी करता है। मतलब यह कि बिना चोरी धनवान नहीं हुआ जा सकता। शशिपद बाबू ने मुझे सब सीधे-सी... साफ़-साफ़ समझा दिया है। महीने में तीन हजार रुपये कमाकर भी बड़ा आदमी नहीं हो सकता।"

फिर जैसे एकाएक कोई बात याद आ गयी। बोले, "अच्छा, ... एक बात पूछी थी न? तुम्हारे पिताजी की इन्कम कितनी है? तुमने पिताजी ने पूछा?"

सदाव्रत ने कहा, "मैंने मालूम किया है—साढ़े चार सौ रुपये!"

"साढ़े चार सौ रुपये!"

केदार बाबू जैसे हताश हो गये। साढ़े चार सौ रुपये! बोले, "तब तुम भी बड़े आदमी नहीं हो, तुम लोग भी गरीब हो! नहीं, ठीक ... गरीब नहीं, मध्यम श्रेणी! मिडिल क्लास। लेकिन मेरा तो खयाल था, ... लोग बड़े आदमी हो! शशिपद बाबू ने मुझे सब बतला दिया है, गवर्नमेंट ऑफिस में नौकरी करते है न! ऑफिसर किस तरह सरकारी रुपया ... करते है, सब बतलाया। बेनामा कराके मकान बनवाते है। फिर बेच... है। यही देखो, ऑफिस की स्टेशन-वैगन लेकर, सुना है, वे लोग बॉटनि... गार्डन पिकनिक करने जाते हैं। कितनी खराब बात है, जरा सोचो। ... सब सुनते-सुनते तो घर और खाने की याद नही रही।"

"लेकिन आपकी भतीजी? उसके बारे मे भी तो आपको ... चाहिए। आप तो घर मे थे नही। अगर मैं नही आता तो क्या होता ... मैंने सडक के नल से पानी ला दिया तब खाना बना। इधर मैं सोच रहा ... कि आप घर की फिक्र में घूम रहे हैं और दो दिन से मैं भी आपके ... मकान की कोशिश कर रहा हूँ।"

केदार बाबू चौक उठे, "तुमने क्या मकान ठीक कर लिया है?"

सदाव्रत ने कहा, "नही, कोशिश कर रहा हूँ।"

"भाग्य से तुमने कुछ ठीक नही किया, अच्छा ही हुआ।"

सदाव्रत भी अवाक् रह गया, "क्यों ?"

"अरे, मुझे एक घर मिल गया है। किराया खूब ही कम है। चारों ओर बिलकुल कॉम एटमोस्फियर है। कोई भी झमेला नहीं है। बड़े आदमियों का मुहल्ला भी नहीं है, और किराया भी कम है। सिर्फ दस रुपये महीना। पाँच कमरे।"

"कहाँ है मकान ?"

"बागमारी में," केदार बाबू ने गम्भीर स्वर में कहा।

"बागमारी ! वह कहाँ है ?" सदाव्रत ने बागमारी का नाम सुना था, लेकिन वह है कहाँ, यह उसे नहीं मालूम। केदार बाबू ने जैसे निश्चिन्त होकर साँस ली। बोले, "वहाँ पानी की भी कोई तकलीफ़ नहीं है। हवा और धूप तो काफी है। वहाँ मुझे आराम रहेगा, शैल। समझी !"

"लेकिन आपने वह मकान खुद देखा है ? दस रुपये किराया कह रहे हैं ! मकान कैसा है ? कमरे कैसे हैं ? नल है या ट्यूब-वेल ?"

केदार बाबू ने कहा, "मैंने अभी तक वह घर देखा नहीं है। सुना है, घर के सामने एक तालाब है। उसमें अथाह पानी है।"

सदाव्रत हँस रहा था। केदार बाबू ने सदाव्रत को हँसते देखकर पूछा, "तुम हँस रहे हो ?"

शैल भी शायद अपने को और नहीं रोक पायी। काका की बात सुनकर वह भी हँस पड़ी।

केदार बाबू ने अवाक् होकर कहा, "तू भी हँस रही है ? यकीन नहीं हो रहा है ? एक महीने का किराया एडवांस भी दे आया हूं। मैं ऐसा अच्छा मकान छोड़ सकता हूं ?"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन आज आप खायेंगे क्या, सर ? आपकी भतीजी क्या खायेगी ? यह सब क्या आपने सोचा है ?"

केदार बाबू ने शैल की ओर देखा। बोले, "क्या खाया जाय, कह तो, बेटी ?"

सदाव्रत ने कहा, "और कल भी क्या खायेंगे, वह भी सोच लीजिये। कल भी नल में पानी नहीं आयेगा।"

केदार बाबू बड़े मायूस-से हो गये। भतीजी की ओर देखकर कहा, "तब क्या करना चाहिए, बेटा शैल ? कल अगर पानी न आये ? हरिचरन बाबू जिस तरह लाल-पीले होकर गये हैं, उससे भी कुछ आशा नहीं होती।"

सदाव्रत ने कहा, "इससे तो एक काम करिये, सर ! आज भर के लिए आप लोग दोनों मेरे घर चलिये। वहीं खाइये, वहीं रहिये।"

केदार बाबू ने कहा, "यह कुछ बुरा न होगा। चलो, मदाव्रत के यहां ही कुछ दिन काट दिये जाएं।"

कहकर उठ खड़े हुए। बोले, "साथ में क्या-क्या लूं?"

मदाव्रत ने कहा, "जो-जो आपकी खुशी हो। मेरी गाड़ी है, वैसे कोई तकलीफ नहीं होगी।"

फिर शैल की ओर देखकर कहा, "आप भी चलिये।"

केदार बाबू ने तख्त से अपनी चीजें बटोर ली। बोले, "अरे, तुम्हें देखता हूं, पूरे पागल हो। उससे 'आप' कहकर क्यों बोल रहे हो? यह मेरी भतीजी है—तुमसे काफ़ी छोटी है।"

मदाव्रत ने कहा, "सच, तुम भी चलो।"

शैल ने कहा, "नहीं!"

"क्यों री, तू नहीं जायेगी? क्यों? तुझे क्या हुआ? तू यहां अकेली पड़ी रहेगी?"

"नहीं, और तुम्हारा जाना भी नहीं होगा, काका!"

"क्यों, मदाव्रत ने तो अच्छी बात ही कही है। उन लोगों के यहां तुझे तकलीफ नहीं होगी, देखना क्या आलीशान मकान है। बड़े-बड़े कमरे हैं। उनके पास गाड़ी है, गाड़ी में घूमना।"

"मैं तो तुम्हारी तरह से पागल नहीं हूं!"

केदार बाबू भतीजी के चेहरे की ओर देखते-के-देखते रह गये। [illegible] बाला का सिर-पैर समझ में नहीं आता। उसे यह टूटा-फूटा [illegible] पसन्द है।

बात [illegible] नहीं री, तू समझ नहीं पा रही है। यह ऐसा मकान नहीं है। किन्तु [illegible] पार्क में है, यहां बड़े-बड़े आदमी रहते हैं। समझे मदाव्रत, [illegible] न शायद मालूम होगा यह भी कोई ऐसा-वैसा ही घर है, इसी से [illegible] नहीं री पगली, नहीं! यह मकान देखकर तू चौंक उठेगी। इन लोगों के यहां कितने नौकर-चाकर, महराज-महरी हैं, वहां पहुंचकर तुझे [illegible] बाला कुछ भी नहीं करना होगा। तुझे बरतन भी साफ नहीं करने होंगे [illegible] आराम से पांव पसार कर मजे से बैठ रहना।

शैल ने लापरवाह ढंग से ही [illegible] दिया, "तुम जाओ न, काका! मैं नहीं जाऊंगी और तुम्हें भी नहीं जाने दूंगी।"

"लेकिन आखिर क्यों नहीं, जानूं तो? कुछ मालूम भी तो हो?"

"वह सब तुम नहीं समझ पाओगे।"

सदाव्रत ने कहा, "सच ही, चलो न तुम ! मैं कह रहा हूं तुमसे जाने । वहा जाने पर तुम लोगों को कोई तकलीफ नही होगी और हम लोगों भी नही होगी ।"

शैल चुप रही । कोई जवाब नही दिया ।

सदाव्रत फिर कहने लगा, "और हरिचरन बाबू आदमी अच्छा नहीं । वह तो धौंस दिखलाकर चले गये, और नल मे भी पानी नहीं है । के बाद भी यहा रहोगी कैसे, मेरी तो समझ में नही आता । कल जिस य मास्टर साहब चले जायेंगे, अकेली कैसे रहोगी ? अगर फिर कोई ज की तरह आकर कुछ कहे ?"

केदार बाबू ने भी समर्थन किया। बोले, "हा, सदाव्रत बुद्धिमान लड़का ठीक ही तो कह रहा है। इस बात का जवाब दे तू !"

इसके बाद न जाने दिमाग मे क्या आया, सदाव्रत की ओर घूमकर हा, "अच्छा, सदाव्रत, एक बात ! हम लोगो को मकान का किराया तो ही देना होगा ?"

सदाव्रत कुछ जवाब देने जा रहा था, लेकिन उससे पहले ही शैल ने का, "काका तो पागल आदमी ठहरे, लेकिन आप क्यो नही समझते ? प तो काका को जानते ही है ।"

सदाव्रत ने मायूस होकर कहा, "इसके बाद मेरे कहने को और कुछ भी ही है; लेकिन आज जो कुछ हुआ है उसके बाद यहां से जाने में डर लगता । एक बूंद पानी नही है, खाने का कोई इन्तजाम नही है । यह सब देख- र भी मैं कैसे चला जाऊँ ?"

शैल हँसने लगी । बोली, "इतने दिन जैसे चला वैसे ही चलेगा । आप क न करें । गरीबो की जिन्दगी इसी तरह कट जाती है । शायद आप हली बार देख रहे है, इसीलिए बुरा लग रहा है । आप घर जाइये !"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखा । बोला, "लेकिन पानी का क्या होगा ?"

"बस्ती के लोग जो करते हैं वही करूँगी ।"

सदाव्रत ने अच्छी तरह से शैल की ओर देखा । इतनी देर मे इस लड़की बारे मे जो सोच रहा था शायद ठीक नही था । घर के कोने में जो लड़की मेशा कैद रहती है, उसके अन्दर भी इतना तेज हो सकता है, वह जैसे ल्पना भी न कर पाया । कुन्ती को भी इतनी बार देखा है । लेकिन एक गर ही देखने पर शैल में उससे कहीं ज्यादा तेज जान पड़ा ।

"तब क्या सचमुच मुझे जाने को कह रही हो ?"

शैल ने कहा, "हाँ, आप जाइये !"

"तुम लोगों को कोई तकलीफ तो नहीं होगी ?"

"तकलीफ तो होगी ही। तकलीफ़ होने पर ग़रीब लोग जो कर
हम भी वही करेंगे।"

सदाव्रत ने कहा, "वायदा करो, जरूरत होने पर मुझे खबर दोगे
शैल फिर हँस पड़ी। बोली, "वाह, जिन लोगों का कोई नहीं
उन लोगों का क्या कुछ भी नहीं होता ?"

"मैं मास्टर साहब के लिए सोच रहा हूँ। उनका खयाल करके
इतना कह रहा हूँ।"

"आपके मास्टर साहब हैं, तो मेरे भी तो काका हैं। अपने काका
मैं अच्छी तरह से पहचानती हूँ।"

फिर भी दरवाज़े के पास आकर सदाव्रत जरा हिचकिचाया। बो
"लेकिन तुम लोगों का खाना ?"

शैल भी दरवाज़ा बन्द करने के लिए बढ़ रही थी। हँसकर बो
"आपके मास्टर साहब को मैं भूखा नहीं रखूंगी। डरने की कोई बात न
हैं। अभी भी खाने की दूकानें खुली हुई हैं। आप जाइए !"

सदाव्रत और नहीं रुका। बाहर सड़क पर आ गया। फिर पैदल च
के पास पहुँचकर बोला, "कुंज, चलो !"

□ □ □
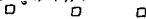
हिन्दुस्तान पार्क के बँगले में उस समय बक्रू बाबू, अविनाश बाबू, औ
बाबू—सभी की महफिल जमी होगी।

अविनाश बाबू ने कहा, "हाँ तो, पंडित नेहरू ने सुनकर क्या कहा
शिवप्रसाद बाबू बोले, "कहते क्या, चुप रह गये ! एकदम चुप ! मैं
कहा कि पंडितजी, आपको इसका जवाब देना ही होगा ! चुप रहने से
छोड़ने का नहीं हूँ। काश्मीर को लेकर इतनी माथापच्ची कर रहे हैं, लेकि
बंगाल का हाल भी तो जरा सोचिये ! बंगाल भी तो एक बॉर्डर-स्टेट है।
बंगाल की रिफ्यूजी प्रॉब्लम को लेकर सेंटर क्या कर रहा है ? कितना क
रहा है ? वेस्ट-बंगाल को आप लोग नेगलेक्ट जो कर रहे हैं ! एक ओ
तो कह रहे हैं प्रॉब्लम-स्टेट। लेकिन इसके लिए आप कर क्या रहे हैं ? ए
के शरणार्थियों को जमीन नहीं मिली, पैसा नहीं मिला, सड़क और फुटपा
पर उन लोगों की गृहस्थी जमी है, इनके बारे में कौन सोचेगा ? यहाँ
जवान लड़के अनएम्प्लॉयड हैं, यहाँ की लड़कियाँ और कुछ न पाकर अ

रीर बेचती है…"

बंकू बाबू चौंक उठे, "आपने कही यह बात ?"

"कहूँगा क्यों नहीं ? मैं भाई पब्लिकमैन हूँ। आज सत्ताईस साल से ब्लिक का काम कर रहा हूँ। वेस्ट-बंगाल की प्रॉब्लम मुझे मालूम नहीं होगी तो किसे होगी ? नेहरू तो बड़े इंटेलीजेण्ट आदमी हैं। चुपचाप सुनते हे। फिर बोले—'ऑल राइट, मैं देखूंगा। आई शैल थिंक ओवर इट'।"

"फिर ?"

"डॉ० राय भी मेरा साहस देखकर चौंक गये।" शिवप्रसाद बाबू ने हा, "वह सोच भी नहीं पाये थे कि मैं नेहरूजी के मुंह पर इस तरह से कहूगा। बाहर आकर बोले—'शिव, तुम तो देखता हूँ, बड़ी खरी सुनानेवाले ।' मैंने कहा—'सर, नंगे को किसकी शरम है! मेरा है ही क्या, जो मैं हने में डरूँ ? मैं मिनिस्टर भी नहीं हूँ, कांग्रेस का भी कोई नहीं हूँ। पार्टी अपना नाम कट जाने का भी मुझे डर नहीं है। मैं कहने से क्यों चूकूँ ?"

अखिल बाबू ने कहा, "आप इतनी बार पंडित नेहरू से मिलते हैं, और म लोगों की बात एक बार भी नहीं कही ?"

"आप लोगों की कौन-सी बात ?"

"वही जो आपसे कही थी। पेंशन-होल्डर लोगों का मामला। चीज-स्तुओं के जो बाबा मोल-दाम बढ़ रहे हैं; जबकि हम लोगों के लिए न डियरनेस एलाउंस है, न और कुछ ही है। वही एक फिक्स्ड पेंशन है—इस बारे में भी तो कोई नहीं सोच रहा।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे, आप लोग तो जनाब फिर भी मजे में हैं! लेकिन जरा ऑर्डिनरी लोगों की हालत सोचकर देखिये, जो आधा पेट खाकर रहते हैं! मैं तो रात को सोते-सोते चौंक उठता हूँ। फिर और नहीं सो पाता। सारी रात पड़ा-पड़ा सोचता हूँ। देश कहाँ जा रहा है ? इस तरह चलते रहे तब तो ये जेनरेशन बिलकुल खत्म हो जायेगी। नेहरूजी तो कहते हैं, आराम हराम है। लेकिन सरकार के मुखिया लोग आराम छोड़कर और क्या कर रहे हैं! आज यह कान्फ्रेंस, कल वह कान्फ्रेंस! हम लोगों के जमाने में इतनी कान्फ्रेंस नहीं होती थी। सिर्फ काम होता था। रॉयट के समय मैं और श्यामाप्रसाद बाबू किसी-किसी दिन तो खाना भी नहीं खा पाते थे। और आज कान्फ्रेंस से पहले मिनिस्टर साहब को कौन-सी 'डिश' अच्छी लगती है, इसी का इन्तजाम करते-करते लोगों का बुरा हाल हो जाना है। अगर हालत यही रही तो कम्युनिस्ट पार्टी को कितने

□ □ □

दो दिन हो गये, फिर भी नयी लड़की की हिचक नहीं छूटी। पता नही कहाँ बालेश्वर जिले या मयूरभंज स्टेट में घर था। बाप दूसरे के खेतों में काम करता था। एक बार सूखा पड़ने पर गाँव के पटेल से कर्ज लिया। लेकिन समय पर सूद भी नही दे पाया। इसके बाद शुरू हुए तगादे। घर, जमीन, जो कुछ था पटेल ने ले लिया। इतने पर भी जब कर्ज नही उतरा तो लड़की और बहू को भी ले लिया। वे लोग काम करके कर्ज अदा करेंगी। उसी पटेल के यहाँ कुसुम अब तक काम करती रही। गाय के लिए कुट्टी काटती, चारा देती, बरतन माँजती, गोबर पाथती। खिला चेहरा, चढ़ती उम्र। उसके बाद ही एक दिन न कहना न सुनना, रात को सोते से उठा-कर पटेल ने ही एक अनजान आदमी के साथ रेलगाड़ी पर चढा दिया। और उसके बाद ही यहाँ। इस कलकत्ता मे।

शुरु-शुरु मे तो यहाँ का सिलसिला बड़ा अजीब-सा लगा। फिर सब ठीक हो गया। कहाँ वह जगल, और कहाँ यह शहर। लेकिन कुसुम ने शहर देखा ही कहाँ? उस दिन जो यहाँ आयी, तो फिर नही निकल पायी। सड़क की ओर वाले दूसरी मजिल के बरामदे में जब सब सज-धज-कर खड़ी होती, तो फिर पद्मरानी उसे भी सजा देती।

पद्मरानी कहती, "पहनो बेटा, यह साडी पहनो!"

पद्मरानी शुरु-शुरू मे सबके लिए अपनी गाँठ से साडी खरीद देती, गिल्ट के गहने पहनने को देती, दूध-घी खाने को देती। अपने पेट की लड़की की तरह खातिर करती। साथ लेकर सोती। कुसुम के साथ भी वैसा ही करने लगी। बड़ी डरपोक लड़की है। प्यार पाते ही पसीज जाती और आदमी देखते ही सिहर उठती।

ये चिह्न अच्छे हैं। ऐसी ही लडकियाँ बाद मे पक्की होती है। इस लाइन में जिन्होंने नाम कमाया है, उन सभी का पहले का इतिहास यही है। सभी आदमियों की नजरो से डरनेवाली थी। बाद में उन्होंने ही 'डाक-माइट' कहलाकर नाम कमाया।

ठगनलालजी को आने में दो-चार दिन की देरी हुई। शेयर मार्केट की सबसे बड़ी मछली थे सेठ ठगनलाल। सेठ ठगनलाल एक हाथ में खरीदते और एक हाथ में बेचते। जमा नाम की चीज जिन्दगी मे नहीं जान पाये। रुपया कभी भी इकट्ठा नहीं करना चाहिए। उसमें रुपये की भी इज्जत जाती है और रुपयेवाले की भी इज्जत जाती है। रुपया सिर्फ इन्वेस्टमेंट

के लिए है। एक शेयर मे कुछ रुपये लगाकर कुछ प्रॉफिट लाकर फिर रुपया और ज़्यादा डिवीडेंड के शेयरों में खर्च करो। रुपये से बेवन पैदा कराओ। रोककर रखने से रुपया बाँझ औरतों की तरह बेजान हो जाता है। आज ऑयरन, कल कॉपर, परसों स्टील, उसके बाद ऐ मिनियम। १९४७ के बाद से इंडिया में इंडस्ट्री बढ रही है। पहले तो साहबों की वजह से इन्वेस्ट करना ही मुश्किल था। सब शेयर, सब डिवी तब इंग्लैंड चला जाता था। आज इंडिया मे चलने के लिए विला कम्पनी को फिफ्टी परसेंट शेयर इंडियन लोगों के हाथों बेचने होंगे उससे डालर-मार्केट मे इंडिया की इज्ज़त बढेगी। ग़रीब इंडियन लो खा-पहन सकेंगे। इसी से सेठ ठगनलालजी के पौ बारह हैं। इसीलिए सेठ इस मुहल्ले में पहले की तरह नही आ पाते। आज हांगकांग जा रहे हैं, क सिंगापुर, परसों बम्बई। सारी दुनिया में कारबार फैला है। मोटर-गा के पार्ट्स बाहर से आ रहे है। ठगनलालजी के पास उसी मोटर-कम्पनी शेयर हैं। परमिट की बात करने के लिए दिल्ली सेक्रेटेरियट जाते हैं। औ जब पार्ट्स बाहर से आते हैं तो उन पार्टों के साथ क्या-क्या आता है इसका हिसाब कस्टम ऑफिस के खाते में नही है। वैसे बाहर से गोल्ड न लाया जा सकता। लाने पर ड्यूटी देनी होती है। जबकि ड्यूटी देने प मजूरी ज़्यादा पड जाती है। स्मगलिंग बडा मुश्किल काम है। यह का किसी और के ज़िम्मे नही छोडा जा सकता है। सारी लिखा-पढ़ी अपने-आ करनी होती है। इसीलिए सब खुद देखना पड़ता है। यह सब करते-क ही कितने दिनों से इस ओर नही आ पाये।

इस बार सनातन से खबर मिलते ही पद्म रानी के फ़्लैट में आए।

ठगनलालजी की गाडी बहुत बडी है। इस गाड़ी के कल-पुर्जे ही अल हैं। हर ड्राइवर इसे नही चला पाता।

फ्लैट के सामने गाडी रुकते ही सुफल ने देख लिया। पीछे ठगनलाल बैठे है और आगे सीट पर सनातन।

और बात करने का मौका नही था। मुगलई पराँठे का तवा अँगी पर ही छोडकर सुफल ने एक छलांग लगायी। फिर गाड़ी के पास पहुँच ज़मीन तक झुककर सलाम की। बोला, "सलाम, हुज़ूर!"

सनातन ने तब तक उतर 'हुज़ूर' के लिए दरवाज़ा खोल दिया था।

'हुज़ूर' सड़क पर पाँव रखते ही सुफल को पहचान गये। फिर सुफ की पीठ पर एक ज़ोर का मुक्का लगाया।

बोले, "क्यों रे, सुफल, क्या हाल है ?"

सुफल ने कहा, "हुजूर, क्या हम लोगों को भूल गये ? कितने ही दिनों इधर पैरों की धूल नहीं पड़ी।"

"पड़ेगी-पड़ेगी ! अब पैरों की धूल पड़ेगी। हाँ तो, आज क्या बनाया ? कलेजी बनी ?"

"कितनी प्लेट लाऊँ, हुकुम दीजिये न, हुजूर ! बड़ी जायकेदार बनी । पटनाई बकरे की कलेजी, सब भेज दूँ ? किसके कमरे में बैठ रहे हैं ?"

सनातन ने जवाब दिया। बोला, "तू रुक तो ! आइये सेठजी, चले आइये ! काम-काज के वक्त इन लोगों को दिल्लगी सूझती है।"

सेठजी के वदन पर फिन्ले मिल की महीन धोती और बन्द गले का कोट। पाँवों में चमचमाता 'मेकासिन'। हाथ में सिगरेट का टीन। सनातन खींचता-खींचता सामने की ओर लिवा चलने लगा। सुफल भी पीछे-पीछे आ रहा था।

सेठजी ने सुफल को देखते ही कहा, "तेरी तो सूरत ही वदल गयी , सुफल ! लगता है खूब माल उड़ा रहा है ?"

सुफल ने सिर झुकाकर कहा, "हुजूर की नेक नजर पड़ती तो सूरत और भी वदल जाती !"

सेठजी ने अभयदान देते हुए कहा, "ठीक है, तू कुछ फिक्र मत कर, जा ! तुझे बुलवाऊँगा !"

तब तक शायद सारे फ़्लैट में खबर फैल चुकी थी। सभी दौड़कर बरामदे में आ गयी। रेलिंग के सहारे झुककर देखने लगी। जोर-ज़ोर से खिलखिलाने लगी। सभी सेठजी की देखी हुई है। सभी के कमरे में सेठजी बैठ चुके हैं। पहले किसी-किसी दिन खूब लीला करते थे सेठजी। उस समय उम्र भी कम थी। उन दिनों ठगनलालजी के पिता सेठ चमनलाल जिन्दा थे। तब बेटा बाप के पैसे पर गुलछर्रे उड़ाने इस मुहल्ले में आता था। सारी रात इस पटरानी के ही फ़्लैट में हुल्लड़बाजी होती। कभी-कभी रातभर के लिए पूरा फ़्लैट ही खुद किराये पर ले लेते। उन दिनों की बात और थी। इसी सुफल की दूकान से एक के बाद एक प्लेटें आतीं। गोश्त आता, कलिया और कलेजी आती। कोई चूल्हा नहीं जलता। सब पेट-भर शराब पीते। ठगनलाल की नजर से कोई भी बच नहीं पाती। गेट पर दरबान ताला लगा देता और अन्दर ठगनलालजी खुद कृष्ण बनते और लड़कियों को गोपियाँ बनाकर, रासलीला करते। दरबान को वे सारी बातें आज भी

बैठे। एकदम पद्मरानी के पलंग पर पैर समेटकर बैठ गये।

पद्मरानी भी बिस्तरे पर एक ओर बैठकर बोली, "तुम तो बेटा, अब इस ओर आते ही नहीं हो। तुम्हें पता नहीं, आदमी देखकर आजकल मेरी लड़कियाँ ऐसे ही करती हैं।"

ठगनलाल कमरे में चारों ओर देख रहे थे। बोले, "क्यों, इतनी लोनी कैसे लग गयी?"

"और क्या, बेटा! दिनों का फेर है। आजकल तो घर पर चील-कौवे भी आकर नहीं बैठते।"

ठगनलालजी फिर भी नहीं समझ पाये। बोले, "क्यों? पहले तो एक भी कमरा खाली नहीं रहता था।"

"वे सब दिन भूल जाओ। अब तो लगता है, धन्धा समेट काशी जाकर धरन करना होगा। पहले अच्छे-अच्छे भले घर के लड़के यहाँ आते थे। बिना किसी डर के रात बिताकर घर लौट जाते थे। इतने दिन कभी भी किसी से कड़ी बात नहीं सुननी हुई। अब तो मुहल्ला खाली हो गया है, एकदम खाली। तुम जरा एक चक्कर लगा आओ न। इतने दिन बाद आये हो। एक बार सनातन को लेकर जाओ न बेटा, मुहल्ले का हाल-चाल देख आओ न। जा न सनातन, सेठजी को जरा दिखला ला न!"

सनातन पास ही खड़ा था। उसने भी पद्मरानी की बात पर सिर हिलाया, "हाँ हुजूर, माँ जो कुछ भी कह रही हैं ठीक ही कह रही हैं! पुलिस की वजह से हम लोगों का कारोबार अब और नहीं चल पायेगा।"

"पुलिस!"

ठगनलाल हैं-हैं करके हँस दिये। बोले, "चल हट, बेकार की बात सुनाकर मेरा समय खराब कर रहा है। काम की बात कर, काम की!"

पद्मरानी ने कहा, "नहीं बेटा, सनातन आज चालीस साल से दलाली कर रहा है। वह ठीक ही कहता है।"

"तो कौन-सी पुलिस, कहो न? किस थाने से? यहीं तुम्हारे टेली-फोन पर ही कह देता हूँ। सभी तो खाते हैं—कहो न कौन-सा थाना? किसे पकड़ा है? किसे, किसे? अविनाश बाबू न?"

पद्मरानी बोली, "दुःख की बात किसके आगे रोऊँ? कानून जिसने बनाया है, जैसा कानून बनाया है, सुना तुमने?"

सेठ ठगनलाल ने जिन्दगीभर कभी क़ानून की परवाह नहीं की। बोले, "अरे छोड़ो, तुम सेठ ठगनलाल को कानून सिखला रही हो? ठगनलाल

सेठ के बाप चमनलाल ने कभी कानून माना है ? कानून की परवाह करने से गवर्नमेंट चलेगी ? तुम इतने दिन से इस मुहल्ले में धन्धा कर रही हो, तुमने कभी क़ानून माना है ? क़ानून तो कहता है रात के साढे आठ बजे के बाद कोई भी शराब नही बेचेगा। तुम रात के तीन बजे मेरे साथ आओ तुम्हें पीपे-के-पीपे शराब खरीदवा दूँ। कलकत्ता के जिस मुहल्ले में कहो—तुम्हें कितनी शराब चाहिए ?"

पद्मरानी ने कहा, "शराब की बात नही हो रही है। लड़कियों के धन्धे की बात हो रही है। क़ानून बना है लड़कियों का धन्धा और नहीं चलेगा।"

सेठ ठगनलाल वहाँ भी पीछे नही है। बोले, "अरे, रहने दो, कानून ने हुआ और हमने मान भी लिया। मेरे लिए तो कोई भी देश देखना बाकी नही है। लन्दन, पेरिस बर्लिन, सिंगापुर, बर्मा सभी जगह तो जाता हूँ सभी जगह तो लडकियाँ मिली, बिना लड़कियों के खाऊँगा क्या ? सिर्फ दूध और रोटी ? पद्म बीबी, तुम्ही कहो न ?"

इसके बाद एकाएक इतना समय बेकार की बातों में निकल गया, ऐसा भाव दिखलाकर कहा, "हाँ, खाली पेट कब तक रखोगी ?"

पद्मरानी समझ गयी। पल्ले से बँधी चाबी खोलकर बिन्दू को दी। बोली, "जा तो बेटा, एक अच्छी-सी देखकर निकाल ला।"

फिर ठगनलाल की ओर घूमकर बोली, "कसम से ठगन, मैं झूठ नहीं बोलती। माँ काली की सौगन्ध खाकर कह रही हूँ, ये लोग बडा तंग कर रहे है। देख न, मेरी दो लडकियो को पकडकर पुलिस ले गयी है।"

"क्यों ? ले क्यों गयी ?"

"मेरी टगर, और जूथिका को तो तुम जानते ही हो ? उन दोनों को पकडकर ले गयी है। जूथिका माना कि यहाँ रहती है, लेकिन मुझे टगर की फिक्र है, बेटा। बडी अच्छी लडकी है। कह रही थी बाप बहुत बीमार है। सुना है, उन लोगों का घर भी ज़मीदार तोड देगा। बस्ती है न ?"

"लेकिन उन लोगों ने किया क्या था ?"

"मुँहजले कहते हैं, सडक पर खडी आदमियों को बुला रही थीं। मुँहजलों की बात सुनी ? टगर को तो देखा है तुमने ! वह क्या आदमियों को बुलानेवाली लडकी है ? कहती थी, बाप की बीमारी की वजह से आ नहीं पाती। मैं उसे कह-कहकर बुलाती हूँ। वह आदमी बुलाएगी ? टगर को तो तुम जानते होगे, टगन !"

जिन्दगी में कितनी टगर देखीं और कितनी टगर के यहाँ गए

काटी हैं, यह सब याद रखनेवाले आदमी नहीं है सेठ ठगनलाल। बोले, "उन सब बातों को तुम गोली मारो, टगर क्या कलकत्ता में एक है ? हाँ तो,उसका क्या हुआ ? पुलिस ने थाने में बन्द कर रखा है ? अभी अविनाश बाबू को फ़ोन किये देता हूँ।"

कहकर टेलीफोन का रिसीवर उठाने जा रहे थे कि पद्मरानी बोली, "ओ राम, तुम्हें यह भी नहीं मालूम, अविनाश बाबू की तो बदली हो गयी है ! अविनाश बाबू होते तो मुझे किस बात की फ़िक्र थी ? अविनाश बाबू को क्या मैं तुमसे कम जानती हूँ ?"

"तब कौन है उसकी जगह ?"

अचानक बिन्दू गिरती-पड़ती कमरे में आयी। बिन्दू चाबी लेकर भण्डार से बोतल लाने गयी थी। आते ही पद्मरानी की ओर आँखें फैलाकर बोली, "गजब हो गया, माँ !"

"क्या हुआ री ? गजब क्या ? कहाँ ?"

पद्मरानी झटपट बिस्तरे से उठ खड़ी हुई। फिर बात का तार लिये ही बिन्दू के पीछे-पीछे बाहर आयी। उधर बासन्ती वगैरह भी अपने-अपने कमरों से निकल आयी थीं। सत्रह नम्बर कमरे के आगे ही सब जमा थे। कमरा अन्दर से बन्द था। पद्मरानी खिड़की से अन्दर झाँकते ही चौंक उठी। इसके बाद और वहाँ खड़ी नहीं रह पायी। पुकारा, "दरवान कहाँ है ? दरवान ! दरवान !"

दरवान के सामने आते ही पद्मरानी ने हुक्म दिया, "दरवाज़ा बन्द करके ताला लगा दो, दरवान !"

और साथ-ही-साथ पूरा फ्लैट निर्जीव हो गया। और पद्मरानी, जो हजार मुश्किल में भी मिजाज़ ठंडा रखती, वह भी जैसे गम्भीर हो गयी। बोली, "जाओ बेटी, तुम लोग अपने-अपने कमरों में जाओ ! यहाँ भीड़ मत करो। जाओ !"

सेठ ठगनलाल ने पद्मरानी के कमरे में अभी बोतल खोली ही थी। सनातन ने बड़े यत्न के साथ गिलास में ढालकर सोडा मिला दिया। गिलास आगे बढ़ाकर बोला, "लीजिये, हुज़ूर !"

ठगनलाल ने गिलास हाथ में ले होंठों से लगाया। बोले, "तूने ली ?"

सनातन के धँसे चेहरे पर हँसी खेलने लगी। बोला, "ओ..."

ठगनलाल ने झिड़की लगायी, "अच्छा, ज्यादा शराफ़त छोड़, ले, सोनागाछी में सब समान हैं। यहाँ कोई गरीब-अमीर नहीं है। ले, ढाल !"

सनातन जैसे जबर्दस्ती गिलास में ढालने जा रहा था, तभी बुझा चेहरा लिए पद्मरानी ने कमरे में कदम रखा। जैसे हाँफ रही थी। "गजब हो गया बेटा ठगन, कुसुम ने गले मे फाँसी लगा ली।"

"कुसुम ? कुसुम कौन ?"

"वही जिसके लिए तुम्हें बुलाया था। शाम तक भी मुझे पता नहीं था। अपने हाथ से मैंने बाल सँवार दिये थे, फिर साबुन लगाकर बदन धोया। तुम आनेवाले थे, सजाकर तैयार कर रखा था इधर..."

बात पूरी नहीं हो पायी। सेठ ठगनलाल उठ खड़े हुए।

"तुम चले मत जाना। जरा देर बैठो। तुम्हारे रहने से जरा तसल्ली होती है। तुम्हारी तो फिर भी थाने के दारोग़ा से जान-पहचान है। जरा क्या करूँ, बोलो ?"

लेकिन सेठजी का नशा तब तक हिरन हो चुका था। अब खड़े होने का समय नहीं था। जल्दी से बिस्तरे से उतरकर जूता पहनना शुरु कर दिया। कहा, "लेकिन मैं तो चाबी भूल आया हूँ।"

"किस चीज की चाबी ?"

"अपनी गद्दी की चाबी। बिना चाबी लिए मुनीम दरवाजा बन्द नहीं कर पायेगा। मैं अभी आया। चाबी लेकर अभी आया। तुम जरा फिक्र न करो, पद्म बीबी !" कहकर सीधे नीचे उतर गये। दरबान ने तब तक दरवाज़े में ताला लगा दिया था। सेठ ठगनलाल ने वह ताला भी खुलवाया। सनातन पीछे-पीछे आ रहा था। आज साला नसीब ही खराब है ! पीछे से ही बोला, "हुजूर !"

हुजूर को तब बात करने की फुरसत कहाँ ! जाकर गाड़ी में बैठ गये।

मुकुन्द देखते ही दौड़ा-दौड़ा आया, "हुजूर, आप तो जा रहे हैं ! आपके लिए कलेजी..."

लेकिन मुकुन्द की बात कान मे जाने से पहले ही सेठ ठगनलाल की अमेरिका-मेड गाड़ी अँधेरे मे खो चुकी थी। मुकुन्द ने सनातन की ओर देखा। सनातन ने मुँह की अधजली बीड़ी निकालकर सड़क पर फेंक दी। मन-ही-मन कहा, "जा साला ! सारा दिन मिट्टी हुआ !"

शिवप्रसाद बाबू को वैसे भी ज्यादा वक्त नहीं मिलता। काम-काजी आदमियों को वक्त कहाँ ! शाम के वक्त किसी-किसी दिन गप्प चलती। वही उनका आराम था। वह भी रोज नहीं। महीने में पन्द्रह दिन आराम

ढे आकर लौट जाते। किसी दिन पता लगता मीटिंग में गये हैं, किसी
मालूम होता दिल्ली गये है, या फिर पता लगता कि अभी तक ऑफिस से
नहीं लौटे। बडे मेहनती आदमी। इतनी उम्र हो गयी, फिर भी काम-
में कमी नहीं। गृहस्थी कैसे चल रही है, जानने की जरूरत नहीं।
पार कैसा चल रहा है, वह भी देखने की जरूरत नहीं। देश-सेवा ही
सब-कुछ है।

कभी-कभी कहते,"और काम भी क्या एकाध है, रोज जैसे बढता ही
ता है।"

हिमांशु बाबू कहते,"इतनी मेहनत करने से काम कैसे चलेगा? ज़रा
र को भी तो देखिये!"

"अपनी ओर! कोई भी तो काम का नही है। किसी पर भी काम
पकर तसल्ली नहीं होती। सब मुझे ही देखना होगा।"

छब्बीस जनवरी को क्या प्रोग्राम होगा, इसकी फिक्र भी उन्हीं को।
ज़रा-पार्क में गोआ पर मीटिंग होगी, यह भी उन्हें ही ठीक करना है।
लकत्ता मे ख़ुश्चेव आयेंगे, यह भी उन्ही का सिरदर्द है। उनके बिना कोई
मीटिंग कम्प्लीट नहीं हो सकती। इसके अलावा लौकिक और सामा-
जिक सम्बन्ध है, किस मिनिस्टर के यहाँ मातृश्राद्ध है, वहाँ शिवप्रसाद बाबू
का होना लाजिमी है। किस पार्लमेंटरी सेक्रेटरी के लडके की शादी है,
वहाँ भी उनका होना जरूरी है। सोशल वर्क बिना किये भी काम नहीं
चलता। सबको गलतफहमी होती है—उसके घर गये थे, मेरे यहा नहीं
आये। आजकल कहीं खाते-पीते नहीं है।

अकसर कहा करते, "मैं तो भाई, कहीं खाता-पीता नहीं। हाँ, खिलाना
ही चाहते हो तो मेरे ड्राइवर को खिला दो। मैं घर चलूँ!"

उस दिन हिमांशु बाबू से पूछा, "क्या हाल है? सदाव्रत को कामकाज
समझा दिया?"

"जी, छोटे बाबू बड़े इन्टेलीजेन्ट है! उन्हें क्या समझाता, उन्होंने खुद
ही सब-कुछ समझ लिया।"

"किस तरह?"

"जी, फ़ाइलें देखते-देखते सब क्लीयर हो गया। मुझे कुछ भी वतलाना
नहीं हुआ।"

"बैलेन्स-शीट? बैलेन्स-शीट दिखलायी?"

"बैलेन्स-शीट ही पहले देखी। पूछ रहे थे, 'मैनेजिंग डायरेक्टर का

एलाउन्स सिर्फ़ साढ़े चार सौ रुपये ही क्यों है ?"

"अच्छा ! यह पूछ रहा था ?"

अपने लड़के की बुद्धि पर जैसे मन-ही-मन गौरवान्वित हुए।

फिर जैसे अचानक याद आया। बोले, "पार्क-स्ट्रीट की प्रॉपर्टी के में और कोई क्वेरी आयी थी क्या ?"

"जी, आयी थी। मैंने कह दिया, आपके दिल्ली से लौटने के पहले भी नहीं हो सकता।"

"अच्छा, जरा वह फ़ाइल मुझे दो तो, और ऑपरेटर से कह काग्रेस ऑफिस की लाइन देने को कहो। कहो कि अतुल्य बाबू हैं या पता लगाकर मुझे लाइन दे।"

इसके कुछ ही देर बाद फोन की घंटी बज उठी। रिसीवर उठा पूछा, "अरे, क्या हाल है···?"

तभी जैसे कुछ सन्देह हुआ। पूछा, "कौन ?"

"मैं शंभू, सदाव्रत है ? सदाव्रत गुप्त ?"

फौरन रिसीवर रख दिया। इसके बाद हिमांशु बाबू को बुला बोले, "अपना ऑपरेटर क्या सोता रहता है ? ऐरे-गैरे का टेलीफोन दे देता है ! सदाव्रत को कौन खोज रहा था ? शंभू कौन है ? शंभू ? सदाव्रत का दोस्त ? यहाँ बैठा-बैठा यारों को फोन करता था

उधर शंभू ने शिवप्रसाद बाबू की आवाज सुनते ही लाइन काट एक तो वैसे ही लुक-छिपकर फोन कर रहा था, इस पर सदाव्रत के के साथ डायरेक्ट कनेक्शन हो गया। मधुगुप्त लेन मुहल्ले के लड़के ही शिवप्रसाद बाबू से डरते थे। शिवप्रसाद बाबू के पास जाकर पूजा का चन्दा माँगने की भी हिम्मत किसी में नहीं थी। शिवप्रसाद सामने आना शेर के सामने आना था। असल में शंभू को पता ही नहीं कि शिवप्रसाद बाबू दिल्ली से वापस आ गये हैं। टेलीफोन चुन्नी ने ही किया था।

सब मकानों में जो होता है, इस मकान में भी वही हुआ। सदाव्रत के जाने के बाद टैक्सी का किराया लेकर झगड़े के बीच में ही चुन्नी गयी थी। चुन्नी के चले जाने के बाद कमरे के अन्दर मीटिंग बैठी।

शंभू और कालीपद दोनों ही उस समय गुस्से से लाल-पीले हो रहे भयंकर से कहा, "इसीलिए तो बंगालियों के मकान टिकते नहीं हैं।

कालीपद ने कहा, "नहीं टिकते हैं तो मैं क्या करूँ ? मेरी क्या गलती कुन्ती के सामने मुझे शंभू ने ईडियट क्यों कहा ?"

सदाव्रत को गाड़ी में बैठाकर शंभू फिर क्लब की ओर ही आ रहा था। कहा, "पहले मैंने ईडियट कहा या तूने पहले असभ्य कहा ! यहाँ बैठे गवाह हैं।"

"ईडियट और असभ्य एक ही बात हुई ?"

"एक बात नहीं हुई ? ड्रामा लिख लेता है, तो क्या तू मुझसे अच्छी ही जानता है ?"

फिर से शायद झगड़ा शुरू होनेवाला था। सभी ने मिलकर रोका।

अक्षय ने कहा, "इस तरह करने से क्लब कैसे चलेगा ? इसीलिए तो भी बंगालियों के क्लब टिकते नहीं हैं।"

इसके बाद दोनों के हाथ मिला अक्षय ने कहा, "जो हुआ सो हुआ, तुम दोनों हाथ मिला लो। पहले ड्रामा हो जाय, बाद में जितनी इच्छा लड़ना। सबसे पहले क्लब से मैं रिजाइन करूँगा। मुझे खूब सबक मिला।"

हाँ तो, इसी तरह झगड़ा खत्म हो गया। इस 'बहूबाजार संस्कृति' के लिए ये झगड़े नयी बात नहीं थी। जिस दिन से क्लब बना है, उसी से एक बार झगड़ा होता है, फिर हाथ मिलते है।

किसी ने पूछा, "लेकिन कुन्ती तो चली गयी ! उससे तो कुछ कहा भी गया। कल क्या वह आयेगी ?"

"नही आयेगी माने ? मैंने नकद पचास रुपये एडवान्स दिये है। आयेगी कहने से ही हो गया !"

शंभू ने कहा, "आये तो अच्छा ही है। लेकिन मैं बुलाने नही जाऊँगा।"

"बुलाने जाने की क्या ज़रूरत है ? वह खुद ही आयेगी। नही आयेगी क्या हम छोड़नेवाले हैं ?"

दूसरे दिन शाम को सभी फिर से क्लब में आ जमे। लेकिन कुन्ती नही आयी। उसके अगले दिन भी नही। उसके अगले दिन भी नही।

शंभू ने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था, वह नही आयेगी। कालीपद से मुझसे ज्यादा जानता है !"

कालीपद जरा चिन्तित हो गया। तीन दिन तक जब नही आयी तो चिन्ता की बात ही थी। शंभू और नही रुक पाया। "इसके माने सदाव्रत के साथ कुन्ती की कोई जान-पहचान है।"

कालीपद ने कहा, "जान-पहचान तो है ही। उस दिन कुन्ती ने मुंह से ही तो कहा था। उसे टैक्सी में बैठाकर कौन-से बगीचे में ले गया था।"

"धत्त ! बेकार की बात है। सदाव्रत वैसा लड़का ही नहीं है। तू जानता नहीं है।"

दुलाल दा ने कहा, "नहीं रे, बड़े आदमियों के 'पोष्य-पुत्तरों' के लिए कुछ भी नामुमकिन नहीं है।"

शंभू ने कहा, "तुमने फिर उसे 'पोष्य-पुत्तर' कहा, दुलाल दा! है, बेचारे का मन कितना खराब हो गया था !"

"अरे, जा ! इन लोगों की बात छोड़ दे। खुद ही तो देख लिया, लड़की की बू पाते ही क्लब में आना शुरू कर दिया।"

कालीपद बीच ही में बोला, "नहीं दुलाल दा, तुम उस दिन आये थे। अपनी कुन्ती को टैक्सी में घुमाने ले गया था। कुन्ती यहां सबके सामने कह गयी है।"

शंभू ने कहा, "वह टैक्सी में क्यों जाने लगा ? उन लोगों के पास गाड़ी नहीं है ? पता है, उन लोगों के पास कितनी गाड़ियां हैं ?"

दुलाल दा—"अरे बुद्धू, खुद की गाड़ी में कोई लड़कियों को घुमाने ले जाता है ! उन लोगों के वक्त टैक्सी···"

हां तो, इन सब बातों का सबूत पाने के लिए ही शंभू ने सदाव्रत के ऑफिस फोन किया था। लेकिन वह जैसे शेर के मुंह से वापस आया है। फिर भी कालीपद ने हिम्मत नहीं हारी। इतनी मुश्किल से लिखी उसने 'मरी मिट्टी', यह मौका फिर नहीं आयेगा। दफ्तरी की दूकान से उसने 'मरी मिट्टी' की अच्छी तरह से जिल्द बँधवा ली है। प्लान था कि ड्रामा होने से पहले कोई पब्लिशर किताब को छाप डालेगा। एक बार 'मरी मिट्टी' के सक्सेसफुल हो जाने पर वह अपने नेक्स्ट प्ले को स्टेज कराने की आखिरी कोशिश करेगा। बंगाल बड़ी बुरी जगह है। यहां कोई किसी का बढ़ना नहीं देख सकता। जो धरा-पकड़ी कर लेता है, जो ऑयलिंग करता है, यहां उसी की तूती बोलती है। कालीपद यह सब अच्छी तरह से जानता है। और जानता है इसलिए इतनी इन्सल्ट सहकर भी क्लब को पकड़े है। एक बार नाम हो जाये, फिर इस क्लब को लात मारकर चल देगा। तब हजार खुशामद करने पर भी इन लफंगों के क्लब में पाँव नहीं रखेगा। उसे काफी सबक मिल चुका है। बंगाल की मिट्टी में जब पैदा हुआ है यह भी सहना होगा।

क्लब से निकलकर कालीपद घर की ओर न जाकर बस-स्टैण्ड की ओर चल दिया। आज कुछ करना ही होगा, इधर या उधर।

मोड़ से बस पकड़कर सीधे जादवपुर।

कालीगंज के मोड़ पर एक बार और बस बदलनी हुई। सोचा, शरणार्थी लड़की से शरणार्थी का रोल, आखिर में सिलेक्शन अच्छा ही हुआ था। यही आखिरी चांस है! फिर पचास रुपये एडवान्स भी दिये है। क्लब में इसका भी तो हिसाब देना होगा।

भरी हुई बस। ढाकुरिया लेक पार कर बस सीधी जा रही थी। इसके बाद दोनों ओर खाली और बजर जमीन थी। कही-कही दोनों ओर दूकाने थी। काफी रात हो चुकी थी। कालीपद खड़ा-खड़ा जा रहा था। एक-एक स्टॉपेज आता और एक झुंड लोग उतर जाते।

जादवपुर, जादवपुर!

कालीपद ने खिड़की से बाहर देखा। पिछले दिन भी इसी तरह खड़ा-खड़ा यहाँ आया था। ये ही दूकानें, उस दिन भी ऐसी ही भीड़ थी। फिर भी आज रात हो गयी थी। इसलिए ज़रा सूना-सूना लग रहा था।

अचानक एक जगह बस के रुकते ही कालीपद चीख उठा, "रोक के, रोक के!"

पहले तो कालीपद पहचान नही पाया। उस दिन तीसरे पहर आया था और आज रात हो गयी थी। 'मरी मिट्टी' नाटक मे इसी ओर का सीन है। हीरोइन 'शान्ति' इसी जगह से बस मे चढकर चौरंगी की ओर जाती है। वहाँ जाकर घूमती। इसके बाद कोई ग्राहक मिल जाने पर उसके साथ टैक्सी में बैठती।

"हाँ साहब, यहाँ शरणार्थियों की कॉलोनी किस ओर है?"

"किस कॉलोनी में जायेंगे? जतीन कॉलोनी या नेताजी कॉलोनी?"

कालीपद नाम नही जानता था। बोला, "नाम तो ठीक से पता नही है।"

"किसके घर जायेंगे? उनका नाम क्या है?"

कालीपद ने कहा, "मनमोहन गुहा, फरीदपुर मे घर है, यहाँ उनकी लड़की कुन्ती गुहा ड्रामे मे एक्टिंग करती है।"

और कहना नहीं हुआ। बाप के नाम से बेटी का नाम ही ज्यादा मशहूर था।

"ओ समझ गया, उस ओर नयी कॉलोनी में, उसका अभी नाम नही

है, सामने मैदान से पगडण्डी है, चले जाइये।"

कालीपद ने उस ओर देखा। रात के अँधेरे में जगह एकदम ओरा... की दिखलायी दे रही थी। भायँ-भायँ करता अँधेरा। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कुन्ती इस रास्ते से रात को अकेली कैसे लौटती होगी! काली-पद को ही डर लग रहा था। काफ़ी दूरी पर कुछ छोटे-छोटे दीये टिमटिमा रहे थे। कालीपद ने उस रोशनी की ओर ही पाँव बढाये। आस-पास कोई नहीं था।

चलते-चलते कालीपद को एकाएक लगा जैसे काली छायामूर्ति के तरह के कुछ लोग घूम रहे हैं। बदन काँपने लगा। और उसके बाद ही जैसे अचानक कहीं से हो-हल्ला शुरू हो गया। दूर से कितने ही लोगों के चीखने की आवाज़ आ रही थी। कालीपद एक बार तो चौंककर खड़ा हो गया। सुनसान मैदान की उस ओर से जैसे कितने ही लोगों के आर्तनाद की आवाज़ आ रही थी। अँधेरे में कुछ भी पता नहीं लग रहा था। कुछ लोग जैसे इस ओर से उस ओर दौड रहे थे। भारी-भारी पैरों की आहट। सब-कुछ जैसे रहस्यमय लग रहा था।

कालीपद को लगा अब और आगे बढ़ना ठीक नही होगा। वही खड़ा हो गया।

तभी सामने ज़ोर की आग भड़क उठी। जैसे घरो में आग लगी हो। सामने के टिमटिमाते दीयो से लाख-लाख शिखाएँ जैसे आसमान की ओर लपलपा रही थी।

कालीपद लौट रहा था। पीछे-पीछे पता नही कौन दौडा-दौड़ा आ रहा था। खड़े होते ही और भी आवाजे सुनायी देने लगी। काफी लोगों की भीड़ थी। कम-से-कम दो-सौ, तीन-सौ होगे। औरतो के गले की आवाज भी जैसे सुनायी दे रही थी। भीड़ कालीपद के एकदम पास आ पहुँची। पास आते ही उन लोगो की बातें सुनायी दी।

"मारो सालों को, मारो!"

"क्या हुआ, साहब ?"

तभी एक आदमी चीखा, "पुलिस, पुलिस!"

कालीपद ने फिर पूछा, "वहाँ क्या हुआ है, साहब ?"

"अरे साहब, कुछ पूछिए नही, कॉलोनी पर कब्ज़ा करने आये है। गुण्डे लगाकर आग लगवा दी है।"

"किसने ? किसने गुण्डे लगवाए हैं ?"

"जमींदार, जमींदार के आदमी !" कहते-कहते भाग गये । और नहीं के । उनके पीछे भी बहुत से आदमी आ रहे थे । साथ में औरतें थीं । गोद ं बच्चे । रोते हुए । कालीपद ने उन लोगों से भी पूछा । लेकिन उन लोगों ी हालत उस समय जवाब देने लायक नहीं थी । धीरे-धीरे उनकी संख्या ढ रही थी । आवाज़ें भी तेज़ हो रही थीं । चीखें, गाली-गलौज और रोने ी आवाजें । कालीपद की वहाँ और रुकने की हिम्मत नहीं हुई । शायद अभी-अभी पुलिस आ जायेगी । शायद गोली चलना भी शुरू हो जाये । शायद सभी को पकड़कर ले जाये । रॉयट के समय भी कलकत्ता में यही हुआ था । लड़ाई के दिनों मिलिटरी लॉरियाँ जलाने के बाद भी यही हुआ *था । बाम-लॅरी ऑफिस के कैश डिपार्टमेंट के क्लर्क कालीपद ने यह सब* काफी देखा-सुना है । लेकिन इतने दिनों बाद फिर से वही हो सकता है, उसने नहीं सोचा था । शरणार्थी फिर से बे-घरबार होंगे, इस वेस्ट बंगाल से भगाये जायेंगे, यह कालीपद ही क्यों, किसी ने भी नहीं सोचा था ।

कालीपद जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता फिर उसी रास्ते से लौटने लगा; *'मरी मिट्टी' की जैसे एक और मौत हो गयी ।*

□ □ □
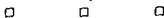
इस ओर उस समय भी दिन था । इस चितपुर में । यहाँ अब भी घर्र-घर्र करती ट्राम, बसें और टैक्सियाँ चल रही थीं । फुटपाथ की भीड़ में साड़ी पहने किसी को देखते ही लोग मुड़-मुड़कर उसका चेहरा देखने की कोशिश करते । सड़क पर भी बड़ी सावधानी से चलना होता, नहीं तो सिर पर पान की पीक आकर पड़ती । इस ओर मलाई-कुलफी की वेरीटोन आवाज की बड़ी कद्र है । वे लोग रात के दो-दो बजे तक सप्लाई नहीं कर पाते । और मटन करी, कलेजी !

दूर से मुफ़्ल की दूकान की रोशनी टिमटिमाती दिखलायी देती । काँच के केस से लाल-लाल तले हुए अंडे और केंकड़े पहचानने में रसिक लोगों को मुश्किल नहीं हो रही थी ।

लेकिन दूकान बन्द देखकर जूथिका को पता नहीं कैसा सन्देह हुआ ।

"अरे, मुफ़ल की दूकान तो बन्द लगती है ? क्या हुआ, भाई ?"

मुन्ती ने भी देखा । थाने से निकलकर दोनों पैदल आ रही थीं । दो रात हवालात में रहने से चेहरा एकदम सूख गया था । सच ही तो मुफ़्ल की दूकान बन्द थी । तभी पीछे से किसी ने सीटी दी ।

"मर नासपिटे, भूख के मारे जान निकली जा रही है, मरे को रंगबाजी

गूँज रही है !"

"गुफन की दूकान तो बन्द है, अब गायेगी क्या ? उधार और कौन खिलाएगा ?"

लेकिन पद्मरानी के फ्लैट के सामने पहुँचते ही और भी आश्चर्य हुआ। जूथिका भी अवाक् रह गयी। कुन्ती भी देखती-की-देखती रह गयी।

जूथिका ही कुन्ती को जबर्दस्ती घसीट लायी थी। नहीं तो कुन्ती आना नहीं चाहती थी। उसे घर की फिक्र थी। पिताजी को दमा का दौरा था। अकेली छोटी बहन पता नहीं क्या कर रही होगी। घर से बाहर आज तक कभी रात नहीं काटी थी। घर पहुँचकर क्या सफाई देगी, यही सोच रही थी। लेकिन यहाँ आते ही जैसे चौंक पड़ी।

फ्लैट के सामने पुलिस के दो सिपाही खड़े थे। कुछ राहगीर भी जमा हो गये थे।

पुलिस के सिपाही से ही पूछा, "यहाँ क्या हुआ है, दीवानजी ?"

पास खड़े एक आदमी ने उत्तर दिया, "उधर मत जाइए, चले आइए।"

"क्यों ? आखिर हुआ क्या है, कुछ कहिए न ?"

"अन्दर एक जनाना ने गले में फाँसी लगा ली है।"

सुनते ही कुन्ती थर-थर काँपने लगी। इसके बाद जूथिका का हाथ पकड़ दो कदम पीछे हट आयी। फाँसी लगा ली ? किसने ? गुलाबी ! वासन्ती ? दुलारी या बिन्दू ? या···और कोई ?

□ □ □

उसी दिन शाम से ही सबको सन्देह हो रहा था। कॉलोनी के आस-पास कुछ अनजान आदमी घूम रहे थे। ऐसे अनजानों को देखते ही न जाने क्यों सन्देह होता था। शरणार्थियों के बस जाने के बाद से तरह-तरह के लोग आते-जाते रहते थे। ईश्वर कयाल जिस दिन पहली बार स्यालदह स्टेशन से सभी लोगों को यहाँ लाया था, उसी दिन से।

रास्ते में किसी अनजान को देखते ही पूछते, "इधर क्या है ? किनसे मिलना है ?"

"जी, ऐसे ही घूम रहे है।"

"घूम रहे हैं, माने ? घूमने को और कोई जगह नहीं है ? कलकत्ता में इतना बड़ा मैदान पड़ा है वहाँ नहीं जाते, यहाँ क्या देखने आये हैं ?"

तभी से लोग सावधान हो गये थे। काफी बड़ी कॉलोनी बन गयी थी। रमेश काका ने ही ईश्वर कयाल को बुलाकर यहाँ बसाया था। फरीदपुर

गाँव उजड़ने पर सीधे यहाँ आकर जमे थे। नाम का ही कलकत्ता। कलकत्ता का कुछ भी तो नही। जीवन सामन्त, विष्टु सान्याल, सभी पिताजी को जानते है।

छोटे भाई के लिए ही ज्यादा फ़िक्र थी। सो वह यहाँ आते ही मर गया था। उस दिन कुन्ती खूब रोयी थी। पिताजी उसे विशु कहकर पुकारते थे। असली नाम था विश्वनाथ। तो उस विशु के मर जाने के बाद से ही मनमोहन बाबू का शरीर और मन दोनों ही टूट गये थे। रातोंरात जैसे बूढ़े हो गये थे। नशीयों की तरह बैठे-बैठे तम्बाकू पीते और खाँसते। खाँसते-खाँसते सामने आँगन में थूकते।

पुकारते, "बूड़ी, ओ बूड़ी!"

छोटी लड़की का नाम नही रखा था। इस बूडी के होने के बाद ही मनमोहन बाबू की पत्नी मर गयी थी। मनमोहन बाबू सोचते, जिस लड़की ने पैदा होते ही माँ को खा लिया उसका नाम रखना-न रखना बराबर है। इसी से वह बिना नाम की ही रह गयी। फिर भी पुकारने के लिए कोई नाम तो होना ही चाहिए। इसीलिए सहज और पुकारने में सीधा नाम रख दिया गया था। उसी बूड़ी ने अपनी दीदी की तरह ही बड़ा होना शुरू कर दिया है। दीदी की ही तरह शायद एक दिन बूढे बाप को खिलाएगी। और फिर? मनमोहन बाबू उसके बाद की बात नही सोच पाये।

कहते, "उसके बाद तो मैं रहूँगा नही।"

विष्टु सान्याल पूछता, "रहोगे नही माने?"

"रहूँगा नही माने रहूँगा नही। एक दिन आँखें उलटकर चित् पड़ जाऊँगा। और फिर—फिर चंडीतला के श्मशान में जलकर राख हो जाऊँगा। मुझे कन्धे पर ले जाकर फूँकने का वक्त भी शायद तुम लोगों को नही मिलेगा, विष्टु।"

कॉलोनी के दिन इसी तरह कटते। बूढ़ों में से कोई-कोई शतरंज की फड़ जमाते। और जवान लड़के इधर-उधर धन्धे की फ़िक्र में घूमते। कभी राइटर्स बिल्डिंग, कभी कार्पोरेशन ऑफ़िस—कोई भी जगह नहीं छोड़ते। उसके बाद रिफ्यूजियों को लोन देने का कानून पास हुआ। जो लोग पाकिस्तान छोड़कर वेस्ट बंगाल आये हैं, वे लोग जिससे घर बसा पाएँ, दूकान वगैरह करके पेट पाल सकें, उनके लिए रुपये की मंजूरी हुई। उस रुपये के पीछे झगड़ा-फसाद, मारपीट, सभी कुछ हुआ। एक-दो रुपये नहीं, हज़ारों रुपये। किसी को चार हज़ार, किसी को दस हज़ार रुपये मिले। मनमोहन बाबू

बूढ़े आदमी ठहरे। और सभी की तरह ही मनमोहन बाबू ने भी फ़ार्म दस्तखत कर दिये। जिस लड़के ने दस्तखत कराये, वह बोला, 'पन्द्रह दिन के अन्दर ही रुपये मिल जायेंगे। पन्द्रह दिन ही नहीं, पन्द्रह महीनों के बाद भी रुपया नहीं आया। गुप्तापाड़ा के हरिपद गुप्ता, उत्तरपाड़ा के ... सामन्त, विष्टु सान्याल—सभी को रुपया मिल गया। लेकिन मनमोहन बाबू के रुपये का कोई पता नहीं।

हरिपद गुप्ता ने कहा, "तुम एक बार खुद जाओ, मनमोहन, रुपये-पैसे के मामले में कहीं खुद गये बिना काम होता है ?"

आखिर में मनमोहन बाबू खुद ही गये। कुन्ती को साथ ले गये थे। ऑकलैंड हाउस, काफ़ी भटकने के बाद जब पहुँचे तो वहाँ के बड़े बाबू ने कहा, "आपको तो रुपया दिया जा चुका है। यह देखिये, आप यहाँ सही करके रुपये ले गये हैं।"

उसी दिन पहली बार कुन्ती का किसी बाहरी आदमी के साथ सरोकार पड़ा था। विशाल जगत् से प्रथम साक्षात्कार। उसी दिन जान पायी, उसके पास रूप है, उसे देख लोग सुखी होते हैं। उसके हँसने पर लोग खुश होते हैं। उसे देखकर लोग बैठने को चेयर देते हैं। उसी के लिए उसके बाप को भी बैठने के लिए कुर्सी मिली। उसे खुश करने के लिए दोनों को चाय पिलाई गयी।

बड़े बाबू ने पूछा था, "यही शायद आपकी लड़की है ?"

मनमोहन बाबू ने कहा, "इन बाल-बच्चों की वजह से बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। अकेला आदमी। इन लोगों की माँ भी नहीं है।"

बड़े बाबू के मुँह से 'आह' निकली। सहानुभूति की कितनी ही बातें निकलीं। वक़्त कितना ख़राब आ गया है, इस पर भी चर्चा हुई। बाप के दिमाग में लेकिन कुछ भी नहीं आया। सोचा, गवर्नमेंट ऑफ़िस में इतने अच्छे लोगों के होते हुए वह बेकार ही परेशान हुए। पहले से मालूम होता तो फ़रीदपुरवासी मनमोहन बाबू यहीं धरना देते।

मनमोहन बाबू ने पूछा, "तब फिर कब आऊँ ?"

बड़े बाबू की उम्र कोई खास ज्यादा नहीं थी। कोट-पैंट-टाई लगाये तीस-पैंतीस के बीच होंगे। बोले, "अरे क्यों, इस उम्र में आप क्यों तकलीफ़ करते हैं ? और कोई नहीं है जो आ सके ?"

कुन्ती ने कहा, "मैं आ सकती हूँ। मेरे आने से काम चलेगा ?"

बड़े बाबू खूब खुश हुए। "जरूर-जरूर ! क्यों नहीं ! यही तो होना

चाहिए। आपकी लड़की बड़ी हो गयी है। वही आपके लड़के का काम करेगी। आपकी लडकी की उम्र कितनी होगी ?"

मनमोहन वावू—"इस बार तेरहवाँ शुरू हुआ है।"

"नही पिताजी, इस अगहन में मैं सोलह की हो गयी हूँ।"

तो सोलह ही सही। बूढे बापने लड़की की उम्र कुछ कम करनी चाही। लेकिन अगर ज्यादा उम्र होने से काम निकलता है, गवर्नमेंट [illegible] देती है, तो सोलह ही सही, नुकसान क्या है ? उसी सोलह साल की [illegible] की ओर वह आदमी आँखे गडा-गडाकर देख रहा था। फिर कहा, "और क्या, बूढे बाप के लिए क्या इतना भी नही कर पायेगी ?"

"उन बाकी रुपयों के लिए ही तो अब रोज़ जाना पड़ता है।"

हाँ तो, ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू पकड़े गये तो बला से ! कुं
तब तक कलकत्ता शहर को घोलकर पी चुकी थी। कलकत्ता का कोने
कोना उसकी अँगुलियों पर था। किस सड़क के किस मोड पर किस
खड़े होने पर कौन पीछा करता है, यह भी मालूम था। ड्रामे के रिहर्सलं
नाम पर वे लोग क्या चाहते हैं, यह भी उससे छुपा नही था। और कलक
की किस गली मे एक घंटे के लिए कितने किराये पर एक कमरा मिल
है, यह भी उसकी जबान पर था।

तो उस ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू के पास पट्टी-पूजा होकर व
पद्मरानी के फ़्लैट में दीक्षा हुई। लेकिन पद्मरानी के फ़्लैट में वह इ
अरसे से आ रही है, इस तरह कभी भी पुलिस की हवालात मे नहीं रह
हुआ। इसी से शुरू-शुरू मे ज़रा डर लगा। पुलिस की बन्द काली गाड़ी
उसी के अन्दर उसे और जूथिका को ठूँस दिया गया।

जूथिका इस लाइन में मँजी हुई है। पहले हाड़काटा गली मे थी। अ
पद्मरानी के फ़्लैट में आ गयी है। उसे उतना डर नही लगता। इस तरह
कई बार उसे हवालात मे रहना पडा है। कभी शराब पीकर सड़क प
ऊधमबाज़ी करने के लिए तो कभी खून के जुर्म में। हर बार ही एक-दो
दिन रहकर छूट आयी।

वह कहती, "पगली, पुलिस से क्या डरना ? पुलिस क्या शेर है ?"

कुन्ती कहती, "वे लोग अगर जेल मे बन्द कर दें !"

"तो कर दें। पाँव पर पाँव रखकर आराम से खायेंगे और सोयेंगे।"

जूथिका इसी लाइन मे जन्मी, इसी में पली। यही उसका कर्म-जीवन
शुरू हुआ। उसकी माँ भी इसी लाइन की औरत थी। सब उसका देखा
हुआ है। हवालात भी देखी है और जेलखाना भी। इमली का पानी पिला
कर कितने ही दिन उसने अपनी माँ का नशा तोड़ा है। कितनी ही बार
उसकी माँ के कमरे मे शराबियों के बीच खून-खराबा हुआ है। छुरे चले
हैं। ये सब बचपन की बातें हैं। कितनी ही बार माँ के साथ उसे भी पकड़
कर जेलखाने ले गये। हाड़काटा गली मे माँ पैरो के पास लैम्प रखकर सड़क
की ओर ताकती खड़ी रहती थी। एक-एक नशेबाज़ निकलता और माँ
उसकी ओर उत्सुकता से देखती खड़ी रहती। बाद मे माँ की उम्र ढलने
लगी। कमरे मे कोई भी नही आता था। तब माँ चेहरे पर और भी ज़्यादा
पाउडर लगाती, और भी ज़्यादा क्रीम चुपडती, और भी ज़्यादा पान खाकर

ठ लाल करती ! किसी-किसी दिन छिपकर खूब रोती। जूथिका को सब द है।

कुन्ती ने पूछा था, "लेकिन तू क्यों आ फँसी इस लाइन में ?"

जूथिका ने कहा, "मेरी माँ ही तो मुझे ले आयी भाई, नहीं मैं तो क मोटर-ड्राइवर के साथ भाग गयी थी। उसने मुझसे शादी की थी।"

"फिर ?"

"इसके बाद मुकदमा चला। माँ मुकदमा करके मुझे छुड़ा लायी। नाकर एक किराये के कमरे में रख दिया। बोली, 'बुढ़ापे में मैं खाऊँगी क्या ?'"

पर जूथिका थी, इसी से दो दिन-रात किसी तरह कट गये। जूथिका पुलिस से भी नहीं डरती, न दारोगा से। सारे थाने को चीख-पुकार मचाकर सिर पर उठा लेती। हर किसी से जूझ पड़ती। ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ बकती।

दारोगा बाबू पूछते, "इतनी चीख-पुकार क्यों मचा रही हो ? क्या हुआ है ? चुप हो जाओ !"

जूथिका भी कम नहीं है। कहती, "खूब चिल्लायेंगे ! पुलिसवालों का हम क्या लेते हैं ? हमे गाली क्यों देंगे ?"

"तुम्हें कब गाली दी ?"

"गाली नहीं दी ? हमें छिनाल नहीं कहा ? हम छिनाल हैं ? हम लोग अगर छिनाल है तो तेरी माँ भी छिनाल, तेरी औरत भी छिनाल, तेरी चौदह पीढ़ी की सब छिनाल !"

उस अँधेरी हवालात में भी जूथिका जैसे शेरनी हो रही थी। लेकिन और ज्यादा ज़बाँ-दराज़ी नहीं चल पायी। पुलिस कान्स्टेबल ही जूथिका को पकड़कर मारते-पीटते कहीं ले गये, काफ़ी देर तक पता नहीं चला। जिस समय लौटी थाने की घड़ी में टन-टन तीन बजे थे। मार-मारकर जूथिका की पीठ का भुरता बना दिया था। सारी पीठ में काले-काले दाग़ पड़ गये थे। कुन्ती ने हाथ लगाकर देखा।

कुन्ती ने पूछा, "किस चीज़ से मारा ?"

"देखना, हरामज़ादों को कैसा मज़ा चखाती हूँ ? हैं किस होश में ? माँ के पास तो जाना ही होगा ! मुँहजले माँ से कितने रुपये खाते हैं, मुझे क्या मालूम नहीं है ? अपने मुहल्ले में लड़की या शराब के लिए क्या आयेंगे नहीं ? तब मुँह भुनभुनकर छोड़ूँगी ? मैं भी रंडी की बेटी हूँ, मेरे बदन पर

हाय उठाया ?"

क्या अजीब लड़की है ! कुन्ती की किसी ने बेइज्ज़ती नहीं [illegible]
भी कुन्ती को लग रहा था जैसे उसी की पीठ पर चाबुक पड़े हैं। [illegible]
पीठ को चाबुक की मार से दागी कर दिया है। जबकि जूथिका को [illegible]
परवाह ही नही थी। उसी हालत में खुर्राटे भरने लगी। इसके दूसरे [illegible]
सुबह जो कुछ उलटा-सीधा मिला भरपेट खा लिया। और उसी दिन [illegible]
के समय लोहे के किवाड़ खोलकर कहा, "जाओ, भाग जाओ !"

उन्हें अन्दर क्यों बन्द किया था, और क्या उनका कसूर था, यह [illegible]
नही बतलाया।

कहा, "जाओ, भागो ! बाहर जाओ !"

दोनो थाने से बाहर आ गयी। वहाँ पद्मरानी के फ्लैट के [illegible]
आकर देखा। वहाँ भी पुलिस मौजूद है। किसी ने फाँसी लगा ली है।

जूथिका ने कहा, "चल, मयनादी के घर चलें।"

"मयनादी कौन ?"

"पहले यहाँ थी। अब खुद के तीन मकान हैं। खूब पैसा कमा [illegible]
है। चल, वहाँ कई कमरे हैं। भरपेट खाने को मिलेगा, चिन्ता की कोई [illegible]
नही है।"

कुन्ती ने कहा, "नहीं, तू जा भाई। पिताजी की हालत खूब [illegible]
है, मेरे लिए परेशान हो रहे होंगे।"

कुन्ती अकेली ही बस मे चढ गयी। अपनी पूरी जिन्दगी की तस्वीरें
जैसे सिनेमा की तरह आँखो के सामने घूम रही थी। उस दिन की बात [illegible]
याद आयी—ऑकलैंड हाउस के उसी बड़े बाबू की। उस आदमी ने [illegible]
सब्ज़बाग दिखलाये थे ! आश्चर्य की बात है, आज कुन्ती को उसका [illegible]
भी याद नही है। कितनी बार कितने कमरे किराये पर लिये थे। उस आदमी
के तीन लड़कियाँ और एक लड़का था। घर में बहू थी। फिर भी [illegible]
लड़कियो का नशा था। उसी ने तो सब सिखलाया। उसी ने तो शुरू-शुरू
मे कहा था, "कुन्ती, तुम्हारे पास रूप है, तुम माथा ठंडा रखकर चलो।"

शुरू-शुरू मे उसी ने तो सावधान कर दिया था—"कलकत्ता सीधा-
सादा शहर नही है, कुन्ती। यहाँ धान बोने पर सरसों निकलती है। [illegible]
की मिट्टी मे नमक है। जिसने इस मिट्टी को छुआ, वही खारा हो गया।
उसका और कुछ भी नही होगा।"

कुन्ती ने उसकी कितनी खुशामद की थी, "मेरी पढ़ने-लिखने की [illegible]

छा है, बड़े बाबू । मुझे लिखना-पढ़ना सिखला दीजिये न। और लड़कियो तरह मैं भी आपके ऑफिस में नौकरी करूँगी।"

बड़े बाबू शायद उसे लिखना-पढ़ना सिखलाते। सचमुच बड़े बाबू उसको व प्यार करते थे। कहते थे, "उसके साथ शादी कर कलकत्ता शहर से हुत दूर जाकर गृहस्थी बसायेंगे।" उस समय कुन्ती ने बड़े बाबू की सारी तों का यकीन किया था। लेकिन अचानक ऐसी बढ़िया नौकरी हाथ से कल जायेगी, किसे पता था!

चार नम्बर बस छोड़कर दूसरी बस पकड़कर जादवपुर जाना होता । धर्मतल्ले के मोड़ पर कुन्ती दूसरी बस पकड़ने के लिए खड़ी थी। चानक पास से किसी ने पुकारा।

"कौन ? तुम ?"

वही, शंभू बाबू!

शभू भी अवाक् रह गया। कुन्ती भी अवाक् रह गयी।

"तुम्हें ढूंढते-ढूंढते कालीपद ने सारा कलकत्ता छान मारा। उस दिन तुम्हारे घर गया था। आजकल तुम लोग कहाँ हो ? कौन-से मुहल्ले में ?"

कुन्ती ने कहा, "आप लोगों का प्ले तो अब होगा नहीं।"

"क्यों ? तुमसे किसने कहा ?"

"उस दिन तो आप लोगों ने मारपीट शुरू कर दी थी! इस तरह करने से मैं वहाँ कैसे आ सकती हू, आप ही कहिये ? आपके दोस्त ने आपके सामने ही तो इतना अपमान किया! इसके बावजूद आप मुझसे वहाँ जाने को कह रहे है ?"

"लेकिन इस समय कहाँ से आ रही हो ?"

कुन्ती ने कहा, "प्ले था।"

"कहाँ पर ?"

कुन्ती ने बिना किसी सोच-विचार के कहा, "आसनसोल!"

"इसी से चेहरा बड़ा सूखा-सूखा लग रहा है। कौन-सा प्ले था ?"

"सिराजुद्दौला।"

कहकर कुन्ती रास्ते की ओर देखती रही।

शभू ने कहा, "हम लोगों के ऑफिस के क्लब में भी 'सिराजुद्दौला' स्टेज करने की इच्छा थी। लेकिन बाद में कैंसिल कर दिया। मन के मुताबिक 'आलिया' नहीं मिली। अच्छा, तुम श्यामली को पहचानती हो ? तुम लोगतो बकुलबागान क्लब में एक साथ प्ले करती थीं। उसी को 'आलिया'

का पार्ट दिया गया था। उसके लड़का होनेवाला है…"

कुन्ती ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

शंभू ने कहा, "तुम अगर काम चला दो तो कहो, फिर मैं करूँ।"

"फिर कभी बात करूँगी। सारे दिन रेलगाड़ी में सफ़र किया है। फटा जा रहा है। लगातार तीन नाइट प्ले करते-करते टायर्ड हो गयी।"

"बाद में कब मुलाकात करूँ? कब और कहाँ मिलोगी? बताओ"

"क्यों? मेरा क्या घर-बार नहीं है? घर आकर ही मिलियेगा, के समय आने से ठीक रहेगा।"

"तब अपना नया पता दे दो।"

"नया पता माने! मैं जहाँ रहती थी, वहीं हूँ। कालीपद बाबू तो घर जा चुके हैं।"

"अरे वाह! कालीपद तुम्हारे घर गया था। वह तो कह रहा था तुम लोगों का घरबार तोड़-फोड़कर मैदान कर दिया है।"

"तोड़कर मैदान कर दिया है? किसने?"

शंभू को और भी आश्चर्य हुआ। बोला, "तुम्हें कुछ भी पता नहीं है तुम आसनसोल कब गयी थी? उसने तो कहा कि वहाँ के शरणार्थियों की बस्ती तोड़कर गुंडों ने मिट्टी में मिला दी है। तुम्हें पता नहीं है? कुछ नहीं सुना?"

कुन्ती भी जैसे आसमान से गिरी।

शंभू ने फिर कहा, "उसके दूसरे दिन सुबह कालीपद दुबारा वहाँ गया वह देख आया है। वहाँ झुंड-की-झुंड पुलिस के सिपाही जमा थे। पुलिस के पहरे में चहारदीवारी चिनी जा रही थी।"

कुन्ती के ऊपर जैसे बिजली गिरी। तब उसके पिताजी? बूढ़ी? लोग कहाँ गये? उसी दिन तो डेढ सौ रुपये खर्च कर टीन का छप्पर डलवाया था। पिताजी को दमा! वैद्यजी के यहाँ से जो दवा लायी थी उसमें कितने रुपये लगे थे! घर टूटने पर वे लोग कहाँ हैं? और विष्टु काका साधू काका, वे लोग…

अचानक जादवपुर की एक बस आते ही कुन्ती उसमें चढ़ गयी। इसके बाद उससे और नहीं सुना गया।

शंभू भी हट आया। आजकल की छोकरियाँ बड़ी चालाक हो गयी हैं हर ओर से कॉल मिल रहा है न! दोनों हाथ रुपये लूट रही हैं। और उन लोगों का भी अजीब हाल है। लड़कियों के बिना प्ले ही नहीं होगा। तब

[स]ाँप के पाँच पैर देखने पड़ रहे हैं। ये लड़कियाँ !

शंभू और नही रुका। उसकी भी बस आ गयी थी।

□ □ □

उसी विनय से फिर मुलाकात हो गयी।

"क्यों भाई सदाव्रत, क्या हाल है ?"

"विनय !" सदाव्रत ने ब्रेक लगाकर गाड़ी रोक ली। विनय पास आ[कर ख]ड़ा हुआ। सदाव्रत ने पूछा, "कहाँ जा रहा है ? नौकरी मिल गयी क्या?"

विनय कोट-पैंट पहने था। टाई लगा रखी थी। चमचमाता जूता। [पि]छले दिन बदन पर धोती और शर्ट थी। बोला, "आज एक जगह [इ]ण्टरव्यू है, भाई ! जरा मुझे अपनी गाड़ी से छोड़ देगा ?"

विनय गाड़ी मे बैठ गया। बोला, "डलहौजी के मोड़ पर उतार देने [से] काम चलेगा। तू कहाँ जा रहा है, ऑफिस ?"

सदाव्रत ने कहा, "नही, तू मेरा एक काम करेगा ? कोई मकान बतला [स]कता है ? दो कमरे होने से ही काम चलेगा।"

"तुझे मकान की क्या जरूरत आ पड़ी ?"

सदाव्रत ने कहा, "अपने लिए नही। मेरे एक प्राइवेट ट्यूटर थे, उन्ही [के] लिए चाहिए।"

विनय ने कहा, "अरे, छोड़ भी। भगवान की जरूरत हो तो मिल [स]कते हैं—मकान कहाँ मिलेगा ? लेकिन तेरा तो खुद का मकान है !"

विनय पहले कितना अच्छा लड़का था ! आश्चर्य की बात है, वह भी [बे]कार है। सदाव्रत गाड़ी चलाते-चलाते ही विनय की बातें सुन रहा था। [ए]क दिन यह विनय ही कॉलेज में जैसे छाया रहता था। कितनी बार यूनियन के इलेक्शन में खड़ा हुआ। प्रेसिडेंट या वाइस-प्रेसिडेंट, जाने क्या [ब]ना था। उसी बहाने परिचय हुआ था और उसी बहाने पहचानता था। [त]ब सभी को विनय का भविष्य उज्ज्वल ही दिखलायी देता था। फ़ाइनल [के] समय रिजल्ट भी अच्छा ही रहा। अब बुझा-बुझा-सा लगता है। बीच-बीच में सड़क या रास्ते पर मुलाकात होने पर ऐसा ही लगता है।

विनय ने कहा, "साढ़े दस बजे इण्टरव्यू शुरू होगा। इस समय साढ़े नौ बजे हैं।"

तभी फिर अचानक बोला, "तू मजे में है। तुझे ऑफिस भी नहीं जाना होता। ऑफिस जाने की जरूरत भी नहीं है।"

"यह तेरे मन का ख्याल है। इस दुनिया में कोई भी सुखी नहीं है।

कम-से-कम इस कलकत्ता में कोई सुखी नहीं है।"

"तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

सदाव्रत ने कहा, "तू अगर यह नौकरी पा जाये तो तुझे पता कि मैं झूठ कह रहा हूँ या सच। देखेगा नौकरी पाने से पहले जो हा थी बाद में भी वही रहेगी। काफी देखने के बाद मैं यह बात कह रहा हूँ।

"तेरा मतलब है, तुम लोग सुखी नहीं हो ?"

"सिर्फ मैं ही क्यों, कोई भी सुखी नहीं है। यह जमाना आराम बाद है।"

विनय ने शायद यह सब पहले कभी नहीं सोचा था। इसीलिए थो अवाक् हुआ। हमेशा मन लगाकर कॉलेज की टेक्स्ट-बुक्स पढ़ता। सब याद करता। नोट पढ़ता। प्रोफेसर के मुँह से निकली वाणी को एक चित्त होकर निगलता। परीक्षा की कॉपी में उगल देने के लिए सब महीनों तक जबानी याद किया ! विनय को नहीं मालूम कि गाड़ी, नौक इस सूट और टाई से मन का न्यूट्रिशन नहीं होगा।

"तब क्या कहना चाहता है कि दोनों ओर जो ये लम्बी-लम्बी गाड़ि खड़ी हैं इनके मालिक सुखी नहीं हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "हो सकता है कि वे लोग डनलपिलो के गद्दे प सोते हों। हो सकता है कि सारे दिन दसियों नौकर उनकी सेवा करने हाथ बाँधे खड़े रहते हों। हो सकता है कि तीन करोड़ रुपया उनका बैं बैलेन्स हो। कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन पता लगाकर देखो मालूम होगा कि बिना स्लीपिंग पिल्स खाये उन्हें नींद नहीं आती। रेफ्रिजरे में रखे पपीते को खाने पर भी उन्हें खट्टी डकारें आने की शिकायत रह है।"

"यह तो जिन लोगों के पास कुछ नहीं है, उनके लिए कन्सोलेशन है यह सोचकर ही तो गरीब जिन्दा रहते हैं। इसी से उन्हें शान्ति मिलती है।"

सदाव्रत तनिक विमन-सा बोला, "गरीब लोगों के लिए तो शान्ति ही नहीं। उन लोगों की तो बात ही छोड़ दे।"

"तब तेरे पिताजी ? तेरे पिताजी भी अनहैपी हैं ?"

सदाव्रत हँसने लगा। बोला, "जीवन में एम्बीशन होने पर हैपीनेस आ ही नहीं सकती।"

विनय ने भी बात हँसकर उड़ा दी। बोला, "तू फिलॉसफी में एम० ए० करता तो शायद ज्यादा अच्छा होता।"

"खूब कहा। पता है, मॉडर्न वर्ल्ड के लिए फिलॉसफी की सख्त जरूरत
,

विनय को यह प्रसंग खास अच्छा नहीं लग रहा था। बोला, "ये सब जाने दे। मैं कैसा लग रहा हूँ, कह ? स्मार्ट लगता हूँ या नहीं ?"
सदाव्रत ने घूमकर विनय को सिर से पैर तक देखा। बोला, "कहाँ ! भी तो नहीं देख पा रहा ?"
"यह नया सूट बनवाया है, इण्टरव्यू के लिए।"
"अच्छा !"
सदाव्रत ने सूट को लेकर कभी भी सिर नहीं खपाया। हमेशा से ीधी-सादी पोशाक ही पहनता आया है।
विनय ने अचानक पूछा, "क्या भाव का होगा कह तो ?"
सदाव्रत ने फिर से एक बार देखकर कहा, "क्या पता, होगा यही कोई र-पाँच रुपये गज !"
"हट, तुझे कुछ भी आइडिया नहीं है। तेईस रुपये गज है !"
सदाव्रत के लिए जैसे तेईस रुपये वैसे ही चार-पाँच रुपये। पूछा, "कुल लाकर कितना पड़ा ?"
"मेकिंग चार्ज मिलाकर डेढ़ सौ। पर मेरा एक पैसा भी नहीं लगा।"
सदाव्रत अवाक् रह गया। डेढ़ सौ रुपये की चीज विनय को ऐसे ही ल गयी ! पूछा, "क्यों ? पैसा क्यों नहीं लगा ?"
विनय ने गर्व से कहा, "एक धेला भी खर्च नहीं हुआ। एकदम [illegible] !"
"इसके माने ? किसी ने दिया है ?"
"अरे नहीं, इंस्टालमेंट में लिया है। हर महीने पाँच-पाँच रुपये देने गे। मतलब एकदम फ्री !"
असल में फ्री नहीं है। सदाव्रत को लगा, [illegible], उधार। न्ही-मन हँसने पर भी सदाव्रत हँसा नहीं। [illegible] सदा-त हँसे या उस पर दया करे, कुछ भी [illegible]।
विनय का डलहौजी स्क्वायर मोड़ [illegible]। [illegible] उतर गया। उतरने के बाद विनय के लिए शुभेच्छा [illegible] था। उसे नौकरी मिलेगी। कितनी आशा के साथ [illegible] आ रहा है। उसे उत्साहित करना भी जरूरी था। [illegible], उसके सूट [illegible] र प्रशंसा करनी चाहिए थी। [illegible]। विनय [illegible] ही उसे एक बात याद आयी। [illegible]

हुआ है। और सिर्फ़ कलकत्ता ही क्यों ? जो कुछ भी आंखों के
सभी-कुछ फ़ो है, सभी-कुछ उधार का है। इसी उधार या लोन से
ही तो इंडिया टिका है। किसी ने अमेरिका से उधार लिया है तो
ने रूस से। सभी जैसे उधार का जीवन और उधार का यौवन लिये
रहे हैं। सामने एक लड़की ऑफ़िस जा रही थी। जल्दी-जल्दी सड़क
कर रही थी।

सदाव्रत ने ब्रेक लगाकर स्पीड कम कर दी।

आश्चर्य ! सदाव्रत ने उसे सिर से पाँव तक अच्छी तरह देखा।
कुछ उधार। सिर का जूड़ा उधार का लिया, होठों की लाली उधार
छाती का उभार भी उधार लिया। जिस दिन यह उधार चुकाना होगा
लोगों के पास बाकी बचेगा ही क्या ? इनके पास कौन-सा कैपीटल है
सदाव्रत ने फिर से एक्सीलेटर दबाया। गाड़ी ने फिर स्पीड ली।

□ □ □

जिस समय फड़ेपुकुर पहुँचा, सदाव्रत तब तक नहीं जानता
लेकिन गाड़ी रोककर दरवाज़े पर नज़र जाते ही देखा।

दरवाज़े पर एक बड़ा ताला झूल रहा था।

केदार बाबू ने क्या मकान छोड़ दिया है ? घर छोड़कर चले गये
सड़क पर खड़ा-खड़ा सदाव्रत इधर-उधर देखने लगा। मुहल्ले
किसी आदमी से पूछने पर शायद पता लगेगा कि ये लोग कहाँ गये
सड़क पर सब ऑफिस जानेवाले लोग थे। सदाव्रत पड़ोस के एक म
का दरवाज़ा खटखटाने लगा। शायद मकान-मालिक ने भगा दिया है

"कौन ?"

एक बूढ़े-से आदमी के आते ही सदाव्रत ने पूछा, "सामने के इस म
में केदार बाबू रहते थे। वे लोग कहाँ चले गये हैं ?"

उस आदमी को शायद पहले से ही अच्छा नहीं लग रहा था। इन
इस सवाल से जैसे और भी चिढ़ गया। बोला, "नहीं साहब, मुझे
मालूम। और किसी से पूछिये !"

कहकर शायद दरवाज़ा बन्द करने जा रहा था, तभी सदाव्रत की
पर नज़र पड़ी। इसके बाद उसने सदाव्रत को अच्छी तरह से देखा।
"यह गाड़ी क्या आपकी है ?"

"जी हाँ !"

"तब बाहर क्यों खड़े हैं ? छि-छि ! अन्दर आइये न ! मेरे

ा कमजोर हैं न !"

फिर अन्दर की ओर किसी को सम्बोधन कर चिल्लाने लगे, "अरे ातिक, यहाँ की चेयर कहाँ गयी ? चेयर ले आ !"

सदाव्रत को यह सब अच्छा नही लग रहा था। गाडी का मालिक है, सलिए इतनी खातिर ! उसने कहा, "किस गाडी की बात कर रहे हैं ?"

"वही जो सामने खड़ी है ?"

"मैं जो बात पूछ रहा हूँ उसका जवाब दीजिए न ! गाड़ी मेरी है या ौर किसी की, यह जानकर आप क्या करेंगे ?"

"गाड़ी आपकी नही है ? मैंने सोचा था···"

नौकर तब तक चेयर लेकर आ पहुँचा था। लेकिन उन सज्जन ने और वक्त बरबाद करना ठीक नही समझा। धड़ाम से दरवाज़ा बन्द कर दिया। ऐरे-गैरे लोग जब-तब आकर दरवाज़ा खटखटायेंगे और उन्हें आकर खोलना होगा ! नौकर से कहा, "देख, कोई ऐसा-वैसा आदमी दरवाज़ा खटखटाये तो खोलना मत ! सावधान, आदमी देख-सुनकर दरवाज़ा खोलना। समझा ?"

□ □ □

कई दिनों से सदाव्रत पिताजी के साथ कुछ बातें करने की कोशिश कर रहा था। शिवप्रसाद बाबू को इन दिनों जैसे बात करने की फ़ुरसत ही नही थी। घर आते, फिर निकल जाते। न जाने कहाँ-कहाँ जाते। और अगर घर में होते भी तो टेलीफोन ! पूजा करते समय भी टेलीफ़ोन आता, खाना खाते समय भी टेलीफोन। किसी-किसी दिन तो ऑफ़िस भी नही जा पाते। ऑफिस पहुँचते ही उसी समय गाड़ी लेकर निकल जाते। चारों ओर फ्लड आया है। आरामबाग, बर्दवान, सब बाढ़ में डूब चुके हैं। सोशल वर्कर लोग सेवा करने में जुटे है। आसाम, वेस्ट बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश—कोई भी जगह बाकी नही थी। अगले साल ही इलेक्शन है। पिताजी के कामों का जैसे अन्त नहीं है।

शिवप्रसाद बाबू खाना खाने उसी ठाठ के साथ बैठते।

इसी एक माने में शिवप्रसाद बाबू शौकीन आदमी है। खायेंगे अकेले ही, लेकिन आस-पास सभी को होना चाहिए। उनके लिए पूजा करना अगर जीवन का ज़रूरी काम था तो खाने के मामले में भी वही हाल था। खाना खूब ज्यादा खाते हो यह बात नही थी। लेकिन खाते समय हाजिर रहना सभी के लिए ज़रूरी था।

"यह किस चीज़ की तरकारी है ?"
वैकुण्ठ महराज तैयार ही बैठा होता, कहता, "जी, लौकी की !"
सब तरकारियाँ चखना जरूरी था। चारों ओर कटोरियाँ सजी हैं
चाहिएँ। और लाऊँ या नहीं, यह भी बीच-बीच में पूछते रहना चाहिए
मन्दा कहती, "लौकी की तरकारी दूँ ज़रा-सी ?"
लेकिन काफी देर तक जवाब देने की फुरसत नहीं होती। खाने
जगह के पास ही बद्रीनाथ टेलीफ़ोन की लाइन फिट कर देता। खाते
ही रिसीवर उठा लेते। कहते, "इस समय कौन है रे बाबा !"
बस खाना पड़ा रहता और बातें चलती रहती। बात करते बीच
में चिल्ला पड़ते, कभी हँसते, तो कभी सिर्फ 'हूँ-हाँ' करके ही रह जाते।
हाथ को तरह-तरह से हिलाते। कोई कुछ भी नहीं समझ पाता। कहीं
कांग्रेस, कहाँ की फ्लड रिलीफ कमेटी, कहाँ की मीटिंग, कहाँ के नर
बड़े लोगों के नाम। मन्दाकिनी, वैकुण्ठ, सभी चुपचाप खड़े रहते।
प्रसाद बाबू कब टेलीफ़ोन रखें, इसी की इन्तजार में।
लेकिन एक बार रुकने पर क्या फिर ठीक से खाना खाया जाता
खड़े होते।
मन्दा पूछती, "यह क्या, खाओगे नहीं ?"
शिवप्रसाद बाबू खड़े होकर कहते, "खा तो लिया। बाकी
और क्या खाऊँगा !"
सब लोग समझ जाते शिवप्रसाद बाबू इस समय कुछ सोच रहे
कुछ भी नहीं सुनेंगे। बद्रीनाथ भी रेडी रहता। कई काम निपटाने हैं
जल्दी से टेलीफ़ोन का प्लग निकालकर मालिक के कमरे में
उसे बहुत काम करना होगा। मालिक की फाइलें, कागज वगैरह
ले जाने होंगे।
शिवप्रसाद बाबू कहते, "कुंज से गाड़ी बाहर करने को कह,
ज़रा जल्दी !"
तब मन्दाकिनी आकर कमरे में खड़ी होती। इधर-उधर की
छोटी चीजें ठीक करना, कपड़े पहनना, इसी के बीच दो-चार बातें।
प्रसाद बाबू के साथ बात करने का और वक्त नहीं मिलेगा।
कहाँ चल रहा है। शिवप्रसाद बाबू की उम्र जैसे-जैसे बढ़ रही है,
उतना ही काम बढ़ रहा है।
जल्दी-जल्दी आफिस पहुँचते ही शिवप्रसाद बाबू की पुकार होती।

लिये हिमांशु बाबू शायद पिछले दिन से ही रेडी रहते।

"और वे ब्लू-प्रिण्ट्स ?"

वे भी हिमांशु बाबू के हाथ में ही थे। आगे बढा दिये।

"गोलक बाबू किस समय आयेंगे ?"

"वह चले गये हैं। आपके लिए वहीं प्रतीक्षा करेंगे।"

सारे कागज़ और फाइलें लेकर शिवप्रसाद बाबू उठ खड़े होते। बद्रीनाथ भी तैयार रहता। उसे भी साथ जाना है। अचानक कोई बात याद आती। पूछते, "और उन लोगो की कोई खबर मिली ?"

इतना इशारा काफ़ी होता। हिमांशु बाबू कहते, "जो खबर मिली है, वह तो फेवर मे नही लगती। आज का 'स्वाधीनता' देखा है ?"

"हाँ,देखा है। तुम्हें उन लोगोंका कुछ पता लगा या नहीं,यह बताओ?"

"जी, वे लोग तो सब छिटककर इधर-उधर हो गये है; लेकिन उन लोगों के पीछे काफी लोग हैं। इधर डॉ० विधानचन्द्र राय के पास दरखास्त गयी है। एक कॉपी सुना है, पंडित नेहरू के पास भी भेजी है।"

"लेकिन लोकल थाने की पुलिस का कहना क्या है ?"

"वे लोग षड्यन्त्र कर रहे हैं। सब मिलकर हम लोगों के वहाँ हमला करने की तैयारी कर रहे हैं। सुना है, बिना खून-खराबी किये नही छोड़ेंगे।"

शिवप्रसाद बाबू कुछ देर चुप रहे। पता नहीं मन-ही-मन क्या सोचने लगे। खद्दर की चद्दर कन्धे से खिसक रही थी, उसे कन्धे पर ठीक किया। बोले, "इधर मिस्त्रियों का काम कहाँ तक बढ़ा ?"

"वे लोग तो रात-दिन काम कर रहे हैं। काम में कमी नहीं है। दिन के वक़्त एक ग्रुप, फिर रात को दूसरा। चारों ओर की कम्पाउंड-वॉल कल तक पूरी हो जायेगी।"

शिवप्रसाद बाबू ने अचानक पूछा, "हाँ तो, इन लोगों ने डॉ० राय के पास दरखास्त भेजी है। तुम्हें ठीक-से मालूम है ?"

"जी हाँ। डॉ० विधान राय को दरखास्त भेजी है, और उसकी नक़ल पंडित नेहरू के पास दिल्ली भेजी है।"

"अच्छा, ज़रा डॉ० राय की लाइन देने को कहो !"

कहकर रिसीवर उठाने जा ही रहे थे कि उससे पहले ही टेलीफोन की घंटी बज उठी। शिवप्रसाद बाबू ने रिसीवर उठाकर कहा, "हलो !"

उस ओर की आवाज सुनते ही बोल उठे, "अरे गोलक बाबू, मैं रेडी हूँ। अभी आ रहा हूँ। पेपर्स साथ ही ला रहा हूँ, समझा, समझा।"

कहकर रिसीवर रख दिया। फिर कहा, "रहने दो। डॉ॰ राय
लाइन की अव जरूरत नही है। मैं जा रहा हूँ। वद्रीनाथ !"

वद्रीनाथ ने सामने आकर कहा, "जी, हुजूर !"

"कुंज कहाँ है ? उसे कहा है ?"

"कुंज तो गाड़ी लिए खड़ा है।" वद्रीनाथ ने कहा।

शिवप्रसाद वावू और नही रुके। ऑफिस से निकलकर लिफ्ट की ओ
जल्दी-जल्दी वढने लगे।

□ □ □
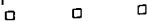
सुफल की दूकान के पटरे फिर से खुल गये। सिर्फ़ एक ही दिन
झमेला था। सही माने में एक रात का ही। पुलिस और दारोगा हड़वड़
हुए आये। पद्मरानी ने ही खबर दी थी।

पद्मरानी ने कहा था, "अरे, सुख क्या सबसे सहा जाता है ? नहीं सह
जाता। कहाँ किस गांव में पड़ी थी। गोवर पाथना पड़ता था। वर्तन
माँजने पडते थे। मैंने पहनने को साड़ी दी। अपने कमरे में पास सुलाय
लेकिन नसीब ही खोटा हो तो मैं क्या कर सकती हूँ। मैं जितना कर सकी,
मैंने किया।"

पद्मरानी के फ़्लैट की लड़कियों से ये सब बातें कहना बेकार है। पुलिस
का आना भी उनके लिये नयी वात नही है। पुलिस आती। किसी-किसी
को पकड़ ले जाती। दो दिन हवालात में रखती। फिर छोड भी देती।
क्यो पकडती और क्यो छोड़ती, यह उन लोगों को नही मालूम। यही
नियम था। जाने कव से यह नियम चला आ रहा है। जव यह गुलावी नहीं
थी, यह जूथिका नही थी; यह बिन्दू, टगर, दुलारी, वासन्ती कोई भी नहीं
थी; तव भी कोई-कोई दिन पुलिम और दारोगा आते। आकर छा
मारते।

यहाँ तफ़रीह करने आए वावू लोग भी नजरवन्द होते। उन सुन
यहाँ गुण्डों का और भी ज्यादा दवदवा था। न कहना, न सुनना। भले घ
के लडकों को पकड ले जाते। फ्लैट के पिछले हिस्से में एक दरवाजा है।
पद्मरानी उन लोगों को वहीं से गायव कर देती। वेचारे चोरी-छिपे आ
होते। अचानक शोरगुल सुनकर डर जाते। एक वार वात फैल जाने प
उन लोगों के सिर पर भी कलंक और पद्मरानी के फ्लैट की भी वदनामी।
पद्मरानी दरवाजा खोलकर कहती, "तुम लोग यहाँ से निकल जाओ, इ
इस गली से निकलकर वायीं ओर सड़क मिल जायेगी।"

असल में कोई कसूरवार हो या न हो, चार पैसे देते ही सब ठीक हो ता। रुपये मे चवन्नी उन लोगों की बँधी थी।

यह रकम यहाँ के थानेदार की ऊपरी आमदनी थी। जो दारोगा एक र इस मुहल्ले में आता है वह और कहीं भी ट्रांसफर नहीं कराना चाहता— सिस्टेंट कमिश्नर या डिप्टी कमिश्नर बनाने पर भी। इस थाने में एक- ; दारोगा आता और पाँच-सात साल के अन्दर कलकत्ता शहर में तीन-चार ान खड़े कर लेता। बहू के बदन पर गहनों का पहाड़ लद जाता। ज़मीन- दाद खरीदकर वे लोग लखपति हो गये और बाद में नौकरी भी छोड

पद्मरानी ने ऐसे कितने ही दारोगा देखे हैं। थाने और पुलिस भी देखी इसलिए उसके लिए डरने की बात नहीं है। डरती भी नहीं है। पुलिस ाते ही ज़ोर-ज़ोर से रोना-पीटना शुरू कर दिया।

पुलिसवालों ने कितने ही सवाल किये। कुसुम का नाम और पता : किया। और भी कितनी ही पूछताछ की। कुसुम की उम्र कितनी थी— ारह या सत्रह ? सिर के ऊपर एक कडे में इलेक्ट्रिक पंखा लटक रहा । उसी से बिस्तरे की चादर बाँधकर गले में फाँसी लगा ली थी।

दारोगा ने पूछा, "उसके कमरे में आज कोई आया था ? आज दोपहर समय ?"

"नहीं भाई ! इसके कमरे में मैं किसी को घुसने नहीं देती थी।"

"क्यों ? घुसने क्यों नहीं देती थी ?"

"नहीं भाई ! उसने कहा था, वह इस लाइन मे नहीं रहेगी, शादी रेगी। सभी को क्या यह सब अच्छा लगता है ? किसी-किसी को तो ादी करके गृहस्थी बसाने की इच्छा होती ही है !"

"कल कोई आया था ?"

"नहीं, छुटपन से आज तक किसी के भी साथ मेरी लड़की ने रात नहीं बितायी थी। मैंने बिताने ही नहीं दी। कहा था—तुझे मैं बड़े घर में याहूगी। अरे बेटा, मैं तो उसके लिए लड़का ढूढ रही थी।"

"पर इतनी लड़कियों के रहते उसी की शादी क्यों करना चाहती ी ?"

"वह अच्छी लड़की जो थी, बेटा ! जिस घर मे जाती उसे रोशन कर देती।" इसके बाद पुलिस ने पूछा, "उसके माँ-बाप कोई है ? अपना कहने को उसका कोई है ?"

वाला आया, मलाई-कुलफीवाला भी आया, आलू-टिकिया ... भी आया। लेकिन आकर देखा सुफल की दूकान बन्द है। देखा ... के फ्लैट का बड़ा दरवाज़ा बन्द है। बड़ी डरावनी रात थी। और ... तरह कोई भी सजा नहीं, माथे पर कुंकुम की बिन्दी नहीं लगायी, ... किसी ने घुंघरू नहीं बाँधे। बदन धोना, साबुन लगाना, कुछ भी नहीं हुआ पद्मरानी के फ्लैट में उस रात पूरा उपवास चला। किसी भी कमरे हारमोनियम के साथ आवाज़ नहीं आयी—'चाँद कहे ओ चकोरी, ... नैनों से न देख।'

बीच-बीच में ऐसा होता था।

फिर भी पद्मरानी सभी को अभय देती, "डरने की कोई बात नहीं है बेटा, मैं तो जिन्दा हूँ! मैं तो अभी तक मरी नहीं हूँ। जिस दिन मरूँगी उस दिन ऊपरवाले को बतलाकर मरूँगी।"

बिन्दू बोली, "सब कह रही हैं कि सभी आज एक साथ एक कमरे में सोयेंगी।"

"तो सोओ न! बिना भरतार फूल-सेज का शौक क्यों?"

यह मज़ाक का समय नहीं था। फिर भी सारी लड़कियाँ खिलखिला उठीं।

हँसी सुनकर पद्मरानी ने कहा, "हँसो मत, बेटा। इतनी उम्र हो ... है, बहुत-कुछ देखकर ही कह रही हूँ। भरतार रोटी नहीं देगा, रोटी देगी यह देह। देह होने पर बहुत-से भरतार आ जुटेंगे। बहुत-कुछ मिलेगा।"

ज़रा रुककर फिर कहा, "हाँ, तुम लोगों ने खाना क्या पकाया है?"

वासन्ती ने जवाब दिया, "आज कुछ भी नहीं पकाया, माँ!"

"क्यों बेटी, खाने के साथ कैसा गुस्सा? इस मरे पेट के लिए ही तो रोटी है, बेटा। नहीं तो क्या रोटी पेट ढूँढ़ने निकलेगी?"

एक ही तो रात। लेकिन उस एक ही रात को गुज़ारने के लिए जैसे नये सिरे से सब-कुछ हुआ। सारे फ्लैट की धुलाई-पुंछाई हुई। दरबान ने फिर से दरवाज़ा खोला। सुफल ने पता नहीं कहाँ रात काटी थी। फिर आ पहुँचा। दरबान ने पूछा, "क्यों रे जग्गू, मुर्दा ले गये कि पड़ा है?"

हठात् पीछे घूमकर देखा, जूथिका! वह भी आ पहुँची थी।

सुफल ने पूछा, "सब सुना न?"

सारी रात मयनादी के घर सोयी थी। एक दिन वह इसी वातावरण में पैदा हुई थी। यहीं पली, बड़ी हुई। पुलिस के नाम से भी डरती नहीं।

न-खराबी भी उसके लिए नयी चीज नहीं है। फिर भी डर गयी। र अगर किसी झमेले में फँस जाये ! पूछा, "कौन मर गया है रे, सुफल ?"

पद्मरानी ने ऊपर से देख लिया। उसे देखते ही जवाब के लिए और ही रुकी। सीधी माँ के पास जा पहुँची।

"हरामजादों ने कब छोड़ा तुझे ?"

"कल रात को।"

"उस हरामजादे दारोगा की नौकरी खाकर तब पानी पीऊँगी मैं। किन टगर ? टगर कहाँ गयी ? वह नहीं आयी ?"

"वह तो अपने घर चली गयी, माँ, उसका बाप बीमार है। मैं और हाँ जाती, इसी से मयनादी के घर सोने चली गयी।"

"तो हवालात में हरामजादे ने तेरे साथ क्या किया ?"

जूथिका ने साड़ी हटाकर पीठ दिखायी। पद्मरानी ने देखा, लेकिन ोली कुछ नहीं। इसके बाद सीधे खाट पर जाकर टेलीफोन का चोंगा उठाया। पता नहीं, किससे क्या-क्या कहा।

पद्मरानी ने रिसीवर उठाकर कहा, "लेकिन ये लोग मुझे हमेशा ऐसे ही तंग करते है। यह हालत रहेगी तो मैं कैसे काम चलाऊँगी ? मेरी लड़कियों ने क्या कसूर किया है ? सोनागाछी मे तो और भी कितने ही फ्लैट हैं। ऐसी अच्छी लड़कियाँ कहाँ मिलेंगी ? कोई कह दे कि मेरी किसी लड़की ने सडक पर खड़े होकर किसी की ओर आँख भी उठायी हो ! मैं उसे चीर-कर न फेंक दूँगी !"

फिर कुछ देर चुप रहीं।

फिर कहने लगी, "मै कहती हूँ मेरे थाने में ऐसे लोगों को रखते ही क्यों हो ? उसकी बदली नही कर सकते ?"

पद्मरानी टेलीफोन पर बात कर रही थी और बाहर खड़ी-खड़ी सभी सुन रही थी। पद्मरानी को इतनी कड़ी बातें बोलते पहले किसी ने भी नहीं सुना था।

"लेकिन अविनाश बाबू को क्यों हटाया ? अविनाश बाबू तो बड़े भले आदमी थे। नौकरी मे तरक्की हुई तो जितना कूड़ा-करकट मेरे सिर पर। यह नहीं कहूँगी ? टेलीफ़ोन पर इतनी बातें ठीक नहीं हैं। अगर कोई सुन ले ! लेकिन मेरी लडकियों को कैसा मारा है, जरा आकर देख जाओ न ! ... अपनी आँखों से देखो न !"

क्या पता टेलीफ़ोन पर पद्मरानी किसके साथ बात कर

आँगन-फर्श सब धुल-पुँछ चुके थे। पद्मरानी जिस समय टेल
उठी, पसीने से नहा चुकी थी। कुछ दिनों ऐसे ही चला। पद्मरानी
फ़्लैट में दूसरे दिन से ही रोशनी होने लगी। जग्गू दरबान फिर से
दरवाज़ा खोलकर खड़ा होने लगा। सुफल भी फिर से कमरे-कमरे मुर्गे
पराँठा सप्लाई करने लगा। इस मकान में जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो।
कुसुम नाम की कोई लड़की ही यहाँ नहीं आयी थी। बालेश्वर जिले
मयूरभंज की किसी भी जवान लड़की को जैसे कोई स्मगल करके पद्म
के फ़्लैट मे नही लाया था। जिस कमरे मे उसने फाँसी लगायी थी वह
पहचाना ही नही जाता था। एक दूसरी लड़की ने उसे किराये पर
लिया। उसी कमरे में उसी कड़े के नीचे फिर सुफल की दूकान से मुर्ग
पराँठे और केंकड़े की भुनी टाँगें आने लगीं। उसी बिस्तरे पर बेला-फूल
माला टुकड़े-टुकड़े होकर मसली जा चुकी थी। उसी शीशे में फिर
पाउडर से पुते मुँह की छाया पड़ने लगी। और उसी कमरे में फिर
हारमोनियम के साथ आवाज़ गूँजने लगी—'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछे
नैनों से न देख।"

लेकिन पद्मरानी के चेहरे का भारीपन अभी तक कम नहीं हुआ था।
कम उस समय हुआ जब खबर आयी कि थाने के दारोग़ा की ऊपर से
बदली हो गयी है।

तभी पद्मरानी के चेहरे पर फिर से हँसी फूटी। बोली, "कहते हैं
न—चावल की कीमत कितनी है, नहीं, मामा के साथ में हूँ। दारोग़ा का भी
वही हाल है। वह अगर नही हटता तो मैं उसका खाना हराम न कर देती।
पद्मरानी को मुँहजले ने अभी तक पहचाना नही है!"

□ □ □

तो ठीक उसी समय एक दिन कुन्ती आ पहुँची।

"अरे टगर, तू? कहाँ थी इतने दिन? कैसी सूरत बना रखी है?"
कुन्ती के बाल रूखे, दोनों गाल जैसे धँस गये थे। दोनों आँखें गड्ढों में
घुस गयी थीं। खबर पाते ही जो जहाँ थी चली आयी—वासन्ती, जूथिका,
सिन्दू, गुलाबी, दुलारी, सभी। कुन्ती का हाल देखकर वे भी अवाक् रह गयीं।

"सुना तो, बेटी! उस मुँहजले दारोगा को यहाँ से बदली करके
छोड़ा है! मेरे साथ चालबाज़ी करने आया था! एकदम दसभुजा दिखा
दी। तो तुझे भी क्या हरामजादों ने मारा था, जैसे जूथिका को मारा?"

बिन्दू पास खड़ी थी, बोली, "चाय बनाऊँ, माँ?"

अचानक सुफल कमरे में आया। उसने भी कुन्ती को देखा। पद्मरानी ओर देखकर बोला, "अण्डे की तरकारी बनायी है। बड़ी जायकेदार ी है। लाऊँ क्या, माँ ?"

कुन्ती ने कहा, "नहीं माँ, मेरे पिताजी मर गये है।"

"ओ माँ! बूढ़ा कैसे मर गया? दमा से?"

"नही, गुडों ने लाठी से पीटकर मार दिया!"

"काहे? बूढ़े को किसलिए मारा? तेरे बाप ने क्या किया था?"

कुन्ती का गला शायद भर आया था। उससे जैसे खड़े भी नहीं रहा ा रहा था। चट से कुर्सी पकड़ ली। फिर बोली, "हम लोगों की बस्ती, रबार जलाकर राख कर दिया है, माँ। कहीं रहने की भी जगह नहीं है।"

"तब आजकल है कहाँ?"

"बेहाला मे। लेकिन लगता है वहाँ भी ज्यादा दिन रहना नही होगा, ालीघाट आने की कोशिश कर रही हूँ। देखो, अगर कमरा मिल जाये।"

"क्यो? यही चली आ न! यही आकर रह न! मेरा ऐसा अच्छा घर छोड़कर और कहाँ भटकती फिरेगी?"

"मेरी बहन बूडी भी तो है।"

"तो उसकी उमर कितनी हुई?"

"यही तेरह-चौदह।"

पद्मरानी ने कहा, "तो यही तो उमर है। शुरू से ही यहाँ रहेगी तो ीक रहेगा। मैं टगनलाल से कहकर उसकी नथ खुलवा दूँगी। हाथ में कुछ पये आ जायेंगे। दोनो बहनें मौज करना। फिर तो ज्वार और कितनी ेर रुकता है? जा सुफल, मेरे लिए एक प्लेट करी ले आ, बेटा!"

सुफल ने तब भी पूछा, "और टगर दी? टगर दी नही खायेगी?"

पद्मरानी खीझ उठी, "चल, मरे! सुना नही उसका बाप मर गया है! अभी सूतक चल रहा है। ऐसे में कोई अण्डा खाता है? तुझे खाली पैसा, पैसा और पैसा! जा, मेरे लिए ले आ। विन्दु, चाय ले आ! जा!"

सुफल फटकार खाकर चला गया। विन्दू भी चली गयी। नीचे आँगन मे शायद दो-एक लोगों ने आना शुरु कर दिया था। उनकी आवाज कान मे आते ही वासन्ती वगैरह भी बाहर निकल आयी।

अकेला पाते ही कुन्ती ने कहा, "तुम्हे रुपये नही दे पा रही हूँ, यही कहने आयी थी।"

पद्मरानी कुन्ती के दोनों गाल पकडकर मुसकरा उठी।

बोली, "चल, पगली ! तेरा बाप मर गया है और इस समय रुपये की बात करूँगी ? मुझे क्या वैसी ही माँ समझा है ? तुझे अगर रुपयों की ज़रूरत हो तो कह, मैं देती हूँ।"

"और रुपये लेकर उधार बढाना नही चाहती।"

"तो क्या तेरे बाप के सराद करने में रुपया नहीं लगेगा ? बुद्ध नहीं तो कम-से-कम तीन बामन तो जिमाने ही होंगे। पुरोहित को कपड़े, गमछा, कुछ 'सीधा' देना होगा। कहाँ से आयेगा सब ? मुहल्ले में भले आदमी भी तो होंगे ? वे लोग क्या कहेंगे ? ले, रुपये ले जा !"

कहकर लोहे की आलमारी खोलकर एक गड्डी नोट निकाले, गिन-गिनकर कुन्ती की ओर बढाये। "ले, बेटी ! यह सौ रुपये दे रही। बैग में अच्छी तरह से रख ले।"

कुन्ती फिर भी ले नही रही थी। बोली, "मगर···"

पद्मरानी ने कहा, "यह अगर-मगर छोड़। तू रुपये रख, टगर। अपने हाथों से दे रही है। ले-ले ! ना नहीं करते। मेरे भी तो बाप, बेटा। अपने बाप का 'सराद' अच्छी तरह से नही कर पायी थी। रुपये नही थे। वह सब आज भी नही भूल पाती। ले, बैग में रख ले।"

तभी सुफल कमरे मे आया। हाथ में गरम धुआँती 'करी' की प्लेट।

पद्मरानी ने कहा, "मसाला डाला है न ? खराब हुई तो पैसे न मिलेंगे ! कह रखती हूँ।"

"नही माँ, मैं खड़ा हूँ, मेरे सामने चखकर देखिये।"

तभी बिन्दू भी चाय का कप लिये आ पहुँची।

कुन्ती और नहीं रुकी। उसकी आँखो के सामने कैसी एक धुन्ध छायी थी। यह मुहल्ला, यह पद्मरानी ! विभूति बाबू एक दिन उसे ले आये थे। वही ऑकलैंड ऑफिस का बडा बाबू। यही एक घटे के लिए कमरा किराये पर लिया। काफी दिन पहले की बात है। फ्रॉक छोड़कर साड़ी पहनना शुरू ही किया था। उसी समय की बात है। इसके बाद कितनी बार, कितनी जगह गयी, कितने लोगों के सम्पर्क में आयी। वह बनारस भी पिछले दिनों में कितना बदल गया है। लेकिन आखिर में इस पद्मरानी के फ्लैट में आकर जैसे गाड़ी रुकी। कहाँ है यह विभूति बाबू और कहाँ पिताजी ! आज यह अण्डे की तरकारी खाने के पीछे पद्मरानी की तसवीर देखी, उसे देखकर कुन्ती जैसे चकित रह गयी थी।

एक ट्राम आते ही साड़ी को बदन पर अच्छी तरह लपेटकर चढ़ी

इसके वाद चलती ट्राम की खिड़की से काफी देर बाहर की ओर ताकती रही।

□ □ □

उस दिन पूरे कलकत्ता मे छुट्टी थी। १५ अगस्त, १६४७ के वाद से कलकत्ता की ज़िन्दगी मे इतनी वडी घटना कभी नही हुई। कलकत्ता के इतिहास में वह एक स्मरणीय दिन था। शायद खुद कलकत्ता ने भी अपनी ज़िन्दगी में कभी इतने आदमियों को एक साथ नहीं देखा। जिधर देखो, सिर्फ़ आदमी, सिर्फ आदमियो के सिर। चार-पाँच सौ बीघा के मैदान में तिल धरने की भी जगह नही थी। पेड़ों के ऊपर, मोनूमेंट की छत पर, सड़क के दोनों ओर, खिडकियो पर, ट्राम-वस, हर कही आदमी और आदमी। सभी मैदान की ओर जा रहे थे। सारे रास्ते आकर आज ब्रिगेड परेड ग्राउंड में मिल रहे थे। यह अलेक्जैंडर की दिग्विजय का उत्सव नही था, यह स्वामी विवेकानन्द का इडिया लौटना नही था, राजा होने के वाद पंचम जार्ज का अपनी अच्छा प्रजा को दर्शन देना नही था। जो लोग परेट ग्राउंड तक नही पहुँच पाये वे विक्टोरिया मेमोरियल लेन पर ही दरी [illegible] गये थे। पति-पत्नी, वाल-बच्चे, सभी के साथ महफ़िल [illegible] में चाय थी, काजू-वादाम के पैकेट थे और थे सैंडविच। [illegible] एरियल लगाकर महापुरुषो का भाषण सुनेंगे। [illegible] वड़ा अच्छा दिन था। वे लोग पूरी तरह [illegible] में कम्युनिस्ट-साहित्य की किताबो की दुकान [illegible] रेक्सीन की जिल्दवाली 'वी० आई० लेनिन'

इन्कम-टैक्स की लिस्ट देख-देखकर निमन्त्रित लोगों की लिस्ट तैयार हुई थी। प्रोलिटेरिएट लोगों के लिए सूखा दर्शन था। जवाहरलाल नेहरू का मास्को में ज़ोरदार स्वागत हुआ था। अब उन लोगों का स्वागत करने की बारी थी। इस बार मास्को से ख्रुश्चेव आये हैं, बुल्गानिन आये हैं।

अचानक विनय दीख गया।

"क्यों रे, तू ?"

विनय भी सदाव्रत की तरह मीटिंग में आया था। बोला, "देखने चला आया, भाई ! इतनी भीड़ की तो कल्पना नहीं की थी।"

"तुझे वह नौकरी मिली ? उस दिन इण्टरव्यू देने जा रहा था न ?"

"नहीं रे, नहीं मिली।"

"क्यों ?"

लेकिन उत्तर सुनने से पहले ही जैसे दूर पर मन्मथ दीख गया। मन्मथ, वही केदार बाबू का छात्र। वह भी आया है ! जल्दी से मन्मथ को जाकर पकड़ा। मन्मथ के साथ भी यार-दोस्त थे। सदाव्रत को देखकर वह खड़ा हो गया।

"केदार बाबू के बारे में कुछ जानते हो ? बागमारी का पता बतला सकते हो ?"

"बागमारी में नहीं है मास्टर साहब। आजकल वह बागबाज़ार में हैं।"

"क्यों ?"

"वहाँ एक भुतहे मकान में जा पहुँचे थे। आस-पास कोई नहीं था। चारों ओर दलदल, कीचड़ और बड़े-बड़े फूलदार पौधे। वहाँ पहुँचकर बुखार में पड़ गये। अन्त में मैं जाकर यहाँ ले आया था। अब बागबाज़ार में हैं।"

"पता बतला सकते हो ? मैं एक बार मिलने जाऊँगा।"

उधर अचानक खूब शोरगुल होने लगा। पंडित नेहरू, डॉक्टर विधान राय, ख्रुश्चेव, बुल्गानिन—सभी ऊँचे मंच पर आये। पीछे से बहुत-से सफ़ेद कबूतरों को आसमान में उड़ाया गया। हठात् पीछे से भीड़ का ज़ोर बढ़ा और खड़ा रहना मुश्किल हो गया।

सदाव्रत जल्दी से नोटबुक में पता नोट कर पीछे सरक आया। उस समय पंडित नेहरू भाषण दे रहे थे।

इसी कलकत्ता में आज ऐसी भी जगह है, जहाँ मुर्गी पालने पर मुर्गी मर जाती है; लेकिन इन्सान मज़े से रहते हैं। जहाँ जाने में मक्खी-मच्छर

राती है, लेकिन इन्सान वहाँ भी आराम से खुर्राटे भरकर सोते है। वही से गृहस्थी चलती है, आबादी बढ़ती है। मर्द ऑफिस जाते है, फिर कर ताश खेलते है, औरतें हर साल एक के बाद एक बच्चे पैदा करती हैं।

सदाव्रत को कम-से-कम इस ओर आने पर यही लगा।

मास्टर साहब बीमार थे। फिर भी सदाव्रत को देखकर उन्होंने उठने कोशिश की।

"शशिपद बाबू से तुम्हारे बारे में ही बात कर रहा था। गवर्नमेंट फिसर होने से क्या होगा, बड़े सीधे-सादे आदमी है। मुझे जो सब लाया, मैं तो सुनकर हैरान रह गया।"

"शशिपद बाबू कौन ?"

"मन्मथ के पिता ! लगभग हज़ार रुपये महीना तनख्वाह पाते हैं। स दिन मुझे सब बतलाया। बोले, 'बड़ी बुरी बात ! कहीं सुना है कलकत्ता आजकल लड़कियों को लेकर नाटक होते हैं। असल में नाटक-ड्रामा कुछ नहीं, बात और ही है।' मैं तो सुनकर अवाक् रह गया, सदाव्रत !"

"क्यों, आपको मालूम नहीं था ?"

"मुझे कहाँ पता था कि नाटक के नाम पर यहाँ और ही कुछ होता है!"

"क्या ?"

"वह सब सुनने की जरूरत नहीं है, बड़ी खराब बात है। शशिपद बू कह रहे थे : गवर्नमेंट चाहती है कि यह सब चलता रहे, पता है ? यह बड़ी खराब बात है।"

तभी जैसे याद आया।

"अरे, तुम खड़े क्यों हो ? बैठो-बैठो ! मेरे तख्तपोश पर ही बैठ जाओ। गता है एक-दो चेयर-वेयर खरीदनी होंगी। लोगों के आने पर बैठाने की भी जगह नहीं है।"

सदाव्रत ने कहा, "मैं आपको ढूंढने एक दिन बागमारी गया था, लेकिन घर ही नहीं मिला।"

"अरे राम-राम, तुम ढूंढोगे कैसे ? वह तो बागमारी नहीं है, बागमारी से भी काफ़ी दूर। एकदम समुद्र के बीच कहना ठीक होगा।"

"आप वहाँ गये ही क्यों ? मैंने तो तभी कहा था। दस रुपये में तीन कमरे, वह कभी अच्छा मकान हो ही नहीं सकता।"

केदार बाबू ने कहा, "मैं तो फिर भी रहता, लेकिन शैल एक दिन डूब गयी।"

"डूब गयी माने ?"

"हाँ, घाट पर बासन मांजने गयी थी। बरतन धोते-धोते एकदम ही गयी। वह तुम शैल के ही मुँह से सुनो।"

कहकर पुकारने लगे, "शैल, ओ शैल !"

फिर बोले, "शैल यहाँ से सुन नही पायेगी, काफी दूर है न। दूसरे मकान में है। तुम उस दरवाज़े के पास जाकर 'शैल, शैल' खूब ज़ोर से आवाज़ दो—पुकारो, खूब ज़ोर से ! यहाँ रसोईघर नहीं न। मकान-मालिक के आँगन में जाकर खाना पकाना होता है। तुम दो न—तुम उस नाले के पास जाकर पुकारो न !"

सदाव्रत क्या करे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। बोला, "र दीजिये। उसे बुलाकर क्या होगा !"

"अरे नही, तुम उसी के मुँह से सुनोन! डूबकर एकदम मर ही अन्त मे अस्पताल ले जाकर वहाँ पम्प से सारा पानी निकलवाया। जाकर कही बच पायी। समझे ! उस दिन शैल सच ही मर जाती। तैरना तो आता नही है। तभी तो मन्मथ ज़बर्दस्ती यहाँ खींच लाया। तो क्या मैं आता यहाँ पर ?"

"लेकिन यहाँ भी कैसे रह रहे है ? बदबू से भरा यह नाला।"

केदार बाबू ने इस बात पर कान नही दिया। बोले, "ऐसी कोई बदबू तो नही है। रात के समय ज़रा लगती है। तो तुम नाक पर लगाकर जाओ न, जाकर बुलाओ न ! उसी से सुनो कैसी डूबती थी। जाओ, पुकारो न ! जाओ ! पॉकेट मे रूमाल तो होगा ही ? क्या रहे हो, रुमाल नही है ?"

"मैं इस तरह से नही पुकार पाऊँगा, मास्टर साहब ! उन बहुत-सी औरतें हैं।"

"औरतें है तो क्या हुआ ? एक मकान मे हम सात किरायेदार हैं, औरतें नही होगी ? तुम जाकर पुकारो तो। अगर अन्दर नहीं चाहते तो यहीं से पुकारो।"

अचानक बाहर से शैल की आवाज़ आयी, "काका, तुम्हारी धोती धुलेगी क्या ?"

कमरे में आते ही सदाव्रत को देखकर अपने को सम्हाल लिया। कपड़े धोते-धोते ही चली आयी थी। हाथ में तब भी साबुन के झाग थे। साड़ी का पल्ला कमर में खोंसा हुआ। सिर पर रूखे बिखरे

ादम अस्त-व्यस्त। सदाव्रत को देखकर पहले तो जरा सकपका गयी। र साड़ी को सम्हालकर कहा, "आप कब आये ?"

"अरे शैल, तू पानी में डूबी थी न ! कैसे डूबी थी, जरा सदाव्रत को ला ! तूने कैसे डुबकियाँ खायी थीं, जरा उसे सुना ! वह तेरे मुँह से ना चाहता है।"

सदाव्रत जैसे संकोच से दबा जा रहा था। रोककर बोला, "अरे, नहीं-ीं। मैं क्यों सुनना चाहूँगा ? यह आप क्या कह रहे है ? मैंने यह कब हा ?"

"तुम सुनो न उसके मुँह से ! बड़ी मजेदार बात है। एक बदमाश लाल के चक्कर मे फँसकर बागमारी गया था। बेकार में इतने रुपये राब हुए। और तो और, शैल के प्राणों तक पर बन आयी थी।"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखकर कहा, "मैं तुम लोगों को ढूंढने बाग-ारी गया था।"

शैल अवाक् रह गयी।

"बागमारी गये थे ?"

"हाँ, जिन्दगी में पहले कभी उस ओर नही गया था, तुम लोगो का ता भी नही मालूम था। तुम्हारे मुहल्ले का कोई भी आदमी तुम लोगो ा पता नही बतला पाया। वहाँ पहुँचकर एकऔरआफत खडी हो गयी।"

"आफत ! आफत कैसी ?" शैल ने पूछा।

"गाड़ी घुमाते-घुमाते मैं भी शायद मोटर के साथ ही डूब जाता।"

"कहते क्या हो ? तुम भी डूब जाते ?" केदार बाबू बीमारी मे भी उत्तेजना से उठ बैठे।

शैल ने कहा, "आप है न कुछ देर ? काका के लिए साबू चढाया है, वह उतारकर चाय बना लाऊँ।"

सदाव्रत ने कहा, "नही, तुम्हे इसकी फिक्र नही करनी होगी, कल अचानक मन्मथ से तुम्हारा पता चला। सुना मास्टर साहब बीमार है, इसी से चला आया। लेकिन यहाँ आकर जो देख रहा हूँ, लगता है तुम लोग खूब आराम से ही हो।"

"इस मकान का किराया भी तो बीस रुपया है।"

"लेकिन फडेपुकुर स्ट्रीटवाला मकान छोड़ने की ही क्या जरूरत थी ! मकान-मालिक ने पानी बन्द कर दियाऔर तुम लोग डरकर भाग आये ?"

केदार बाबू ने कहा, "यही तो गलती हो गयी। मैंने वायदा जो कर

लिया था ।"

"इसीलिए उस दिन कहा था, कुछ दिन मेरे घर रहिये। वहाँ आने पर मास्टर साहब भी बीमार नहीं होते, तुम भी पोखर में नहीं डूबते।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "अगर बीस रुपये देकर जब यहाँ रह रहे तो तीस रुपये खर्च कर कालीघाट मे इससे अच्छा कमरा मिलेगा। चलिये न ! पक्का मकान, गार्डर पड़ी छत, अलग नल, बाथरूम !"

केदार बाबू ने कहा, "आँगन में तो खाना नहीं बनाना पड़ेगा ?"

"वह सब मैं ठीक करके आप लोगों को बतला जाऊँगा।"

"तब आज ही ठीक कर आओ तुम !"

शैल ने कहा, "लेकिन यहाँ हम लोगो ने एक साथ दो महीने। एडवान्स किराया जो दे दिया है, इसका क्या हो ? बेकार जायेंगे ?"

"तुम इसकी फिक्र न करो।"

"हाँ-हाँ, तू इसकी फिक्र मत कर ! नुकसान होगा तो होगा ! मे वह मकान अगर न मिले ? और यहाँ इतनी दूर खाना बनाने तुझे क्या तकलीफ़ नही होती ? देख तो ज़रा क्या सूरत हो गयी है ! सदाव्रत, शैल पहले से कमजोर नही हुई है ? देख न, गले की हड्डी निकल आयी है ?"

शैल ने साड़ी से अपना गला और भी अच्छी तरह लपेट लिया।

"मुझे इसी की चिन्ता है, जानते हो, सदाव्रत, नहीं तो मेरा क्या ! मेरा काम तो पेड़ के नीचे भी चल जायेगा—अकेला आदमी ! मेरे लिये अगर ठीक से आदमी बन जाएँ तो मुझे और क्या चाहिए !"

"तब मैं चलूं, मास्टर साहब !"

"वह मकान ठीक करके खबर देना।"

सदाव्रत और नहीं रुका। धीरे-धीरे नाला पार कर घर के बाहर गया। आते समय कहाँ-कहाँ से होकर यहाँ आया था, उसे याद नहीं। बागबाज़ार में गली के अन्दर गली। उसमें भी गली। उसके बाद रास्ता। दोनों ओर दीवारों से घिरा टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता। उन रास्तों पर पहुँचकर सदाव्रत किस ओर जाये, सोचने लगा।

"सुनिये !"

सदाव्रत ने पीछे घूमकर देखा। शैल उसी को बुला रही थी। एकदम बदला हुआ लग रहा था।

"आप कहीं सचमुच फिर से मकान की कोशिश न करियेगा।

ा कहने के लिए आयी हूँ।"

"क्यों ?"

"नहीं ! मैं कह रही थी मैं चला नहीं पाऊँगी। तीस रुपये किराया ा मेरी सामर्थ्य के बाहर है। काका चाहे जो कुछ कहे।"

"लेकिन इतनी दूर रसोई, बदबूभरा नाला। यहाँ बीमार पड़ जाओगे!"

"बीमारी और क्या होगी ? पता है, मेरे काका को टी॰ बी॰ हो गयी जिसे यक्ष्मा कहते हैं !"

"क्या कह रही हो !" सदाव्रत जैसे आसमान से गिरा।

शैल ने कहा, "हाँ, काका को पता नहीं है। डॉक्टर ने मुझे बतलाया । दूध, मक्खन, अण्डा, माँस यही सब खाना होगा और दवाइयों की जो हरिस्त दी है, उसे खरीदने में कितने रुपये लगेंगे, भगवान ही जाने।"

इस पर सदाव्रत क्या कहे कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसके पाँवों ने से जैसे धरती निकल गयी थी। पूछा, "तब क्या करोगी ?"

"वह जो करना होगा मैं करूँगी। आपको यह सब लेकर चिन्ता करने ; जरूरत नहीं है।"

"लेकिन यह सुनने के बाद भी तुम चिन्ता करने को मना कर रही हो?"

"तब आप चिन्ता करिए। उधर काका का साबूदाना जलकर राख हो ा होगा। मेरे पास समय नहीं, मैं जा रही हूँ। अगर चिन्ता करने से ही ाई उपाय निकलता तो अब तक काका अच्छे हो गये होते। काका को यह ग भी नहीं होता। नहीं तो क्या मैं अपनी मर्जी से डूबने गयी थी ? अगर र जाती, तब ही शायद अच्छा होता। मुझे मरण भी नहीं है।"

"यह क्या ? तुम क्या आत्महत्या करने गयी थी ?"

लेकिन शैल के पास खड़े-खड़े गप लड़ाने का वक्त नहीं था। वह तब क जा चुकी थी। सदाव्रत उसके भाग जाने को खड़ा-खड़ा देखता रहा।

□ □ □

उस दिन शाम को रोटेरी क्लब में जबरदस्त मीटिंग थी। स्विट्जर- ड से फूड-स्पेशलिस्ट आये थे। उन्हींको रिसेप्शन दिया जाना था। कॉफी, ाजूनट, कोकाकोला का इन्तजाम था। वेस्ट बंगाल के फूड मिनिस्टर भी ाये थे। कलकत्ता के खास-खास रोटेरियन थे। शिवप्रसाद गुप्त भी थे।

सभी वेल-फेड थे। जिन्हें अच्छा खाने को मिलता है, दुनिया की फूड- ब्लम को लेकर सिर खपाने का वक्त उन्हीं के पास है। इसीलिए ये लोग ार खपा रहे हैं।

मीटिंग के बाद शिवप्रसाद गुप्त का भाषण खत्म होते ही [illegible]
तालियाँ पिटने लगीं।

बाहर गाड़ी में आकर बैठने के बाद भी कानों में जैसे तालि[illegible]
आवाज सुनायी दे रही थी।

स्पेशलिस्ट को जो बोलना था उसने कहा। आदमी को जिन्दा रहने के
लिए कितने कैलोरी फूड की जरूरत है, उसी की स्टैटस्टिक्स। इसी
तरह अन्डेवेलप्ड कंट्री मे क्या करने से फूड-प्रॉडक्शन बढ़ सकता है। फूड के
साथ पॉपुलेशन की भी बात थी। सात हजार मील दूर से आकर स्पे[illegible]
साहब ने काफ़ी कष्ट और अनुग्रह के साथ अच्छे-अच्छे उपदेश दिये। जि[illegible]
देश के लोग अपने यहाँ का फूड खाकर खत्म नहीं कर पाते, और अपने [illegible]
के पालतू कुत्ते की खूराक के लिए पचासों रुपये महीना खर्च करते हैं, [illegible]
का पेट खराब होने पर जहाँ के लोग पचास रुपये फीस देकर डॉक्टर [illegible]
दिखलाते है, स्पेशलिस्ट साहब उसी देश के रहनेवाले थे। एशिया [illegible]
अन-फेड लोगों के लिए फूड की गवेषणा करने के लिए ही उनकी [illegible]
थी। बड़ा जोरदार भाषण दिया। रोटेरियन लोगों ने काफ़ी [illegible]
उनका भाषण सुनकर, उनका पांडित्य देखकर दाँतों तले अँगुली दबा[illegible]

इसके बाद उठे वेस्ट बंगाल के फूड-मिनिस्टर। उन्होंने भी कितनी [illegible]
बातें बतलायी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'बोधोदय' में जो-जो [illegible]
हैं, उन्हीं का उपदेश दिया।

उन्होंने कहा, "हम लोगों को खाने की हैबिट ही बदलनी होगी। [illegible]
फूड-हैबिट ही हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। हम लोग भा[illegible]
हैं। क्यों, भात खाने से क्या होता है? सिर्फ़ तोंद निकलने के सिवा [illegible]
क्या फायदा है? आप लोग रोटी नहीं खा सकते? सूखी, हाथ की [illegible]
गरम-गरम रोटियाँ, गाय का घी चुपड़कर खाइये, स्वास्थ्य के लि[illegible]
कितनी फायदेमन्द है, यह डॉक्टरों से पूछिये। आज बंगालियों का [illegible]
खराब रहता है, इसी भात की वजह से। यह भी भात का [illegible]
थोड़ी घास खाना और भात खाना एक ही बात है। इसके बाद मछली [illegible]
छोड़िये। हम लोग बंगाल के रहनेवाले हैं। बचपन से मछली [illegible]
हैं। लेकिन यह पता है कि बंगाल में इतनी मछली है, जो आप लोग [illegible]
बाजार में बंगाल की इसी बड़ी-बड़ी [illegible] मछली बिकती है। आप लोग [illegible]
दो-चार रुपये देकर यही खरीदते हैं। लेकिन मेरी बात मानकर [illegible]
खाइए पूड़ी, [illegible], [illegible], दाल, केला—यह सब [illegible]

ये। इससे काफी फायदा होगा। फिर एक बात और है, जिसे कहे बिना
ल नहीं मानता। आजकल देखता हूँ लड़के-लडकियों मे चॉप-कटलेट खाने
रिवाज बढ गया है। इससे स्वास्थ्य खराब होता है, पैसा खराब होता
इससे तो अच्छा है आप लोग फल खायें। फल माने अंगूर, सेब और
ार नहीं बल्कि अपने बंगाल के फल। यही, जैसे खीरा, केला, पपीता,
रियल, यही सब खाइये। आप लोग सरकार के हाथ मे खाद्य-समस्या
डकर निश्चिन्त होकर नहीं बैठिये। सरकार तो जो करना है सो कर ही
ी है।"

अचानक कुंज ने गाड़ी रोक दी।

"रोकी क्यों ? क्या हुआ है यहाँ ?"

कुंज ने कहा, "छोटे बाबू !"

"छोटे बाबू माने ? सदाव्रत ? कहाँ है ?"

शिवप्रसाद बाबू मीटिंग की बातें सोचते-सोचते ही आ रहे थे। सब
लट-पलट हो गया। देखा, सच ही चौरंगी के मोड पर सदाव्रत खड़ा था।
स समय यहाँ !

बोले, "बुलाओ तो कुंज, जरा बुलाओ तो !"

अचानक नजर पड़ी। सदाव्रत के पास एक लड़की खड़ी है। उसी से
ात कर रहा है।

कुंज के बुलाते ही गाडी के पास आया।

"यहाँ क्या कर रहे हो ? घर चलना है ?"

"मुझे जरा देर होगी।"

इसके बाद शिवप्रसाद बाबू जाने को ही थे, लेकिन अचानक पूछ बैठे,
किसके साथ बात कर रहे थे ? वह कौन है ?"

सदाव्रत ने कहा, "वह केदार बाबू की भतीजी है।"

"केदार बाबू ? केदार बाबू कौन है ?" शिवप्रसाद बाबू को याद ही
हीं आया। पूछा, "केदार बाबू कौन है ?"

"मुझे पढ़ाते थे। मेरे मास्टर साहब !"

"लेकिन उनकी भतीजी के साथ तुम्हे क्या काम है ?"

"वह दवा खरीदने आयी है। केदार बाबू बहुत बीमार है।"

शिवप्रसाद बाबू फिर भी जैसे सूत्र नहीं पकड़ पाये।

बोले, "वह अपने काका के लिए दवा खरीदने आयी है तो तुम्हे क्या ?
ुम क्या अब भी उनके साथ मुलाकात करते हो ? तुम वहाँ जाते हो ?"

सदाव्रत चुप रहा। इस बात का उत्तर ही क्या होता !

शिवप्रसाद बाबू ने फिर पूछा, "क्या बीमारी है ?"

"टी० बी०। सस्पेक्टेड टी० बी०। डॉक्टर ने जो मेडिसिन [illegible] की है, वह बाजार में मिल ही नहीं रही। इधर घी, मक्खन, अण्डे [illegible] सब खाने को कहा है।"

शिवप्रसाद बाबू और नहीं रुके। इशारा करते ही कुंज ने गाड़ी [illegible] कर दी। वह फिर सोचने लगे। कल सुबह अखबारों में रिपोर्ट आयेगी। [illegible] मिनिस्टर के लेक्चर के बारे में ही ज्यादा होगा, उनका कुछ भी नहीं [illegible] शायद उनका नाम भी नहीं हो। जबकि ये लोग जो कुछ भी अंटसंट [illegible] देंगे उसी को निकालने में एडीटर पूरी ताकत लगा देगा। हालाँकि [illegible] मिनिस्टर होने पर भेजे में इतनी भी बुद्धि नहीं है कि आजकल [illegible] के लेक्चर नहीं चलते। लोग काफी सयाने हो गये हैं।

मिनिस्टर का भाषण तब भी जैसे हवा में गूँज रहा था—

"हम चाहते हैं कि भारतवर्ष के साढ़े सात लाख गाँव के लोग [illegible] समस्या अपने-आप सुलझा लें। हम लोग पक्की सड़क बना देंगे, आप [illegible] लोग मिलकर उस सड़क के दोनों ओर फलों के पेड़ लगा दें। देश की [illegible] समस्या को मिटाने का भार आप लोगों पर है। तालाब-पोखरों में [illegible] पैदा करिये, खेतों में धान रोपिये, खाने और कपड़े की समस्या आप [illegible] जरा-सी कोशिश करें तो हल हो सकती है। छोटी-छोटी बातों के लिए [illegible] कार को परेशान न करें। सरकार और भी बड़े कामों में लगी है। [illegible] कुछ ही सालों में सरकार ने क्या-क्या किया, आपलोग जानते ही हैं। [illegible] वी० सी० बाँध बनाया है। मयूराक्षी बाँध बाँधा है, भाखड़ा-नंगल [illegible] भी बना जा रहा है। यह भाखड़ा-नंगल दुनिया का सबसे बड़ा बाँध [illegible] अमेरिका का हूवर बाँध ऊँचाई में सात सौ तीस फुट है, और अपना [illegible] नंगल सात सौ साठ फुट है। उसी दिन तो [illegible] और बुल्गानिन [illegible] देख गये हैं। अगले साल हम लोगों ने भारत आने के लिए चाइना के [illegible] मिनिस्टर चाऊ-एन-लाई को निमन्त्रित किया है—वह भी देख [illegible]

"कुंज !"

गाड़ी में बैठे-बैठे ही कहा, "जरा एल्गिन रोड की ओर मोड़ो !"

कुंज ने पुर्जे की तरह गाड़ी घुमा ली।

[illegible]-मिनिस्टर ने बैठे ही धीरे से पूछा, "कैसा लगा मेरा लेक्चर [illegible]

शिवप्रसाद बाबू और क्या कहते ! बोले, "बहुत अच्छा—[illegible]

गाड़ी तब तक मिस्टर वोस के बंगले पर पहुँच चुकी थी ।

□ □ □

"वह कौन थे ?"

सदाव्रत ने कहा, "मेरे पिताजी । घर चलने को कह रहे थे । मैंने कह [illegible]या अभी नहीं आऊँगा, जरा देर बाद ।"

"आप चले क्यों नहीं गये ? मैं अकेली चली जाती ।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं-नहीं, चलो, मैं तुम्हे घर छोड़ आऊँ ।"

"लेकिन आप क्या फिर से अब वागवाजार जायेंगे ? आपका सारा [illegible]न ही तो बेकार गया ।"

तभी सदाव्रत की ओर देखा । पूछा, "क्या सोच रहे है ?"

"सोच रहा हूँ, दवा जब मिली ही नहीं, तब एक बार फिर से डॉक्टर [illegible] पास चलें तो कैसा रहेगा ! जो दवा मिलती ही नही, उसका प्रेसक्रिप्शन [illegible]रने की क्या जरूरत थी ? और किसी दूकान में देखें ?"

"चलिये !"

सदाव्रत चलने लगा । साथ-ही-साथ शैल भी । बोली, "लेकिन मेरे [illegible]ास ज्यादा रुपये नही हैं ।"

इस बात का जवाब दिये बिना सदाव्रत ने कहा, "जानती हो आज-[illegible]ल सभी किस तरह ज्यादा रुपया कमाया जाय, इसी की चिन्ता मे लगे [illegible]हते हैं, जबकि इन्ही मास्टर साहब ने मेरे पिताजी के पास जाकर एक [illegible]दिन फीस के रुपये कम कर देने को कहा था ।"

शैल चुपचाप चलती रही ।

"सब देख-सुनकर लगता है, इस दुनिया मे इतना अच्छा होना भी [illegible]ठीक नही है । शायद अपनी पृथ्वी एब्सोल्यूट ट्रुथ को सह नही पाती । [illegible]सॉक्रेटीज को भी नही सह सकी । क्राईस्ट को भी नही सह पायी । अपने [illegible]महात्मा गाधी को भी इसीलिए नही सह सकी ।"

"आप काका से कहीं यह सब न कह बैठियेगा !"

"क्यों ?"

"मैंने कहा तो फटकार खानी पड़ी । बोले कि दो मुट्ठी अन्न के लिए [illegible]बेकायदा बात कहूँगा ? जबकि दूसरे लोग अगर ठगें तो कुछ नहीं । कितने [illegible]ही छात्र काका को फीस नही देते । कहते ही नाराज हो जाते है । गृहस्थी [illegible]तो मुझे ही चलानी होती है । मैं कहाँ से लाऊँ ?"

सदाव्रत ने पॉकेट से मनीबेग निकाला । बोला, "तुम मना न करना,

मेरे पास इस समय बीस रुपये हैं। यह तुम ले लो।"

अचानक शायद ठोकर खाकर शैल आगे की ओर झुक गयी। सदा
ने जल्दी से उसका हाथ पकड़ लिया।

"क्या हुआ ?"

और ज़रा होने पर शैल फुटपाथ पर ही गिर जाती। एक पत्थ
निकला हुआ था, उसी से ठोकर लगी थी।

"पैर में लगी क्या ?"

शैल ने तब भी कुछ नही कहा। नीचे की ओर देखने लगी।

"चप्पल टूट गयी क्या ?"

शर्म से शैल जैसे सिमटी जा रही थी। एक चप्पल का स्ट्रैप टूट गय
था। काफी दिनो की चप्पल है। चप्पल का भी कोई कसूर नही है। फु
पाथ के पत्थर का भी कसूर नही है। टूटी चप्पल को ही घिसटा-घिसटाक
चलने की कोशिश की। फिर दोनों चप्पलों को हाथ मे उठाने जा रही थी।
सदाव्रत ने कहा, "लाओ, वह मुझे दो।"

"नही-नही, आप क्यो लेंगे ? मैं ही ले चलती हूँ।" कहकर शैल आगे
बढने लगी।

"इससे तो एक नयी चप्पल क्यो नही खरीद लेती ! पास मे ही तो
जूते की दूकान है।"

"नही, चलिये, अगर कही मोची मिल जाये तो देखें।"

□ □ □

जार्ज टॉमसन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के ऑफ़िस मे उस
समय रिहर्सल चल रहा था। जार्ज टॉमसन कम्पनी के बडे साहब विलायत
मे रहते है। इंडिया उनके लिए फॉरेन लैंड है। लेकिन बैलेन्स शीट इंडिया
में ही तैयारी होती है। कम्पनी के स्टाफ के रजिस्टर में जिन लोगों का नाम
है वे लोग एपाइण्टमेंट पाते है इंडिया में, लेकिन स्टाफ़ पॉलिसी ठीक होती
है इंग्लैंड में। वहाँ से कॉन्फीडेंशियल नोट आता है—किसको प्रमोशन
देना है और किसे डिस्चार्ज करना है। कौन प्रो-कम्युनिस्ट है और कौन
प्रो-ब्रिटिश। उनकी कॉन्फीडेंशियल डिस्पैच भी यही से जाती। पहले
इंग्लैंड के बडे साहब लोग इन बातों पर सिर नही खपाते थे। उस समय
वे लोग सिर्फ एक चीज़ जानते थे, वह थी प्रॉफिट। लेकिन अब कुछ दिनों
इंडियन लोगों के हाथों बेचने पड़े हैं। अब ऑफ़िस में यूनियन बन गयी है।
अब स्टॉफ़ एमिनिटी के साथ कम्पनी के प्रॉफिट की बात भी सोचनी होती

! स्टाफ को अगर कम्पनी नही देखेगी तो स्टाफ भी कम्पनी को नही
खेगा। इस समय उन लोगों को सिर्फ़ बोनस देकर भी खुश नही किया जा
कता। वे लोग प्रॉफ़िट में से भी परसेंटेज चाहते हैं। इसीलिए उन लोगों
ो मिजाजपुर्सी के लिए वेल्फ़ेयर ऑफिसर की नयी पोस्ट क्रिएट की गयी
। रिक्रिएशन क्लब बने हैं। लाइब्रेरी बनी है। लिटरेरी सेक्शन खुला है।
ामेटिक सेक्शन बना है। ड्रामेटिक सेक्रेटरी भी है। लिटरेरी सेक्शन को
कर ज्यादा खींचतान नही होती। कम्पनी किताबें खरीदने के लिए कुछ
पये दे देती है। लेकिन ड्रामा में ही लोगों का जोश ज्यादा है।

दुलाल सान्याल ने कहा, "हम लोगों का यही पहला ड्रामा है। समझ
रही हैं न। इसीलिए रिहर्सल पक्का होना चाहिए।"

सिर्फ़ कुन्ती ही नही, श्यामली चक्रवर्ती, वन्दना दास को भी दुलाल
न्याल ने इकट्ठा किया है। दुलाल सान्याल पक्का आदमी है। अमल घोष,
नका भी उत्साह कम नही है, और है संजय।

लड़कियों के लिए क्लब के खर्च पर चॉप, कटलेट, पान जर्दा—सभी
छ आया था।

कुन्ती ने कहा, "मेकअप का भार किसे दिया है? मेकअप के लिए
च्छा आदमी होना चाहिए।"

वन्दना—"बैठकखाने में डी-प्रामाणिक है। उससे करा सकते है।"

कुन्ती—"ड्रेस के लिए डी-दास है बहूबाजार मे। वहाँ हर साइज की
ाडी-ब्लाउज़ मिल जायेंगी। बदन पर फिट होगी।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "आप जिसे कहेंगी उसे ही देंगे। हमे फर्स्ट
लास माल चाहिए। हमारे जनरल मैनेजर प्रिसाइड करेंगे। सीन-सिनेरी,
स, मेकअप परफ़ेक्ट नही होने पर बड़ी बदनामी होगी।"

अमल घोष ने पूछा, "ड्रामा कैसा लगा? वह मैंने लिखा है।"

कुन्ती—"रिहर्सल के बिना ड्रामा कैसा है, पता नहीं लगता।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "ठीक कह रही है। एकदम सच बात।"

संजय अब तक चुप था। बोला, "आप ही की वजह से हमारा प्ले
इतने दिनों से बन्द था। आपको पता है?"

"क्यो?"

"हाँ, काफ़ी दिनो पहले स्टार में आपका एक पार्ट देखा था। बड़ा
अच्छा लगा था। उसके बाद से ही आपको खोज रहे हैं, लेकिन किसी
भी तरह आपका पता नही लगा। सुना था, आप जादवपुर में रहती हैं।

वहाँ भी गया था। जाकर देखता हूँ कॉलोनी के सारे घर टूटे पड़े हैं। पक्की चहारदीवारी खड़ी हो रही है।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "इसके बाद तीनों एक साथ मिलकर"... राम !"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"अरे, आपको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चितपुर के एक कोठे में जा पहुँचे। ... का नाम शायद पद्मरानी का फ़्लैट या ऐसा ही कुछ था।"

कुन्ती पहचान नहीं पायी।

"पद्मरानी का फ़्लैट ? वह कहाँ है ? यह पता कहाँ से मिला ?"

संजय ने कहा, "इस लाइन में कितनी तरह के लोग हैं। जिसके ... में जो आता है, कह जाता है। हम लोगों का तो बुरा हाल हो गया।... झुंड लड़कियों ने हमें घेर लिया। कह रही थीं—हम भी प्ले करेंगी।"

"ओ माँ, यह बात ! फिर क्या हुआ ?"

कहकर कुन्ती, श्यामली, वन्दना सभी ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगीं।

"आख़िर हम लोग क्या करें, बड़ी मुश्किल में पड़े। कितने सब तरह तरह के नाम थे—टगर, गुलाबी, वासन्ती, दुलारी, सारा घर भरा था। हम लोगों के पहुँचते ही समझीं कि ग्राहक आये हैं।"

कुन्ती वग़ैरह चाय पी चुकी थीं। बोलीं, "चलें फिर, दुलाल बाबू !"

"कल किस समय आ रही हैं ?"

"जिस समय कहें !"

बाहर आने पर ही पीछे-पीछे जार्ज टॉमसन कम्पनी के लड़के आ रहे थे। लड़कियों ने और एक बार नमस्कार किया। फिर भी कोई साथ छोड़ने को तैयार नहीं था। इसके बाद तीनों बस पर चढ़ गयीं। पीछे से मन्टू ने कहा, "नमस्कार !"

वन्दना ने कहा, "मैं तो ज़रा धर्मतल्ला जाऊँगी। छोटी बहन के लिए ... ऊन ख़रीदनी है।"

चारों ओर भीड़ थी। ऑफ़िसों में छुट्टी हुए काफ़ी देर हो चुकी है। हरेक सड़क पर बत्ती जल रही है। इसी देश की छाती पर न जाने कब ... लोगों का जन्म हुआ था। अब तो जैसे इनके पर निकल आये हैं। ... चुगकर गाना शुरू कर दिया है। इस समय ये ही इस नागरिक सभ्यता की उत्तराधिकारिणी हैं। बस इसीलिए उन्हें ले जा रही थी।

□ □ □

बागबाजार गली के अन्दर उस समय केदार बाबू बड़ी बेचैनी से छटपटा रहे थे। लगता था, सारा बागबाजार धूल और धुआँ। शैल ने सोचा भी नही था कि उसे लौटने में इतनी देर हो जायेगी।

आते समय शैल ने कहा था, "तुम फिर से उठ-बैठ मत करना, काका! मैं जाऊँगी और आऊँगी!"

उसी फुटपाथ पर मोची की दूकान के सामने खड़ा सदाव्रत चारो ओर आदमियों की भीड़ को देख रहा था। इतने सारे आदमी! इतने आदमी कहाँ जा रहे हैं? किस काम से? फुटपाथ के ऊपर ही दूकान सजाकर फेरीवाले बैठ गये थे। छुटपन का वही कलकत्ता धीरे-धीरे दिन-रात की परिक्रमा करते-करते जैसे और भी जन-कलरव से भर उठा। और भी मकान, और भी गाड़ियाँ, और भी भीड़। कलकत्ता दिनोदिन ऐश्वर्यमयी प्रसादपुरी बन गया था। धन, जन-गरीबी, रोग, दुःख, शोक से भर उठा। अजीब इतिहास हो उठा है। यहाँ इसी शहर मे केदार बाबू जैसे लोग रहते है, और शम्भू जैसे लोग भी रहते है। कुन्ती गुहा भी रहती है और शैल भी रहती है। यहाँ एक ज़रूरी दवा पैसों से भी नही मिलती, और पैसे खर्च कर टिकट कटाने के लिए यहाँ लोग घटों तक लाइन लगाये खड़े रहते है। यहाँ इतना काम है, फिर भी विनय-जैसे लड़के काम पाने के लिए रास्ता नापते फिरते हैं।

मोची मशगूल होकर जूते की सिलाई कर रहा था। शैल उसी ओर देख रही थी।

काम पूरा होने पर सदाव्रत ने पूछा, "कितना देना होगा?"

अचानक पीछे से जैसे भीड़ का धक्का लगा। ज़रा ज़ोर का धक्का होने से शैल गिर पड़ती।

"देखकर नही चल पाती?"

कहकर सदाव्रत जैसे चौक गया। अचानक इस तरह मुलाकात हो जायेगी, उसने नहीं सोचा था। कुन्ती के साथ और भी दो लडकियाँ खड़ी थीं।

सदाव्रत ने बात कहकर अपने को सम्हाल लिया था। लेकिन कुन्ती चुप नही रही। बोली, "क्या कहा?"

इस बार शैल ने ही जवाब दिया, "ज़रा-सा और होने पर मैं गिर जाती न!"

कुन्ती ने शैल को सिर से पैर तक अच्छी तरह से देखा। फिर सदाव्रत की ओर देखकर कहा, "इसे कहाँ से पकड़ लाये? मुझे छोड़कर लगता है

अब इसे फँसाया है ? इस तरह आपके पास कितनी हैं ?"

सदाव्रत और नहीं रोक पाया । बोला, "किसमे क्या कह रही है"

कुन्ती ने मुंह बनाकर कहा, "क्यों ? पकड़े गये, इसलिए शायद
लग रही है ? एकदम रंगे हाथों पकड़े गये ! बड़े आदमी हैं, इन्हें
सोचते होंगे, आप जो कुछ भी करेंगे सबको सहना होगा ! हम लोगों
घरबार मिटाकर भी शायद आपका मन भरा नहीं ! एक और
के पीछे लगे ! इसने शायद अभी तक आपका असली रूप नहीं देखा है !

आस-पास काफ़ी लोग जमा हो गये । उन लोगों ने कौतूहलपूर्वक
"क्या हुआ ? क्या हुआ, जनाब ?"

लेकिन कुन्ती फिर कहने लगी, "लेकिन यह मत सोचियेगा कि
आपको इतने सस्ते मे छोड़ दूँगी । आपने मेरे पिताजी का खून किया
बात क्या मैं भूल जाऊँगी ?"

एक अजीब हालत हो गयी थी । उस दिन उसी रास्ते पर
राह चलते आदमियों ने सदाव्रत पर प्रश्नों की झड़ी लगाकर जैसे उसे
कर दिया ।

आखिर कुन्ती ही चली गयी । लेकिन तब भी सदाव्रत का सिर
फटा जा रहा था । मोची के पैसे चुकाकर दोनों जब टैक्सी मे आकर
गये तो काफ़ी देर तक सदाव्रत के मुँह से कोई बात नहीं निकली । कुन्ती
पिता को किसने मारा ? बात जरा और बढ जाने पर शायद रास्ते पर
कोई दुर्घटना हो जाती । अपने को बड़ी मुश्किल से सम्हाला था ।
सिर के अन्दर जैसे दुनिया की सारी आग एक साथ ही भभक उठी

पास ही शैल बैठी थी चुपचाप । टैक्सी दौड़ रही थी ।

शैल ने एक बार पूछा, "वह लड़की कौन थी ?"

सदाव्रत के अन्दर जैसे जवाब देने की भी हिम्मत नहीं थी ।

शैल ने जरा देर चुप रहकर फिर पूछा "आप उसे पहचानते हैं

सदाव्रत इस बात का भी कोई जवाब नहीं दे पाया । टैक्सी
बाजार की ओर दौड़ी जा रही थी ।

सदाव्रत उस दिन खुद की चोट से खुद ही तिलमिला उठा था ।
ऐसी चोट पहले कभी नहीं खायी थी । शायद कभी मौका ही नहीं
जिन्दगी में सहयोग की जितनी जरूरत नहीं होती, उससे ज्यादा
आघात की भी जरूरत होती है । आघात के समय दुःख की अनुभूति
रहती है । इसीलिए आघात का महत्व मालूम नहीं होता । लेकिन

ड़ा होना है, जिसे महान् होना है, जिसे रोज-रोज के इन झंझटों से ऊपर उठना होगा, उसके लिए इसे छोड़कर कोई उपाय भी नही था। इसीलिए शैल ने चाहे जितनी बार प्रश्न किये उसके मुह से कोई उत्तर नही निकला।

शैल ने पूछा, "क्या हुआ, आप उत्तर नही देंगे ?"

सदाव्रत ने कहा, "उत्तर चाहती हो या कैफियत ?"

"छि !"

शैल ने कहा, "आपसे कैफियत माँगने का मुझे क्या अधिकार है ? मैंने तो सिर्फ जानना चाहा था, वह कौन है ? उस लड़की ने आपका इस तरह अपमान क्यो किया ? आपने भी उसकी बातो का उत्तर क्यो नही दिया ?"

सदाव्रत अपराधी की तरह चुप रहा, जैसे किसी ने उसकी उत्तर देने की ताक़त ही छीन ली हो।

"जाने दीजिये, आपको इस बात का जवाब नही देना होगा, मैं समझ गयी हूँ।"

"क्या समझ गयी हो ?"

टैक्सी तब तक घर के सामने आ गयी थी। सदाव्रत भी शैल के पीछे-पीछे बाहर आ रहा था। शैल ने कहा, "आपको अन्दर आने की जरूरत नही है।"

सदाव्रत ने कहा, "मास्टर साहब से कह आऊँ !"

"क्या कहेंगे ?"

"यही कि तुम्हें लेकर इतनी देर तक कहाँ गया था। लौटने मे इतनी देर कैसे हुई !"

शैल ने कहा, "काका पागल आदमी है। सभी की बातों का यकीन करते हैं। किसी के झूठ बोलने पर भी कभी अविश्वास नही करते। लेकिन इसकी जरूरत नही है, मैं जाकर सच बात ही कह दूँगी।"

सदाव्रत ने आगे बढ़कर कहा, "तब यह बात भी कह देना कि सड़क पर जिस लड़की ने तुम्हारे सामने मेरा अपमान किया, उसके साथ मैंने ऐसा कोई खराब व्यवहार नही किया था, जिसकी वजह से वह इतनी बुरी तरह से पेश आयी !"

"इसका मतलब आप स्वीकार करते हैं कि आप उसे जानते हैं ?"

सदाव्रत—"तुम्हे जितना जानता हूँ, उसे भी ठीक उतना ही जानता हूँ, जरा भी ज्यादा नही। तुम मुझे कहीं गलत न समझ लेना।"

शैल मुसकराने लगी।

"वाह, आप तो लगता है मेरे सामने कैफियत पेश कर रहे हैं। क्या आपसे कैफियत माँगी है ? मैं आपसे कैफियत माँगनेवाली हूँ ही कौन"

सदाव्रत और भी आगे बढ़ आया। बोला, "फिर भी तुम्हारा पू लाज़िमी है। मेरे बारे मे किसी को गलतफहमी हो, यह मैं नहीं चाह मैं तुमसे भी सब खोलकर कहता हूँ।"

"लेकिन मुझे क्या और कोई काम नही है। खड़ी-खड़ी आपकी बेक की बातों को सुनने से क्या काम चलेगा ?"

"नही सुनना चाहती तो मत सुनो, लेकिन दया करके एकतरफा ब सुनकर ही कुछ आइडिया न बना लेना। उससे बेइन्साफी होगी।"

आस-पास मे मुहल्ले के लोग आ-जा रहे थे। गली में अँधेरा हो च था। दो-एक ने शैल की ओर चुभती नज़रों से देखने की कोशिश भी की दोनो की बातो मे ज़रा बाधा-सी हुई।

सदाव्रत ने कहा, "मैं कल दूकान में फिर से एक बार पूछूंगा, क मिलेगी या नही।"

अचानक फिर से काका का खयाल आते ही जैसे शैल को होश आया बोली, "अच्छा, मैं चलूँ!"

अँधेरे में ही किसी ने शैल को देखकर कहा, "अरे शैल, तुम कहाँ अब तक ?"

"क्यों, मौसी ?"

"तुम्हारे काका बुखार मे बेहोश पड़े कब से पानी-पानी चिल्ला है, और तुम यहाँ खड़ी-खड़ी गप्पें लड़ा रही हो !"

शैल और कुछ नही कह पायी। अन्दर घुस आयी। सदाव्रत भी पी पीछे अन्दर आ गया।

जाते समय इन्ही मौसी से देखभाल करने को कह गयी थी। वह शायद एक लालटेन जलाकर रख गयी थी। तख्तपोश के ऊपर एक पड़े-पड़े केदार बाबू 'माँ-माँ' कर रहे थे।

शैल ने पास जाकर सिर पर हाथ रखा, "काका !"

केदार बाबू ने जैसे देखने की कोशिश की।

"मैं हूँ, काका। खूब तकलीफ हो रही है ?"

काका के मुँह से तब आवाज नही निकल रही थी, हालाँकि करने की कोशिश कर रहे थे। माथा बुख़ार से एकदम तप रहा था। ज से थर्मामीटर लेकर शैल काका का बुखार देखने लगी।

सदाव्रत ने पूछा, "इस समय कितना बुखार है ?"
"एक सौ चार डिग्री। एक बार डॉक्टर को बुलाना होगा।"
"मैं जा रहा हूँ।"
शैल ने कहा, "सडक के किनारे ही डॉक्टर की डिस्पेंसरी है।"
सदाव्रत और नही रुका। अँधेरी गली से टेढ़े-मेढे रास्ते को पार कर
ड़क पर आना होता है। मोड़ पर ही एक पहचाना-पहचाना-सा चेहरा
ख गया। मन्मथ !
"अरे सदाव्रत दा, कहाँ जा रहे हो ?"
सदाव्रत ने कहा, "मास्टर साहब की तबीयत बहुत खराब है। तुम
लो, मैं डॉक्टर को लेकर आ रहा हूँ।"
"लेकिन दो-एक दिन पहले ही तो हालत काफ़ी ठीक थी। मैं मंगल-
र को ही तो देख गया हूँ।"
"आज दोपहर को अचानक बहुत खराब हो गयी है। तुम चलो।"
सदाव्रत बागवाजार स्ट्रीट के मोड़ पर आ डॉक्टर की दूकान खोजने
गा।

□ □ □

'जीवन के बहुत से सत्यों में से एक महान् सत्य यह है जो सबसे सहज है
ौर वह उतने सहज रूप में सामने नही आता। शुरू-शुरू में लगता है, यह
त कैसे कटेगी, यह समुद्र कैसे पार होगा। लेकिन हिम्मत करके आगे
ढ़ने पर सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। सारे डर मिट जाते हैं। तब सारे
ाँटे फूल बनकर खिल उठते हैं। उस समय स्वयं को ही हँसी आती है।
ही मैं, सदाव्रत गुप्त, एक दिन साधारण को असाधारण समझकर हताश
गया था। फिर भी अभी तक जिन्दा हूँ, गाड़ी चलाते हुए कलकत्ता की
ड़क पर जा रहा हूँ।
'सिर्फ़ एक दिन नही। सिर्फ़ एक दिन की जिन्दगी नही। हो सकता
मुझसे पहले भी जो लोग पृथ्वी पर आये, वे भी इसी तरह हर रोज़ मौत
मुँह पर खड़े हुए हों। मैं, मेरे पिताजी, शंभू, केदार बाबू, शैल, मन्मथ,
नको नज़रों के सामने देखता हूँ, वे ही तो सिर्फ़ इस दुनिया के आदमी
ही हैं। हमसे पहले भी अनगिनत लोग इस दुनिया में रह चुके हैं; रह-
र जीवन से प्यार कर गये हैं, जीवन से घृणा कर गये हैं, जीवन को अभि-
न्दित कर गये है, जीवन को धिक्कार भी गये हैं। वे सब लोग आज कहाँ
ै ?'

गाड़ी मिस्टर बोस के बंगले पर जाकर रुकी।

शिवप्रसाद बाबू ने कह दिया था, "ठीक सुबह नौ बजे पहुंच
एक मिनट भी देरी न करना।"

मिस्टर बोस खुद पंक्चुअल आदमी हैं। पंक्चुएलिटी पसन्द करते
चुरुट पीते-पीते बोले, "सो यू आर जूनियर गुप्त ?"

सदाव्रत ने पहले ही परिचय दे दिया था। पिताजी ने पहले
पक्की व्यवस्था कर रखी थी। पसन्द करने का यहां सवाल नहीं
सिलेक्शन का भी झमेला नहीं है। दस जगह दरखास्त करने पर एक
भी इण्टरव्यू नहीं मिलता। सब जगह इसी तरह का सिस्टम है।
डाइरेक्टर का खुद का केन्डीडेट होने पर उसे लेना ही होगा।

"अच्छा, एक बात। अखबार तो जरूर ही पढ़ते होंगे ?"

सदाव्रत ने कहा, "हां।"

"ऐसे ही पढना नहीं। मेरा मतलब इन-बिटवीन-लाइन्स से है।"

सदाव्रत—"हां !"

"तो ह्वाट इज योर ओपीनियन एबाउट दिस ?" कहकर वे
सोचने लगे।

सच ही अजीब सब सवाल थे उनके भी। "बुल्गानिन और ख्रु
बारे में तुम्हारी क्या ओपीनियन है ?"

"वे हम लोगों के स्टेट गेस्ट हैं, अतिथि हैं।"

"लेकिन तुम्हे क्या लगता है कि उन लोगों को इंडिया में इनाट
हम लोगो का कुछ उपकार होगा ?"

"यह तो डिप्लोमेसी है ! फ्री कन्ट्री होने पर इस तरह एनवं
गेस्ट्स होना ही है।"

"इससे अपने देश का कुछ लाभ होगा ?"

सदाव्रत मि० बोस की ओर देखने लगा। चुरुट पीते मुंह का
अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी के सवालों का उत्तर जैसे ए
आदमी से पूछ रहे थे। उनकी अपनी भी एक ओपीनियन है। मि०
जानना चाहते हैं, अपने कानों सुनना चाहते हैं कि उनके अपने उस
साथ सदाव्रत का जवाब मिलता है या नहीं। भविष्य में और कि
पर दोनों की राय एक होगी या नहीं। सदाव्रत ने एक सेकंड
पिताजी ने उसे पहले से कुछ भी नहीं बतलाया था। नहीं बतलाने
सदाव्रत को ऐसे बड़े-बड़े सवालों का जवाब देना होगा।

"ब्रिटेन और फ्रांस ने ईजिप्ट पर जो घेरा डाला है, डू यू सपोर्ट इट?"

सदाव्रत ने देखा सवाल करने के बाद ही टेबल के ऊपर चुरुट की राख ...र गयी।

"वेरी गुड ! नाऊ, एबाउट पाकिस्तान ! तुम क्या समझते हो कि ...डिया और पाकिस्तान फिर से एक हो जायेंगे ?"

मि० बोस काफ़ी बड़ी कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर है। साल में ...ाठ लाख रुपये से ज्यादा का तो गवर्नमेंट ऑर्डर ही होता है। फिर ...ोकल और इण्टर-स्टेट मार्केट है। इसमें भी लाखों की सेल-गारण्टी है।

इतना गहरा सम्बन्ध है ?

"अच्छा, डॉक्टर राय के इस बिहार-वेस्ट बंगाल मर्जर के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

इसके बाद सवालो की झड़ी लग गयी। एक के बाद एक कितने ही सवाल ! कम्युनिज्म, कैपिटलिज्म, यू० एन० ओ०, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना, दलाई लामा, रिफ्यूजी प्रॉब्लम—कुछ भी नही बचा।

"तुम चाय पिओगे ?"

जवाब की राह देखे बिना शायद टेबल के नीचे बटन दबा दिया था। बेयरा आया, चाय आयी। मिस्टर बोस और भी घनिष्ठ हो उठे। चाय पीते-पीते और भी फ़ैंक हो गये। गले की टाई ढीली कर दी।

"देखो, तुम लोगों की जेनेरेशन को मैं ठीक से समझ नहीं पा रहा, सदाव्रत ! मिस्टर गुप्त और मैं दोनों एक ही आइडिओलोजी में पले हैं। हम लोग मनुष्य को इन्टेग्रिटी में विश्वास करते हैं। हम लोगों की धारणा है, सभी लोग एक-जैसी इन्टेग्रिटी लेकर पैदा नही होते। आदमी-आदमी में जो फर्क है वह सिर्फ गॉड का डिस्क्रिशन ही नहीं है। वह लॉ ऑफ नेचर है। एक को मारकर दूसरे को जिन्दा रहना होगा। सभी को समान करने की कोशिश में सभी मरेंगे। दुनिया में फिर वही डिल्यूज हो जायेगी। हम फिर उसी स्टोन-एज में लौट जायेंगे ! तुम लोग क्या वही चाहते हो ?"

"लेकिन महात्मा गाधी ने तो रामराज्य के लिए कहा था ?"

"वह भूल जाओ ! गाधीजी जिस समय थे, उस समय थे। इंडिया की हिस्ट्री में गाधीजी जैसे लोगों की जरूरत थी, इसलिए हम लोगों ने एप

इमी गॉड को गढ़ लिया था। जरूरत पूरी होने के साथ ही
दिया। सोचो, आज अगर गांधीजी होते तो कितनी मुश्किल होती ?
विक्टोरिया के ज्यादा दिन जिन्दा रहने से एडवर्ड सेवन्थ की कितनी
हुई थी ? किसी भी परिवार को लो। बूढ़ा बाप अगर ज्यादा दिन
रहता है तो क्या उस परिवार मे शान्ति रहती है ? बुरा मत मानो
गाधीजी के ऊपर मेरी श्रद्धा तुमसे कम नही है। सच मानो, मैं तो
क्रिएटेड हिम, ही डिड नॉट क्रिएट हिस्ट्री'। इतिहास के साथ ही
आदमी को, एक-एक प्राइम-मिनिस्टर के भी बदलने की जरूरत होती
इग्लैंड, जर्मनी, फ्रास—हर सभ्य देश मे वही हुआ, और तुम
स्वर्ग सोवियत रूस मे आज क्या हो रहा है, उसे जानने का तो कोई
ही नही है। स्टालिन को हटाने के लिए कितने हज़ार लोगों का खून
है, कौन जानता है ? लेकिन बाद में कभी यह खबर निकल भी सकती है

'सुवेनीर इजीनियरिंग' के मैनेजिंग डायरेक्टर साधारण आदमी
है। सिर्फ आठ साल में कम्पनी और इतनी बड़ी फैक्टरी बनाकर दो
आदमियो के अन्नदाता बन गये हैं। खुद का बंगला बनवाया है,
रोड के रईसी इलाके में। कलकत्ता के नये व्यवसायी समाज मे
लिखाया है। इतना करने के बाद मिस्टर बोस जो भी फ़तवा देंगे, वही
है। वही कुरान है। वही बाइबिल है। सक्सेसफुल आदमी जो कुछ भी
उसका विरोध नही करना चाहिए। वे विरोध सहन नही कर पाते।

चाय पीना हो चुका था। मिस्टर बोस ने रिस्टवाच देखी।

"ऑल राइट, सदाव्रत !"

सदाव्रत भी उठ खड़ा हुआ। समझ गया, उसका काम हो गया
सीढी से उतरकर गाडी के पास आया। गाड़ी स्टार्ट की। उसके समाज
बंधे हुए नियमो से काम होता है। उस समाज मे समय का मूल्य नाम
एक चीज़ है। अब उसे भी अपने इस समाज के नियमों को मानकर
होगा, शिवप्रसाद बाबू यही चाहते है। सदाव्रत विनय नही है।
शंभू नही है। केदार बाबू भी नही है। सदाव्रत शिवप्रसाद बाबू का
है। शिवप्रसाद गुप्त ! इस कलकत्ता के जैसे दो भाग हो। एक 'हैव'
का, दूसरा 'हैव नॉट' वालों का। सारी कोशिश के बावजूद भी
'हैव' वालों के भाग मे नही बैठाया जा सकता। कोशिश करके
के लिए फ़्लैट नहीं दे सकते। उनके मुंह मे फूड नही डाल सकते। इति
में वह कभी भी नही हुआ, कभी होगा भी नहीं। एक शासक होगा

:को शासित होना ही होगा। जिस तरह सभी को पढ़ा-लिखाकर न्द्रनाथ ठाकुर नही बना सकते उसी तरह सभी को समान फैसिलिटी र शिवप्रसाद गुप्त भी नही बनाया जा सकता। यह इन्टेग्रिटी का सवाल 'वह इन्टेग्रिटी तुम्हारे पास है, क्योंकि तुम शिवप्रसाद गुप्त के लडके । जिन मिस्टर बोस के पास दूसरे लड़के हज़ार कोशिशो के बावजूद र भी नही पाते, तुम एक बात पर पहुँच गये। तुम सदाव्रत गुप्त हो, कत्ता यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट। तुम्हे अभी दो हज़ार रुपया महीना की न्री मिल जायेगी। कारण, तुम हमारे समाज मे पैदा हुए हो। तुम ने पिताजी की बदौलत हमारी सोसायटी में आये हो ! तुम्हे प्रोवाइड ना हमारी ड्यूटी है। तुम हम लोगों के ग्रुप के हो। हम लोगों के ग्रुप अगर कोई अनएम्प्लायेड है, तो हम उसे एम्प्लायमेंट देगे। हम अपना : का स्वार्थ देखेंगे। और रोटेरी क्लब या यू० एन० ओ० में लेक्चर ा तो जरूरत के मुताबिक बोलेंगे। उस समय गरीबो के दु ख और की दुर्दशा की बातें करेंगे। त्याग की बातें करेंगे। कल्याण की बातें गे। उस समय स्वामी विवेकानन्द के उपदेश याद करेंगे। रवीन्द्रनाथ कुर की बात करेंगे। गीता और उपनिषद् के उपदेश सुनायेंगे। धर्म, वर और आत्मा की बातें करेंगे। उन सब मौको के लिए हमारे पास तैमेड लेक्चर तैयार रहता है।

इसी तरह कलकत्ता के ऊपर से सूर्य और भी कितनी ही बार परिक्रमा र गया। लेकिन फिर भी सदाव्रत जैसे चंचल मन लिये सारे शहर में क्कर काटता रहा।

घर लौटते ही मन्दाकिनी पूछती, "क्यो रे, तुझे क्या हुआ है ? सारे न कहाँ रहता है ?"

सदाव्रत के पास उत्तर देने को कुछ नही होता। इसीलिए चुप रहता। से कहता कि वह कहाँ रहता है ? कैसे कहे, वह किसके साथ सारा दिन ाटता है ? असल में वह कहीं भी नही जाता। किसी के साथ मुलाकात नहीं रता। उधर केदार बाबू का बुखार भी बढ़ गया होगा। उस दिन डॉक्टर ो लेकर गया। फिर उस ओर जा नही पाया। शायद उन लोगों को सकी जरूरत भी नहीं है। मन्मथ है ही। वही देख-भाल कर लेगा। ौर वह सदाव्रत गुप्त ! वह मास्टर साहब की जिन्दगी मे शायद ि ' जायेगा। इसके बाद से रोज सुबह वह गाडी लेकर 'सुवेनीर इंजीनियरि क्टरी' के ऑफिस में जाकर बैठेगा। एयर-कंडीशन्ड कमरा। उसी

ते हैं। लड़के-लड़कियों और बीवी को कब देखें ! तब तो देश का काम
ोड़-छाड़कर ऑफ़िस से आकर बच्चों को पढ़ाने बैठ जाना चाहिए। या
च्ची को लेकर सिनेमा दिखलाने ले जाना चाहिए। वह सब बाबुओं के
ाए ही ठीक है। मेरे ऑफ़िस के बाबू लोग भी वही करते है। यह उन
ोगों को ठीक भी लगता है।"

हिमांशु बाबू को सब-कुछ पता रहता था। बोले, "मुझे तो इतना पता
ही था। तभी उस दिन छोटे बाबू सब खोद-खोदकर पूछ रहे थे।"

"सदाव्रत ? वह ऑफ़िस कब आया था ?"

"यही, आप जब नही थे ! मुझसे सब पूछने लगे—जादवपुर की
अपनी कॉलोनी मे शरणार्थियो की कोई कॉलोनी थी या नहीं ! हम लोगों
ने गुंडे लगवाकर कॉलोनी तहस-नहस करवा दी है या नही !"

"इसके बाद ? और क्या पूछा ?"

"कोई बूढा आदमी मर गया है या नहीं, यही सब !"

"तो तुमने क्या कहा ?"

"हम लोग तो किसी को मारना नही चाहते थे। हम लोगों ने तो
सबसे चले जाने को ही कहा था। इस पर भी अगर कोई मर गया हो तो
उसकी मरने की उम्र हो गयी थी। हम इतने निर्मम नहीं हैं कि किसी को
जानकर मार डालें।"

"ठीक कहा तुमने। यह सुनकर उसने क्या कहा ?"

"छोटे बाबू की उम्र कम है। सुनकर पूछने लगे, 'कोई कम्पन्सेशन देने
की व्यवस्था हुई है या नही ?' मैंने कहा, 'एक्सिडेंट इज एक्सिडेंट !"

"यह क्यों नहीं कहा कि रॉयट के दिनों में हजारों आदमी मारे गये,
तब क्या उन सभी को कम्पन्सेशन मिलना चाहिए ?"

इसके बाद अचानक बात बदलकर बोले, "जाने दो, ये सब बातें सुनकर
तुम्हे कुछ भी जवाब देने की जरूरत नहीं है। इन्ही सब कम्युनिस्टो के साथ
रहते-रहते ये सब फ़िजूल के आइडिया हो गये है। मैंने इस बार दूसरा ही
इन्तजाम कर दिया है। अगर इस बार आये तो ऐसी बातों का कोई जवाब
मत देना। और…"

टेलीफ़ोन के बजते ही बात रुक गयी। रिसीवर उठाकर बात शुरू
करते ही चेहरा खिल गया।

बोले, "अरे, क्या खबर है ? आपके बारे में ही सोच रहा था। नोमी-
नेशन निकल गया है। सुना है न ?"

उधर से मिस्टर बोस ने कहा, "अच्छा? मेरी कन्स्टीट्यूएंसी से फार्मेट में कौन जा रहा है?"

"अरे, आपको अभी तक पता नहीं है?"

मिस्टर बोस—"लेकिन मिस्टर साहा ने इतना चन्दा दिया है!"

"कहाँ चन्दा दिया?"

"अरे वाह, आपको नहीं मालूम क्या? फ्लड रिलीफ़ फंड में मिस्टर साहा ने फॉर्टी थाउजेंड रुपीज डोनेशन दिये हैं। और नॉमीनेशन देते वक्त···हाँ, तो सी० पी० आई० का कैंडीडेट कौन है?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "टेलीफ़ोन पर सब बातें कहना ठीक नहीं होगा। मैं आपको सब बतलाऊँगा। सेन्टर ने इस बार वेस्ट बंगाल के ··· काट दिये हैं।"

"किस तरह?"

"अरे, आपको पता नहीं है? दिल्ली से नेहरूजी का डायरेक्टिव आया है। किसी भी कैंडीडेट को इलेक्शन में लूज़ करने पर बैक-डोर से कैबिनेट में नहीं लिया जायेगा।"

"यह बात है?"

"हाँ, इसीलिए तो इतनी स्क्रूटनी चल रही है!"

मिस्टर बोस ने बीच में ही कहा, "अरे हाँ, एक बात! मनिला कह रही थी···"

"मनिला?"

"हाँ, कह रही थी सदाव्रत के साथ एक बार इण्ट्रोड्यूस्ड होना चाहती है···एक चाय की पार्टी में।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "बड़ी अच्छी बात है। जरूर जरूर!"

"माने लाइफ़-पार्टनर को एक बार ज़रा देखना चाहती है। वैसे मैंने उसे अच्छी तरह से ही टेस्ट कर लिया है, पता है? सदाव्रत बड़ा ही इंटेलिजेण्ट लड़का है। मैंने जो भी क्वेश्चन किये, सबके सेटिसफैक्टरी आन्सर दिये। लेकिन आजकल के लड़कों में जो होता है, ज़रा प्रो-रेड लगा।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, असल में मैंने भी पहले यही सोचा था। मतलब मुझे भी यही सन्देह था। मैंने एक दिन उससे काफ़ी देर तक बात की। देखा, सदाव्रत प्रो-कम्युनिस्ट भी नहीं है। एंटी-कम्युनिस्ट भी नहीं है।"

"तब फिर क्या है?"

"असल में तरह-तरह का लिटरेचर पढ़ा है न। और इस समय कलकत्ता में तरह-तरह के एलिमेंट्स भरे पड़े हैं। वह असल में नॉन-कम्युनिस्ट है।"

मिस्टर बोस ने कहा, "लेकिन प्रो-कम्युनिस्ट ही हो या एंटी-कम्युनिस्ट ही हो, इट मैटर्स वेरी लिटिल टू मी ! मैं उसको रेजिमेण्टेशन करके ठीक कर लूंगा।"

"तो कब रख रहे हैं ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "वह मैं ठीक करके आपको बतला दूंगा। कुछ ही दिनों में मेरे स्टाफ का एक फंक्शन है। 'फाउन्डर्स-डे' की खुशी में हम लोगों के ऑर्गनाइज़ेशन की ओर से एक फंक्शन होनेवाला है। उसी दिन मिलें तो कैसा रहेगा ?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। जिस किसी दिन भी आप ठीक समझें।"

"ठीक है। आप रहिएगा। आपकी मिसेज़ भी रह सकती हैं, और सनिला और मैं तो रहेंगे ही। और सदाव्रत। और किसी को आप रखना चाहते हैं ?"

"नहीं-नहीं, बड़ा अच्छा आइडिया है।"

"उसी दिन दोनों एक-दूसरे को जानेंगे। हम लोगों के समय में जो हुआ सो हुआ, आजकल, आप जानते ही हैं, ज़माना बदल गया है। लाइफ-पार्टनरों को एक-दूसरे को समझ लेना चाहिए बिफोर दे मैरी।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "यू आर एब्सोल्यूटली करेक्ट, मिस्टर बोस! आपके साथ कम्प्लीटली सहमत हूँ।"

कहकर शिवप्रसाद गुप्त ने फोन रख दिया।

□ □ □

इंडिया गवर्नमेंट भी बैठी नहीं थी। सेकंड फ़ाइव-इयर प्लान तैयार हो गया था। सिर्फ सुवेनीर इंजीनियरिंग ही नहीं, इंडिया में और भी बहुत-सी हैवी इन्डस्ट्री तैयार करनी होगी। सेकड-फाइव-इयर प्लान में मुख्य बात यही थी। इस प्लान के बाद नेशनल इन्कम ट्वेन्टी-फाइव परसेंट बढ जायेगी। हर आदमी की इन्कम एट्टीन परसेंट बढ जायेगी। जबकि फर्स्ट फाइव-इयर प्लान मे सिर्फ़ टेन परसेंट ही बढ़ी थी। इस बार अस्सी मिलियन पाउन्ड खर्च करके दुर्गापुर मे ब्रिटिश फ़र्म के साथ एक स्टील प्लान्ट तैयार होगा।

कलकत्ता भी जगमगा रहा है। अढाई हज़ार वर्ष के बाद बुद्ध का

'महापरिनिर्वाण जयन्ती' उत्सव मनाया गया है। दलाई लामा और ..
लामा कलकत्ता आये हैं। और आये हैं चाऊ-एन-लाई, चाइना के ..
मिनिस्टर। इंडिया के सारे शहरों में बड़े समारोह के साथ उनका स्वागत
होगा। सबसे ज्यादा तैयारियां कलकत्ता में हुई हैं। कलकत्ता के लोग ही
शायद उसके भक्त ज्यादा है। अखबारों में बड़े-बड़े फोटो छापे गये। चाऊ-
एन-लाई नेहरूजी के जन्मदिन पर उपहार देने के लिए एक शीशी बर्तन
गोल्डफिश, लाल-नीली रंग-बिरंगी मछलियाँ और एक मृगछौना लाये हैं।
फोटो देखकर सभी खुश हुए। पंडित नेहरू के चेहरे पर भी मुसकराहट थी
और चाऊ-एन-लाई के चेहरे पर भी हँसी जैसे रुक नहीं रही थी।

रिक्रिएशन क्लब के अन्दर भी काफी शोरगुल हो रहा था। कम्पनी के
स्टाफ-रिक्रिएशन के लिए तीन हज़ार रुपये सेंक्शन किये हैं। सभी ऑफिस
में यही हाल है। जिस कलकत्ता में कभी सिर्फ़ दो या तीन थियेटर हाउस
ही चलते थे, वही मुहल्ले-मुहल्ले में थियेटर है। मण्डप लगाकर, पाल तान
कर मैदान के बीच नहीं। हॉल किराये पर लेकर। अब तीन घंटे के लि
पब्लिक स्टेज का किराया होता है तीन-चार सौ रुपये। लगता है तो लगे
मिस्टर बोस जैसे लोग देंगे। एक-एक आर्टिस्ट दस-दस जगह दसियों क
में रिहर्सल करके भी डिमाण्ड पूरी नहीं कर पाता। यही बड़ा नगर, इ
बाद अगले ही साल भवानीपुर। सिर्फ़ क्या कलकत्ता में ही? कलकत्ता
बाहर भी यही हाल है। उन सब पार्टियों के आने पर कुन्ती कहती, "
साहब, इतनी दूर जाने का वक़्त मेरे पास नहीं है।"

पार्टी कहती, "आपको गाड़ी से ले जायेंगे, फिर पहुँचा भी देंगे।"

कुन्ती गुहा कहती, "माफ करिये, मेरे भी तो शरीर नाम की
चीज़ है या मैं पत्थर हूँ!"

इसी तरह कितने ही लौट जाते। वे लोग कितनी मुश्किल से
लगाते-लगाते आते और उन्हें सूखे मुँह लौट जाना होता।

कुन्ती कहती, "यही तो चार दिन हैं। उमर ज्यादा होने पर तो
बुलाने आयेगा नहीं।"

वन्दना कहती, "तब माँ और बुआ का पार्ट करने बुलायेंगे!"

श्यामली भी होती। तीन फीमेल रोल जहाँ भी होते तीनों की
कास हो जाती। रिहर्सल के समय एक साथ चाय पीतीं, बातें क
रिहर्सल के बाद एक साथ फिर किसी दूसरे क्लब में रिहर्सल के लिए
इसी तरह सारे कलकत्ता में घूमतीं।

श्यामली और वन्दना दोनों ही उस दिन अवाक् रह गयी।

वन्दना ने कहा, "उस आदमी से तू इतनी बुरी तरह क्यों पेश आयी ा? वह कौन है? जानती है क्या?"

कुन्ती—"जानती नहीं हूँ? वह एक दिन मेरे पीछे लगा था!"

"इसके माने?"

"मेरे साथ दोस्ती करने का भाव लिये क्लब के रिहर्सल मे जा बैठता ा। टैक्सी में ले जाकर घुमाना चाहता था। असल मे ऐसे लडकों का देश्य अच्छा नही होता।"

वन्दना बोली, "मेरे पीछे भी इसी तरह एक लड़का लगा था।"

"तूने क्या किया?"

"मैं काफी दिनों तक उससे मिलती रही। रोज़ मुझे सिनेमा दिखलाता, स्टोरेंट में ले जाकर खिलाता। आखिर एक दिन मैंने कहा, मुझे अपने घर चलो। अपनी माँ और पिताजी से मिला दो। सो नही।"

कुन्ती—"यही तो मज़ा है। सभी दस-बारह रुपये में मज़ा लूटना चाहते ा चाय पिलायेंगे, टैक्सी में घुमायेंगे, कभी-कभी साड़ी-गहने भी खरीद देंगे ौर शादी की बात उठते ही हवा! आजकल इस क्लास के लड़के कलकत्ता बहुत हो गये हैं।"

लड़कियों में से कोई रहती बेहाला, कोई टालीगंज और कोई ठेठ हूबाज़ार मे। सभी अपनी-अपनी समस्याएँ लिये रहती। फिर क्लब के रहर्सल में ही मुलाकात होती। तब एक-दूसरे के डिब्बे से पान लेती, ज़र्दा ाती। इसके बाद एक दिन स्टेज पर जाकर रंग-पाउडर, मैक्स फैक्टर ुतवाकर परचुला का जूड़ा लगाकर 'प्ले' कर आती। फिर कुछ दिन किसी मुलाकात नही होती।

मि० बोस उस दिन काफी देर तक अपने चैम्बर में बैठे थे। दिल्ली की कतनी ही करेंसपॉन्डेंस बाकी पड़ी थी। उसको निबटाया। स्टेनोग्राफर को ुलाकर एक नोट देकर काम खत्म। फैक्टरी के एक कोने में स्टाफ-टिफिन-म है। वहाँ की आवाज़ कुछ-कुछ सुनायी देती थी। छुट्टी के बाद वे लोग रहर्सल कर रहे थे।

"डैडी!"

टेलीफोन उठाते ही लड़की की आवाज़ सुन मि० बोस नरम पड़ गये।

"मनीला! तुम कहाँ से? न्यू एम्पायर से? यही चली आओ, एक ाथ क्लब चलेंगे। आई एम रेडी! वह कौन?"

उधर शायद रिहर्सल भी हो चला था। कुछ ही दिनों बाद प्ले होगा। एक महीने से 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के स्टाफ थियेटर का रिहर्सल चल रहा है। कम्पनी ने रिक्रिएशन के लिए तीन हजार रुपये सैंक्शन किये है। इसी मे स्पोर्टस् हैं, इनडोर गेम्स हैं, फैन्सी फेयर है और है ड्रामा। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' के 'फाउन्डर्स-डे' के मौके पर यह फंक्शन होता होता आया है।

मिस्टर वोस ने कहा था, "मुझे प्रेसिडेंट क्यों बनाया है? तुम लोग किसी साहित्यिक-वाहित्यिक को क्यों नही पकड लाते?"

सेक्रेटरी ने कहा, "नहीं सर, साहित्यिक लाने पर अखबारों में फोटो नही छपेगी। इससे तो अगर किसी डेली-पेपर के एडीटर को चीफ गेस्ट..."

ठीक है। वही इन्तजाम हो गया। मिस्टर वोस के एक टेलीफोन से ही काम हो गया। कुन्ती वगैरह इसीलिए रात-दिन लगकर रिहर्सल कर रही थी। उस दिन भी रिहर्सल के बाद कंकरीट बिछे लम्बे रास्ते से सभी बाहर आ रहे थे। कुन्ती गुहा, वन्दना, श्यामली चक्रवर्ती और दूसरे कॉ-एक्टर्स। सभी प्ले करेंगे। सामने ही गेट था। गेट बन्द था। गेट पार करते ही ट्राम रास्ता है। वही से ट्राम मे बैठकर कुन्ती गुहा, श्यामली, वन्दना—सभी अपने-अपने घर चले जायेंगे। सभी ड्रामे के बारे में ही बातें कर रहे थे। ड्रा सीन उठने के बाद से लाल फोकस कुन्ती के ही चेहरे पर पडेगा। कुन्ती सिर उठाये उसी ओर ताकती रहेगी। हाथ जोड़े एक श्लोक पढेगी।

संस्कृत श्लोक। इसके बाद बैक-ग्राउन्ड से वॉयलिन पर एक सैड-ट्यून बज उठेगी।

"यह तो मैनेजिंग डायरेक्टर की गाडी आ रही है!"

"बड़े साहब इतनी देर तक ऑफ़िस में थे?"

कुन्ती गुहा, वन्दना, श्यामली ने भी पीछे मुड़कर देखा। कंकरीट के रास्ते मे एक लम्बी ऑटोमोबाइल जैसे गिजाई की तरह रेंगती उन सबों की ओर आ रही थी। अन्दर रोशनी थी।

कुन्ती वगैरह सड़क छोड़कर खड़ी हो गयीं।

अन्दर थे मैनेजिंग डायरेक्टर और उनकी लड़की। लड़की ही सचमुच देखने के काबिल थी। गोरा-चिट्टा रंग। कीमती प्योर सिल्क की पीली साड़ी, जिस पर सोने के रंग का हरा चौड़ा बॉर्डर। सिर पर बड़ा-सा स्नेक का जूड़ा।

सभी सहमकर रास्ता छोड़ खड़े थे। गाडी के सर्र-सर्र करते हुए

ाहर निकलते ही फिर से सब सड़क पर आ गये।

कुन्ती ने पूछा, "साथ मे शायद आपके बड़े साहब की लड़की थी ?"

"हाँ, मनिला बोस। उनकी माँ मेनिला बोस कहकर पुकारती है।"

कुन्ती, वन्दना, श्यामली जैसे अपनी ही नजरो में अचानक बडी छोटी ो गयी। एक छोटी-सी घटना ने जैसे तीनो को बहुत छोटा कर दिया था। क मिनट भी नही लगा।

सेक्रेटरी ने कहा, "जल्दी ही उनकी शादी होनेवाली है न ! इसी से ाज खूब सजी है।"

श्यामली ने पूछा, "शादी कहाँ हो रही है ?"

"बहुत बडे आदमी के साथ ! बालीगंज मे एक पॉलिटिकल सफरर ै। शिवप्रसाद गुप्त नाम है। उन्ही के लड़के के साथ।"

कुन्ती के सिर पर जैसे किसी ने पत्थर मार दिया।

"शिवप्रसाद गुप्त के लड़के के साथ ? क्या नाम है ?"

सेक्रेटरी—"सदाव्रत गुप्त !"

बात जैसे कान के अन्दर नही जा पायी। सिर, नाक, कान—सब जैसे नन-झन करने लगे।

सेक्रेटरी तब भी कहे जा रहे थे, "वही सदाव्रत गुप्त ही तो आजकल ापने परचेजिंग ऑफिसर होकर आये है। दो हजार रुपये सैलेरी है।"

□ □ □
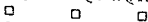
इतने दिन तक कुन्ती ने कलकत्ता शहर को एक तेज धारवाले औजार ी तरह व्यवहार किया था। कलकत्ता के जुलूस, कलकत्ता की अपनी भूख, लकत्ता का अपना पाप, कलकत्ता का अपना इतिहास सभी कुन्ती के लिए ीजार थे। उन्ही औजार या यूँ कहिये हथियारो से वह कलकत्ता को ीतने निकली थी। यह जैसे खुद के ही खिलाफ लड़ाई थी। कुन्ती का याल था यह कलकत्ता उसका अपना ही है। वह जिस तरह भी चाहे पनी मरजी के मुताबिक इससे काम लेगी। वह कलकत्ता का भोग करेगी, लकत्ता को प्यार करेगी। और जरूरत होने पर कलकत्ता को लात भी ारेगी। बहुत दिन पहले ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू ने ही इसका श्री- णेश कराया था। उन विभूति बाबू ने ही शुरू-शुरू में उसकी आँखें खोली ी। कहा था—'अखबारों मे, किताबों में, सभी जगह लिखा पाओगे, कल- त्ता के लोग गरीब हैं। यहाँ के लोग अधपाये सोते हैं। लेकिन वास्तव मे तना बैंक रुपया इंडिया मे और कही भी नही है।'

कुन्ती तभी पहली बार ब्लैक शब्द का मतलब समझी थी। ...
रुपया किसे कहते है, कैसे कमाया जाता है, फिर किस तरह वह ...
खर्च किया जाता है, वह सब भी सीखा।

उन्ही विभूति बाबू ने ही कहा था, "वर्ल्ड मे जितना सब ...
है, यहाँ—इस कलकत्ता मे इकट्ठा होता है।"

कुन्ती ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों, यहाँ इस कलकत्ता में क्यों आता है ...
"आता है, क्योंकि इंडिया में यही सोने का दाम सबसे ज्यादा है।" ...
तो काली मन्दिर के पण्डो की खोलियों में, या फिर पद्मरानी के ...
कुन्ती ने उस कलकत्ता को देखा था। न किसी का नाम जानती ...
किसी का नाम जानने की कोशिश ही की। सिर्फ पास मे सोने के लिए ...
भर मे सौ-दो-सौ रुपये तक कमा लेती। वह रुपया गाढी कमाई का ...
होता। एडी-चोटी का पसीना एक करके कमाई का होता। यह उसने ...
उन लोगो से नही पूछा।

सोना बेचकर रुपया कमाया है या सुपारी बेचकर कमाया, ...
कभी भी नही जानना चाहा। रुपया पाते ही कुन्ती खुश होती ...
रुपये की जाति के बारे में कभी सिर नहीं खपाती। जब रुपया ही ...
तो जैसे हो रुपया कमाना चाहिए—वह ब्लैक रुपया हो या ह्वाइट।
कलर्की करके रुपया कमाया है, या शराब का धन्धा करके कमाया,
उसे कोई मतलब नही है। रुपये पर तीन सिंह खुदे होना ही काफी ...

इतने दिन यही मानकर कुन्ती ने कलकत्ता की छाती पर राज ...
कभी चेहरे बेचकर राज किया था तो कभी चेहरा उधार देकर। ...
शायद आज ही पहली बार उसे अपनी जिन्दगी मे घृणा हुई। ...
सतिना बोस को देख अपने ऊपर घृणा हुई।

कुन्ती शायद थोडी देर के लिए नर्वस हो गयी। पूछा, "लड़की ...
काफी पढ़ी-लिखी है ?"

स्टाफ के लोगों को सब-कुछ मालूम है। वे लोग मिस्टर बोस ...
सब जानकर बैठे है। उन्ही लोगों ने बताया, "दार्जिलिंग के मिशनरी ...
में पढ़ती थी। वहाँ से पास करके हाल ही कलकत्ता आयी है।"

"मिस्टर बोस का घर कहाँ है ?"

"घर माने ?"

"माने कलकत्ता का पता ?"

उन लोगों ने कलकत्ता का पता भी बता दिया। कुन्ती ने मन ...
एलगिन रोड का पता याद कर लिया।

"क्यों ? मिस्टर बोस का पता जानकर क्या करेंगी ?"

कुन्ती ने कहा, "ऐसे ही, ज़रा जान रखने की इच्छा हुई।"

जिस समय कुन्ती घर लौटी रात के बारह बजे थे। कालीघाट की ओर वाली सड़क सुनसान पड़ी थी। इस नये मुहल्ले में आने के बाद से रात को देरी हो जाने पर उसे डर नहीं लगता। पथरानी के फ्लैट में रात को एक बजे निकलने पर भी रिक्सा-टैक्सी सब-कुछ मिल जाता।

मकान-मालकिन ताई विधवा औरत थी। गोद की लड़की को लिये विधवा हुई थी। उस लड़की की शादी हो चुकी है। अब जमाई ससुराल आकर रहता है। विधवा को देख-भाल करने वाला मिल गया। पास का जो कमरा खाली था, वही कुन्ती को उठा दिया है।

ताई किसी-किसी दिन पूछती, "हाँ, बेटी, इतनी रात तक कहाँ थी ?"

"नाटक था न !"

"तो नाटक क्या इतनी रात तक होता है ? रात के एक बजे तक ?"

कुन्ती कहती, "नाटक तो रात के साढ़े दस बजे ही पूरा हो गया था, ताई ! लेकिन हम लोगों को तब भी काफी देर तक रुकना होता है। नाटक पूरा होते ही चट से तो आ नहीं पाते। हम लोगों की ड्रैस वगैरह सम्हाल कर हिसाब मिल जाने पर तब कहीं जाकर छुट्टी मिल पाती है।"

उस दिन सुनसान रात थी। कुन्ती अपने घर के दरवाज़े पर आकर खटखटाने लगी, "बूड़ी, ओ बूड़ी !"

कुन्ती को जैसे अजीब लग रहा था। अन्दर जैसे कोई बोल रहा था। इतनी रात तक जागकर क्या बूड़ी पढ़ रही है। लेकिन अन्दर तो अँधेरा है।

"बूड़ी, दरवाजा खोल ! ओ बूड़ी !"

अचानक एक घटना हो गयी। आधी रात के उस अँधेरे में धड़ाक से दरवाज़ा खुला और अन्दर से हड़बड़ाता कोई चेहरा ढँके निकला और फिर कुन्ती को धकेलकर अँधेरे में ग़ायब हो गया।

यह सब पलक झपकते हुआ। लेकिन उतनी ही देर में कुन्ती सब-कुछ समझ गयी।

"कौन ? कौन ? कौन ?"

कुन्ती की एक बार चीखने की इच्छा हुई। लेकिन कुछ सोचकर अपने को रोक लिया। कमरे के अन्दर अँधेरे में ज़रूर ही सन्नाटा मारे सो रही होगी। कुन्ती जैसे उसके साँस लेने की आवाज भी सुन रही थी।

कुन्ती अपना दिमाग और ठीक नही रख पायी। जल्दी से अंधेरे
स्विच दबाकर रोशनी करते ही देखा, सामने ही बिस्तरे के पास ...
कांप रही थी।

"कौन था वह, कह ? बोल जल्दी से ! बाहर कौन गया ?"

बूड़ी दीदी के सामने सिर नीचा किये अभी तक थर-थर कांप
थी। उसके मुंह से एक शब्द भी नही निकला। बिस्तरा अस्त-व्यस्त
रहा था।

कुन्ती ने आगे बढ़कर बूड़ी के बालों को मुट्ठी में कस लिया।

"अब कह मुंहजली, किसको घुसा रखा था कमरे में ? बिना बत
दिये मैं नही छोड़ूंगी ! बोल !"

इस पर बूडी रोने लगी।

"तेरे रोने से डरनेवाली नही हूँ ! तूने किसे कमरे मे घुसा रखा
पहले कह ? तुझे कहना ही होगा ! तुझे आज जिन्दा नही छोड़ूंगी!
कहकर पता नही कमरे में क्या ढूंढने लगी। इसके बाद एक कोने में त
तरकारी काटने का दरांता उठा लायी।

"ओ दीदी, मारो मत ! तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मारो मत, और न
करूंगी !"

"तो कह, क्यों मुंह जलवाने मरी थी ? इतनी रात के समय किसे
में घुसा रखा था, बोल ?"

बूड़ी फिर चुप ! दीदी के पैर पकडकर सिर छुपाकर रोती रही।

"बोल न, मुंहजली ? तू बोलेगी नही !"

कुन्ती और गुस्सा नही रोक पायी। एकदम सिर तक उठाकर द
बूडी की खोपडी पर दे मारा। बूड़ी जोर की चीख मारकर चुप हो ग

ताई ने शायद अन्दर से सुन लिया था। उनकी आवाज भी सुन
दी। गले की आवाज इसी ओर आ रही थी, "ओ लडकी ! अरी,
हुआ ? उसे इतना मार क्यों रही है ? ऐसा क्या हो गया था? अरी लड़
ताई शायद इसी ओर आ रही थी। लेकिन कुन्ती का उस ओर ध्
नही था। तब भी कहे जा रही थी, "उठ, मुंहजली, उठ, उठकर खड़ी
ताई कमरे में आयी। बोली, "बूड़ी को मार क्यों रही हो, बे
उसने क्या किया है ?"

"देखो न ताई, मैं रात-दिन मेहनत कर उसे आदमी बनाना चाह
खून-पसीना एक कर पैसा कमाती हूँ, यह नालायक अन्दर-ही-अन्दर"

"लेकिन इतना मार क्यों रही हो ? मर जायेगी ! उठो बेटी, तुम ो ! दीदी मेहनत करते-करते पागल हो रही है, तुम्हें भी ज़रा समझना ाहिए।"

कुन्ती—"बाईस रुपये खर्च करके उस दिन इसके लिए किताबें रीदीं। दो महीने की फीस देकर हेड मिस्ट्रेस के पाँव पकड़कर इसे कूल में भर्ती कराया। और यह..."

"अरे, छोटी है। इतनी देर तक जागी रह सकती है ? सारे दिन खाना-ाना बनाने के बाद आँख लग गयी होगी। लेकिन तुमने मुझे क्यों नहीं बुला लिया ? बुढ़ापे का शरीर है, नींद ही नहीं आती। मैं तो सारी रात पड़ी-पड़ी तारे गिना करती हूँ। मुझे पता होता तो मैं ही दरवाजा खोल देती।"

"तुम्हें पुकारने क्यों जाऊँगी, ताई ? इतनी बड़ी धींगड़ी लड़की के रहते तुम्हें तकलीफ़ दूँगी ? और सब मैं ही करूँ ? वह कुछ भी नहीं करेगी ? मैं खाना तक बनाकर रख गयी थी जिससे उसकी पढ़ाई का हर्ज न हो। अगर इतना भी नहीं कर सकती तो क्या करेगी ? सारा दिन आवारागर्दी करती फिरेगी ? तो मैं किसके लिए मरूँ ? अपने लिए ?"

कहते-कहते जैसे कुन्ती का गला भर आया। एक दिन बूड़ी की ही तरह कुन्ती ने भी बाहर निकलना शुरू किया था। वह तब जादवपुर कॉलोनी में रहती थी। इसके बाद सड़कों पर चक्कर काटते-काटते क्रमशः यहाँ आ पहुँची है। कोई आशा नहीं है, कोई भविष्य नहीं है। आज यहाँ, कल वहाँ करके किसी तरह चल रहा है। लेकिन एक आशा थी, बूड़ी आदमी बनेगी। बूड़ी को वह इस लाइन में नहीं आने देगी। बूड़ी को पता भी नहीं चलेगा। दीदी ने किस तरह इतना अपमान सहकर अपने पाँवों पर खड़े होने की कोशिश की है, वह सोच भी नहीं पायेगी। जिस समय 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' ऑफ़िस के बड़े साहब की लड़की को कुन्ती ने देखा था, उस समय भी उसे अपने ऊपर इतनी घृणा नहीं हुई थी। लेकिन घर आकर जो कुछ देखा, उसके बाद तो जैसे होश ही नहीं रहा।

कुन्ती ने कहा, "जाओ ताई, तुम सोओ जाकर, जागकर तुम क्यों परेशान होती हो ?"

"इन मरी आँखों में क्या नींद आती है ! नींद अगर आती तो फिर बात ही क्या थी !"

"नहीं ताई, तुम जाओ। कल सुबह उठकर तुम्हें फिर से गृहस्थी का काम करना होगा। तुम जाओ।"

कह-सुनकर कुन्ती ने ताई को अन्दर भेज दिया। आँगन पार करके ताई फिर अपने कमरे में चली गयी। बूड़ी तब भी कुन्ती के पास उलटी पड़ी थी।

ताई के जाते ही कुन्ती ने गुस्से में आकर कहा, "उठ, मुँहजली, उठ! यह ढोंग और किसी को दिखलाना। उठ!"

लेकिन बूड़ी ने फिर भी उठने का नाम नहीं लिया। कुन्ती ने अभी तक हाथ का बैग भी नही रखा था। वह टेबल पर रखकर कुन्ती कपड़े बदलने लगी। इसी साडी को पहनकर कल फिर निकलना होगा। सिर्फ तीन साड़ियाँ है। इन्ही को अदल-बदलकर धोकर, इस्त्री करके पहनना होता है। साडी-ब्लाउज बदलते-बदलते बोली, "उठ, मैं कह रही हूँ, उठ! उठ भी! इसी उमर मे तुम्हारी यह हिम्मत हो गयी है। मैंने जो सोचा भी नही था, वही हुआ। मैं सोचती हूँ बूडी बैठी-बैठी स्कूल का पाठ याद कर रही होगी, और देवीजी यहाँ अन्दर-ही-अन्दर मेरा मुँह झुलसवाने का इन्तजाम कर रही हैं!"

इसी के बाद घर के कोने की ओर देखा। रोज़ की तरह खाना ढँका रखा था। ढँकना हटाते ही देखा, दो थाली खाना था। बूड़ी ने भी नहीं खाया था।

"यह क्या, तूने खाना नही खाया, बूडी? यह क्या तमाशा है?" कहती-कहती फिर बूडी की ओर गयी—"अरे, उठ, खाना क्यों नही खाया? तुझे हुआ क्या है? उठ, फिर बदमाशी!"

कहकर बूडी का हाथ पकड़कर झटका देते ही चौंककर दो कदम पीछे हट आयी। जैसे साँप ने काट लिया हो। इसके बाद फिर से बूड़ी के बदन को छूकर देखा। पुकारा, "बूडी, ओ बूड़ी!"

झटका देते ही बूडी उलट गयी। सारा बदन बर्फ की तरह ठंडा हो गया था। गाल के ऊपर से होकर खून बह रहा था। कुन्ती के सिर पर जैसे बिजली गिरी। एक दिल दहलानेवाली चीख जैसे अन्दर से बाहर आने का रास्ता न पाकर छटपटाने लगी। बूड़ी के मुँह के पास मुँह लगाकर कुन्ती पुकारने लगी, "बूड़ी, ओ बूड़ी!"

बूडी के मुँह, आँख, बदन, पैर—कही भी जान नही थी। कुन्ती उस अँधेरे सुनसान कमरे मे जैसे बिलकुल टूट गयी। क्या करे, समझ नहीं पा रही थी। चारो ओर देखा। कोई भी कही नजर नही आ रहा था। बाहर उस समय दुनिया चुपचाप सो रही थी। बूड़ी को उसी हालत में छोड़ कुन्ती उठ खड़ी हुई। फिर दूसरा कोई चारा न देख ताई के कमरे की ओर

ी। आगे के कमरे मे ताई रहती है, और बगलवाले में लड़की-जमाई।

कुन्ती ताई के कमरे के दरवाजे पर टोका लगाने लगी।

बूढे आदमियो को वैसे ही नीद नही आती। तिस पर दरवाजे की ावाज सुनते ही हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। बाहर आकर आश्चर्य से पूछा, क्या बात है ? क्या हुआ ?"

"ताई, बूड़ी बोल नही रही।"

कहते-कहते गला भर आया।

"बोल क्यों नही रही ? क्या हुआ ? बात क्यो नही कर रही ? गुस्सा ायी है ?"

कुन्ती से खड़े नही रहा जा रहा था। बोली, "नहीं ताई, मुझे डर लग ा है..."

ताई तब तक समझ गयी थी। कुन्ती के पीछे-पीछे अपना बूढा शरीर िये दौड़ती-भागती आयी। वहाँ आकर रुकी नही। सीधे जमाई के कमरे सामने जाकर पुकारने लगी, "हरिपद, ओ हरिपद !"

लड़की-जमाई कब के सो चुके थे। पुकार सुनकर दोनों की नीद टूट ायी। वे लोग भी सब देखकर खड़े-के-खड़े रह गये।

◻ ◻ ◻

तुम इस कलकत्ता मे ही पैदा हुए हो। इस कलकत्ता की मधुगुप्त लेन ाधारण आदमियो के बीच पले हो, बड़े हुए हो। आज वंश-कौलीन्य ा सीढ़ी लगाकर एक दूसरे समाज मे घुस रहे हो। अब तुम्हें उस शंभू को ्ला देना होगा। विनय, केदार बाबू—सभी को भूलना होगा। आज तुम ावप्रसाद गुप्त के समाज के हो, मिस्टर बोस की सोसाइटी के मेम्बर हो। ्व तुम्हारी निजी चिन्ता-समस्या सभी तुम्हारे समाज को लेकर है। ाज अगर रिफ्यूजियों का हाल देखकर दुःखी होगे तो अपनी उन्नति में ्ह ही रुकावट बन जाओगे। अब अगर केदार बाबू की भतीजी को साथ िये दूकानों पर दवा खरीदते फिरोगे, केदार बाबू की टी० बी० को लेकर पनी नीद खराब करोगे तो तुम्हें भी टी० बी० होगी। पहले अपने को ्तो, फिर अपने समाज को। यही अपनी खुशी और जोश की खुराक ढूंढने ी कोशिश करो। यही पर तुम्हें अपने अस्तित्व की सार्थकता मिलेगी। ्छी तरह से आँखें खोलकर देखो, यहाँ डिनर है, यहाँ पार्टी है, यहाँ ास्मेटिक्स से छिपे चेहरे में भी प्रेम नाम की चीज है। यहाँ का सब-कुछ ही ाटक मत समझो। ये लोग भी रोते हैं, भूख लगने पर ये लोग भी सैंडविच

कुतरते हैं। परदे, गलीचे, सूट-टाई, रेडियोग्राम, टेलीविजन के ...
आदमी मिलेंगे। इतनी-सी बात ध्यान रखो। यहाँ आकर तुम्हें लाभ
लाभ है, नुकसान नहीं है। यहाँ आने पर राजभवन, यहाँ आने पर है
डेंट-एवार्ड, यही पर है पद्मश्री, पद्मभूषण और भारतरत्न !

सारा कलकत्ता घूमकर भी जैसे मन की हलचल का अन्त नहीं था
सड़क पर रुकी गाड़ी में पीछे से कोई हाथ घुसा देता, "साहब,
पैसा !"

फिर चलते-चलते एकदम सीधे जेस्सर रोड पकड़कर आसमान में
जाता। अगर इसी तरह अचानक यहाँ से भाग पाता। गुण्डे अगर कॉ
को तहस-नहस कर डालें, तो रिफ्यूजियों को कॅम्पनसेशन दिये बिना
काम चलता है। केदार बाबू की अगर अण्डे, मछली, गोश्त खरीदने
सामर्थ्य नहीं है तो स्टेट का उसमें क्या कसूर है ! सदाव्रत यहाँ क्यों
हुआ ? इस हर तरह के दुःख-गरीबी, बेइन्साफ़ी और अत्याचार के
अड्डे में !

उस दिन शंभू ने देख लिया। गाड़ी रुकते-रुकते भी काफी दूर जा
रुकी। सड़क के किनारे गाड़ी खड़ी करके सदाव्रत उतर पड़ा।

दूर से चप्पल फटकारता-फटकारता शंभू दौड़ा आ रहा था।

पास आते ही बोला, "तेरी खबर सुनकर बड़ी खुशी हुई। हमारे
में तुझे लेकर बात हो रही थी।"

"बात क्या है ? मुझे लेकर कौन-सी बात ?"

शंभू ने कहा, "तुझे दो हज़ार रुपये की नौकरी मिली है न !"

सदाव्रत अवाक् रह गया।

"किसने कहा ?"

"सुना है। बात सच है न ?"

"लेकिन तुझे किसने बतलाया ? तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

शंभू ने हँसते-हँसते कहा, "कुन्ती, कुन्ती गुहा की याद है ? अपने
की वही लड़की !"

"हाँ, याद है, लेकिन उसे कैसे मालूम हुआ ?"

शंभू—"अरे, उसे सब मालूम रहता है। वे लोग तो सारा दिन
फिरती हैं। तरह-तरह के लोगों से मिलती हैं। वही कह रही थी।
लोग तो कभी दो हज़ार रुपये का स्वप्न भी नहीं देख पायेंगे। ...
सुन ही लेते हैं। एक खबर और भी सुनी।"

"कौन-सी ?"

"सुना, शादी हो रही है। वहू बड़ी ही सुन्दर है। सच, सुनकर वडी शी हुई, इसीलिए दुलाल दा से कह रहा था, हम लोग तो खाली घास ाटने आये हैं, घास ही काटते रहेंगे। जिन्हे उठना था, ठीक उठ रहे है। व, तूने मन लगाकर पढाई की, हम लोगों की तरह आवारागर्दी नही ो। तेरी उन्नति नही होगी तो क्या हम लोगों की होगी ?"

वाद में जरा देर रुककर कहा, "देख भाई, वुढापे में वाल-वच्चे होने र नौकरी के लिए तुझे ही पकड़ूँगा।"

सदाव्रत को ये सारी बातें अच्छी नहीं लग रही थी। लग रहा था, से उसे पकड़कर कलकत्ता के लोग चावुक से मार रहे है। सभी को पता ग गया है कि उसने सभी के साथ दगावाज़ी की है। सभी जान गये है कि स दल को छोडकर वह चुपचाप उस दल में जा मिला है। कॉलिज में पढते मय केदार वावू से जो कुछ सीखा था, उसे भुलाने की कोशिश कर रहा ा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द के वारे मे निवन्ध लिख- र वह क्लास मे फर्स्ट होता आया है। आज जैसे वही ईश्वरचन्द्र विद्या- ागर और स्वामी विवेकानन्द उस पर हँस रहे है। सामने खड़े उसे चोर, ठग, क्विज़लिंग कहकर अँगुली दिखला रहे हैं—वह देखो, इसी लडके ने क दिन इम्तहान की नोटबुक में लिखा था—'गरीवों से घृणा मत करो। यान रखना, ये करोडों भारतवासी तुम्हारे भाई है। मनुष्य के कल्याण के नए जो अपना जीवन निछावर करता है, वही आदर्श पुरुष है।'

उस ओर सामने की दीवार पर मोटर की हैडलाइट की रोशनी पड़ते । सदाव्रत की नज़र उधर गयी। बड़ा-सा विज्ञापन लगा हुआ था। आँखों सामने वड़े-वडे अक्षर—'राष्ट्र की सेवा में हमारे प्रसिद्ध चाँदमार्का नस्पति के पचीस साल।'

राष्ट्र की सेवा ही तो है। सदाव्रत मन-ही-मन हँस पड़ा।

राष्ट्र की सेवा के लिए ही 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' की स्थापना हुई ी। राष्ट्र की सेवा के उद्देश्य से ही उसने दो हज़ार रुपये की नौकरी मंजूर ी है। राष्ट्र की सेवा के लिए ही वह परचेज़िंग ऑफिसर हुआ है। सभी राष्ट्र की सेवा कर रहे है। इंडिया के प्रेसिडेंट से लेकर सदाव्रत तक।

"तू हँस रहा है ? हम लोगों का हाल देखकर तो तुम लोगों को हँसी आयेगी!"

सदाव्रत ने वात काटी।

"तुम लोगों के क्लब का क्या हाल है ?"

शभू—"क्लब के लिए ही तो कुन्ती गुहा के पास गया था।"

"लेकिन कुन्ती गुहा को छोड़कर क्या कलकत्ता मे और आर्टिस्ट न
है ? सुना है, और भी तो दो-तीन सौ लड़कियाँ हैं।"

"लेकिन कालीपद ने तो कुन्ती को ही सिलेक्ट किया है। 'मरी मि
की 'शान्ति' के पार्ट के लिए कुन्ती को छोड़कर और कोई ठीक नही ब
मैंने तो कुन्ती से यही कहा। लेकिन वह इस समय बड़ी मुश्किल मे पड़ी है।

"कैसी मुश्किल ?"

"उसकी एक छोटी बहन है। शायद मर ही जाती। उसी को ले
कई दिनों से अस्पताल और घर एक किये है। एकदम मरने-मरने को
इन कुछ ही दिनो मे सूरत बदल गयी है। उसी से तो तेरी नौकरी के
में सुना।"

सदाव्रत ने शंभू के चेहरे की ओर देखा। ऊपर से खुश दीखने प
अन्दर से शभू खुश नही था। सदाव्रत अब उसमे काफी ऊँचाई पर है
शभू आदि की पहुँच के बाहर। हजार कोशिश के बावजूद भी शंभू स
तक नही पहुँच सकता।

इसी तरह शायद आदमी-आदमी में दूरी बढती है। एक ही भौगो
सीमा मे विभिन्न श्रेणियों को जन्म मिलता है। आदमी खुद ही
बनाकर बीच-बीच में लाइन खींच देता है। और आदमी ही कहता है
लाइन के इस पार जो लोग हैं, वे हमारे दोस्त हैं, और जो दूसरी ओ
वे दुश्मन है। वे और हम एक नही हैं।

अचानक उस ओर की फुटपाथ पर नज़र पड़ते ही सदाव्रत देखा
गया। पहचाना-पहचाना-सा चेहरा था। सदाव्रत ने फिर अच्छी त
देखा। मन्मथ और शैल पास-पास चल रहे थे। सदाव्रत ने ठीक देखा
नही, गलत नही है। उसने ठीक ही देखा था। वे लोग सदाव्रत को
देख पाये। दोनों बातें करते-करते चले जा रहे थे। दुनिया की कि
चीज का जैसे उन दोनों को होश नही था।

"मन्मथ ! मन्मथ !"

सदाव्रत ने एक बार बुलाने की भी कोशिश की। लेकिन चि
गोचर नही पुकारा। हो सकता है आज भी दवा खरीदने निक
हो सकता है केदार बाबू की बीमारी और भी बढ़ गयी हो। उस दिन
को पहुँचाने के बाद फिर कहाँ जा पाया ! जाने शायद उसके मन में

भी नहीं थी। सच ही इसी तरह दिनों-दिन कितनी ख़राब बातें ज़िन्दगी मे घर कर लेती है। कम-से-कम इस मुश्किल के समय उसे दूसरे ही दिन जाना चाहिए था। और यह भी हो सकता है कि उसके न जाने से किसी को कोई भी तकलीफ़ न हुई हो। तकलीफ नही हुई, आज मन्मथ का साथ होना इस बात का सबूत था। केदार बाबू की भतीजी अकेली भले ही कुछ न कर पाये, उसकी सहायता करनेवाला और भी एक है। इसलिए उसके बिना गये भी काम चलेगा। सदाव्रत ने मन्मथ को न बुलाकर अच्छा ही किया। वे लोग बातें करते हुए जा रहे है, जायँ। वह जाकर क्यो दाल-भात में मूसरचन्द बने !

घूमकर देखा, शंभू नहीं था। शभू कब चला गया ? हो सकता है, जाते समय कहकर ही गया हो। सदाव्रत को ही ध्यान नही था। सदाव्रत ने गाड़ी में आकर इंजिन स्टार्ट किया। आज वह अकेला है। आज वह दूसरो सभी से ऊँचा उठकर उनसे अलग हो गया है। आज वह अपने दल से ठुकराया हुआ है।

□ □ □
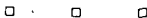
अचानक पद्मरानी के फ़्लैट के सामने शोरगुल शुरू हो गया। पद्मरानी के फ़्लैट के सामने ही क्यो ! असल में पद्मरानी के फ़्लैट के अन्दर ही से शोर-गुल की शुरुआत हुई थी।

ऐसा शोरगुल इस ओर रोज़ ही होता रहता है। या तो आदमी के खून को लेकर, नही तो गाली-गलौज या मार-पीट लेकर। कुछ-न-कुछ लगा ही रहता। पद्मरानी की जगह अगर कोई ऐसी-वैसी औरत होती, तो कब की अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर काशी की राह पकड़ती।

कही कुछ भी नही। अचानक मार-पीट शुरू हो जाती। दो पार्टियाँ तफ़रीह करने आती। सारे दिन महफिल जमेगी सोचकर ही लड़कियों को किराये पर ठीक किया जाता। शराब मँगायी जाती, गोश्त आता, गाने के साथ तबला बजाने के लिए तबलची बुलाया जाता। ऐश करते-करते अचानक मार-पीट शुरू हो जाती। आलमारी, शीशा, टेबल, चेयरो की तोड़-फोड़ शुरू होती। सोडावाटर की बोतलें और काँच के गिलासों की फेंका-फेंकी शुरू होती। मार-पीट जब तक पूरी होती महफिल लड़ाई के मैदान में बदल चुकी होती। फिर पुलिस और दारोगा आते। उन्हें घूस देकर मामला दबाया जाता। तब पद्मरानी मुआवज़े के रुपये वसूलती। नकद रुपये। जहाज़ी बाबू लोगों के हज़ारों रुपये एक ही दिन में उड़ जाते।

इस बार कोई जहाजी नहीं था।

कानपुर, बनारस या इलाहाबाद—कहीं से एक छोकरा कलकत्ता आया था। इरादा था कलकत्ता देखेगा। बाप की राइस-मिल थी। धन्धा अच्छा चल रहा था। सी० पी० से राइस खरीदकर मिल में साफ़ कराकर गवर्नमेंट को सप्लाई किया जाता। लड़के की उम्र कम ही थी। पहली बार हाथ में पैसा आया था। बम्बई देख आया है। दिल्ली देख चुका है। सिर्फ़ कलकत्ता देखना बाकी था।

इसके बाद पता नहीं कैसे रास्ते में कुन्ती गुहा के साथ मुलाक़ात हो गयी। दोपहर को दोनों बड़ेबाजार की धर्मशाला से निकलकर टैक्सी में चिड़ियाखाना देखने गये। बॉटैनीकल गार्डन गये। वहाँ पहुँचकर दोनों खूब घूमे। वहाँ से निकल किसी अकेली जगह की जरूरत महसूस हुई।

त्रिलोकनाथ ने कहा, "चलो, किसी होटल में कमरा ले लें।"

कुन्ती ने कहा, "होटल में कमरा लेने में काफ़ी रुपये लगेंगे।"

त्रिलोकनाथ ने कहा, "रुपया मेरे पास है। काफी रुपया है।"

तो वहाँ से कुन्ती त्रिलोकनाथ को सीधे यहाँ ले आयी थी।

पद्मरानी अवाक् रह गयी। बोली, "अरे, टगर! कहाँ से ?"

टैक्सी में सारे दिन कहाँ-कहाँ घूमी थी। आँख-मुँह जैसे एकदम लाल हो रहे थे।

'तेरी बहन का क्या हाल है, बेटी ?"

इतनी बातें करने का वक्त कुन्ती के पास नहीं। कहाँ से किस बाबू को लाकर घर में बैठाया है, वह भी ठीक से बतलाने का वक्त नहीं था। और पद्मरानी को भी इन बातों से कोई वास्ता नहीं था। लड़कियाँ कहाँ से किसे पकड़ लाती हैं, इससे उसे क्या मतलब ?

कुन्ती ने कहा, "एक बड़ी ह्विस्की की बोतल मेरे कमरे में भिजवा दो, माँ! गुफल की दूकान से पराँठे और मसालेदार 'एग-करी'। ये रुपये।"

कहकर एक सौ रुपये का नोट पद्मरानी के हाथ में पकड़ा दिया। इतना कह अपने कमरे में बाबू को ले जाकर दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। इसके बाद कमरे के अन्दर दोनों क्या करते रहे, इससे पद्मरानी को कोई मतलब नहीं। टगर ने अन्दर से जो कुछ ऑर्डर किया सिर्फ़ सप्लाई करती रही। कभी सोडा, कभी चाय, कभी पान-तम्बाकू और सिगरेट। एक के बाद दूसरा ऑर्डर। दोपहर के समय घर वैसे भी खाली रहता। उस समय सभी अपने-अपने कमरे में खुर्राटे भरते होते। किसी को पता नहीं चल

गर ने कितने रुपये कमाये, और कितने गँवाये।

शाम को पाँच बजे टगर अपने कमरे से निकलकर सीधी पद्मरानी के पास आ खड़ी हुई।

पद्मरानी ने पूछा, "क्यों बेटी, और कुछ चाहिए क्या ? एक छोटी ह्विस्की और भेजूं ?"

उस समय कुन्ती का बुरा हाल था। जो आदमी तफ़रीह करने आया, वह क्या यों ही छोड़नेवाला था ? चूसकर-चबाकर कुन्ती को बेहाल र तब कहीं छोड़ा था।

कुन्ती ने कहा, "नहीं-नहीं, और कुछ नहीं चाहिए। मैं जा रही हूँ।"

"लेकिन तू तो चल दी, और तेरा बाबू कहाँ है ?"

"वह अभी तक सो रहा है। अभी तक उसका नशा नहीं उतरा है। मुझे एक बार अस्पताल जाना है, और नहीं रुक पाऊँगी।"

"तेरे बाबू के सोकर उठने पर क्या कहूँ ?"

"कहोगी क्या ? कह देना मैं चली गयी हूँ। मेरी बहन को आज खून दिया जायेगा। ये रुपये ले जाकर दूँगी तब इंजेक्शन दिया जायेगा। छः बजे पहले रुपये नहीं पहुँचाने पर अस्पताल बन्द हो जायेगा।"

कुन्ती जा ही रही थी—पद्मरानी ने पीछे से पुकारकर कहा, "बाकी रुपये नहीं लेगी ?"

कुन्ती—"बाद में हिसाब करूँगी, माँ। इस वक्त फुरसत नहीं है।"

"उठकर अगर तेरा बाबू तुझे पूछे ?"

"कहना, मैं यहाँ नहीं रहती। मेरा नाम पूछने पर मत बतलाना।"

इसके बाद कुन्ती और नहीं रुकी। लेकिन शाम को साढ़े पाँच बजे ही त्रिलोकनाथ की नींद टूट गयी। उठकर देखा, कोई कहीं नहीं है। कमीज़ के सोने के बटन नहीं हैं। हाथ की रिस्टवाच भी गायब है। पॉकेट का मनिबैग भी खाली है। खुदरा कुछ रुपये छोड़कर सौ-सौ रुपये का एक भी नोट नहीं है। नशा तब तक कम हो चुका था। क़ीमती असली ह्विस्की का नशा एकदम काफूर हो चुका था। त्रिलोकनाथ हाय-तोबा करने लगा। त्रिलोकनाथ की हाय-तोबा सुनकर गुलाबी, दुलारी, बासन्ती, बिन्दु, जो जहाँ थी, दौड़ी आयी।

पद्मरानी ने कहा, "तुम्हारे सोने के बटन, घड़ी और रुपये कहाँ गये, हम लोगों को क्या मालूम, बेटा ?"

त्रिलोकनाथ ने तरह-तरह से साबित करने की कोशिश की, कि उसके

सोने के बटन, रिस्टवाच और दो हजार रुपये लेकर छोकरी भाग गयी है
पद्मरानी ने कहा, "लेकिन तुम लड़की लेकर मजा लूटने आये थे तो ह
बेहोश हो गये थे ? रुपया पास होने पर क्या इस तरह बेखबर होते हैं, बेटा ?"

त्रिलोकनाथ फिर भी हाय-तोबा मचा रहा था।

पद्मरानी ने कहा, "देखो, बेटा, यहाँ तो हल्ला मचाओ मत। यहाँ
मेरी लड़कियाँ रहती हैं। मैं तुम्हें यहाँ पर गोलमाल नहीं करने दूँगी।
कलकत्ता में थाना है, पुलिस है। वहाँ जाओ न, बेटा। वहाँ जाकर कहो
कि लड़की को लेकर तफ़रीह करने पर तुम्हारा यह हाल हुआ है। वे लोग
तुम्हारी बात सुनेंगे। जाओ न, बेटा, वहाँ जाओ न !"

चीख़-पुकार सुनकर फ़्लैट का दरवान अन्दर आ गया। उसे देखकर
शायद त्रिलोकनाथ थोड़ा डर गया। इसके बाद बाहर निकल गया। वहाँ
आकर लोग इकट्ठा करने की कोशिश की। अपना दल भारी करने की
कोशिश करने लगा।

कलकत्ता के लोग। खासकर चितपुर और सोनागाछी के लोग। बात
की-बात में भीड़ इकट्ठी हो गयी। पूछने लगे, "क्या हुआ, जनाब ?"

त्रिलोकनाथ ने अपनी जान में बहुत थोड़े में अपनी कहानी सुनायी।
सब लोगों की सहानुभूति पाने की कोशिश की। सभी हँसते-हँसते बेहाल
हो रहे थे।

"रंडीबाजी में रुपये गँवाकर अब बेहया की तरह चिल्ल-पों मचा रहे
है ! अरे जनाब, सस्ते छुट गये। अभी तक जान बची हुई है ! और हँसी
मत उड़वाइये। ठंडे-ठंडे खिसकिये !"

त्रिलोकनाथ ने देखा, अजीब शहर है। यह बनारस, दिल्ली, कानपुर,
इलाहाबाद, बम्बई या अहमदाबाद नहीं है। यह कलकत्ता है। ऐसा अजीब
शहर त्रिलोकनाथ ने सारी ज़िन्दगी में नहीं देखा था। सड़क पर लोगों की
हँसी के सामने खड़ा नहीं रह पाया। भागकर जान बचायी।

अस्पताल का वार्ड बन्द होने ही वाला था।

कुन्ती जल्दी में अस्पताल के वार्ड-मास्टर के कमरे के सामने जा
खड़ी हुई।

वार्ड-मास्टर ड्यूटी पर ही था। पूछा, "रुपये लायी हैं ?"

"हाँ," कहकर कुन्ती गुहा ने बैग खोलकर उसमें से सौ रुपये का एक
नोट निकालकर दिया, "इससे काम चलेगा न ?"

वार्ड-मास्टर ने कहा, "फ़िलहाल इसी से चलेगा। बाद में जो लगेगा, आपको बतलाऊँगा।"

रसीद लेकर कुन्ती ने पूछा, "रोगी का इस समय क्या हाल है, बता सकते है ?"

"अभी तक अनकॉन्शस ही है। ब्लड देने पर लगता है, सब ठीक हो जायेगा। असल में काफी वीक हो गयी थी न। एकदम ठीक होने मे थोडा समय लगेगा। आप देख आइये न !"

"मुझे देखने देंगे ?"

"हाँ, जाइये न, छ: बजने मे तो अभी देर है।"

कुन्ती ज़ीने से ऊपर चढ़ने लगी।

□ □ □

तुम अपना काम किये जाओ और मैं अपना काम करूँगी। सभी लोग अगर काम को इसी तरह बाँटकर करें तो ज़रा भी मुश्किल नही होगी। मास्टर मन लगाकर लड़को को पढ़ायें, लडके भी मन लगाकर लिखा-पढ़ी करें। और लड़कों के गार्जियन नियमित रूप से फीस देते रहे। समाज एक इंजिन की तरह है। इंजिन के एक पुर्जे के साथ दूसरा पुर्जा इस तरह जुडा है कि एक भी पुर्जा अगर काम बन्द कर दे तो साथ-ही-साथ दूसरा भी बेकार हो जायेगा। इंजिन तब चलेगा ही नही, रुक जायेगा।

केदार बाबू कहते, "सोसायटी का भी तो वही हाल है, रे ! अगर मैं लड़को को ठीक से नही पढाऊँगा तो मेरे विद्यार्थी फेल हो जायेंगे। वे लोग आदमी नहीं बन पायेंगे। ऐसा होने पर देश रसातल में जायेगा न !"

मन्मथ कहता, "मास्टर साहब, आपकी तरह कितने लोग सोचते हैं। सभी रुपये लेते हैं और बस। लड़के पास हों या फेल, आदमी बनें या नहीं, उनकी बला से !"

"तुम चुप रहो !"

केदार बाबू नाराज़ हो जाते। कहते, "मैं अच्छा मास्टर हूँ, और सभी खराब हैं, यही कहना चाहते हो न ? खुशामद करने को तुम्हें और कोई जगह नही मिली ? तुम सोचते होगे, मैं तुम्हारी खुशामद मे आ जाऊँगा ? मुझे वैसा ही आदमी समझा है ? मुझे बनाने चले हो ?"

गुस्से से केदार बाबू जैसे पागल हो जाते।

कहते, "तुम निकल जाओ, मेरे घर से निकल जाओ !"

मन्मथ जितना ही समझाने की कोशिश करता, "नहीं, मास्टर साहब,

मैंने ऐसा तो नही कहा। मेरा मतलब था सभी धोखा देते हैं।"

"सब लोग धोखा देते हैं और मैं मिन्सियरली काम करता हूँ न ? मैं धोखा नही देना ? यही आजकल जो बीमार पड़ा हूँ, लड़कों को देख रहा हूँ ? तुम्हारी ही पढ़ाई क्या ठीक से करा पा रहा हूँ ? उस दिन तुम्हारे पिताजी ने मेरी फीस भेजी। मैंने ली नहीं ? मैंने धोखा देकर पैसा नहीं लिया ?"

मन्मथ ने कहा, "लेकिन बीमारी में आप कैसे पढ़ायेंगे ? आप बीमार जो हैं।"

"बीमार, सिर तुम्हारा ! मैं तो ठीक हो गया हूँ।"

"लेकिन मास्टर साहब, आपका शरीर अभी भी कमजोर है। आपको अभी लेटे रहना चाहिए।"

केदार बाबू और नही रोक पाये। जल्दी से बिस्तरा छोड़कर उठ खड़े हुए। और भी आश्चर्य की बात। उठकर अलगनी से कुर्ता उतारकर पहन लिया, पैरो मे चप्पल डाल ली। इसके बाद छतरी लेने कमरे के कोने की ओर जाने लगे।

मन्मथ ने जल्दी से जाकर छतरी उठा ली। बोला, "आप क्या कर रहे है, मास्टर साहब ? आपका क्या दिमाग खराब हो गया है ?"

"....दिमाग मेरा खराब है या तुम लोगो का? तुम्ही लोग तो 'बीमार बीमार' कहकर मुझे जबर्दस्ती बिस्तरे पर सुलाए रखते हो। मैं क्या समझता नही हूँ ? तुम क्या यही चाहते हो कि लड़कों का साल खराब हो ? गरीब हैं, इसलिए वे लोग पढ़ेंगे-लिखेंगे नहीं ? छोड़ो, छतरी छोड़ो !"

और कोई रास्ता न देख मन्मथ ने अचानक बाहर आकर आवाज दी, "शैल, शैल, यह देखो मास्टर साहब बाहर जा रहे है !"

केदार बाबू शायद मन्मथ को ढकेलकर ही निकल जाते, लेकिन तब तक शैल आ पहुँची थी।

"क्या हुआ, काका ? तुम कहाँ जा रहे हो ?"

शैल को देखकर केदार बाबू जरा ढीले पड़ गये। बोले, "यही, जरा गुरुपद को पढ़ा आऊँ।"

"गुरुपद ?"

"हाँ, गुरुपद। जियोग्राफी में जरा कमजोर है। मैंने गुरुपद की माँ से वायदा किया था, गुरुपद को मैं पास करा दूँगा। अब अगर जाना नहीं हुआ तो बात टूटती है।"

केदार बाबू के हाल पर शैल हँसे या रोये, ठीक नही कर पा रही थी। काका को इतने दिनो बाद भी जैसे ठीक से समझ नही पायी थी।

केदार बाबू शैल की ओर देखकर विनती-भरे स्वर में बोले, "तू जरा भी फिक्र न कर, बेटी ! मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। मै जाऊँगा और आऊँगा। नही तो तू समझती ही है, गुरुपद को सिफर ही मिलेगा। उसे देखनेवाला कोई नही है। बहुत गरीब है, बेटी !"

शैल ने गम्भीर होकर कहा, "तो गुरुपद को देखनेवाला कोई नही है, वह बड़ा गरीब है। और तुम्हें देखनेवाले लोग है ? तुम बड़े रईस हो न?"

"अरे हट, तू मजाक कर रही है, मैं समझ गया हूँ !"

शैल का चेहरा वैसे ही गम्भीर रहा। बोली, "एक बार मैं बागमारी में पानी में डूबने गयी थी। उस दिन लोगो ने देखकर मुझे बचा लिया। लेकिन इस बार इस तरह मरूँगी, किसी को कानोकान खबर भी नहीं मिलेगी। कोई भी नही जान पायेगा, कहे देती हूँ।"

"ऐ ! तू जान-बूझकर डूबने गयी थी ?"

केदार बाबू इतने दिन बाद जैसे आसमान से गिरे।

"तूने मुझे तो बतलाया नही, बेटी ! मुझे तो कुछ भी मालूम नही था। क्यों मन्मथ, तुम जानते थे ?"

मन्मथ ने उस बात का कोई जवाब नही दिया। उसने कहा, "हम लोग सब जानते हैं, मास्टर साहब ! आप अब सो जाइए। यह बीमारी का शरीर लिए बाहर मत निकलिए।"

"तो गुरुपद का क्या होगा ?"

"गुरुपद के लिए गुरुपद सोच लेगा। आप क्या उसकी चिन्ता में अपना शरीर सुखा डालेंगे ?"

केदार बाबू ने कहा, "तब जरा दूर चलकर वापस लौट आऊँगा—क्या कहती हो, बेटी ? बस जरा दूर ! यही आधा घंटे के लिए ! क्यो री, शैल नहीं रही है ? जाऊँ ?"

शैल ने इस पर भी कोई जवाब नही दिया। केदार बाबू मन्मथ की ओर देखकर बोले, "तुम जरा समझाओ न, बेटा। तुम अगर समझाकर कह दोगे तो शैल मुझे जाने देगी। उसके कहे बिना मैं कैसे जा सकता हूँ!"

शैल ने कहा, "मुझे क्यों बदनाम कर रहे हो, काका ? मैं कौन हूँ? मैं अगर मर भी जाऊँ तो तुम्हारा क्या जाता है ? तुम्हें मेरी जरा भी परवाह है ? तुम अपने विद्यार्थियों के बारे में जितना सोचते हो, उसका सौवाँ भाग

भी क्या मेरे बारे में सोचते हो ?"

केदार बाबू ने कहा, "यह देख, मन्मथ, शैल क्या कह रही है। मुझे उसकी जरा परवाह नहीं है। उसकी बातें सुनीं ?"

मन्मथ ने कहा, "शैल कुछ गलत तो नहीं कह रही है, मास्टर साहब आप तो हम लोगों के बारे में ही ज्यादा सोचते हैं। मैं भी तो आपका विद्यार्थी हूँ, मुझे मालूम है।"

"यह देखो, तुम भी मुझ पर गुस्सा हो। अब तुम सब लोग अगर गुस्सा होकर बैठ जाओगे तो उन बेचारे गरीब लड़कों का क्या होगा ? वे लोग कहाँ जायेंगे ? उनके पास पैसा भी नहीं, इसी से क्या वे घूरे पर से उठकर चले आये हैं ? उन लोगों को गवर्नमेंट नहीं देखेगी, स्कूल-कॉलिजवाले नहीं देखेंगे, देश के लोग भी उन बेचारों को नहीं देखेंगे, तो वे लोग जायें कहाँ कहो न, तुम्हीं बताओ ?"

शैल ने मन्मथ की ओर देखकर कहा, "मन्मथ दा, तुम क्यों पागल आदमी से बहस करते हो ! मेरा तो दिमाग़ खराब हो ही गया है, अब तुम्हारा भी खराब होगा।"

केदार बाबू ने भतीजी की बात को अनसुना करके कहा, "तो तुम लोगों का कहना है कि मैं न जाऊँ ? तुम लोग जो कहोगे, अब मैं वही करूँगा। बोलो, क्या करूँ ? मैं जाऊँ नहीं न ?"

शैल ने कहा, "क्यों, जाओगे क्यों नहीं ? तुम हम लोगों की बातें क्यों सुनोगे ? हम लोग तुम्हारे कौन हैं ? तुम्हारे विद्यार्थी ही तो तुम्हारे सब कुछ है। उन लोगों का भला देखो न ! हम लोगों के बारे में सोचने को किसने कहा है ? कहाँ से, कैसे घर चल रहा है, कैसे तुम्हारा इलाज चल रहा है, वह भी जानने की तुम्हें जरूरत नहीं है ! तुम जाओ न ! बाद में जब सिर चकराकर सड़क पर गिर पड़ोगे, उस समय मैं तो हूँ ही। मैं रात जागकर मैं तुम्हारे सिर पर बर्फ़ की थैली रखूँगी, तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम मुझे खिला रहे हो, पहना रहे हो ! तुम जाओ, दे दो न, मन्मथ दा, छाता दे दो। उन्हें जाने दो !"

केदार बाबू खड़े-खड़े क्या करें, ठीक नहीं कर पा रहे थे। आखिर में हताश होकर बोले, "लेकिन क्या करूँ ? मेरी बीमारी ठीक क्यों नहीं होती ? मुझमें पहले-जैसा जोर क्यों नहीं है ? यह मुझे क्या हो गया है ? डाक्टर मेरी बीमारी क्यों दूर नहीं कर पाते ?"

कहते-कहते जैसे अपनी ही हालत पर तरस खाने केदार बाबू ...

र बैठ गये।

कहते रहे, "यह मुझे क्या हुआ ? यह मेरा क्या हुआ ? मेरा सिर क्यों घूम रहा है ? मेरे दोनों पाँव काँप क्यों रहे है ?"

मन्मथ अब तक चुपचाप खड़ा था। उसने जाकर केदार बाबू के दोनो हाथ पकड़ लिये।

लेकिन शैल नही रुकी। वह कहती गयी, "सिर घूमेगा क्यो नही? पाँव क्यों नही काँपेंगे ? तुम्हें क्या दूध दे पाती हूँ पीने के लिए ? माँस, मछली, अंडा खाने को दे पाती हूँ ? डॉक्टर जो-जो दवा लिखता है, वही क्या सब खिला पाती हूँ ? तुम बीमार नही होगे तो कौन होगा ?"

"मास्टर साहब !"

सदाव्रत की आवाज सुनकर तीनो ही अवाक् रह गये। तीनो ने ही जैसे वहाँ उसकी आशा छोड़ दी थी।

"सदाव्रत, तुम आये हो ?"

केदार बाबू के एकदम नजदीक आकर सदाव्रत ने पूछा, "आपकी तबीयत कैसी है, मास्टर साहब ?"

केदार बाबू की आँखो और चेहरे पर जैसे चमक आ गयी। बोले, "मैं अच्छा हो गया हूँ, सदाव्रत। तुम्हे दो हजार रुपये की नौकरी मिली है, सुनकर मेरी सारी बीमारी दूर हो गयी है। जानते हो, मैंने शशिपद बाबू से तभी कहा था। कहा था, देख लेना मेरे लड़को में सदाव्रत एक दिन उन्नति करेगा। क्यों मन्मथ, मैंने कहा नही था ? बचपन से ही पढ़ा रहा हूँ। हमेशा देखता आया हूँ, वह इन्टेलिजेन्ट है।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, मास्टर साहब, इन्टेलिजेन्ट होने की वजह से नौकरी नही मिली है।"

"क्या कहते हो तुम, सदाव्रत ! दो हजार रुपये तुम्हारी सूरत देखकर तो नही देंगे ? जरूर ही तुम्हारे अन्दर ऐसा कोई गुण पाया, जिसकी वजह से दे रहे है। क्यो, कलकत्ता मे तो कितने ही आदमी है। उन्हें तो कोई पाँच सौ रुपये की भी नौकरी नही देता, तो तुम्हे क्यों देते है ? बोलो, वे तुम्हें क्यों देते हैं ?"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखा। शैल चुप खड़ी थी। मन्मथ भी आज काफी गम्भीर दीख रहा था। जैसे किसी को उसका वहाँ आना पसन्द नही आया। सदाव्रत इतने दिनों से मास्टर साहब के पास आ रहा है, लेकिन किसी ने आज तक उसकी ओर इस तरह से नही देखा। आज क्या वह यहाँ

भी अवांछित है ? इन लोगों को भी क्या उसके बारे में पता है ? नौकरी के बारे मे जब पता है तो बाकी खबर भी जानते ही होंगे। इतने मेलजोल के बाद भी ये लोग उसे पराया समझ रहे हैं !

शैल धीरे-धीरे चुपके से कमरे से निकल गयी।

सदाव्रत भी उसके पीछे-पीछे कमरे से बाहर आया। बरामदा पार करने के बाद नाला था। जल्दी से नाला पार कर गली के छोर पर पकड़ लिया। बोला, "सुनो !"

शैल पीछे घूमकर खड़ी हो गयी। सदाव्रत ने कहा, "मैंने ऐसा क्या किया है, जिसकी वजह से मुझसे बिना बात किये ही चली आयीं ?"

शैल शायद और कुछ कहने जा रही थी, लेकिन वह न कहकर सिर्फ इतना ही कहा, "मुझे रसोई में काम है।"

"यही क्या तुम्हारे दिल की बात है ?"

"हाँ।"

"तुम सच कह रही हो न ! या दो हजार रुपये की नौकरी पाने से अचानक तुम लोगों के लिए पराया हो गया, कुछ समझ नहीं पा रहा। काफी दिनों से सोचते-सोचते मैं पागल ही हो गया था, इसीलिए आ नहीं पाया। तुम लोग क्या इसीलिए गुस्सा हो ?"

शैल ने सिर्फ कहा, "नहीं।"

"तब मेरे अन्दर आते ही तुम लोग चुप क्यों हो गये ? मैंने क्या किया है ? यह बात नहीं है कि मैं मास्टर साहब की बीमारी की बात भूल गया हूँ। तुम्हारे बारे में भी सोचता रहा। अपनी हालत के बारे में भी सोचकर बेचैन हो गया हूँ। जब इस तरह कुछ भी ठीक नहीं कर पाया तो तुम लोगों की ओर चला आया। यहाँ आकर देखता हूँ, तुम्हारा मन भारी है। अब मैं क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ ?"

शैल—"काका की बीमारी, घर की यह हालत, इस पर भी मेरा मन भारी रखना क्या गुनाह हो गया ?"

"लेकिन मन्मथ तो है। वह तो तुम लोगों की काफी सहायता करता है।"

शैल ने सिर उठाया। बोली, "मैंने क्या कहा है कि मन्मथ दा सहायता नहीं कर रहे ?"

इसके बाद क्या कहे सदाव्रत समझ नहीं पा रहा था। पूछा, "तब ?"

शैल ने कहा, "मन्मथ दा हम लोगों की सहायता कर रहे हैं, तो

को बुरा लगा है ?"

"तुम क्या कह रही हो ?"

"तब उस दिन रास्ते में मिलने पर भी तो आपने बुलाया नही। आप
दोस्त के साथ बात कर रहे थे। हम लोगों को देखकर भी आपने न
ने का बहाना किया।"

इसके बाद सदाव्रत के पास जवाब देने को कुछ भी नही था।

लेकिन शैल ने ही बचा दिया। बोली, "आप जाकर काका के पास
ये। मैं आ रही हूँ। उस दिन आप बीस रुपये उधार दे गये थे, लेकर
जाइयेगा।"

कहकर सदाव्रत को उसी हालत में छोड़कर शैल अन्दर आँगन की
र गायब हो गयी।

□ □ □

कमरे में आते ही केदार बाबू ने उत्सुकता से सदाव्रत की ओर देखा।
, "क्यों सदाव्रत, शैल तुम्हें बाहर बुलाकर तुमसे क्या कह रही थी ?
खूब शिकायत कर रही थी न ?"

सदाव्रत की चोट अभी कम नहीं हुई थी। उसने सिर्फ़ कहा, "नहीं।"

"तब ? इतनी देर तक तुमसे क्या बात कर रही थी ? मेरे ऊपर
गुस्सा है, यही बात है न ? मैं गुरुपद को पढ़ाने जा रहा था तो मुझसे
जी में आया कहा।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, यह बात भी नहीं है।"

केदार बाबू अवाक् रह गये। "वह भी नहीं, यह भी नहीं ! तब ?"

इसके बाद मन्मथ की ओर देखकर कहा, "तुमने तो देखा न, शैल कैसी
हो गयी थी। मेरे ऊपर गुस्से नहीं हुई थी ?"

मन्मथ ने कोई जवाब नहीं दिया। केदार बाबू जैसे मन-ही-मन कहने
, "इसका बाप भी बड़ा गुस्सैल था। जानते हो सदाव्रत, आखिर गुस्से
ी कारण मर गया। सिर की नस फट गयी थी। मैं तो इसीलिए कहता
-इतना गुस्सा क्या अच्छी बात है, बेटी ! इस दुनिया में तो सभी जैसे
गुस्सा दिलाने के लिए कमर कसे बैठे हैं। लेकिन तुम गुस्सा क्यों
ोगी ! जो गुस्साया वही हारा। पता है, हिटलर बड़ा गुस्सेबाज था।
लिए कितनी गड़बड़ कर गया। हिस्ट्री में एक और गुस्सैल हुआ है, नाम
ाई···"

सदाव्रत ने बात के बीच में ही कहा, "आजकल आप कैसे हैं ?"

"मैं एकदम ठीक हो गया हूँ। अब मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है। सिर्फ़ सिर घूमता है और दोनों पाँव काँपते हैं। डॉक्टर का कहना है, अगर अच्छी तरह से खाऊँ-पीऊँ तो सब ठीक हो जायेगा और एक बार चेन्ज पर जाने के लिए कह रहा है।"

"चेन्ज ?"

"लेकिन चेन्ज पर जाऊँ तो जाऊँ कैसे ? इम्तहान सामने हैं। मेरा तो यह हाल है और उन लोगो का क्या हाल है, उनका क्या होगा, डॉक्टर इस बारे मे तो कुछ सोच ही नही रहा ?"

मन्मथ ने कहा, "देखा सदाव्रत दा, मैंने यही बात कह दी थी। इस-लिए मुझसे गुस्से होकर मास्टर साहब गुरुपद को पढाने जा रहे थे।"

सदाव्रत ने कहा, "आप चेन्ज के लिए ही जाइये, मास्टर साहब ! जो खर्च लगेगा मैं दूँगा।"

केदार बाबू सदाव्रत की ओर झुके। बोले, "क्यों ! शैल क्या तुमसे रुपये उधार माँग रही थी ? रुपये दे दिये ? कितने दिये ?"

सदाव्रत ने पॉकेट से मनिबैग निकालकर कहा, "नहीं, शैल को मैंने उधार रुपये नही दिये। आपको दे रहा हूँ। बाद मे और भी दूँगा। आज रुपये कम ही हैं। यह दो सौ रुपये आप रखिये।"

"रुपये शैल के हाथ मे ही दो न ! वह खूब खुश होगी। वही तो मेरा घर चला रही है।"

"न, शैल रुपये नही लेगी।"

"अगर उसने पूछा तो मैं क्या जवाब दूँगा ?"

"आपको कुछ कहने की जरूरत नही है।"

"यह कहने से तो वह सुननेवाली नही है।"

"तब कहियेगा, गुरुदक्षिणा के रुपये हैं। आपने मुझे इतनी अच्छी तरह से पढाया, इसीलिए तो यह नौकरी मिली है! आपके आशीर्वाद से ही तो सब हुआ। पिताजी आपको पचास रुपये महीना देते थे। एक दिन आपने खुद कहकर दस रुपये कम करवा लिये थे। वह मुझे याद है, मास्टर साहब ! हमेशा याद रहेगा। आपकी बीमारी के लिए मैं कुछ भी नही कर पाया। यह दे रहा हूँ। बाद में और भी दूँगा। आपके चेन्ज पर जाने का खर्च मैं अकेला ही दूँगा। मैं अब चलूँ, मास्टर साहब ! आप शैल को समझाकर कह दीजियेगा। वह गुस्सा न हो।"

कहकर जल्दी से उठ खड़ा हुआ। इसके बाद बिना और कुछ कहे

दरवाजे से निकल नाले को पार कर नजरों से ओझल हो गया।

और साथ-ही-साथ शैल कमरे मे आयी। "सदाव्रत बाबू कहाँ गये ?"

"अभी-अभी गये है।"

"चले गये ?"

केदार बाबू ने पूछा, "क्यों ? तुम्हें कुछ जरूरत थी क्या ? बाहर ले जाकर चुपके-चुपके रुपये माँग रही थी न ? देख न, इसीलिए मुझे रुपये दे गया है।"

शैल का चेहरा लाल हो गया। "मै ? मैंने रुपये माँगे ? यह बात कह गये है ?"

केदार बाबू—"नही-नही, सो कैसे हो सकता है ? सदाव्रत क्या ऐसा लडका है ! मेरी बीमारी के लिए दो-सौ रुपये दे गया है। कह गया है—और भी दूँगा। तू ही तो कह रही थी, डॉक्टर ने अडे, माँस, मछली खाने को कहा है। इन रुपयो से जितनी मर्जी आये खिला मुझको ! तुझे चिन्ता करने की जरूरत नही है। यह ले।"

केदार बाबू ने एक-एक सौ के दो नोट शैल की ओर बढा दिये।

शैल का शरीर उस समय थर-थर काँप रहा था। बोली, "रखो अपने रुपये ! ये रुपये मैं छूना भी नही चाहती !"

शैल की हालत देखकर केदार बाबू अवाक् रह गये। मन्मथ को भी बड़ा अजीब लगा।

केदार बाबू ने कहा, "तुझे रुपये की ही तो जरूरत थी, तू ही तो कह रही थी कि घर नही चला पा रही हूँ। अब गुस्सा दिखलाने से क्या होगा ?"

शैल—"खबरदार काका, तुम ये रुपये नही ले सकते !'

"क्यों री, रुपयो मे क्या खराबी है ?"

शैल—"वह तुम नही समझोगे। मैं मरकर भी इन रुपयों को हाथ नही लगाऊँगी।"

केदार बाबू ने कहा, "लेकिन यह तो उधार नही है। एकदम से दे गया है। बाद में और भी रुपये देगा। यह दान है, गुरुदक्षिणा। सदाव्रत खुद अपने मुँह से कह गया है। इसका सूद भी नही लगेगा। सदाव्रत झूठ बोलने-वाला लड़का नहीं है।"

शैल ने कहा, "तुम यही सोचते रहो, काका ! मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है कि तुम्हारा वह अच्छा शिष्य वास्तव में है क्या !"

केदार बाबू—"क्यों ? वह क्या खराब लड़का है ? तूने कुछ सुना है क्या ?"

शैल—"उस सबसे तुम्हें कोई मतलब नही है। मन्मथ दा, तुम जाओ। ये रुपये तुम सदाव्रत बाबू को दे आओ। काका, वे रुपये तुम मन्मथ दा के हाथ मे दे दो। तुम किसी भी तरह यह रुपया नही ले सकते। मैं तुम्हे यह रुपया नही लेने दूँगी। दे दो !"

शैल की यह दृढ़ता देखकर केदार बाबू और अवाक् रह गये। शैल ऐसा तो करती नही थी।

शैल कहे जा रही थी, "तुम्हें शायद याद नहीं होगा काका, लेकिन मुझे सब याद रहता है। एक दिन हम लोगों को ले जाकर अपने घर रखना चाहते थे तुम्हारे यही सदाव्रत बाबू ! आज समझ पा रही हूँ, इसके पीछे क्या मतलब था !"

मन्मथ कुछ कहने जा रहा था, लेकिन शैल ने उसे रोका। बोली, "तुम चुप रहो ! अभी जाओ उसके घर, जाकर रुपये लौटा आओ ! मुझे और ज्यादा सोचना खराब लग रहा है।"

केदार बाबू ने कहा, "लेकिन वह क्या समझेगा, ज़रा यह भी तो सोच।"

शैल—"तो सोचे ! ये बीस रुपये भी ले जाओ, ये दो सौ बीस रुपये दे आना। कहना कि फिर कभी रुपये देने के बहाने भी इस घर मे पाँव न रखे !"

मन्मथ ने रुपये ले लिये। इसके बाद केदार बाबू की भौचक नज़रों के सामने ही बाहर निकल गया। केदार बाबू ने पहले कभी भी शायद अपनी भतीजी को इस तरह गुस्सा करते नही देखा था। लेकिन मन्मथ के कमरे से जाते ही शैल भी अन्दर चली गयी। केदार बाबू ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाने लगे। उनके दिमाग़ मे शैल की बातों का कोई भी सिर-पैर नही घुस रहा था।

□ □ □

सदाव्रत ने अपने पिता के आफिस मे बैठकर वहाँ का हाल देखा है। लेकिन 'सुवेनीर इजीनियरिंग वर्क्स' के कायदे-क़ानून तो और ही हैं। वह ऑफिस था और यह फैक्टरी है। सदाव्रत का अपना अलग चैम्बर, अलग चपरासी। एयर-कंडीशन्ड चैम्बर के अन्दर बैठे सदाव्रत को बड़ा अजीब लगता। अंग्रेज लोग कब के इंडिया छोड़कर जा चुके हैं। समुद्र पार चले

गये हैं। लेकिन जाकर भी जैसे वे लोग अन्दर-ही-अन्दर और भी जकड़कर बैठे हैं। ये ट्राउज़र, कोट, शर्ट, नेकटाई, मुंह पर थैंक्यू कहकर अन्दर-ही-अन्दर गाली देना और पौंड, शिलिंग, पैंस से आदमी की इज़्ज़त ठीक करना।

'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' असली विलायती फर्म है। सिर्फ प्रोप्राइटर देसी हैं। सुबह से शाम तक कमरे में बैठे-बैठे कितने लोगों को 'विश' करना होता है, इसका ठीक नहीं है।

"गुड-मार्निंग, सर !"

सदाव्रत देखता रहा। सामने के स्विंग-डोर से न जाने किसने झाँककर वह कहा था। अनजान चेहरा। सदाव्रत ने सोचा, शायद किसी काम से आया होगा। लेकिन नहीं, 'गुड-मार्निंग' कहकर ही निकल गया। इसी तरह पन्द्रह-बीस बार रोज़ होता। सजा हुआ अप-टु-डेट कमरा। पॉलिश की हुई चमचमाती टेबल। कॉल-बेल। कहीं भी कोई कमी नहीं। चैम्बर के बाहर बोर्ड लगा था—एम० गुप्त, परचेज़िंग ऑफिसर। कमरे के बाहर यूनीफ़ॉर्म पहने चपरासी पॉलिश की हुई स्टूल पर सीना फुलाए तनकर बैठा रहता। प्राइवेट सेक्टर में सभी सीधे बैठकर ही काम करते। सरकारी ऑफिस में यह कानून नहीं है। वहाँ अखबार, चाय, गपशप वगैरह के बाद भी अगर कुछ वक़्त रह जाता तो उसमें काम होता। और यहाँ सब टिप-टॉप, डिसिप्लिन्ड। हर मिनट कीमती है, हर सैकंड की कीमत है, मिस्टर बोस खुद डिसिप्लिन पसन्द करते हैं। इसलिए उनका स्टाफ भी डिसिप्लिन में चले, उनकी यही इच्छा है। गेट के दरबान से लेकर पिनकुशन तक सब-कुछ नियमानुसार होना चाहिए। आउटपुट देखकर ही स्टाफ़ का प्रमोशन होता है। वहाँ धोखाधड़ी नहीं होती। फर्म में बड़े-बड़े ओहदेवाली हमेशा कुछ पोस्टें तैयार रहती। वे ऑफिस की शोभा थी। सिर्फ शोभा ही नहीं—एकदम ज़रूरी शोभा ! जैसे वेलफेयर ऑफ़िसर, केयर-टेकर, बिल्डिंग सुपरिन्टेन्डेंट, ऑर्गेनाइज़र—ऐसे ही कितनी ही। इनमें से कोई चीफ़ मिनिस्टर का भानजा, कोई गवर्नर का लड़का, कोई होम मिनिस्टर का भाई तो कोई चीफ सेक्रेटरी की पहली औरत का लड़का होता था। ये लोग काम करें या न करें, उससे फैक्टरी के प्रॉडक्शन का कुछ भी नहीं बनता-बिगडता। ये सभी गैबरडिन और टैरिलिन पहने कार ड्राइव करके ऑफिस आते हैं। गाडी गैरेज में छोडकर बायें हाथ में सिगरेट का टीन और माचिस लिए फटाफट ज़ीना फलांगते अपने-अपने एयर-कंडीशन्ड चैम्बरों में घुस जाते। एक बजे ये लोग लंच लेते। दो बजे लुक-छिपकर रेसकोर्स की बुकलेट

पढते। दोपहर तीन बजे आफ्टरनून कॉफी पीते। पांच बजे गाड़ी निकालकर साउथ क्लब पहुँच जाते। वहाँ पहुँचकर मेम्बरों के साथ 'किटी' खेलते। बाद मे तीन पैग रम चढाकर घर वापस आकर डिनर लेते। इतनी मेहनत के बाद हर महीने किसी को दो हज़ार रुपये मिलते तो किसी को अढाई हज़ार। इंडिया गवर्नमेंट को 'सुदेनीर इजीनियरिंग वर्क्स' के फैनो की इतनी जो डिमाण्ड रहती है, यह इन लोगो की एफिसिएन्सी की वजह से ! इनमें से किसी की नौकरी जानी नही चाहिए, इसीलिए इनकी नौकरी जाती नही है। इनकी नौकरी जाने पर गवर्नमेंट ऑर्डर कैंसिल हो जायेगा। कोई नया गवर्नमेंट ऑर्डर पाने के लिए नयी पोस्ट क्रिएट करनी होगी। वह पोस्ट किसी मिनिस्टर के रिलेटिव को देनी होगी। उसे भी हर महीने दो हज़ार रुपये देने होंगे। शेयर-होल्डर लोगों का इसी मे फायदा था। उनका डिविडेंड भी बढेगा और इंडिया का सेकंड फाइव-इयर प्लान भी सक्सेसफुल होगा।

सदाव्रत कुछ ही दिनों मे यह सब समझ गया।

इतने दिन सदाव्रत जिस दुनिया मे रहता आया था, यहाँ आकर पाया कि उसकी खबर भी कोई नही रखता। यही है सच्चे मानो में रिअल इंडिया। आजादी मिलने के बाद अगर किसी को लाभ हुआ है तो वह इन्ही लोगों को। ये ही असली इंडियन है। तभी तो छब्बीस जनवरी या पन्द्रह अगस्त के दिन जब राजभवन मे पार्टी होती है तो इन लोगों की बुलाहट होती है। गवर्नर साहब की जिस दिन इंडियनों के साथ लंच या डिनर खाने की इच्छा होती है, तब इन लोगो की बुलाहट होती है।

"गुड-मार्निग, सर !"

वह स्विग-डोर पर सिर नीचा किये सलाम बजाकर जा ही रहा था कि सदाव्रत ने बुलाया, "सुनिये !"

वह आदमी रुक गया, फिर धीरे-धीरे नज़दीक आया। सदाव्रत ने अच्छी तरह से उसकी ओर देखा। दाढ़ी अच्छी तरह से नही बनायी गयी थी। साबुन से धुला लांग क्लाथ का कुर्ता। हाथ में टिफिन का डिब्बा। रूमाल में बँधा। ब्राउन रंग का कैनवेस जूता।

"आप कौन हैं ?"

"जी, मैं यहाँ के रेकार्ड सेक्शन का बड़ा बाबू हूँ।"

"आपकी तनख्वाह कितनी है ?"

आदमी घबरा गया। डरता-डरता बोला, "सर, एक सौ चालीस रुपये

'''और चालीस रुपये डियरनेस एलाउन्स।"

उमर काफी हो चुकी थी। शायद मास्टर साहब जितनी होगी। हो सकता है हालत भी मास्टर साहब जैसी ही हो। घर मे शायद बाल-बच्चे और बीवी होंगे। मकान का किराया भी देना ही पडता होगा। सदाव्रत उस आदमी से और भी बात करना चाह रहा था। घर मे खानेवाले कितने लोग हैं, मकान का किराया कितना देना होता है। कभी टी० बी० हुई थी या नही। लेकिन कुछ भी कह नही पाया।

"आप सब लोग रोज मुझे 'गुड-मार्निंग' क्यों करते है ?"

वह घबरा गया।

"रोज-रोज मुझे 'गुड-मार्निंग' किसलिए करते है ?"

उस आदमी ने जरा हिचकते हुए कहा, "जी, ऑफिस ऑर्डर है।"

"ऑर्डर! ऑर्डर माने ?"

"जी, हम सभी को बडे साहब का ऑर्डर है, कि ऑफ़िस आते ही ऑफिसरो को गुड-मार्निग करें। यही हम लोग जो बड़े बाबू है।"

सदाव्रत ने जरा देर सोचा। फिर कहा, "कल से मत करियेगा। बड़े साहब का ऑर्डर हो या किसी का, मुझे यह सब पसन्द नही है। जाइये, आप जाइये। सभी से कह दीजियेगा। कोई भी मुझे गुड-मार्निग न करे।"

बेचारे बडे बाबू की जान बच गयी।

लेकिन उस दिन मिस्टर बोस खुद ही चुरुट पीते-पीते चैम्बर में आये। इससे पहले दिन वह ही सदाव्रत को इस चैम्बर मे बैठाने आए थे। सभी के साथ परिचय करा दिया था। उसके बाद और मुलाक़ात नही हुई। इसके कुछ ही दिनो बाद ऑफिस का 'फाउन्डर्स-डे' था। उसी दिन सब लोगों के साथ अच्छी तरह से परिचय होगा। खासकर मिसेज़ बोस, मिस बोस वगैरह से।

"काम कैसा चल रहा है ? एनी डिफिकल्टी ?"

मिस्टर बोस को अच्छी तरह से पता है, किसी का रेजिमेंटेशन करने के लिए डराना नहीं चाहिए। शुरू-शुरू में हँसकर बात करनी चाहिए। हर तरह की फेसिलिटी देनी चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे प्रेशर शुरू करना चाहिए।

बोले, "एनीहाऊ, तुम्हारे उस क्लब में भर्ती होने का क्या हुआ ?"

"क्लब!" सदाव्रत क्लब की तो बात ही भूल गया था। कुछ दिन पहले मिस्टर बोस ने कलकत्ता के क्लबों का मेम्बर बनने को कहा था। यही 'थ्री हन्ड्रेड क्लब' या 'कैलकटा क्लब', या 'बंगाल क्लब', या 'साउथ क्लब।'

"हम इंडियनों में यह क्लब-हैबिट नही है। उनका मेम्बर होना ज़रूरी है। तुम्हे इसकी यूटिलिटी समझनी चाहिए। एक-एक क्लब की एडमीशन फी डेढ हज़ार रुपये, दो हज़ार रुपये। एक-एक क्लब के मेम्बर होने के लिए दो-दो साल, तीन-तीन साल वेटिंग लिस्ट में रहना होता है। वह होगा, लेकिन पता है, एक बार मेम्बर होने पर कितनी सुविधाएँ मिलती हैं ? मुझे ही देखो, मैं क्या मेम्बर था ? मेरी यह फर्म ही आज नही होती अगर मैं 'थ्री हन्ड्रेड क्लब' का मेम्बर न होता ! क्लब मे ही तो सेलिब्रिटि के साथ परिचय हुआ। नही तो कौन मुझे पहचानता था और मैं ही किसे पहचानता था। बिना क्लब का मेम्बर हुए तुम लाइफ के बैटल-फ़ील्ड में विनर नहीं हो सकते। हमेशा के लिए अननोन और अनऑनर्ड हुए पड़े रहोगे।"

"मुझे कितने क्लबों का मेम्बर होना होगा ?"

मिस्टर बोस—"सब का ! रोज़ जाओ या मत जाओ, मेम्बर हर क्लब का होना होगा। इन्ही क्लबों मे जान-पहचान की सीढी से होकर सोसाइटी मे ऊपर उठना होगा।"

"लेकिन पिताजी तो किसी क्लब के मेम्बर नही है !"

"मिस्टर गुप्त की बात और है। वह तो पॉलिटिकल सफरर है। उनकी कैपिटल वही है, लेकिन जिनके पास यह कैपिटल नहीं है, उनके लिए क्लबों का मेम्बर होना एसेंशियल है। अपनी मनिला सब क्लबों की मेम्बर है।"

इसके बाद और कोई बात नही चली।

मिस्टर बोस ने कहा, "तुम आज ही मेरे साथ साउथ क्लब में चलो। एडमीशन-फी दे आयें। मै ही तुम्हें इन्ट्रोड्यूस कर दूँगा।"

"आज ?"

"हाँ, आज ही। वैसे ही काफी देर हो चुकी है। यूज़अली दो-तीन साल तक वेटिंग-लिस्ट में रहना होता है, फिर भी मैं कोशिश करूँगा, जिसमे तुम्हें जितनी जल्दी हो सके, मेम्बर बनवा सकूँ। आजकल मारवाड़ी लोग इस फ़ील्ड में आ गये है न। जिधर देखो उन्ही की भीड़। मैं फोरकास्ट किये देता हूँ, एक दिन वे लोग ही क्लब-लाइफ लीड करेंगे।"

तुम सदाव्रत गुप्त हो। तुम अपनी पास्ट-लाइफ भूल जाओ। अब से मिस्टर बोस ही तुम्हारे आदर्श है। तुम इनके पैरों में दो हज़ार रुपये का रुक्का लेकर बैठे हो। अब पीछे हटने से काम नही चलेगा। तुम मिस्टर बोस के जमाई हो। मिस बोस के वुड-बी हसबैंड।

शाम को मिस्टर बोस रेडी होकर आये। बोले, "चलो, लैट्स गो

नाऊ। मैंने टेलीफ़ोन कर दिया है।"

सदाव्रत भी टेलीफ़ोन छोड़कर उठा। कोट पहन लिया।

"कौन ?"

स्विंग-डोर के बाहर कोई खड़ा था। मिस्टर बोस ने देख लिया। "हू आर यू ?"

"मैं मन्मथ हूँ। सदाव्रत दा हैं ?"

सदाव्रत ने आवाज़ सुन ली। जल्दी से आकर पूछा, "क्या बात है, मन्मथ ? कोई ख़ास ख़बर ?"

मन्मथ ने कहा, "मास्टर साहब की हालत काफ़ी ख़राब हो गयी है।"

सदाव्रत का चेहरा जैसे सूख गया। बोला, "तो मैं क्या करूँ ? मुझे तुम क्या करने को कहते हो ?"

'कुछ नहीं,ऐसे ही ख़बर देने चला आया। इस ओर आया था, इसीलिए।"

"लेकिन तुम तो मेरे दिये रुपये लौटा गये। मास्टर साहब को मैं किस तरह मदद करूँ कुछ ठीक नहीं कर पा रहा। इसके बाद भी क्या मेरा उस घर में घुसने का अधिकार है ?"

"यह तो मुझे पता नहीं है। मैंने सोचा कि तुम्हें ख़बर देनी चाहिए, इसी से चला आया।"

फिर ज़रा देर रुककर कहा, "अच्छा, तो मैं जा रहा हूँ।"

मन्मथ चला गया। मिस्टर बोस अभी तक सब सुन रहे थे। पूछा, "हू ज़ दैट हैगर्ड बॉय ? लड़का कौन है ? तुम उसे जानते हो क्या ? क्या कह गया ? कौन बीमार है ?"

□ □ □

यह एक और ही दुनिया है। इतने दिनों तक ब्रिटिश गवर्नमेंट थी। वे लोग जहाँ पहुँचे, वहाँ के लोगों पर हुकूमत की। अदालत मे, कचहरी मे, ऑफिस में, हर जगह। वे लोग राजा की जात के थे। प्रजा के साथ मेल-जोल बढाना उन्हें पसन्द नही था। दूर-ही-दूर रहते थे। पास-पास रहने से डर नहीं रहता। इसलिए फ़ासला रखकर चलते। सिपाही-म्यूटिनी के समय से ही उन लोगों की समझ मे यह बात आ गयी थी। इसीलिए तभी से वे लोग जहाँ भी रहे अपने मिलने-जुलने के लिए क्लब बना लिये। वहाँ जा कर वे लोग मेमों को लेकर ऐश करते, नाचते-कूदते और जो मर्ज़ी में आता करते। यहाँ तक कि कभी-कभी तो एक-दूसरे की बहू को लेकर मार-पीट और ख़ून-ख़राबी तक हो जाती। लेकिन यह सब उन लोगों तक ही

था। इस सबसे प्रजा का कोई मतलब नहीं था।

अब वे लोग चले गये हैं। लेकिन क्लब छोड गये हैं। क्लब के अन्दर जो-जो पहले होता था, अब भी होता है। इससे इज्जत बढती है, मर्यादा बढ़ती है, आदमी ऊपर उठता है।

और लोगों के साथ मनिला भी खेल रही थी। वैसे 'किटी' खेलना सच-मुच खेल ही है। लेकिन बावन पत्तों मे इतना जादू है, यह बात जो लोग ताश नहीं खेलते, वे लोग नही जान सकते। लेकिन किसी-किसी दिन कोई ऐसी अडचन आ जाती कि हजार कोशिशों के बावजूद वक़्त से नही पहुँच पाते। दूसरे पार्टनर नाराज हो जाते।

पार्टनर के न होने में जो लोग खेलना शुरू नहीं कर पाते, उनका ही पारा ज्यादा चढ़ता। सारे दिन मे अगर ताश खेलना न हुआ तो क्लब किस बात का! सिर्फ लडकियाँ ही नहीं, लडके भी आते। गाडी ड्राइव करते सीधे चले आते। आते ही पूछते, "मिस बोस आया, बैरा?"

बैरे लोग ही क्लब के मूलधन होते हैं! कोई-कोई बैरा तो बीस-बीस और तीस-तीस साल से एक ही क्लब मे नौकरी कर रहा है। कितने ही उतार-चढाव इन बैरों ने देखे है। कितने साहब और मेमसाहबों के असतर्क क्षणों के वे गवाह हैं। लेकिन अगर पत्थर बोल नहीं सकता तो ये लोग भी नहीं बोल सकते। उनकी यूनिफॉर्म, पगडी के नीचे उनके चेहरे पर कोई भी परिवर्तन नही होना चाहिए। साहब के हँसने पर भी उन्हें हँसना नही है, साहब के गाली देने पर भी उन्हें नाराज नहीं होना है। उनकी डिक्शनरी मे एक ही शब्द है। वह है—जी हाँ। गुस्सा, दु ख, आनन्द, विस्मय—जीवन की सारी अनुभूति, सारे भावो के लिए यही एक शब्द है।

अब आये है नेटिव साहब-मेम। नेटिव राजा-रानी। जो चेन्ज हुआ है, इन्ही राजा-रानी मे। क्लब के नियम-कानूनो में कोई रद्दोबदल नहीं हुई है। बैरा, खानसामा और चपरासियो का एकमात्र सम्बल यह शब्द भी नही बदला।

किसी ने बदलना भी नही चाहा।

कम से-कम मिस्टर बोस ने तो नही चाहा। जिस तरह चलता आया है, चलता रहे। यह जो सारे दिन ऑफिस और फैक्टरी की मेहनत के बाद एक स्लिप पर साइन कर देने ही से सब-कुछ सामने हाजिर हो जाता है, इसके कितने ही फायदे है। साथ में कैश रुपये की जरूरत नहीं है। इसीलिए मिस्टर बोस ने लडकी को भी मेम्बर बनवा दिया था।

"मिस्सी बाबा आया ?"

"जी हाँ !"

दरवान ने लम्बी सैल्यूट भाड़ी। गाडी अन्दर आयी। लम्बा लाल बजरी का रास्ता। चारों ओर बाग। मिस्टर बोस का पहचाना रास्ता। इसी रास्ते से मिस्टर बोस उन्नति के स्वर्ग में पहुँचे हैं। अब सदाव्रत को भी वही रास्ता दिखलाने आये हैं। यह रास्ता सभी को नहीं दिखलाना चाहिए। छाँट-छाँटकर सिर्फ़ कुछ ही लोगों को यह अधिकार देना चाहिए, वे ही ऊपर उठेंगे। वे लोग ही इन-फ्यूचर मिस्टर बोस होंगे। वे ही देश को कंट्रोल करेंगे। वे ही बाद में गवर्नमेंट कंट्रोल करेंगे। यहा घुसने का हक सिर्फ़ उन्हीं को है।

गाडी मे बैठने के बाद मिस्टर बोस ने पूछा, "वह लडका कौन है ?"

सदाव्रत ने जवाब दे दिया। लेकिन मिस्टर बोस को जैसे उससे तसल्ली नहीं हुई। "तुम्हारे फादर खुद पॉलिटिकल सफ़रर हैं। इसी से तुम्हारी एजूकेशन की ओर ठीक से ध्यान नहीं दे पाये। यही इन लोगों की मुश्किल हो गयी। खुद तो कन्ट्री के लिए जेल काट रहे हैं, पॉलिटिक्स में पडे हैं; लेकिन अपनी फ़ैमिली, अपने बाल-बच्चे क्या कर रहे हैं, उस ओर ध्यान देने का समय ही नहीं पाते। क्लास-फ्रेंड है या मोहल्ले का दोस्त है ?"

सदाव्रत ने कहा, "बड़ा अच्छा स्टुडेंट है। मुझे ये लोग बहुत मानते हैं।"

"वह होगा ! अच्छे स्टुडेंट्स की तो देश मे कमी नहीं है ! उनके लिए स्कूल-मास्टरी, प्रोफेसरी, डॉक्टरी, सब खुली हैं, लेकिन जो असली चीज है, वह भी क्या उनके पास है ?"

सदाव्रत समझ नही पाया। पूछा, "वह क्या ?"

मिस्टर बोस ने चुरुट का कश लेते हुए कहा, "बैक ग्राउण्ड !"

सदाव्रत फिर भी नही समझ पाया।

"बैक ग्राउण्ड माने ?"

"असल में बैक ग्राउण्ड ही सब-कुछ है। कोई खुद बैक ग्राउण्ड बनाता है और किसी के पास पहले से ही होता है। मैं—मिस्टर बोस और तुम्हारे फ़ादर शिवप्रसाद गुप्त दोनों ने अपने बूते पर अपनी कोशिशों से बैक ग्राउण्ड बनाया है। और तुम या मेरी लडकी मनिला—तुम लोगों को बना-बनाया बैक ग्राउण्ड मिला है। तुम्हारे लिए आगे-आगे बढ़ना आसान है। इसे बेकार मत जाने दो। वह जो लडका आया था, क्या नाम था उसका ? मन्मय या

और कुछ। उन लोगों के साथ मिलने-जुलने से तुम्हारा बैक ग्राउण्ड खराब होगा। उन्हें छोड़ दो। भूल जाओ कि एक दिन उन लोगों के साथ तुम्हारी जान-पहचान थी।"

"लेकिन मुझे जो पढ़ाते थे, वह बड़े ऑनेस्ट आदमी हैं।"

मिस्टर बोस ने कहा, "यह ऑनेस्ट शब्द भी एक चीज़ है! मेरी राय में तो इस शब्द को डिक्शनरी से ही निकाल देना चाहिए। ऑनेस्ट के माने क्या हैं? ईमानदारी? तब क्या मैं ऑनेस्ट नहीं हूं? मिस्टर गुप्त क्या ऑनेस्ट नहीं है? पंडित जवाहरलाल नेहरू क्या ऑनेस्ट नहीं हैं? हम सभी ऑनेस्ट हैं। तुम्हें पता है, आजकल ऑनेस्टी के माने बदल गये हैं। मेरा तो खयाल है डिक्शनरी भी अब फिर से लिखनी होगी। सब चीज़ों में ही जब रिवोल्यूशन हो रहा है तो डिक्शनरी में ही क्यों नहीं होगा?"

गाडी तब तक अन्दर पहुँच चुकी थी।

उस ओर से हँसी की आवाज आ रही थी। बगीचा जहाँ खत्म होता है, वहाँ पोर्टिको है। मानिंग ग्लोरी और हैंगिंग आर्केड से छिपी जगह लोगों से भरी थी। साड़ियाँ, ब्रॉकेड, डेक्रॉन और टेरिलिन की बहार। कमर-कटी ब्लाउज़ें, सिगरेट, रम, रूज़, लिपस्टिक, क्यूटेक्स। खिल-खिल करतीं आवाजें और इधर से उधर चक्कर काटती देहें। सदाव्रत हैरान रह गया। कलकत्ता जैसे एक और नया रूप लिये सामने आकर खड़ा हो गया। इसका नाम भी तो कलकत्ता है। चारों ओर इतने फूल, इतना स्वास्थ्य, इतनी खुशी, जवानी—सब-कुछ भरा-भरा, पूर्ण। कहाँ की बागमारी, फड़ेपुकुर स्ट्रीट और कहाँ का बागबाज़ार। यहाँ खड़े होकर उस कलकत्ता के बारे में सोचना या स्वप्न भी देखना गुनाह है! इंडिया सचमुच ही इंडिपेंडेंट हो गया है।

"डैडी!"

अचानक एक मीठी आवाज सुनायी दी। सदाव्रत को लगा जैसे कोई स्वप्न साकार हो उठा हो। सदाव्रत ज़रा सिमटकर एक ओर खड़ा हो गया। लगा जैसे स्वप्न उसकी ओर हाथ बढ़ा रहा था। हवा जैसे एक मधुर गन्ध से भर उठी।

"यह है सदाव्रत गुप्त! शी इज़ मनिला!"

सदाव्रत को आज भी वे क्षण अच्छी तरह से याद हैं। जीवन में कितने ही क्षण आते हैं, जो गुजर ज़रूर जाते हैं, लेकिन भुलाये नहीं जाते। या भूलने को मन नहीं चाहता। बचपन में मधुगुप्त लेन के घुटे वातावरण में रहकर कितनी ही चौर गली, और रास्ता पार कर यहाँ क्लब में आकर वह

इस तरह रास्ता भूल जायेगा, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। हालांकि एक दिन आदमी देखने के लिए वह गाडी सडक पर लगाकर इधर से उधर घूमता फिरता था। सदाव्रत को एक दिन कितना लम्बा लेक्चर पिलाया था। शंभू को कितने उपदेश दिये हैं। सदाव्रत ने सोचा था, उसका आदमी देखना शायद पूरा हो गया। कलकत्ता में भी शायद उसके देखने के लिए कुछ नही है। एक ओर कुन्ती गुहा वगैरह और दूसरी ओर मास्टर साहब। और सबसे ऊपर हिन्दुस्तान पार्क की सोसाइटी के शिवप्रसाद गुप्त। लेकिन आज वह हैरान रह गया। यह तो एक और ही जगत् है। न्यू क्लास। लगा, जैसे स्वाधीनता वास्तव में इन्हीं लोगो के लिए आयी थी। लॉर्ड माउन्टबैटन शायद इन्ही के हाथ इंडिया की आज़ादी सौंप गये हैं।

मनिला ने कहा, "आप खेलेंगे ?"

सदाव्रत समझ नही पाया। पूछा, "क्या ?"

"ताश !"

मिस्टर बोस ने रोक दिया। बोले, "नो, नो मनिला, तुम सदाव्रत के साथ ज़रा बातचीत करो। तुम लोग पार्क में जाकर बैठो न ! वह नया आया है। तुम्हारे साथ बात करके एट-होम फील करेगा।"

"आइये, मिस्टर गुप्त !"

कहकर मनिला ने बाग के अँधेरे की ओर कदम बढ़ाया।

सदाव्रत शायद ज़रा हिचकिचा रहा था। मिस्टर बोस ने बढ़ावा दिया। "जाओ, एन्जॉय योरसेल्फ ! जाओ !"

"देख रहे हैं कैसी क्वाइट जगह है ! मेरे डैडी को देखा न ! ऐसा लविंग फ़ादर मैंने और नही देखा।"

कहते-कहते मनिला बाग के सँकरे रास्ते से आगे-आगे चलने लगी। सदाव्रत भी पीछे-पीछे चल रहा था। पूरे लॉन में सीज़न-फ्लॉवर्स की बहार थी।

"कहाँ बैठा जाये, कहिये न ?"

सदाव्रत के कुछ न बोलने से भी अच्छा नही लगता। बोला, "मेरी वजह से आपका खेल बिगडा न ?"

मनिला की साड़ी हवा से कन्धों पर से बार-बार खिसक रही थी। बोली, "अरे वाह, खेल तो रोज ही होता है।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "तीन बजे से खेल रही हूँ। और मेरा मन भी

अच्छा नही है।"

"क्यो ?"

मनिला ने कहा, "डैडी ने आपसे कुछ कहा नही ? कल होल नाइट मुझे नीद नही आयी। इस समय भी सिर भारी है। डैडी ने ब्राडी लेने को कहा था। मैंने सिर्फ एक पैग रम ली है। तब भी सिर फटा जा रहा है।"

"तब तो इस समय आपको जोर की नीद लगी होगी !"

"अरे, नही-नही। नीद आने पर क्या मैं क्लब आती ?"

"सच ही तो बीमार शरीर लेकर क्यो आयी ?"

"क्लब न आने पर तो और भी खराब लगता। दोपहर-भर जोर का सिरदर्द रहा। क्लब आकर इस समय फिर भी थोडा कम हुआ है। एक दिन भी बिना किसी क्लब मे गये नीद नही आती।"

"बडी अजीब बात है ! आपको ट्रीटमेट कराना चाहिए।"

"ट्रीटमेट कराया है। डॉक्टर क्लब आने को कहते है। कहते है, रोज नियम से क्लब आने पर मेरी हैल्थ ठीक रहेगी। जबकि देखिये कलकत्ता में कोई डॉक्टर ऐसा नही है, जिससे मैने इलाज न कराया हो। मेजर सिन्हा हमारे हाउस-फिजीशियन है। रिटायर्ड आई० एम० एस० है। बडे क्वालीफाइड डॉक्टर है। पता है, मेरा मन्थली मेडिकल बिल ही दो-तीन सौ रुपये होता है।"

इसके बाद ही मनिला को जैसे कुछ ध्यान आया। बोली, "अरे, छोडिये भी। कुछ अपने बारे मे कहिये। मेरे डैडी कैसे लगे ? पता है, मेरे डैडी एक जीनियस है। ऐसा लविंग फादर मैने दूसरा नही देखा।"

इस बात का कोई जवाब दिये बिना सदाव्रत ने कहा, "आपने क्या चेन्ज पर जाकर देखा है ?"

"चेन्ज से मुझे कुछ नहीं होता। चेन्ज पर जाकर भी ज्यादा तो रुक नही पाती। उस बार डैडी के साथ कॉन्टिनेंट गयी थी। लेकिन वहां पहुंचकर कलकत्ता की याद आने लगी।"

"क्यों ? कलकत्ता की याद क्यों आने लगी ?"

मनिला ने कहा, "पेगी की वजह से !"

"पेगी ? पेगी कौन ?"

"मेरा डॉग। आपको कैसे बतलाऊँ कि मेरा पेगी कितना अच्छा डॉग है। उसकी बुद्धि देखकर आप हैरान रह जायेंगे। आप गिलास मे पानी दीजिये, वह नही पीयेगा। लेकिन फ्रिज का पानी रखिये, चुक-चुक पी

जायेगा। माँ कहती हैं, पेगी पिछले जन्म में तेरा लवर था। सुनकर मुझे हँसी आती है। और कितना शैतान है, पता है !"

कहकर फिर से साड़ी को कन्धे पर सरका लिया। बोली, "और जानते है कितना शैतान है, रात को जैसे ही मैं अन्ड्रेस करके बिस्तरे पर लेटूँगी न, वह चुपचाप आकर मेरे पास सो जायेगा। एक दिन डैडी ने पेगी को पकड़ लिया।"

सदाव्रत को लगा जैसे वह परियों की कहानी सुन रहा है। कहाँ गयी रिफ्यूजी प्रॉब्लम, कहाँ गया इंडिया का फाइव-इयर प्लान, कहाँ गया शभू का ड्रामेटिक क्लब ! यहाँ मनिला बोस के साथ बात करने पर शायद यह सब भूल जाना होता है।

"हाँ, सच। डैडी ने पेगी को इतना परेशान किया कि क्या कहूँ। सारे दिन गुस्से के मारे पेगी ने मेरे साथ बात ही नहीं की।"

सदाव्रत को हँसी आ गयी। "बात नहीं की माने ?"

स्काई-स्क्रेपर जूड़ा हिलाते हुए मनिला ने कहा, "हाँ, सच कह रही हूँ। सारे दिन बात नहीं की। लेकिन आप ही कहिये इसमे मेरा क्या दोष है, डैडी की ही तो ग़लती है। डैडी ने ही तो कहा था पेगी को इतना प्यार करना अच्छा नहीं है। शादी हो जाने के बाद तुम्हारे हसबैंड को आपत्ति हो सकती है। आप ही बतलाइए इसमे हसबैंड को आपत्ति क्यों होने लगी ? पेगी क्या उसका राइवल होगा ?"

सदाव्रत क्या जवाब दे यह सोचने का वक़्त दिये बिना ही मनिला ने कहा, "और पेगी मुझे जितना भी चाहे, वह पुअर डॉग के सिवाय तो और कुछ भी नहीं है। है न !"

सदाव्रत ने कहा, "जरूर !"

"लेकिन डैडी का भी पता नहीं क्या ख़याल है। डैडी का कहना है, "मनिला अब तुम्हारी शादी होगी। अब पेगी को अलग कमरे में सुलाना होगा। बड़ा ऑड लगता है।' कहकर डैडी ने सारी रात पेगी को उसके कमरे मे बन्द रखा। उफ, सारी रात बेचारे पेगी को भी नींद नहीं आयी। मुझे भी नहीं आयी। दोनों ही जागते रहे। आप ही कहिये, इतने दिन की आदत कहीं एक दिन में छोड़ी जाती है ?"

"लगता है आप पेगी को बेहद चाहती है !"

"पेगी को बिना चाहे रहा जो नहीं जाता, मिस्टर गुप्त ! अगर आप देखें तो आप भी चाहने लगेंगे, ऐसा अच्छा कुत्ता है। हाँ तो, इसके बाद

क्या हुआ, सुनिये। उसके बाद सुबह उसी हालत मे पेगी के कमरे में गयी तो देखती हूँ बेचारे की आँखों से झर-झर आँसू निकल रहे हैं। मैं अपने को और नही रोक पायी। दोनों हाथों में पेगी को लेकर 'किस' करने लगी। ओ माँ, किसी भी तरह 'किस' नही करने दिया। जितनी बार पेगी को 'किस' करने की कोशिश की, उतनी ही बार मुँह घुमा लिया। पेगी को गुस्सा आने पर किसी बात का होश नही रहता।"

अचानक यूनिफॉर्म पहने बॉय आ पहुँचा। हाथ में ट्रे थी। ट्रे में थे दो डिकेन्टर। दोनो डिकेन्टर टेबल पर रखकर बॉय चला गया।

"डैडी ने भेजी है, लीजिये!" कहकर मनिला ने एक उठाकर होंठों से लगा लिया।

सदाव्रत समझ नही पाया। पूछा, "यह क्या है?"

"रम! आप रम नही पीते हैं?"

"नही!"

"तब तो ह्विस्की लाने को कहना था। डैडी को तो पता नही होगा। डैडी को मालूम है कि मैं रम पीती हूँ, इसी से रम का ऑर्डर दे दिया। तो आपके लिए ह्विस्की लाने को कहूँ!"

कहकर मनिला बॉय को पुकारने ही वाली थी। सदाव्रत ने कहा, "नही, रहने दीजिये!"

मनिला ने कहा, "आप ह्विस्की क्यो पीते हैं? वैसी स्कॉच ह्विस्की तो आजकल मिलती नही। ह्विस्की शराबियो का ड्रिंक है। डैडी कॉन्टिनेंट जाने पर ह्विस्की पीते हैं और यहाँ रम। अपने यहाँ की ट्रॉपिकल क्लाइमेट में रम ही हैल्थ के लिए अच्छी है। मेरे साथ-साथ पेगी को भी रम की आदत पड़ गयी है। लेकिन पता है, कितना शैतान है! कोल्ड रम के बिना छुयेगा नही। यह क्या, पीजिए न! देसी रम नही है। हमारे क्लब में देसी ड्रिंक्स नही आते।"

दूर कही पर शायद काफी शोरगुल हो रहा था। एक साथ बहुत से स्त्री-पुरुषों की आवाज आ रही थी।

"यह किस बात का शोरगुल है?"

मनिला ने सिप लेकर कहा, "खेल का! लगता है रबर हुई है। उन लोगों में दो जने हैं—मिस्टर सान्याल और मिसेज़ भादुड़ी। बिना शोर किये खेल ही नही पाते।"

"आपका सिरदर्द ठीक हुआ?"

"ठीक कैसे होगा ?"

"आपने ही कहा था, रम पीने पर सिरदर्द धीरे-धीरे ठीक हो जाता है !"

"लेकिन मैंने तो कहा था, पेगी बीमार है। इसीलिए तो सिरदर्द हुआ।"

"पेगी बीमार है, यह तो सुना नही।"

"फिर और क्या सुना ! पेगी के बीमार होने से ही तो सारी मुश्किल हो गयी है। आज सुबह उसे जबर्दस्ती चार बिस्कुट खिलायी। वह क्या खाना चाहता था ! इसके बाद सूप दिया, सैंडविच दी, मिल्क दिया, सब पड़ा रहा। किसी चीज में मुंह नही लगाया। डैडी को फ़ोन किया। डैडी ने कहा, 'नही मनिला, तुम क्लब जाओ। क्लब गये बिना तुम्हारा सिरदर्द ठीक नही होगा।' और मां ने भी कहा, 'मैं पेगी को देखूंगी। तुम क्लब जाओ, मनिला।' आते समय मैं भी पेगी को खूब प्यार करके आयी। कह आयी हूँ—'मेरे अच्छे पेगी, तुम जरा देर की तकलीफ सह लो। मैं थोड़ी देर को क्लब होकर आ रही हूँ।' लेकिन देखिए, इस समय आपके साथ बात कर रही हूँ, रम भी पी रही हूँ, लेकिन मेरा दिल वहाँ पेगी के पास पड़ा है··· यह क्या ? आप लीजिये न ! आप ले क्यों नही रहे हैं ?"

मिस्टर बोस की आवाज आयी, "मनिला !"

"अरे, डैडी आ रहे हैं ! मैं यहाँ हूँ, डैडी !"

मिस्टर बोस ने पास आकर कहा, "हाऊ डू यू एन्जॉय, सदाव्रत ? कैसा लग रहा है ?"

मनिला ने कहा, "डैडी, तुमने मिस्टर गुप्त के लिए रम क्यो भेजी ? वह तो ह्विस्की पीते हैं···"

सदाव्रत ने कहा, "नही-नही, रम ही ठीक है, रम इज़ ऑल राइट। आप परेशान न हों।"

"चलो, मनिला ! चलो, सदाव्रत ! वे सब लोग तुम्हे देखने के लिए बड़े ईगर हैं। उन लोगो को पता नही था। मैंने ही बतलाया, हमारे परचेजिंग ऑफिसर। मनिला की न्यू चॉयस ! मेरे वुड-बी सन-इन-ला। तुम्हारी मेम्बरशिप हो गयी है। फ़िक्र करने की अब कोई बात नही है। चलो !"

अन्दर सभी राह देख रहे थे—मिस्टर गुहा, मिस्टर सान्याल, मिस्टर भादुड़ी, मिस्टर हंसराज, मिस्टर भोपतलाल, मिस्टर आहूजा, और भी कितने ही लोग। सदाव्रत आगे-आगे चल रहा था, फिर मनिला, बगल में मिस्टर बोस। मिस्टर बोस ने भी थोड़ी-सी पी थी। लेकिन पूरे सेन्स

में थे। देख रहे थे, रेजिमेंटेशन कैसा हुआ है। गॉड ब्लेम देम ! ग्रेसम गॉड।

□ □ □

और दूसरी ओर, उसी समय कलकत्ता नीद पूरी करने के बाद जागा ही था। खरीद-फरोख्त अभी शुरू ही हुई थी। सड़क पर बत्तियाँ जल उठी थी। सनातन-रहीम वगैरह उस समय गली के नुक्कड पर पछी फँसाने की ताक मे खड़े थे। खोमचेवालो ने किरोसिन का डिब्बा जला लिया था। आलू-काबुली, गोश्त की घुघनी वाले रात-भर के लिए निकल पडे थे। जरा-सा भुटपुटा होते ही सभी को आशा होने लगती है। इस मोहल्ले में कैसे-कैसे बाबूओं का आना-जाना होता है, यह खुद भगवान भी नही बतला सकते। महीने के आखिरी दिनो मे बाजार जरा मन्दा रहता। उसके बाद तो अगला महीना शुरू होते ही पौ-बारह।

इसीलिए पद्मरानी ने सबको पहले से ही सावधान कर दिया है। कहा था,

"भाई कहो भरतार कहो, सब सम्पद के साथी।
असमय मे, दुष्काल मे, गोविन्द ही सहारा है।"

हाँ तो पद्मरानी का भी एक दिन वही हाल था। "आजकल तुम लोग जो 'हाय पैसा, हाय पैसा' करके मरती हो, पहले बेटी ऐसा नही था। एक-एक जहाजी बाबू आता और दोनो हाथ रुपये लुटाकर चला जाता। वह सब तुम लोगो को कहाँ देखने को मिला ? 'जहाँ-जहाँ गयी ऊखा, वहाँ पडे सूखा' वाला हाल है।"

अचानक दौडता-दौडता सनातन आया। एकदम कमरे मे आ पहुँचा। "माँ, सेठ ठगनलाल आये है।"

चारपाई पर बैठे-बैठे ही पद्मरानी ने मुँह बिचकाया।

"चल, मुँहजले ! मेरे साथ हँसी ? मै क्या तेरी यार हूँ ?"

"नही माँ, तुम्हारी कसम, सच कह रहा हूँ। कौन साला तुम्हारे साथ हँसी कर सकता है ! मैंने ठगनलालजी की गाड़ी देखी। देखते ही तुम्हारे यहाँ ले आया। सोनागाछी के पुराने इलाके की ओर जा रहे थे।"

सुफल ने भी देखा था। बाहर निकलकर बोला, "सलाम, हुजूर !"

ठगनलाल ने एक बार ताककर देखा, "क्यों बे, खूब लाल हो रहा है ! लगता है खूब देसी ढाल रहा है ?"

कहते-कहते सीधे पद्मरानी के कमरे में चले आये।

"ओ माँ, मैं कहूँ, आज किसका मुँह देखकर उठी थी। उसी का मुह देखकर रोज उठूँगी। क्यों बेटा ठगन, क्या रास्ता भूल गये ?"

ठगनलाल तब तक पद्मरानी के बिस्तरे पर बैठ चुके थे।

"रास्ता नहीं भूलूँगा तो क्या ? जाने कहाँ का सब पुराना माल भर रखा है। तुम्हारे यहाँ आने को दिल ही नहीं करता। यह सनातन साला खींच लाया। कहता था, पद्मरानी के फ्लैट में नया माल आया है। मैंने भी कह दिया है, अगर नया माल नहीं दे पाया तो पीठ की खाल उधेड़कर रख दूँगा।"

गाली खाकर सनातन दाँत निपोरकर हँसने लगा।

पद्मरानी ने कहा, "नया माल रहेगा कहाँ से, ठगन ? नया माल क्या इस बाजार में पड़ा रहता है ? तुम इस बाजार को नहीं पहचानते ? तुम क्या नये आदमी हो ? दो साल में एक बार आओगे और नया माल ढूँढोगे !"

ठगनलाल ने सिगरेट सुलगायी।

"कसम से कह रहा हूँ, पद्मरानी ! कामकाज के झंझट की वजह से नहीं आ पाता। इम्पोर्ट लाइसेंस बन्द कर गवर्नमेंट ने सेठ ठगनलाल की कमर तोड़ दी है—कारोबार देखूँ या तफरीह करूँ ?"

फिर जरा देर रुककर बोला, "अच्छा, इन सब बातों को गोली मारो। नया कुछ आया है ?"

पद्मरानी हँसने लगी।

"नया नहीं मिले तो क्या बेकार में यह धन्धा चला रही हूँ ?"

"तो सैम्पल दिखाओ। बिना सैम्पल देखे ठगनलाल लेन-देन नहीं करता। उस बार बेकार मे बुलाकर हैरान किया।"

पद्मरानी—"साथ मे कितना है ?"

"जितना चाहो—हजार, दो हजार, चार हजार एडवान्स दे दूँगा। लेकिन अभी से कहे देता हूँ जूठा माल नहीं छुऊँगा।"

"तो निकालो !" पद्मरानी ने ठगनलाल की ओर हाथ बढ़ा दिया।

ठगनलाल ने कहा, "रुपये तो दे दूँ, फिर ?"

"मैं कहती हूँ, पद्मरानी पर तुम्हें भरोसा नहीं है ? पद्मरानी ने कभी भी तुम्हारे साथ बेईमानी की है ? माँ काली की कसम खाकर छाती पर हाथ रखो !"

ठगनलाल जैसे थोड़ा ढीला पड़ा। फिर पूछा, "उम्र कितनी होगी ?"

"यही चौदह पार कर पन्द्रह में पड़ी है।"

"ठीक है। जात कौन-सी है ?"

"तुम से झूठ नहीं बोलूंगी। बंगाली लड़की को सलवार-कुर्ता पहनाकर राजपूतानी कहकर चलाऊँगी, ऐसी बाड़ीवाली मैं नहीं हूँ। यह सब तुम पुरानी सोनागाछी में पाओगे। वह सब सनातन से पूछो उसे मालूम है। असल मे बंगाली है।"

"देखने मे कैसी है ?"

"मुझे तुमने कभी ऐसा-वैसा माल सप्लाई करते देखा ? पसन्द न हो तो रुपये वापस !"

ठगनलालजी खुश हो गये।

"तो कुल कितना पडेगा ?"

पद्मरानी ने कहा, "पचीस हज़ार रुपये ! सबसे मैं पचीस हज़ार रुपये लेती हूँ। जितना गुड़ डालो, उतना ही मीठा ! मेरे यहाँ एक रेट है भाई। तुम से कम लेकर नाम डुबोना है क्या !"

"एडवान्स कितना देना होगा ?"

"पाँच हज़ार !"

सेठ ठगनलाल चौंक उठे। "पाँच हज़ार रुपये ! पाँच हज़ार रुपये मे तो हाथी खरीदा जा सकता है।"

पद्मरानी ने कहा, "तुम एडवान्स मुझे तो दे नहीं रहे हो, जिसकी चीज़ है उसी को दोगे। मेरी तो खाली ज़िम्मेदारी रही। जिस दिन माल हाथ मे आये पूरे दाम दे देना।"

"ठीक है ! रुपये किसे देने होंगे ?"

पद्मरानी उठ खड़ी हुई। बोली, "अच्छा, रुको। मैं बुलाती हूँ। तुम बेफिकर रहो। तुम्हारे पैसे की ज़िम्मेदारी मेरी रही।"

कहकर कमरे से निकल बरामदा पार कर सीधे सत्रह नम्बर के कमरे के आगे पहुँचकर आवाज़ दी, "टगर, ओ बेटी टगर !"

दरवाज़ा अन्दर मे बन्द था। पद्मरानी ने फिर से पुकारा, "अरे बेटी टगर ! सुन रही है ?"

काफ़ी देर बाद दरवाज़ा खोलकर कुन्ती बाहर आयी। आज शाम से ही कुन्ती घर सजाकर बैठी थी। बृहस्पतिवार था। इस दिन अमेच्योर क्लब के प्ले नहीं रहते। बृहस्पतिवार, शनिवार और रविवार को यहाँ आकर दो पैसों की आय हो जाती है।

"ज़रा मेरे साथ तो आना, बेटी ! एक मिनट के लिए !"

कई दिन से कुन्ती की तबीयत ठीक नहीं चल रही थी। बूढ़ी की बीमारी

की वजह से काफ़ी रुपया उधार हो गया था। बड़ी मुश्किलों से खून देकर उसे बचाया है। उसके बाद भी दवा-दारू और डॉक्टर लगा ही है। दोपहर के समय ही दोनों वक़्त का खाना बनाकर वह पद्मरानी के फ़्लैट चली आयी थी।

पद्मरानी ने फिर कहा, "आज बच्चू को चारों खाने चित् करके छोड़ूँगी ! आ बेटी, आ ! जल्दी कर !"

कुन्ती फिर भी नहीं समझ पायी। बोली, "कमरे मे बाबू है।"

"है तो रहने दे न ! पैसा एडवान्स ले लिया है न ? फिर किस बात की फ़िकर ? माल का दाम चुका दिया है न ? आ !"

कहती-कहती पद्मरानी फिर से अपने कमरे की ओर बढने लगी। कुन्ती भी पीछे-पीछे साड़ी ठीक करती हुई चलने लगी।

"यह देखो, ले आयी हूँ ! यह मेरी लड़की टगर है। इसे जानते हो न ? इसके कमरे मे तो बैठे हो न तुम ?"

ठगनलाल ने कुन्ती की ओर देखा। कुन्ती ने कहा, "आप तो पुराने आदमी हैं।"

पद्मरानी ने कहा, "लाओ, रुपये निकालो ! इसी टगर की बहन है। देखकर खुश हो जाओगे।"

ठगनलाल ने कुन्ती को कितनी ही बार देखा है। फिर भी जैसे जौहरी की नज़र से तौल रहा था। "देखने मे ऐसी ही है ?"

पद्मरानी ने कहा, "हाँ रे, हाँ ! तुम क्या बिना देखे-सुने माल लोगे ? और सोचते क्या हो ! मैं तो हूँ तुम्हारे रुपये की ज़िम्मेदार। तुम्हें क्या मुझ पर भरोसा नही है ?"

ठगनलाल फिर भी पता नहीं क्या सोच रहा था। पद्मरानी ने कहा, "पसन्द न हो तो तुम्हारे रुपये वापस कहती हूँ न !"

"माल कब हाज़िर होगा ?"

"समझ लो अगले बृहस्पतिवार को !"

"चलो-चलो, बृहस्पतिवार ड्राइ-डे है ! चाट के बिना माल में मज़ा नही आता !"

"ठीक है, शनीचर अच्छा दिन है। पूर्णिमा है। पूर्णिमा भी अच्छा दिन है। तुम्हारी गद्दी भी जल्दी बन्द होगी। दोपहर से ही आ जमना।"

ठगनलाल ने इसके बाद फिर कोई सोच-विचार नही किया। जेब से पाँच हज़ार रुपये के नोट निकालकर कुन्ती की ओर बढा दिये। कुन्ती अभी

तक कुछ भी नहीं समझ पायी थी। क्यों, किस बात के रुपये ! यह भी नहीं समझ रही थी। पद्मरानी ने कहा, "गिन ले, बेटी। बात करो सुनकर, पैसा लो गिनकर। मारवाड़ियों के रुपये का भरोसा नहीं है।"

रुपये हाथ में लिये कुन्ती बुद्धू की तरह पद्मरानी की ओर ताकने लगी।

"ये कैसे रुपये है, माँ ?"

"तेरी बहन की 'नथ-उतराई' के। ये पाँच हज़ार एडवान्स के हैं। बाद में पूरे मिलेंगे। शनीचर को उसे ले आना। ठगन भी आयेगा। बाकी हाथों-हाथ मिल जायेंगे।

"मुझे और क्या है बेटी, बहन को लेकर तू ही मुश्किल में पड़ेगी। कौन कहाँ से आकर खराब कर जायेगा। इससे तो ठगन अपना जाना-सुना आदमी है। हमेशा के लिए एक हिल्ला बैठ जायेगा। और अगर किसी बाबू की नेक नज़र पड़ गयी तो···"

कुन्ती जैसे और नहीं सह सकी। रुपये का बण्डल भयाक से जमीन पर फेंक दिया। सनातन उठाने जा रहा था, लेकिन उससे पहले ही कुन्ती ने लात मारकर उसे दूर फेंक दिया।

यह देखकर पद्मरानी तो हैरान रह गयी।

"यह क्या, टगर ? तूने रुपये को ठुकराया ? रुपया लक्ष्मी है, बेटी !"

कुन्ती और ज्यादा देर चुप नहीं रह पायी। उसका बदन थर-थर काँप रहा था। बोली, "उस रुपये को मैं हज़ार बार लात मारकर ठुकराऊँगी !"

"क्या कहा ?"

"ठीक ही कह रही हूँ।"

"लेकिन तू माँ लक्ष्मी का इस तरह तिरस्कार करेगी ? तू समझती है हमेशा तेरे हाथों में इतनी ही ताक़त रहेगी ? तेरे दाँत नहीं गिरेंगे ? तेरी आँखों में झिल्ली नहीं पड़ेगी ? तेरे बदन में झुर्रियाँ नहीं पड़ेंगी ? तू समझती है, हमेशा तू इसी तरह जवान रही आयेगी ?"

"न रहे। यह ठीक है कि मैंने अपने गले पर छुरी चलायी है, लेकिन इसीलिए क्या मैं अपनी माँ-जायी बहन के गले पर छुरी चलाऊँगी ? तुम कह क्या रही हो ? मैं वेश्या हूँ, इसीलिए क्या अपनी बहन को भी वेश्या बनाऊँगी ? ऐसे रुपये की मुझे ज़रूरत नहीं है, माँ ! ऐसे रुपये पर मैं थूकती हूँ !" कहकर और रुकी नहीं।

कमरे में फट-फट करती निकलकर बरामदे की ओर चली गयी।

ठगनलाल, पद्मरानी, सनातन—सभी टगर का यह व्यवहार देखकर थोडी देर के लिए हैरान रह गये।

□ □ □

बागबाजार की गली में उस समय और भी अँधेरा हो आया था। शुरू-शुरू में कलकत्ता में शायद इसी तरह अँधेरा था। मक्खी और मच्छरों की वजह से कलकत्ता के लोग परेशान हो जाते। नाले और कीचड़ की बदबू से जैसे छठी का दूध याद आ जाता था।

फिर भी उसी आबोहवा और परेशानी में तख्त पर केदार बाबू गहरी नींद ले रहे थे। उनका गुरुपद, उनका मन्मथ, उनका वसन्त, उनका सदाव्रत—सभी आदमी बन जायें; आज वह जैसे और कुछ भी नहीं चाहते। वह शायद नहीं देख पायेंगे। हिस्ट्री में १७५७ में ऐसी ही बुरी हालत हुई थी। इसके बाद हुई १८५७ में, फिर १९३९ में। इसके बाद १९४७ से फिर यही हाल चल रहा है। केदार बाबू बीमारी में ही बार-बार काँप जाते है। कुछ भी मिल नहीं रहा था। विन्सेंट स्मिथ, कार्ल मार्क्स, टॅयन्बी, सब की सभी बातें जैसे झूठी हुई जा रही है।

शशिपद बाबू देखने आये थे। वह एक बार रोज देखने आते हैं। डॉक्टर भी आकर देख जाते। दवा का प्रेसक्रिप्शन लिख जाते।

केदार बाबू बुखार की तेजी मे एक बार जैसे चिल्ला उठे, "सदाव्रत! सदाव्रत!"

मन्मथ पास ही था। उसने एक बार झुककर देखा। मास्टर साहब फिर से बेहोश हो गये थे।

बाहर के कमरे मे उस समय शैल मैले कपडे से फर्श साफ़ कर रही थी। मन्मथ पास जाकर खड़ा हो गया। बोला, "सुन लिया?"

शैल वैसे ही काम करती रही। कोई जवाब नहीं दिया।

"मैं एक बार सदाव्रत दा के पास जाऊँगा।"

शैल ने काम करते-करते कहा, "नहीं, जाने की कोई जरूरत नहीं है।"

"लेकिन मैं तो एक दिन गया था।"

शैल ने उसकी ओर देखते हुए पूछा, "गये थे माने?"

"तुमने जाने को मना किया था, फिर भी गया था। तुम गुस्सा करो या जो भी करो, मैं बिना गये नहीं रह पाया।"

शैल उठकर खड़ी हो गयी। बोली, "क्यों गये थे तुम? मैंने इतनी बार मना किया, फिर भी तुम गये!"

मन्मथ जरा डर गया। बोला, "तुम जरा भी फिकर मत करो। मास्टर साहब का हाल देखकर ही मैं बिना गये नही रह पाया।"

दौल ने कहा, "इस बार मैं कहे देती हूँ, फिर कभी भी मत जाना! काका अगर मर भी जायें तो भी खबर देने की कोई जरूरत नहीं है। काका सभी का विश्वास करते हैं। लेकिन उस विश्वास की कीमत समझनेवाले तुम्हारे सदाव्रत दा नही हैं।"

कहकर दौल अपना काम करने लगी।

□ □ □

'आइजनहावर' की डॉक्ट्रिन के साथ नया साल शुरू हुआ। इस दुनिया का एक और नया साल। दुनिया की उमर और एक दिन बढी। दुनिया और भी बूढी हुई। मिडिल ईस्ट का कोई भी देश अगर अब हमला करे तो अमेरिका रुपया और आर्मी सब-कुछ देकर सहायता करेगा। ईजिप्ट के ऊपर झपटने को सोवियत ब्लॉक तैयार हो गया है। स्वेज-कैनाल छोड़कर अंग्रेज चले गये हैं। फ्रास भी चला आया है। सोवियत रूस यह मौका हाथ से नही जाने देगा। इसके पहले ही अरबवालों को नमक खिला देना होगा। ईजिप्ट से अमेरिका का गुणगान कराने के लिए जल्दी-से-जल्दी नमक खिलाये बिना चारा नही है। इसलिए और भी रुपया बहाओ। चाँदी की बाढ़ में ईजिप्ट, सीरिया और ईराक को डुबो दो। रुपये के बूते पर दुनिया की कौन-सी चीज खरीदी नही जा सकती! हम लोग तुम्हारे मित्र हैं। हम लोग अनाथो के नाथ है, दीनों के भगवान हैं। तुम लोग सोवियत रूस को छोड़कर हम लोगो का ध्यान धरो।

शिवप्रसाद गुप्त यही सब लेकर पिछले कुछ दिनो से व्यस्त थे। पडित नेहरू हाल ही मे अमेरिका से लौटे हैं। सभी सुनना चाहते हैं, आइजनहावर ने क्या कहा? हमें कुछ देगा क्या? अमेरिका चाहे तो हम लोगों को बडा आदमी बना सकता है। चाइना हम लोगो पर भी तो हमला कर सकता है। असल मे तो चाइना रूस का ही दोस्त है। हम लोगो को थोडी-सी सहायता ही मिल जाये तो हम लोगों के फाइव-इयर प्लान सक्सेसफुल हो जायें।

अविनाश बाबू वगैरह बूढ़े आदमी है। शाम के वक्त एक बार खबर लेते हैं।

गोविन्द के दरवाजा खोलते ही पूछते, "क्यों, तुम्हारे बाबू लौट आये?"

'आये नही हैं' सुनकर सब वापस लौट जाते। जाकर फिर से पार्क की

बेंच पर बैठ जाते। कार्तिक शुरू होते ही सिर और गले में मफलर पहनना शुरू कर देते। ज़रा ठंड पड़ते ही बूढ़े पेंशन-होल्डर्स की पार्टी होशियार हो जाती। जिन्दगी-भर गवर्नमेंट ऑफ़िस में मोटी तनख्वाह पर नौकरी की है। उस समय ऑफिस के बाबू लोग सम्मान करते थे, डरते थे, उठते-बैठते सलाम करते। अब कोई फिरकर भी नहीं ताकता। घर में लड़के-लड़कों की बहुएँ भी अब पहले-जैसी खातिर नहीं करतीं। इसीलिए बूढ़ों की यह पार्टी एक-दूसरे का सुख-दुःख सुनते-सुनाते, और वक्त मिलते ही शिवप्रसाद बाबू की बैठक में जा पहुँचते। इधर काफ़ी दिनों से मुलाक़ात नहीं हुई। वह इन्दौर गये हैं।

अविनाश बाबू ने बात चलायी, "आज का स्टेट्समैन देखा, अनिल बाबू ? रुपये जैसे चारों ओर बिखर रहे है !"

अनिल बाबू बोले, "अमेरिका की बात कर रहे है न ? देखता हूँ, इतना करोड़ों रुपया आखिर गुम कहाँ हो जाता है ?"

हृषिकेश बाबू ने कहा, "तब हम लोगों को भी तो कुछ दे सकते है, हम लोगों की हालत क्या उन लोगों से ज्यादा अच्छी है ?"

इसके ज़रा देर बाद बहस और भी दूर चली गयी। अमेरिका किसे रुपया देता है, क्यो देता है। वह रुपया किस तरह खर्च होता है। कौन खर्च करता है। वैसे रुपये का क्या उपयोग होता है। इस पर भी बहस चलती। अनुमान के आधार पर तर्क भी चलते।

अखिल बाबू—"सुना है, हम लोगों के देश में भी ये लोग रुपये लुटा रहे है।"

"यह बात है !"

सभी चौंक उठे। "किसे देते हैं ? किसलिए देते है ?"

शाम हो आयी थी। उधर लड़के ,फुटबाल खेल रहे थे। सड़क पर लड़कियाँ घूम रही थीं। साथ में और लड़के-लड़कियाँ थे।

"सुना है इंडिया को भी काफी रुपया मिल रहा है। लेकिन किसे मिल रहा है, यह नहीं मालूम। वह सब कॉन्फीडेंशियल मामला है।"

षष्ठि बाबू कहते, "अरे, नहीं साहब, अपने ब्रजेन को मिलता था। आजकल नहीं मिलता।"

"ब्रजेन कौन ?"

"मेरे ऑफिस में असिस्टेंट था। अचानक एक दिन नौकरी छोड़ दी। छोड़कर एक गाड़ी खरीदी। क़ीमती सिगरेट पीने लगा। कहाँ से रुपया

आता था, हम लोग कुछ भी नही जानते थे।"

"इतने लोगों के रहते उसे ही रुपये क्यों देते थे ?"

षष्ठि बाबू बोले, "क्या पता साहब, क्यों देते थे। शायद कोई सोर्स रहा होगा। बाद मे एक दिन अचानक रास्ते में मुलाकात हो गयी। देखा, गाडी नही थी। पैदल चक्कर काट रहा था। समझ गया रुपया आना बन्द हो गया है।"

सभी बडे रस से किस्सा सुन रहे थे, "क्यो ? बन्द क्यों कर दिया ?"

"अरे, वही तो, बुलगानिन और ख्रुश्चेव के आने पर खूब भीड हुई थी न। ऐसी भीड तो भारत मे पहले कभी हुई नही थी। यह देखकर ही तो अमेरिका बहुत गुस्सा हो गया। कितनों ही का रुपया बन्द कर दिया।"

अविनाश बाबू ने तर्क दिया, "लेकिन साहब, अकेले अमेरिका को ही दोष देने से कैसे काम चलेगा ? आपका क्या खयाल है, रूस रुपया नहीं दे रहा ? वह भी तो अन्दर-ही-अन्दर रुपये खिला रहा है।"

अखिल बाबू ने कहा, "सो तो है ही। रुपये के बिना कम्युनिस्ट लोग भी आखिर किस तरह गाडी चलायें ? कम्युनिस्ट बेचारे तो घर की रोटी खाकर परायी बकरियाँ चराने नही निकलेंगे।"

"सच ही तो ! रुपया लेने मे किसे आपत्ति हो सकती है ! रुपये देने मे भी कितनों ही को आपत्ति नही होती। लेकिन कोई हम लोगों के बारे में तो सोचता नही है। यही हम लोग पैंशन-होल्डर्स। हम लोग क्या कुछ भी नही है, साहब ! आज हम बूढे हो गये हैं, रिटायर्ड है। हम लोगो की कोई नही सुनता। न गवर्नमेंट सुनती है, न पब्लिक ही सुनती है ! हम लोग आखिर जायें कहाँ ?"

सदाव्रत को भी यह मालूम है। सिर्फ यह क्लब ही तो इंडिया नही है। जादवपुर, कालीघाट, फड़ेपुकुर स्ट्रीट अगर इंडिया है, तो *बागबाज़ार* की वह अँधेरी गली भी इंडिया है। यह कलकत्ता भी तो इंडिया है। एक दिन दूसरे साधारण लडको और लोगों के बीच ही सदाव्रत भी मधुगुप्त लेन मे पला है। वहाँ रहकर वह भी शायद शंभू वगैरह की तरह क्लब और ड्रामा लिये मस्त रहता। केदार बाबू के पास रहकर शायद वह भी उस अँधेरी गली के अन्दर ही सभी की भावी मुक्ति का स्वप्न देखा करता। अथवा नेताजी सुभाष रोड पर के अपने पिताजी के लैंड डेवेलपमेंट ऑफिस में बैठा-बैठा ही जिन्दगी गुज़ार देता। तब यह क्लब देखना भी नहीं होता। इन आदमियों को भी नहीं जान पाता।

ऑफिस जाने में सदाव्रत को रोज एक घंटा लगता। यह भी मिस्टर बोस की इन्स्ट्रक्शन थी ! उपदेश था ! लोग जिस तरह विद्यार्थियो को उपदेश देते है, मिस्टर बोस भी सदाव्रत को ठीक उसी तरह उपदेश देते है। उन्होने कह दिया था, "रास्ते मे या सडक पर कभी भी पैदल मत चलना। सड़क पर पैदल घूमना डेमोक्रेटिक है। हर समय मुँह मे सिगरेट लगाये रहना होगा। कश लगाओ या न लगाओ, होंठो मे सिगरेट का होना जरूरी है। इससे पर्सनैलिटी-कल्ट बढ़ता है। जो लोग कहते है कि सिगरेट पीने से कैंसर होता है, वे ऐन्टी-सोशल हैं। तुम्हे पता है, इस सिगरेट-इडस्ट्री मे करोड़ों डालर लगा है। कितने ही करोड़ो लोग नयी तम्बाकू-फैक्टरियो मे काम करते है। जरा उन लोगों के बारे में सोचो। तुम सिगरेट नही पिओगे, तो जिन्होने सिगरेट कम्पनियो के शेयर खरीद रखे है, उनका क्या होगा ? इसी नजर से हमें हर ओर देखना होगा। एक बात और ! जो पुअर है, जो गरीब है, जो मध्यम श्रेणी के है, उनके साथ मेल-जोल नही रखोगे। मेक इट ए पॉइन्ट—उन लोगों से मुलाकात होने पर भी उनको पहचानोगे नही। हम लोगो ने बचपन मे कुछ बातें टेक्स्ट-बुक्स मे पढ़ी है। जैसे—जीवों पर दया करना। आत्मोत्सर्ग। कभी झूठ न बोलो। परोपकार। निस्वार्थपरता। ऑनेस्टी। दूसरे की जरूरत को अपनी जरूरत से ज्यादा समझो। इस तरह की जितनी भी टीचिंग्स है, सब भूल जाओ। ये सब झूठ हैं। स्कूल में इन बातों को पढना होता है, इसी से पढा। लाइफ के लिए इन बातों की कोई यूटीलिटी नही है। तुम और रास्ते के ऑर्डिनरी लोग अगर एक ही जैसी ड्रेस पहनोगे, एक ही साथ एक ही रास्ते पर चलोगे, तो वे लोग तुम से डरेंगे क्यों ? तुम पर श्रद्धा क्यों करेंगे ? तुम्हें मानेंगे क्यो ? इसीलिए तो इडियन रेलवे मे तीन क्लासें है—फर्स्ट, सेकंड और थर्ड। यही देखो न, आज अगर प्लेन का किराया कम हो जाये तो सबसे पहले मैं ही आपत्ति करूँगा। देखो न, मेरे घर भी रेडियो है और मेरी फर्म के एक क्लर्क के घर पर भी रेडियो-सेट है। दिस इज रांग। यह बेइन्साफी है। तब मेरे साथ उन लोगों का डिफरेंस ही कहाँ रहा ? मेरी राय मे रेडियो-सेट इतना सस्ता नही करना चाहिए। रेडियोग्राम भी जिस दिन सस्ता हो जायेगा, रेफ्रिजरेटर भी जिस दिन सस्ता होगा, सबसे पहले मैं ही आपत्ति करूँगा। यह नही हो सकता, होगा भी नहीं। रूस ने यह एक्सपेरिमेंट किया था। फेल हुआ। तभी तो आज सब चेन्ज करके वह अमेरिका को फॉलो कर रहा है। दो दिन बाद ही देख पाओगे आइज़न-

हॉवर डॉक्ट्रिन ही सक्सेसफुल हुई है। देखोगे वन्डर्ड अमेरिकनाइज्ड हो गयी है। एण्ड आई वाण्ट इट।"

दो हजार रुपये। टू-थाऊजेंड रूपीज़। दो हज़ार रुपये महीना देकर मिस्टर बोस ने सदाव्रत को खरीद लिया था। केवल दो हजार रुपये ही नहीं, मिस मनिला बोस और उसका कुत्ता पेगी भी दिया है। सच ए नाइस डॉग ! इतना स्वार्थ त्याग किया है सिर्फ एक अच्छा जमाई पाने के लिए!

मिस्टर बोस ने पहले ही दिन पूछा था, "कैसा लगा, मनिला ? अपने फ्यूचर हसबैंड को देखा ?"

"ओह, मिस्टर गुप्त ?"

"डिड यू लाइक हिम ? तुम्हें पसन्द है ?"

अँधेरे सुनसान रास्ते से मिस्टर बोस की गाड़ी जा रही थी। सरदार ड्राइवर था। मिस्टर बोस ने ज्यादा नही पी थी। तीन पेग पीकर ही बॉय को कह दिया था—बस, दैट्स ऑल। मनिला ने भी दो पेग रम पी थी। दोनो के मन में किसी तरह की अशान्ति नही है। आज दोनों ही हैपी हैं।

मनिला ने सिर का जूड़ा ठीक करते हुए कहा, "मेरे पसन्द करने से तो काम चलेगा नही न !"

"क्यो ? अपना लाइफ-पार्टनर तुम पसन्द न करोगी तो कौन पसन्द करेगा ? मैं तुम्हारी मर्ज़ी के खिलाफ शादी नही करना चाहता। हम लोग कोई स्टोन-एज़ मे तो रहते नही है। तुम फ्रैंकली बोलो। मैं उसे रिजेक्ट कर दूँगा। तुम दोनो ने आज किस विषय पर बात की ?"

"साइकोलॉजी।"

"साइकोलॉजी ? वेरी गुड सब्जेक्ट ! बी० ए० में मेरा सब्जेक्ट था। सदाव्रत क्या साइकोलॉजी समझता है ?"

"अरे नही, डॉग साइकोलॉजी ! मैंने पेगी के बारे मे बात की।"

मिस्टर बोस ने कहा, "आई सी ! लेकिन तुमने सिनेमा को लेकर बातचीत क्यों नही की ? तुम तो इस सब्जेक्ट की ऑथेरिटी हो। सदाव्रत कौन-सी फिल्में देखता है ? लेटेस्ट फिल्म्स देखी हैं ?"

"वह तो पूछा नहीं ! कल यही सब्जेक्ट उठाऊँगी।"

"हाँ, उठाना। तुम लोगों को एक साथ सारी ज़िन्दगी बितानी है। दोनो के टेस्ट एक-जैसे होने चाहिएँ, नही तो मैरीड लाइफ मे हार्मनी नहीं रहेगी। देखती नही, तुम्हारी माँ के साथ मेरी एकदम नही पटती।"

मनिला ने कहा, "वह तो मुझे पता है, डैडी ! इसीलिए तो मुझे

तुम्हारे लिए अफसोस होता है। आई रियली फील सॉरी फॉर यू ।"

मिस्टर बोस को किसी-किसी दिन इसी तरह की आत्मग्लानि होती है। जो खुद भोग रहे हैं, कहीं बेटी को भी न भोगना पड़े। सारी दुनिया को जीतकर वह जैसे अपने घर आकर ही हार गये हैं।

गाड़ी तैरती-सी चल रही थी। उन्होंने कहा, "यही देखो। तुम तो उस दिन टर्फ़ क्लब गयी थी न ?"

"हाँ, गयी तो थी। तुम्हारी बात मानकर मैंने 'लेडी डायना' पर तीन सौ रुपया लगाया था।"

मिस्टर बोस—"तुमसे 'लेडी डायना' पर लगाने को कहा था, तुमने लगाया। पन्द्रह हजार रुपये भी मिले। और तुम्हारी माँ ने किस पर लगाया, पता है ! मैंने उसे भी यही करने को कहा था।"

"माँ ने तो 'ब्लैक प्रिन्स' पर लगाया था।"

मिस्टर बोस ने कहा, "डैम लॉस ! 'ब्लैक प्रिन्स' कहीं 'कैलकटा टर्फ़' जीत सकता है ? 'ब्लैक प्रिन्स' की यह मजाल कि कलकत्ता को इस सॉफ्ट टर्फ़ को जीते ? मैंने इतना कहा, लेकिन तुम्हारी माँ ने नहीं सुना।"

"तुमने किस पर लगाया था, डैडी ?"

मिस्टर बोस—"मैंने ट्रिपल लगायी थी। इसी से कुछ नहीं मिला। लेकिन मेरा कैलकुलेशन तो बेकार नहीं गया। मेरे घोड़े पर बाजी लगाने से तुम्हारी माँ को भी पन्द्रह हजार रुपये मिले होते !"

फिर जैसे खिन्न होकर बोले, "जाने दो, मनिला, इन सब बातों से क्या फायदा !···हाँ, सदाव्रत तुम्हें पसन्द आया या नहीं, कहो ? तुम्हें अगर पसन्द हो तो आई कैन प्रॉसीड फर्दर !"

"लेकिन मैं फाइनल-वर्ड कैसे दे सकती हूँ ? अगर पेगी को मिस्टर गुप्त पसन्द न आये ?"

"लेकिन पेगी की लाइकिंग-डिसलाइकिंग से क्या आता-जाता है ?"

"वाह, अगर पेगी नाराज हो गया, तब ? पेगी अगर मिस्टर गुप्त को मेरे बेड पर न सोने दे, तब ? ऐसे ही देखो न, कोई यगमैन मेरे साथ बात करता है, तो पेगी पसन्द नहीं करता। मिस्टर जायसवाल से पेगी कितना नाराज है, पता नहीं है ? गुस्से के मारे मेरे से बात तक नहीं करता।"

एल्गिन रोड आ गयी थी।

मनिला की गाड़ी के अन्दर घुसते ही पेगी दौड़ता-दौड़ता मनिला की गोद में आ गया। मुँह रगड़-रगड़कर जैसे मनिला को खत्म ही कर देगा,

इतना खुश था। मनिला पेगी का मुंह दोनों हाथों मे लेकर चूमने लगी—"ओ माई डार्लिंग, ओ माई···"

□ □ □

कालीघाट का नया मुहल्ला भी पुराना हो आया। अब कुन्ती गुहा को देखकर इस ओर कोई मुंह नहीं सिकोड़ता। रात-दिन, दोपहर, किसी भी समय नयी साड़ी-ब्लाउज पहनकर आने-जाने पर कोई गौर नहीं करता। इस इलाके के लड़के सब-कुछ जानते हैं। कुन्ती गुहा उनके मुहल्ले की शान है। स्कूल-कॉलिज में लड़के उसकी बातें करते। कहते—"पता है, मेरे मुहल्ले में भी एक आर्टिस्ट है।"

"है ! नाम क्या है ?"

ये लोग नाम बतलाते, "कुन्ती गुहा···"

नाम कोई खास पॉपुलर नहीं है। ऐसा नाम कि बोलते ही लोग चौंक पड़ें। अखबारों में कुन्ती गुहा की तसवीरें भी नहीं छपतीं। ट्राम-बस पर जाने से अगल-बगल भीड़ भी जमा नहीं होती। फिर भी लड़की तो है ही ! और लड़की भी ऐसी, जिसकी उम्र बीस-बाइस के अन्दर है ! जिसके सिर पर कोई मर्द गार्जियन नहीं है। एकदम आज़ाद !

"उसके और कौन-कौन है ?"

"एक बहन और है। स्कूल में पढ़ती है। दोनों में से किसी की शादी नहीं हुई है।"

इन दोनों को लेकर मुहल्ले के नये छोकरों में काफी बहसें होतीं। शुरू-शुरू में कुन्ती को आता-जाता देखकर आँख मारते। दो-एक ने दूर से सीटी भी बजायी। लेकिन कुन्ती ने भी ऐसी फटकार लगायी कि फिर किसी दिन उन लोगों की शैतानी करने की हिम्मत नहीं हुई।

कुन्ती ने एकदम सामने आकर कहा, "सीटी किसने बजायी ? जल्दी से बतलाइये !"

जो वहाँ बैठे थे, सभी सन्न रह गये।

"आप लोगों की माँ-बहन नहीं हैं ? माँ-बहन की ओर देखकर सीटी नहीं बजाते ?"

आते समय धमकी दे आयी थी, "अगर फिर कभी सीटी बजाते सुना तो मैं थाने में जाकर खबर कर दूंगी, यह कहे देती हूँ !"

शायद कुन्ती गुहा के चेहरे में कहीं कुछ था, जिसकी वजह से फिर किसी ने पीछे लगने की कोशिश नहीं की। कुन्ती गुहा के दिन मज़े में ही

कट रहे थे। नयी जगह आकर बात फैलने का जितना डर था, उतना नही हुआ। समय मिलने पर आस-पास के घरों की बहू-बेटियाँ चली आती। वे सभी खाना बनाकर पतिदेव को खिला-पिलाकर ऑफ़िस भेजकर आती, और हर साल या दो साल के बाद बच्चे पैदा करती। वे लोग खूब ही कुढ़ती। कहती, "तुम मज़े में हो, बहन !"

वे लोग खड़ी-खड़ी साज-सिंगार देखती। कैसे घुमा-फिराकर साडी पहनती है ! कितना अच्छा जूड़ा बाँधती है ! पाँव मे जूते डालकर किस तरह निकल जाती है। किसी की परवाह नही करती। खुद ही कमाती है, खुद ही खर्च करती है। उन लोगों की तरह कोई पूछनेवाला नही है। एक रुपया इधर-उधर होने पर आदमी हिसाब माँगते।

इसीलिए कुन्ती गुहा से कहती, "सच, तुम मजे मे हो। भई, मरकर भी कभी शादी न करना।"

कोई-कोई पूछती, "अच्छा, नाटक और ड्रामो मे एक्टिंग करने से कितना रुपया मिलता है ?"

सिर्फ क्या इतना ही ? कोई-कोई तो थियेटर का टिकट भी माँगती। फोकट मे नाटक देखने का कार्ड। निमन्त्रण-पत्र। कोई थियेटर मे पार्ट करना चाहती। थियेटर में काम करके कुन्ती की ही तरह रुपया कमाना चाहती। कहती, "एक बार मुझे कोई पार्ट दिला दो न !"

कुन्ती कहती, "अरे नही, भाभी ! तुम्हे कोई झमेला है, ऐसा तो लगता नही। बाल-बच्चों के साथ मज़े में तो गृहस्थी चल रही है। तुम इस झमेले मे क्यों पड़ती हो ?"

"ओ माँ, झमेला किस बात का ? तुम्हे तो किसी झमेले में देखती नहीं। तुम तो मज़े में खाती-पीती हो और प्ले करती हो।"

"बाहर से सभी को ऐसा ही लगता है, भाभी ! मुझे भी तो लगता है कि आप खूब मज़े मे है। मजे से खाती-पीती और सोती हैं। रुपया कहाँ से आ रहा है, आपको इस बात की भी फ़िक्र नहीं है।"

भाभी हँसकर कहती, "यह बात नही है, रानी। जो रोटी-कपड़ा दे रहा है, वह क्या बदले में आना-पाई तक वसूल नही कर लेता ?"

कुन्ती समझ नही पायी। बोली, "इसका मतलब ?"

भाभी ने कहा, "इसका मतलब आज नही समझ पाओगी। शादी होने पर समझोगी !"

कहकर भाभी अजीब-सी हँसी हँसती। और जो शादीशुदा औरतें

होती वे भी हँसती। कुन्ती समझ नही पाती। कुन्ती ने कितनी ही बार सोचा है। उन लोगों की तरह घर-गृहस्थी होने पर शायद वह भी खुश होती। वह भी उन लोगो की तरह खाना पकाती, बच्चे पैदा करती और उन्ही लोगो की तरह उसके-इसके घर गप्पें लगाती फिरती। वह शायद इससे अच्छा होता।

बूड़ी फिर स्कूल जाने लगी थी। खाना बनाकर घर में ताला लगाकर कुन्ती चाबी ताई के पास ही रख जाती। कमरे मे खाना ढँका हुआ रखा रहता। बूडी घर आकर खाने के बाद घर के दूसरे काम करती। बाद मे पढ़ने बैठती।

ताई पूछती, "लौटने में क्या आज भी देरी होगी ?"

"हाँ ताई, लौटने मे आज भी देरी होगी। आप ज़रा बूड़ी पर नजर रखिएगा। कमरे मे खाना ढँका रखा है। खाने को कह दीजिएगा। देखियेगा, किसी के साथ बातचीत न करे। एक्ज़ाम पास ही हैं न !"

कुन्ती हर रोज इस तरह ताई से देखने को कह जाती। स्कूल से लौट कर बूड़ी रोज़ पढ़ने बैठती। शाम को पढ़ाने के लिए मास्टरनी भी लगा दी गयी थी। वही पढ़ाती।

ताई कहती, "बेटी, तुम धन्य हो। अपनी पुटी से भी यही कहती हूँ। कहती हूँ, एक बार अपनी कुन्ती दी को देख, बेटी ! देखकर ही कुछ सीख। कितनी तकलीफ सहकर माँ-जायी बहन को आदमी बना रही है। सगा भाई भी इतना नही करता।"

कुन्ती कहती, "क्या ऐसे ही कर पाती हूँ, ताई ! मर-मरकर ही करती हूँ। कितने दिन करती रहूँगी, पता नही। जितने दम रहेगा, कर रही हूँ। इसके बाद बूड़ी की तकदीर है !"

"बेटी, तुम जो कर रही हो, अच्छे-अच्छे नही कर पाते। मुहल्ले का कोई आदमी ऐसा नही है, जिसे नही मालूम हो। सब कोई तुम्हारी बड़ाई करते हैं।"

"आपके आशीर्वाद से बूड़ी अगर आदमी बन जाये तो समझूँगी कि मेरी मेहनत बेकार नही गयी।"

"जरूर होगी। तुमने जिस तरह मे बहन को बचाया है, कौन नही जानता। दिन-रात एक करके सेवा की। और पैसा भी कैसा पानी की तरह बहाया। मैंने सभी तो देखा है।"

इसके बाद कुन्ती को देरी हो रही है, देखकर ताई ने कहा, "अच्छा,

तुम्हें देर हो रही होगी, बेटी ! तुम चलो। घबराने की कोई जरूरत नहीं है। मैं बूढ़ी को देखूँगी।"

बैग हाथ में लिये कुन्ती निकल पड़ी। इतनी जल्दी निकलने की कोई खास जरूरत भी नहीं थी। फिर भी घर बैठे-बैठे अच्छा नही लगता। छुटपन से बाहर-ही-बाहर रहने से जैसे आदत-सी पड गयी है। अब बिना निकले अच्छा नही लगता। लगता, जैसे कलकत्ता शहर उसे पीछे छोड़कर आगे बढ रहा है। वह जैसे दौड़ में पिछड़ गयी है। सड़क पर बिहारी की दूकान पर कुन्ती रुकी, एक पान लिया। सामने ही शीशा भूल रहा था। खुद के चेहरे की परछाईं पड़ रही थी। जरा देर देखकर बैग से पैसे निकालने लगी। खुले पैसे नही थे। पान के दाम भी बढ गये है।

कुन्ती ने कहा, "चूना दो, और जरा-सी सुपारी भी।"

पहचाना दूकानदार था। रुपये का नोट अच्छी तरह से देखने लगा।

दूकानदार ने हाथ बढ़ाकर लौटाते हुए कहा, "दीदी, यह बदल दीजिये। यह खराब है।"

"खराब माने ?"

नोट लेकर कुन्ती ने अच्छी तरह से देखा। कुछ भी समझ नहीं सकी। फिर काफी देर तक देखने के बाद पता लगा, सचमुच खराब है। आश्चर्य ! उसे भी ठगा है ? किसने ठगा ? कुन्ती को लगा जैसे सारा कलकत्ता उसे ठगने के लिए इतने दिनों से षड्यन्त्र कर रहा है। इतने दिनों से षड्यन्त्र करने के बाद जैसे आज पकड़ पायी है। एक रुपया ! एकदम छोटी-सी चीज। वही एक रुपया जैसे उसे मुँह चिढ़ा रहा था। उसमे छपी त्रि-सिंह मूर्ति के शेर जैसे जी उठे थे और उसे काटने आ रहे हों।

निकलते ही यह गड़बड़ होने से कुन्ती का मन खराब हो गया। सारा मजा जैसे किरकिरा हो गया। पहली बार जिस दिन वह ऑकलैंड-ऑफिस के बड़े बाबू के साथ बाहर निकली थी, उसने ठीक किया था, इस दुनिया के सामने वह हार नहीं मानेगी। अपनी जवानी की पूरी-पूरी क़ीमत वह वसूल कर लेगी। फिर ? फिर वह कैसे ठगी गयी ? किसने उसे ठगा ?

सामने की बस से कितनी ही नजरें उसी की ओर ताक रही थी। उनमें मे एक नजर तो जैसे निगल लेना चाहती थी। सिर से पाँव तक जैसे वह आदमी उसे निगल लेना चाहता था। ऐसे लोगो को चारों खाने चित् करने का आर्ट कुन्ती को आता है।

जरा इशारा करते ही वह आदमी चट से बस से उतर आया। आकर

सीधे पान की दूकान पर पान खरीदने लगा। शायद कचहरी जा रहा था। कोई मुकदमा होगा। शायद मामले की सुनवाई आज ही होनेवाली थी।-या अस्पताल में अपनी बहू को देखने जा रहा था। आज-कल में मरनेवाली होगी। इस तरह से कितने ही लोगों का काम कुन्ती ने बिगाड़ा है। काम-काज सब जैसे गड़बड़ा जाता।

वह आदमी हाथ बढ़ाकर पान ले रहा था।

कुन्ती ने कहा, "देखिये तो, यह नोट क्या खराब है? दूकानदार कहता है चलेगा नहीं।"

वह आदमी भी शायद बात करने का बहाना खोज रहा था।

बोला, "देखूं, देखूं! क्या बात है?"

नोट हाथ में लेकर कई बार घुमा-फिराकर देखा। फिर कहा, "नहीं, यह नोट तो ठीक ही है। आपसे किसने कहा कि खराब है? यह अगर खोटा है तो इंडिया गवर्नमेंट भी खोटी है।"

"देखिये न, दूकानदार कह रहा है, नहीं लेगा।"

"लेगा नहीं माने? ज़रूर लेगा! क्यों जी, इस नोट में क्या खराबी है, ज़रा मैं भी सुनूं? बेकार में एक भली महिला को तंग कर रहे हो? कह दिया नहीं लेंगे! क्यों नहीं लोगे?"

दूकानदार पुराना व्यापारी आदमी ठहरा। बोला, "नहीं बाबू, यह नोट जाली है।"

"जाली है मतलब? जाली कहने से ही हो गया? तुमने कह दिया और जाली हो गया? पता है, मैं बैंक में नौकरी करता हूं? मुझे नोट पहचानना सिखला रहे हो तुम? मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर सकता हूं!"

झगड़ा शुरू हो गया। शोरगुल सुनकर और भी दो-चार लोग जमा हो गये।

उस आदमी ने कहा, "ठीक है! यह नोट मेरे पास रहने दीजिये। आप दूसरा नोट ले लीजिये।"

कहकर अपनी पॉकेट से एक अच्छा नोट निकालकर कुन्ती के हाथ में दे दिया।

फिर कहा, "आजकल ये दूकानदार इतना परेशान करते हैं कि कुछ न पूछिये, जनाब। मुझे कई बार भुगतना पड़ा है। आज मैं भी कुछ करके छोड़ूंगा। 'तोम ये नोट लेगा कि नहीं लेगा,' बताओ!"

लेकिन तब तक उस ओर की बस आ गयी थी। कुन्ती और नहीं

ठहरी। जल्दी से नोट अपने पर्स में डालकर बस पर जा चढ़ी। कुन्ती के चढ़ते ही बस चल दी। फिर कहाँ की पान की दूकान और कहाँ का वह आदमी! उस समय बस कलकत्ता की छाती चीरती आगे बढ़ रही थी।

□ □ □

सुबह के समय दो घंटे के लिए मिस्टर बोस का सेक्रेटरी आता। दुनिया की सारी खबरें उसे पढ़कर सुनानी होतीं। आजकल बिजनेसमैनों को बिजनेस के साथ-साथ दुनियाई पॉलिटिक्स से भी वाकिफ रहना पड़ता है। इंडिया का भाग्यविधाता इंडिया ही नहीं है। भारत-भाग्य-विधाता तो आज वाल-स्ट्रीट है। वहाँ के शेयर-मार्केट की पूरी-पूरी खबरें रखना आजकल बिजनेसमैनों के लिए बड़ा जरूरी है। सिर्फ़ ज़रा-सी खबर जानने के लिए बम्बई ट्रंककॉल करना होता है। मिस्टर बोस के वकील-एडवोकेट-एटर्नी सभी टेलीफोन सामने रखे बैठे रहते। इसी के बीच पर्सनल मामले भी चलते रहते। उसी के बीच रेस होती, क्लब होते, अपनी मिसेज होतीं, बेटी मनिला होती।

मकान के अन्दर से ही कितनी ही बार मनिला फोन करती।

"डैडी, देखो न पेगी ब्रेकफास्ट नहीं ले रहा है।"

"लेकिन तुम उसके पीछे इतनी पागल क्यों हो?"

फिर पूछते, "तुम्हारी माँ कहाँ हैं? सोकर उठी?"

"माँ टॉयलेट ले रही हैं।"

"अभी तक टॉयलेट ही हो रहा है? ब्रेकफास्ट नहीं हुआ? इतनी देर में ब्रेकफास्ट लेने पर शरीर का क्या हाल होगा?"

"उसके लिए मैं कुछ नहीं कह सकती, तुम आकर कह जाओ।"

मिस्टर बोस खुद सुबह जल्दी ही उठते। अपने ऑफिस-रूम में ही तरह-तरह के कामों में फँसे रहते। टेलीफोन आते, आदमी आते, सेक्रेटरी आता। लेकिन मन घर के अन्दर ही पड़ा रहता। मिसेज ने टॉयलेट लिया है या नहीं, मनिला सोकर उठी है या नहीं—सब उन्हीं को सोचना होता। अखबार पढ़ते-पढ़ते अनमने हो जाते। इसके बाद सेक्रेटरी की ओर देखकर कहते, "फिर?"

सेक्रेटरी फिर से अखबार पढ़ना शुरू कर देता।

रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के फर्स्ट सेक्रेटरी श्री निकिता ख्रुश्चेव ने क्रमलिन में कहा है—'स्टालिन वाज़ ए ग्रेट मार्क्सिस्ट। आइ ग्रू अप अण्डर स्टालिन। स्टालिन मेड मिस्टेक्स, बट वी मुड शेयर रेस्पॉन्सिबिलिटी

फॉर दोज़ मिस्टेक्स बिकॉज़ वी वर एसोशिएटेड विद हिम। वी टेक प्राइड एट हैविंग फॉट एट स्टालिन्स साइड अगेन्स्ट क्लास-एनिमीज़। द इम्पि-रियलिस्ट्स कॉल अस स्टालिनिस्ट्स। वेल, ह्वेन इट कम्स टु फाइटिंग इम्पिरियलिज़्म वी आर आल स्टालिनिस्ट्स।'

मिस्टर बोस ने इतना सुनकर कहा, "रुकिये !"

इसके बाद टेलीफोन-रिसीवर उठाकर डायल करने लगे, "हलो, मिस्टर गुप्त हैं क्या ?"

उस ओर से हिमांशु बाबू ने फोन उठाया था। बोले, "मिस्टर गुप्त तो अभी तक वापस नहीं आये।"

"यह क्या ? इन्दौर से अभी तक नहीं लौटे ?"

शिवप्रसाद गुप्त इन्दौर गये थे—ए० आई० सी० सी० का खास निमन्त्रण पाकर। अमेरिका से पंडित नेहरू ने कांग्रेस मेम्बरों को बुलाया था। शिवप्रसाद गुप्त को भी बुलाया। अब तक तो लौट आने की बात थी। ईजिप्ट से फ्रेंच आर्मी के वापस जाने के बाद से मिडिल ईस्ट की हालत और भी खराब हो गयी थी। किसका प्रभुत्व रहेगा ? सोवियत रूस या अमेरिका ?

मिस्टर बोस ने कहा, "पढ़िये, आप पढ़िये। इन्दौर की कोई खबर है ?"

सेक्रेटरी ने कहा, "यस सर। यह है न !"

कहकर पढने लगा। मि० नेहरू ने कहा है, "इफ देअर इज़ ए पॉवर वैक्युअम इन वेस्ट एशिया, इट हैज़ टु बी फिल्ड बाई ए कन्ट्री इन दैट रीजन। ईवेन्ट्स इन ईजिप्ट एण्ड हंगरी हैड शोन दैट नाइदर कॉलोनियल-एग्रेशन नॉर कम्युनिस्ट-एग्रेशन वर ईज़ी एनी मोर···"

मिस्टर बोस ने बीच में ही रोका, "रुकिये !"

कहकर उठ खड़े हुए। घर के अन्दर की याद आयी। मिसेज़ की याद। मेजर सिनहा ने इतना कह दिया है कि ठीक समय सोकर उठना होगा, ठीक समय टॉयलेट करना होगा, ठीक समय ब्रेकफास्ट लेना होगा।

कॉरीडोर पार कर सीढ़ी है। सीढ़ी से ऊपर चढ़ने पर सेकंड फ़्लोर में मिसेज़ बोस के बेडरूम से लगा हुआ बाथरूम। अन्दर से पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी।

दरवाज़े के पास जाकर पुकारा, "बेबी, अरे बेबी !'

मिसेज़ बोस का घर का नाम बेबी था।

अचानक कुन्ती कमरे में आयी।

सेक्रेटरी बोल उठा, "यह क्या, आपको इतनी देर लगी ?"

कुन्ती गुहा हाथ का पर्स रखकर बैठ गयी। बोली, "आप लोगों ने मुझे बड़ी मुश्किल में डाल दिया था।"

"क्यों ? मुश्किल कैसी ?"

"कल तीस रुपये दिये थे न। मैंने ठीक से देखे नहीं। आज देखती हूँ उनमें से एक रुपया खराब है।"

"अरे ? देखूँ, वह रुपया कहाँ है ?"

"वही एक रुपया लेकर घर से निकली थी। बस में टिकट के लिए रुपया देते ही मुश्किल में पड़ी। कंडक्टर ने कहा कि यह रुपया नहीं चलेगा। आखिर मुझे घर लौटना हुआ। घर पहुँचकर, रुपया बदलकर तब कहीं यहाँ आ पायी। हम लोगों को ठीक से देखकर रुपये देने चाहिएँ न! हम आप लोगों का विश्वास करते हैं, इसलिए क्या आप लोग इस तरह ठगेंगे ?"

सेक्रेटरी साहब सचमुच शर्मिन्दा हो गये। जेब से मनीबैग निकालकर एक रुपया बढ़ाते हुए कहा, "यह लीजिये! हम लोग तो देख-भालकर ही देते हैं, फिर भी शायद गलती से चला गया होगा।"

रुपया लेकर कुन्ती ने अपने पर्स में डाल लिया। इसके बाद मुसकाई। बोली, "सो तो है ही। आप लोगों ने क्या जान-बूझकर मुझे ठगा ? मैंने यह तो नहीं कहा।"

□ □ □

इसी तरह हर रोज इस कलकत्ता की नींद टूटती है। नींद टूटने के बाद जगने पर भी यह कलकत्ता सोता रहता है। सुबह उठते ही अखबार के रोचक उपदेशों का नाश्ता करता है। और भी कम खाने का उपदेश, और भी मेहनत करने का उपदेश, और भी बचत का उपदेश। यहाँ की दिनचर्या इन्हीं उपदेशों से शुरू हो जाती है। लेकिन रात शुरू होती है पद्मरानी के फ्लैट से, होटल के डान्स और क्लब की रम, जिन, ह्विस्की से। कोई कहता है—सिटी ऑफ़ प्रोसेशन, जुलूसों का शहर। तो कोई और कहता—रामकृष्ण परमहंस का शहर, स्वामी विवेकानन्द का शहर, रवीन्द्रनाथ टैगोर का शहर, सी० आर० दास और सुभाषचन्द्र का देश।

जिसका भी शहर हो, १९४७ से यहाँ का इन्सान ईजिप्ट की ममी हो गया है। लेकिन इंडिया की ये ममियाँ कब्र-तले चुपचाप खामोशी के साथ सोयी नहीं रहतीं। ये घूमती-फिरती रहती हैं, गाड़ी पर सवार होती हैं,

खाना खाती है, पद्मरानी के फ्लैट में आ जाती हैं, क्लबों की मेम्बर होती हैं, रेस खेलती है। ये ही बस-ट्राम जलाते है, मीटिंग करते हैं, खादी के कपडे पहनते हैं और कम्युनिज़म पर लेक्चर झाडते है।

मौत यहाँ बहुत सस्ती है। इसलिए जीवन का यहाँ कोई मूल्य नहीं है। वह मुफ्त का है। चूँकि गरीबी यहाँ एकदम बेशर्म है, इसीलिए पैसे की निगाह इतनी पैनी है। प्रेम यहाँ सौदे की चीज है। इसी से यहाँ घृणा इतनी छोटी चीज है। पाप यहाँ इतनी ज़्यादा तादाद मे है कि पुण्य बहुत ही साधारण-सी चीज़ बन गया है। यह सिर्फ कुन्ती गुहा की कहानी नहीं है; विनय, शंभू और सदाव्रत की कहानी नहीं है; केदार बाबू, शैल, मि० बोस और मनिला की कहानी भी नहीं है। यह कहानी है इकाई, दहाई और सैंकडा की।

बागबाज़ार की गली में जिस समय केदार बाबू बीमारी और दर्द से छटपटाते है, उस समय मिस्टर बोस के क्लब मे बड़े ज़ोर-शोर के साथ ताश के खेल की खबर होती है। जल्दी-जल्दी कुछ खा-पीकर जब बूढ़ी स्कूल पहुँचती है तो देखती है कि मिनिस्टर की मृत्यु के उपलक्ष मे स्कूल में छुट्टी हो चुकी है।

शुरू-शुरू मे कुन्ती को सन्देह नही हुआ। नियमित रूप से स्कूल की फीस देती रही। फ्रॉक छुड़ाकर बूडी को साडी पहनायी। जो मास्टरनी पढ़ाने आती, उससे बहस की। उस मास्टरनी को कुन्ती चालीस रुपये महीना देती थी।

कुन्ती पूछती, "बूडी की पढ़ाई-लिखाई का क्या हाल है?"

मास्टरनी कहती, "आपकी बहन पढ़ने मे खूब तेज़ है। पास कर जायेगी, देख लीजियेगा।"

बाहर जाते समय ताई से भी कह जाती कि बूडी ठीक समय पढ़ने बैठे, कि वह किसी के साथ गप्प न लगाये। एक दिन उसने भी तो फ्रॉक छोडकर साड़ी पहनना शुरू किया था। एक दिन वह भी तो इसी उम्र में ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू के हाथो मे फँस गयी थी। काफी देर तक कुन्ती निगाह गड़ा-गड़ाकर बूडी की ओर देखती। वह धीरे-धीरे बड़ी हो रही है। बदन धीरे-धीरे भर रहा है। बदन जैसे गदरा गया है। कुन्ती को बड़ा डर लगता। बडी चिन्ता होती। यही तो उम्र है। यही तो डरने की उम्र है। इसी उम्र मे तो वह खुद चारो ओर देखकर चौंक उठी थी। इसी उम्र मे तो उसने दुनियाई आइने में अपनी शकल बाकायदा देखी थी। इसी उम्र

में तो पुरुषों की निगाहों में उसने अपना सर्वनाश पढ़ा था। इसी उम्र में तो उसे कलकत्ता ने लपक लिया था।

"यह क्या ? घर लौट आयी ! छुट्टी हो गयी क्या ?"

सुबह ग्यारह बजे स्कूल लगता है। शाम को चार बजे से पहले बूढ़ी घर नहीं लौट पाती। उसी समय छुट्टी होती है। आज अचानक छुट्टी की बात सुनकर कुन्ती हैरान रह गयी।

"आज कौन मरा ?"

"कोई मिनिस्टर मर गया है।"

बूड़ी आजकल अपनी बहन से बात करते घबराती है। बूड़ी की बात पर कुन्ती अचानक जल-भुनकर लाल हो गयी। "मिनिस्टर मर गया तो तेरे स्कूल की छुट्टी क्यों हुई ?"

ताई उस वक्त भात पसाकर कमरे में घुस रही थी। कुन्ती की डाँट सुनकर वहीं से बोली, "तुम उसे इस तरह से मत डाँटो, बेटी ! अभी उस दिन तो अस्पताल से वापस आयी है।"

"देखिये न ताई, जैसी स्कूल की हैडमिस्ट्रेस है वैसा ही स्कूल है ! बात-बात में छुट्टी ! आज दफ्तरी मर गया, उसकी छुट्टी। कल सेक्रेटरी मरा, उसकी छुट्टी। परसों मिनिस्टर मरा, उसकी छुट्टी। मुँहजले मर गये, बड़ा अच्छा हुआ ! लेकिन छुट्टी किस बात की ! हर महीने फीस नहीं लेते ? खून-पसीना एक कर तुम्हें फीस देती हूँ सो क्या छुट्टियों के लिए ?"

ताई ने पूछा, "कौन मर गया ? कौन ? कहाँ का मंत्री ?"

"पता नहीं किस चूल्हे का मंत्री मर गया है !"

"अरे, राम-राम ! उमर कितनी थी ?"

कुन्ती ने उस बात का कोई जवाब नहीं दिया। बूड़ी की ओर देखकर बोली, "छुट्टी तो हुई। अब सारे दिन क्या होगा, जरा सुनूँ ? खेलेगी ? इधर-उधर आवारागर्दी करती फिरेगी ?"

बूड़ी ने निगाह नीची किये कहा, "मैं पढ़ूँगी !"

"पढ़ेगी न खाक थोड़ी-सी ! तुझे अगर इतना पढ़ने का ही शौक होता तो मुझे फ़िक्र करने की क्या जरूरत थी ? तू कुछ बन जाये, इसीलिए तो भूतनी की तरह पिसती हूँ ! और नहीं तो क्या मुझे इतनी मेहनत अच्छी लगती है !"

तभी जैसे अचानक याद आ गया। कई दिन हुए पेटीकोट फट गया

था। फटा पेटीकोट अलगनी से उतारकर बूड़ी को देते हुए कहा, "बैठी-बैठी इसकी सिलाई कर। घर का कोई काम तो किया कर। मैं अकेली सारा धन्धा करूँ और तू बैठी-बैठी खाये ? तुझसे क्या इतना भी नहीं होगा ? और कल राशन की दूकान से जो चावल आया है, सब-का-सब कंकड़ों से भरा है। उसे साफ़ करके रखना। मैं अकेली क्या-क्या देखूँ ?"

ताई खड़ी थी। बोली, "हाल में ही तो बीमारी से उठी है, बेटी। अभी से क्या इतना कर सकेगी ? उमर होने पर सब कर लेगी। सिर पर जब पड़ती है, तब खुद ही समझेगी। किसी को सिखलाना नहीं होगा।"

इसी तरह प्रायः रोज ही कुन्ती बहन को उपदेश देती। इसी तरह कह-कहकर कुन्ती अपनी छोटी बहन को आदमी बनाना चाहती है। रात को बिस्तरे पर पड़े-पड़े किसी-किसी दिन सोचना अच्छा लगता कि बूड़ी और भी बड़ी हो गयी है। उसकी शादी हो रही है। उसका दूल्हा आया है। सिर पर सेहरा बाँधे, रेशमी कपड़े पहने। बारात, जयमाल हो रही है। बाजे बज रहे हैं। शंख की आवाज आ रही है। कलकत्ता की इतनी गन्दगी और सड़न में भी यह स्वप्न देखना अच्छा लगता। ट्राम और बस मे जाते-जाते टैक्सी में किसी नये दूल्हा-दुल्हन को देखकर कुन्ती अनमनी हो जाती। इसके बाद आँखों के आगे दोपहर के वक्त का वह कलकत्ता कब रात के कलकत्ता में बदल जाता, पता ही नहीं चलता। उस कलकत्ता में पद्मरानी का फ़्लैट नहीं होता, ड्रामेटिक क्लब नहीं होता, ह्विस्की नहीं होती, चॉप-कटलेट कुछ भी नहीं होता। उस समय हर ओर सिर्फ शंख की आवाज होती। हर ओर बाजे, शहनाई और पुकार, 'दूल्हा आ गया ! बारात आ गई ! दूल्हा आ गया !'

शाम के समय जो पढाने आती थी, रोज की तरह उस दिन भी आयी।

हाथ में छाता, पैरो में चप्पल। इधर-उधर हर मुहल्ले में घूम-घूमकर दो पैसा पैदा करना होता है। शाम को उसके आते ही बूड़ी रोशनी कर देती। जमीन पर चटाई बिछाती। किताबें लाती। इसके बाद पढ़ने बैठती।

दूसरे घरों में पढ़ाने जाने पर लड़की के माँ-बाप, बुआ, कोई-न-कोई आस-पास में होते। पढाई कैसी हो रही है, खबर रखते। लेकिन इस घर का कुछ अलग ही हिसाब था। पहले दिन से ही उसे अजीब लगा था।

पूछा था, "तुम्हारी जीजी कहाँ है ? घर नहीं हैं ?"

बूड़ी ने जवाब दिया, "जीजी तो ड्रामा करने गयी हैं।"

"हर रोज ड्रामा रहता है ?"

"हाँ, रोज़ !"

बी० ए० पास महिला थी। काफ़ी मुश्किलों से पढ़ाई-लिखाई कर भाई-बहनों को पाला है, अपने पैरों पर खड़ी है। अब इच्छा है एक छोटा-सा मकान बनवाने की। कलकत्ता के किसी कोने में। बाद में मौका लगने पर शादी भी कर लेगी। फिर भी यहाँ आकर, इस घर को देखकर बड़ा अजीब-अजीब-सा लगता। इसकी बहन कितना कमाती है ? वह बी० ए० पास करके जितना कमाती है शायद उससे भी ज्यादा ! सौ, दो सौ, तीन सौ ? कुन्ती को सिर्फ़ एक बार देखा था। लेकिन एक बार और देखने की इच्छा है। ये लोग कितने मज़े में हैं ! ये ड्रामों, नाटकों में काम करनेवाली लड़कियाँ ! सिनेमा के अख़बारों में इनकी फोटो छपती है। इनमें से कितनों ही की जीवनी पढ़ी है। इन लोगों की जिन्दगी में भी कितना मज़ा है, और वह ? बहन से खोद-खोदकर बात पूछने की इच्छा होती।

हमेशा की तरह उस दिन भी शाम को आकर आवाज़ दी, "शान्ति !"

'शान्ति' आवाज़ सुनते ही हमेशा बूड़ी पीछे की ओर से आकर दरवाज़ा खोल देती। लेकिन आज कोई आवाज़ नहीं आयी।

मास्टरनी ने फिर ज़ोर से पुकारा, "शान्ति !"

ताई ने सुन लिया।

"कौन है ?"

बूढ़ी औरत, धीरे-धीरे आँगन पार कर आयी। दरवाज़ा खोला।

"ओह माँ ! तुम हो ! बूड़ी कहाँ गयी ? बूड़ी नहीं है ? दोपहर को ही तो देखा था—बैठी-बैठी सिलाई कर रही थी। कहाँ चली गयी ? तुम ज़रा देर बैठो न, बेटी ! शायद अभी आती ही होगी।"

मास्टरनी को सिर्फ़ एक घर में तो ट्यूशन करना नहीं होता ! सुबह-दोपहर-शाम, हर वक़्त ही काम रहता। ज़्यादा देर बैठने से नुकसान होगा।

मास्टरनी—"ठीक है ! आज शायद कहीं गयी हैं, मैं कल फिर आऊँगी।"

ताई और क्या कहती ! कहने को था भी क्या ! जिनकी लड़की है, जिनके पैसे हैं, वे ही समझेंगे। बाद में शान्ति जब घर लौटी, मास्टरनी जा चुकी थी। मज़े से पान चबाते-चबाते आकर दरवाज़ा खोलने लगी।

ताई ने पूछा, "कहाँ गयी थी री, बूड़ी ? तेरी मास्टरनी आकर लौट गयी !"

"तब क्या किया जाये ?"

"उतरकर आप दूसरी ओर जाइये और चार नम्बर बस पकड़िये।"

बूड़ी उतरी। बस के मारे लोग उसकी सहायता करने को बेचैन हो रहे थे। बेचारी कलकत्ता में नयी-नयी आयी है। बूड़ी भी आँख और मुंह के भाव से अनाड़ी का अभिनय बड़ी ही सफलता से कर लेती थी। ऐसा भाव दिखलाया जैसे सचमुच ही वह भूलकर गलत बस में चढ़ गई हो।

लेकिन उधर तभी हाय-तोबा मचना शुरू हो गया था—"मेरा मनीबैग ? अरे जनाब, मेरा मनीबैग कहाँ गया ?"

और भी जो पैसेंजर अन्दर थे, अपनी-अपनी जेबें टटोलने लगे—बैग में कितने रुपये थे ? दस रुपये ? सस्ते में ही छूट गये। उस दिन मेरे तीन सौ रुपये निकाल लिये। लेकिन जनाब, हम सबकी जेबें सर्च करके देख लीजिये। जिसने लिया है, वह अभी अन्दर ही होगा। सभी की जेबें देख लीजिये। शर्म-लिहाज से काम नहीं चलेगा, यह भलमनसाहत का ज़माना नहीं है !

बूड़ी तब तक एसप्लैनेड के पास उतरकर धीमे-धीमे दूसरी ओर जा रही थी। बस के अन्दर शायद तब भी हाय-तोबा मची थी। सिर्फ उस एक बस में ही क्यों ? दोनों ओर से हजारों की तादाद में लोग आ-जा रहे हैं। रास्ता पार करना भी मुश्किल हो गया है। उस ओर एक रेस्टोरेंट दिखलायी दिया। उसी में घुस पड़ी। यहाँ उसे कोई भी नहीं देख पायेगा। उसकी बस के लोग।

एक बैरा सामने आकर खड़ा हुआ। वही उसे अन्दर ले गया। इन लोगों को क्या उस पर सन्देह हो गया है ? बूड़ी डर से घबरा गयी। इसके बाद एक घिरी-सी जगह में आने पर भी उसकी घबराहट कम न हुई। अगर बैग खोलकर देखे, अन्दर एक भी पैसा नहीं है ? बैरे के जाते ही जल्दी से ब्लाउज के अन्दर से मनीबैग बाहर निकाला। जाने किस चीज के मुड़े हुए कागज। और उसी के साथ कुछ छुट्टे नोट। सब मिलाकर नौ। पूरे दस भी नहीं। झूठा कहीं का !

बैरा चाय रख गया था। होंठों से कप लगाया ही था, तभी लगा, बगलवाले कमरे से जैसे कुन्ती की आवाज सुनायी दी। सच ही तो दीदी की आवाज है। शाम के समय दीदी यहाँ ? बीच-बीच में खिलखिलाहट की आवाज भी आती। किसी आदमी के साथ बातचीत कर रही थी। वह भी हँस रहा था। शायद दोनों चाय पी रहे थे।

बूढ़ी थर-थर काँपने लगी। दीदी अगर देख ले!

चाय पिये बिना ही बूढ़ी उठ खड़ी हुई। पैसे दिये। बाहर निकलकर फिर से बस पकड़ी। शायद दीदी अभी-अभी घर लौटेंगी!

□ □ □

केदार बाबू इसी तरह तख्तपोश पर पड़े हुए थे। सुबह शशिपद बाबू आकर देख गये हैं। लड़के के मास्टर हैं। लड़के के मास्टर हैं सिर्फ़ इसीलिए नहीं। दुनिया में कोई-कोई आदमी ऐसे भी होते हैं, जिन्हें सहानुभूति, प्रेम, स्नेह, श्रद्धा—सभी-कुछ मिलती है। लेकिन सिर्फ एक वही चीज़ नहीं मिलती जिससे उसका पेट भरता है। लोग उसे आश्रय देते हैं, उसकी मुश्किलों में, उसके दुःख में उसे देखते भी हैं, लेकिन उसका भार लेने से घबराते हैं।

जबकि केदार बाबू का इससे कुछ आता-जाता न था। उनके लिए तो सभी अपने थे। कोई पराया नहीं था। इसीलिए किसी के भी आगे हाथ फैलाने में उन्हें कोई भी हिचकिचाहट न थी। हिचकिचाहट थी शैल को। हर किसी से सहायता, जरूरी सहायता लेना भी उसे बुरा लगता था। काका क्या भिखमंगे है? आखिर किसी से क्यों माँगें? काका ने क्या जी-जान एक करके अपने छात्रों को नहीं पढ़ाया? फिर? फिर वह किसी के सामने हाथ फैलाने क्यों जाएँगे?

शैल एक-एक पैसे का हिसाब रखकर घर चलाती आयी है। होश आने के समय से ही देखती आयी है, जानती आयी है, सिर्फ़ अपने काका को। जबकि अपनी ही उम्र की दूसरी लड़कियों को उसने देखा है। फड़ेपुकुर स्ट्रीट के मकान की खिड़की से सड़क पर झाँककर देखती। नये-नये कपड़े और गहने पहने अड़ोस-पड़ोस की लड़कियाँ दोपहर के वक्त सिनेमा जा रही हैं। लेकिन उसका तो कोई भी साथी नहीं है। कोई भी सहेली नहीं है। काका तो उसके लिए वैसी साड़ी नहीं लाये। और लड़कियों की तरह किसी दिन उससे तो सिनेमा जाने के लिए नहीं कहा।

तब वह क्या अलग है?

इसी कलकत्ता में रहकर भी वह यहाँ से अलग है। काका ने तो हमेशा दूसरों की भलाई चाही है। काका तो सारे देश के लोगों का कल्याण, सुख-सुविधा सब-कुछ चाहते हैं। इतिहास के पन्नों में मनुष्य के आदि-इतिहास को खोजने की कोशिश की। जबकि खुद उन्हीं के घर में कोई [illegible] इन तमाम दुनियायी आराम और सुविधाओं से वंचित, अनजा[illegible]

और अवांछनीय जिन्दगी जी रहा है; उसकी ओर तो कभी नजर उठाकर देखा भी नही। या हो सकता है काका ने देखने की कोशिश ही न की हो। कौन जानता है।

काका का कहना था—अरे, विलासिता और ऐयाशी भी कोई चीज है ! यह ऐयाशी ही सारी बुराइयों की जड है। इसी की वजह से देश का यह हाल हुआ है।

जबकि पाप कौन नहीं कर रहा। गैर-कानूनी काम, फिजूलखर्ची, विलासिता, हर जगह तो पाप घुसा बैठा है। लेकिन उन्हे तो सजा नहीं भोगनी होती। बीमार होने पर उन्हे तो दवा मिलने में कोई तकलीफ नही होती। दूध, फल—सब-कुछ खरीदने को पैसा उन लोगों के पास होता है। काका ही क्यो नही खरीद पाते ? काका ने ही ऐसा कौन-सा पाप किया है ?

और देश का हाल अगर खराब है तो किधर से ? कोई भी तो आसार नजर नही आते। सब-कुछ मजे से ही तो चल रहा है। दवा लेने धर्मतल्ला भटकते समय उसने सब देखा है। चारों ओर चकाचौंध, हर ओर ऐश्वर्य और समृद्धि जैसे बिखरी पड़ रही थी। सडक पर बस और ट्रामों मे कही भी तो मुश्किल दिखलायी नही देती। सब-कुछ ही तो जैसे मजे में चल रहा है। बचपन में जो उसने कलकत्ता देखा था अब उसकी कितनी उन्नति हो गयी है। कितनी ही ऊँची-ऊँची इमारतें खडी हो गयी हैं। सड़क पर और नयी-नयी गाड़ियाँ दिखलायी देती हैं। इसमें पाप कहाँ है ? एक भी मकान तो जमीन में धँसा नही। किसी का घर भी उनकी तरह तबाह नही हुआ। इतने लोगो मे काका ने ही कौन पाप किये हैं ?

जिस समय सारे घर में कोई भी नही रहता था, जिस समय काका भी बुखार की बेहोशी मे पडे होते, जब मन्मथ भी नहीं होता, उसी समय दीप्ति जमीन-आसमान एक किया करती, न जाने कहाँ-कहाँ की बातें। फिर काका के लिए नारियल का पानी निकालकर रखती। कमरा साफ़ करती। किताबों को पहले की तरह करीने से लगाती। हमेशा की ही तरह गृहस्थी के छोटे-मोटे काम जैसे नशे की खुमारी में कर जाती। तभी दूधवाला आता, नल में पानी आता, दोपहर के गुमसुम कलकत्ता मे फिर से हलचल शुरू होती।

तभी चुपचाप मन्मथ आकर खड़ा होता।

मन्मथ डरता-डरता वही हमेशा का सवाल दोहराता, "मास्टर साहब का हाल आज कैसा है ?"

रोज वही एक सवाल, और रोज वही एक जवाब !

किसी-किसी दिन मन्मथ अचानक पूछ बैठता, "सदाव्रत क्या फिर आये थे ?"

यह बात जैसे शैल के कानों में ही नहीं जाती थी।

"उन्हें खबर दे आऊँ ?"

इस बात का भी शैल कोई जवाब नहीं देती।

किसी-किसी दिन मन्मथ कहता, "तुम्हारे लिए नहीं, मास्टर साहब के लिए कह रहा हूँ। तुम अगर एक बार आने को कहो तो फ़ौरन आयेंगे। तुम्हारी वजह से ही नहीं आ रहे।"

शैल के पास जैसे इस बात का भी कोई जवाब नहीं था।

बात घुमाकर सिर्फ़ इतना ही कहती, "टॉनिक खत्म हो गया है, लाना होगा।"

"ले आऊँगा।"

"और गोलियाँ भी आनी हैं।"

"कल सब ले आऊँगा। लेकिन मेरी बात का तो जवाब दो !"

बाद में कही बात का जवाब देना पड़ जाये, शायद इसीलिए शैल किसी बात का बहाना कर घर से निकल जाती।

इसी तरह चल रहा था। इसी तरह धीरे-धीरे केदार बाबू टूट रहे थे। कहीं भेजना भी बूते के बाहर की बात थी। इसका इलाज घर बैठे नहीं होता। होता है टी० बी० अस्पताल में। सैनेटोरियम में। डॉक्टर साहब बार-बार यही बात कह गये हैं। शशिपद बाबू का भी यही कहना है। लेकिन सिर्फ़ कहने से ही तो कुछ होता नहीं है। वहाँ अर्जी भेजनी होती है, फिर नियमानुसार वहाँ से बेड खाली न होने का जवाब आता है। यही है इंडिया का कानून। जैसे यहाँ बिना जान-पहचान के किसी को नौकरी मिलना मुश्किल है, हॉस्पिटल में भी ठीक उसी तरह बेड नहीं मिलता। मिलना ग़ैर-कानूनी है। कोशिश क्या हो नहीं रही है ? काफ़ी दिनों से हो रही है। लेकिन जिसकी कोशिश से अभी इसी वक़्त काम हो सकता है, वह है सदाव्रत। पॉलिटिकल सफरर शिवप्रसाद गुप्त का लड़का। और भी एक आदमी है, जिसके जबान हिलाते ही अभी-अभी बेड मिल सकता है।

शैल ने पूछा, "कौन ?"

मन्मथ ने कहा, "वह हैं मिस्टर घोष, जिनकी लड़की से सदाव्रत की शादी होनेवाली है।"

इस पर भी शैल के पास जवाब देने को कुछ नहीं था।

लेकिन शशिपद बाबू उस दिन कुछ जल्दी चले आये थे। मन्मथ भी आया। खबर बुरी ही थी। उन्होंने ऑफिस के थ्रू कोशिश की थी। ऑफिस के बड़े-बड़े मालिक लोग कोशिश करने पर असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं। किसी-किसी ने वायदा भी किया था। लेकिन इतना सब करने पर भी आखिर में कुछ नहीं हुआ। कारण, कलकत्ता में अस्पताल तो है कुल अदद एक और मरीज हर घर में है। इसलिए तीन-चार महीने से पहले बेड मिलने की कोई आशा नहीं है। तीन-चार महीने कैसे काम चले? तीन दिन ही काटना मुश्किल हो रहा है।

शशिपद बाबू ने कहा, "बेटी, तुम खुद भी काफी सँभलकर रहना। यह रोग बड़ा पाजी रोग है।"

शैल सिर नीचा किये सब-कुछ सुन रही थी। वैसे ही बोली, "तब काका का क्या होगा?"

"मैंने तो हर कोशिश करके देखा, बेटी। अब देखा जाये डॉक्टर साहब क्या करते हैं।"

शैल की नजरों के सामने जितनी रोशनी थी वह भी जैसे बुझ गयी। इसी एक आदमी पर शैल को भरोसा था। सारी दुनिया में शायद इसी एक आदमी को शैल इतने अरसे से श्रद्धा की नजरों से देखती आयी है। उन्होंने भी जैसे आज आखिरी जवाब दे दिया।

"आदमी सिर्फ कोशिश कर सकता है, बेटी! उससे ज्यादा कुछ करने की ताक़त आदमी में नहीं है। नहीं तो क्या बेड नहीं मिलता? अभी मिल सकता है। किसी बड़े आदमी की चिट मिलते ही अभी बेड मिल सकता है।"

शैल ने सिर ऊपर उठाया। पूछा, "बेड न होने पर कहाँ से देंगे?"

"भगवान जाने कहाँ से देंगे, लेकिन देंगे! तब फिर यह बात नहीं उठेगी कि बेड खाली नहीं है। बेड तब खाली कर दिया जायेगा, यही कानून है।"

डॉक्टर साहब आ पहुँचे थे। उस दिन भी उन्होंने अच्छी तरह से परीक्षा की। उन्होंने भी वही कहा।

बोले, "आज मैं खुद गया था। उनका रेकार्ड भी चेक किया। तीन-चार महीने से पहले किसी बेड के खाली होने का चान्स नजर नहीं आता।"

सब लोग शायद इसी का इन्तजार भी कर रहे थे। आखिरी आशा मिटाकर जैसे सबको निश्चिन्त करके चले गये। उनके जाने के साथ ही जैसे

आशा की कोई किरण बाकी नहीं रही। सोचने को भी कुछ बाकी नहीं बचा। वह जैसे उन सभी के मन की बची-खुची आशा को मिटाकर चले गये। शैल को लगा कि इतने दिन काका के लिए जो कुछ भी किया बेकार गया। सिर्फ़ पैसे की बरबादी हुई। और दिनों की तरह उस दिन शैल सुबह के वक़्त बाग़बाज़ार की गली के मोड़ पर खड़े-खड़े सारी दुनिया को धिक्कार देना भी भूल गयी। उसे लगा जैसे वह खुद भी इतने दिनों बाद खत्म हो रही है। उसके सचेतन मन में जो [illegible] के सिवाय और — [illegible] भी ज़र [illegible]

[illegible] एक चीज़। वह था उसका स्वाभिमान। [illegible] कुछ भी नहीं दिया। दी थी सिर्फ़ [illegible] शुरू की थी। लेकिन शायद उसकी क़िस्मत की ही खराबी थी कि वह स्वाभिमान ही जैसे आज अहंकार बनकर बाहर आया था। और अगर वह सचमुच अहंकार ही था तो उसे इस तरह छीन क्यों लिया? इसके बिना शैल के पास रहा ही क्या?

"मास्टर साहब!"

आवाज़ कान में जाते ही वह घर, वह गली, वह बाग़बाज़ार मुहल्ला —सबने जैसे पीछे मुड़कर देखा। इस घर में आकर इस तरह पुकारने पर जो आदमी सबसे ज्यादा खुश होता वह केदार बाबू ही सिर्फ़ चुपचाप, निस्पन्द पड़े रहे। उन्हें सबसे मीठी लगनेवाली आवाज़ आज उनके कानों में नहीं जा पायी।

मन्मथ और शैल दोनों ही आश्चर्य से एक-दूसरे की ओर ताकने लगे। बिना बुलाये भी जो आया है, आने के लिए मना करने पर भी जो आ खड़ा हुआ है, उसका स्वागत किया जाये या दुत्कारा जाये, उन लोगों की समझ में नहीं आ रहा था।

"मास्टर साहब का क्या हाल है?"

सब के सिर के ऊपर खड़े होकर अपने लम्बे-चौड़े शरीर से सदाव्रत ने यह प्रश्न नीचे की ओर फेंक दिया—इस सवाल का जवाब तुम लोगों को देना होगा। मेरी उपेक्षा करके तुम लोगों ने मेरे मास्टर साहब को ठीक करना चाहा था। अब कहो—वह ठीक हुए या नहीं! और अगर ठीक नहीं हुए हैं तो क्यों नहीं हुए? कैफ़ियत दो!

"क्या हुआ, कोई जवाब नहीं दे रहा?"

इसके बाद बिना किसी की ओर देखे सीधा अन्दर चला आया। केदार

बाबू जहाँ लेटे थे, उसी के पास जाकर खड़ा हो गया। पीछे-पीछे मन्मथ भी जाकर खड़ा हो गया। लेकिन सदाव्रत के मुँह से उस समय एक शब्द भी नहीं निकल रहा था।

काफी देर बाद सदाव्रत ने एक गहरी निःश्वास ली। फिर बगल में मन्मथ की ओर देखकर बोला, "मन्मथ, आखिरकार तुम लोगों ने इस आदमी को खत्म करके ही छोड़ा! तुम लोगों में क्या जरा-सी भी दया-माया नहीं है?"

मन्मथ बुत की तरह चुपचाप खड़ा था।

"रुपया-पैसा बहुतों के पास नहीं होता, लेकिन तुम लोग क्या हॉस्पिटल भेजने का इन्तजाम भी नहीं कर सकते थे? उसके लिए भी क्या रुपयों की जरूरत होती?"

मन्मथ ने कहा, "लेकिन पिताजी ने तो कितनी कोशिश की। बेड ही नहीं मिला।"

"तुम चुप रहो! बेड नहीं मिलता इसलिए क्या आदमी को मार डालोगे? तुम्हारा मतलब है, हॉस्पिटल में बेड नहीं है? ऐसा भी कहीं हो सकता है? तुम क्या यह भी यकीन करने को कहते हो?"

"सच, सदाव्रत दा! यकीन करो। हम सभी कोशिश करते-करते हार गये। पिताजी ने कोशिश की। डॉक्टर साहब ने कोशिश की। तीन महीने से पहले बेड खाली नहीं होगा। उन लोगों ने साफ-साफ़ कह दिया है।"

सदाव्रत ने उसी स्वर में कहा, "और तुम लोग उनकी बात का यकीन कर आराम से बैठे हो?"

फिर जरा रुककर कहा, "सुन लो, इसके बाद मास्टर साहब को कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो मैं तुम लोगों में से किसी को माफ़ नहीं करूँगा।"

"लेकिन, सदाव्रत दा!"

सदाव्रत ने मन्मथ को बीच में ही रोक दिया। "तुम चुप रहो! बात मत करो! अब जरा भी देर करना ठीक नहीं है। तुम नीचे की तरफ से पकड़ो, मैं सिरहाना पकड़ता हूँ। मेरी गाड़ी है। अभी हॉस्पिटल ले चलना होगा।"

मन्मथ फिर भी हिचकिचा रहा था। बोला, "रुको, सदाव्रत दा, जरा शैल से पूछ आऊँ!"

"नहीं, किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं है। जो कह रहा हूँ, करो!"

मन्मथ को फिर और कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। दोनों ने बीमार

केदार बाबू को लाकर सदाव्रत की गाड़ी में डाल दिया। मन्मथ भी गाड़ी में आ बैठा। सदाव्रत ने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

गली के नुक्कड़ पर खड़ी शैल को आज एक शब्द भी कहने का मौका नहीं मिला। जैसे सभी ने आज उसे नेगलेक्ट कर दिया था। सभी ने मिल-कर जैसे उसका अपमान किया था। काका के लिए उसकी आँखों में आँसू आ रहे थे। लेकिन अपमान की चोट से सब सूखकर रेगिस्तान हो गये।

आस-पास के मकानों से कितने ही किरायेदार ताक-झाँक कर रहे थे। गली के नुक्कड़ पर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। गाड़ी के चले जाने पर सभी शैल को दिलासा देने आये। लेकिन उसकी सूखी आँखों को देख सभी बिना कुछ कहे चलते बने।

मन्मथ जिस समय वापस आया, शाम हो चुकी थी। मन्मथ के आते ही शैल ने सिर उठाकर ताका। कमरा बड़ा सूना-सूना लग रहा था। एक आदमी के जाते ही जैसे सब-कुछ सूना हो गया था।

"शैल, एडमीशन हो गया। वे लोग तो भरती करने को राज़ी ही नहीं हो रहे थे!"

शैल की जबान पर तब भी कोई शब्द नहीं था।

मन्मथ कहे जा रहा था, "आखिर सदाव्रत दा ने काफी ज़ोर दिया। कहा, 'आप लोगों को लेना ही होगा। अभी अगर गवर्नर को टी० बी० हो जाय तो आप लोग कहाँ से बेड लायेंगे? अगर चीफ़ मिनिस्टर को टी० बी० हो जाये तब कहाँ से बेड लायेंगे? उनसे तो तीन महीने वेट करने को नहीं कह पायेंगे! उन्हें तो रिफ्यूज नहीं कर पायेंगे!' "

फिर ज़रा रुककर बोला, "इस पर भी क्या ले रहे थे? आखिर में सदाव्रत दा ने अपने पिताजी का नाम लिया। कहा, 'मैं शिवप्रसाद गुप्त का लड़का हूँ।' कहते ही जादू का-सा असर हुआ। बेड कहाँ था, किसे पता? उसी समय रुपये जमा हो गये। उसी समय टिकट भी मिल गया।"

"तब लौटने में इतनी देर क्यों लगी?"

मन्मथ ने कहा, "सदाव्रत दा ने उसी समय बाज़ार जाकर बिस्तरे की चादर, कम्बल, काँच का गिलास वगैरह कितनी ही चीज़ें खरीदीं। दवा का इन्तज़ाम भी कर दिया। डॉक्टर आया, उसे भी सब-कुछ बतलाया। इतनी-सी देर में सदाव्रत दा के करीब सात सौ रुपये खर्च हो गये।"

□ □ □
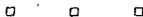
फाउण्डर्स-डे तो असल में एक बहाना था। लेकिन इसी बहाने मिस्टर

बोस स्टाफ के लिए हर साल कुछ रुपये खर्च करते। यह घूस है। इस घूस से मिस्टर बोस स्टाफ को खुश रखते। मिस्टर बोस की फैक्टरी में कभी जो स्ट्राइक नहीं होता, वह इसी वजह से। इसी मौके पर उन लोगों को बोनस भी मिलता। मन-माफिक खाने-पीने का इन्तज़ाम रहता। ड्रामा, स्पोर्ट्स, गाना-बजाना तो था ही। इसी दिन 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' के स्टाफ़ के साथ मिस्टर बोस सहृदयता के साथ मिलते।

इस बार फाउण्डर्स-डे और भी जोर-शोर से मनाया जानेवाला था। सच मायने में मिस्टर बोस इस बार खुले हाथ से खर्च कर रहे थे। ड्रामे के लिए हर बार स्टाफ को बारह सौ रुपये देते थे। इस बार अठारह सौ रुपये दिये हैं। इस बार कहा है—'खर्च की तुम लोग परवाह न करो, लेकिन प्ले अच्छा होना चाहिए।'

लम्बा-चौड़ा पण्डाल बना है। जो लोग खास अतिथि के रूप में आने-वाले हैं उनके लिए इन्तज़ाम भी खास हुआ है। उन सारे मेहमानों के लिए फैक्टरी के मीटिंग-रूम में अलग से इन्तज़ाम हुआ था। कॉकटेल, शैम्पेन, ह्विस्की—हर चीज का बन्दोबस्त था। खासकर गवर्नमेंट ऑफिसर्स के लिए। उन्हीं पर तो कम्पनी का भविष्य निर्भर है। यानी कि जिनके हाथ में परमिट है, जिनके हाथ में प्रोटेक्शन है। इंडिया के बाहर से अगर फैन आने लगें तो सुवेनीर-फैन की कीमत कम हो जायेगी। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' में ताला पड़ जायेगा। इससे इंडस्ट्री का नुकसान होगा। इसलिए मिस्टर बोस गवर्नमेंट ऑफिसरों को मुट्ठी में रखते हैं। खासकर जिस मिनिस्ट्री के हाथ में इंडस्ट्री का पोर्टफोलिओ होता है, उसके ऑफिसरों को।

शिवप्रसाद गुप्त इन्दौर से वापस आने के बाद घर होकर सीधे यहीं चले आये थे।

मन्दाकिनी की शायद आने की इच्छा थी। शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, तुम वहाँ जाकर क्या करोगी?"

अपनी ज़िन्दगी में मन्दाकिनी कभी भी घर के बाहर नहीं निकली थी। शिवप्रसाद बाबू की ज़िन्दगी में उनकी उन्नति के लिए अगर सच्ची सहायता किसी से मिली तो वह इसी मन्दाकिनी से। पति ने अपनी सारी ज़िन्दगी के दिन अपनी उन्नति और प्रतिष्ठा बढ़ाने के नशे में कहाँ-कहाँ बिताये, पता नहीं। लेकिन हर बार घर लौटने पर पाते, उनकी सहधर्मिणी उनके आराम और सुविधा का हर साधन जुटाये प्रतीक्षा में बैठी है। लेकिन पति की प्रतिष्ठा के साथ मन्दाकिनी में भी हिस्सा बँटाने की इच्छा हो

सकती है, शिवप्रसाद बाबू ने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की। कल्पना करने का समय ही उन्हें कहाँ मिला ?

आज मिस्टर बोस के यहाँ फाउण्डर्स-डे है। कल राजभवन में टी-पार्टी है। परसों एजूकेशन मिनिस्टर की लड़की की शादी है। इसके अगले दिन आसनसोल के आदिवासियों के उत्थान की सभा का सभापतित्व करना है। डायरी खोलने पर इसी तरह एक के बाद एक ऐन्गेज़मेंट लिखे हुए हैं। इससे उनका पीछा कौन छुड़ायेगा ? और वह पीछा छुड़ाने ही क्यों लगे ?

मिस्टर बोस की तेज़ नज़र हर ओर है। उनके हज़ारों आदमी हज़ार ओर मौजूद हैं। देखनेवाले लोगों की कमी नहीं है। लेकिन जो खास मेहमान की हैसियत से आये हैं, उनकी अगवानी खुद किये बिना काम नहीं चलता। एक बार अन्दर जाते हैं, जहाँ ड्रिन्क्स का इन्तज़ाम है उस कमरे में, फिर बाहर आते हैं, जहाँ खद्दरधारी स्वदेशी नेताओं की भीड़ जमा है। उधर स्टेज तैयार हो गयी है। जो लोग प्ले करेंगे वे इसके अन्दर मेकअप कर रहे हैं।

एक के बाद एक सभी तैयार हो गये।

ड्रामेटिक क्लब के सेक्रेटरी दुनि बाबू खुद ही डायरेक्टर भी हैं। प्ले का निर्देशन खुद ही करेंगे। अन्दर का काम निबटाकर बाहर आये। बिना मिस्टर बोस की परमिशन के प्ले शुरू नहीं होगा।

वेलफ़ेयर ऑफ़िसर ने पूछा, "क्यों दुनि बाबू, कितनी देर है ?"

दुनि बाबू ने कहा, "हम लोग तो सर, एकदम रेडी हैं। आपसे पूछने आया हूँ। शुरू करें या नहीं ?"

वेलफ़ेयर ऑफ़िसर स्टाफ का बेनिफिट देखते हैं। फिर भी हर काम में मिस्टर बोस की अनुमति लेनी होती है। बोले, "रुकिये, मिस्टर बोस से पूछ आऊँ।"

मिस्टर बोस उस समय बड़े बिज़ी थे। घर से मिसेज़ बोस आयी हैं। मिस बोस आयी है। मिसेज़ बोस ने लड़की की ओर देखा। बोली, "कितनी देर कर दी, फंक्शन कब शुरू होगा ?"

पेगी मंनिला की गोद में बैठा था।

"देखो न तुम पेगी को लाने के लिए मना कर रही थी। लेकिन देख लो कैसा चुपचाप बैठा है !"

मिस्टर बोस ने भी पेगी को यहाँ लाने के लिए मना किया था। आफ्टर ऑल पेगी इज़ ए डॉग। आज समाज के 'एलिट' लोग आयेंगे। गड़बड़ कर

सकता है। भूख-प्यास भी तो लग सकती है। कितनी ही सिली बातें कर सकता है। लेकिन मनिला राजी नहीं हुई।

"अरे मिस बोस, मिस्टर बोस कहाँ हैं ?"

वेलफेयर ऑफिसर ने अन्दर आकर चारों ओर देखा। मनिला ने कहा, "मिस्टर भादुड़ी, काइंडली एक गिलास पानी भिजवा दीजिये !"

वेलफेयर ऑफिसर मिस्टर भादुड़ी धन्य हो गये। जल्दी से खुद ही एक कोल्ड ड्रिन्क लेकर हाजिर हुए।

मनिला ने कहा, "कोल्ड ड्रिन्क तो कहा नहीं था—कहा था 'वाटर'। पेगी पियेगा। लेकिन देखिये, फ्रिज का पानी होना चाहिए। मेरा पेगी हॉट वाटर नहीं पीता।"

मिसेज़ बोस का मन आज ठीक नहीं था। सुबह-सुबह ही मिस्टर बोस के साथ झगड़ा हो गया था। वह तो आना ही नहीं चाहती थीं। मनिला ही जबरदस्ती ले आयी है।

मनिला ने कहा था, "माँ, गलती तुम्हारी ही है। तुम डैडी की बात क्यों नहीं मानती ? डैडी बार-बार तुमसे अपनी हैल्थ का खयाल रखने को कहते हैं।"

मिसेज़ बोस गुस्सा हो गयीं। "अपनी हैल्थ के बारे में मैं नहीं समझती ?"

"तब तुमने कोल्ड-बाथ क्यों ली ?"

"खूब लूँगी ! इस हॉट वेदर में कोई हॉट-बाथ ले सकता है ? मेरा कोई भी काम तुम्हारे डैडी को अच्छा नहीं लगता; जबकि यह फैक्टरी ही देखो—किसके लक से बनी है, पता है ? तुम्हारे डैडी के लक से ?"

सुबह भी इसी बात को लेकर खूब ज़ोर से झगड़ा हो गया था। बॉय, खानसामा और बावर्ची के सामने ही झगड़ा हो गया था। उन लोगों को मालूम है साहब और मेमसाहब के बीच यही स्वाभाविक है। कोई बहाना मिलना चाहिए। चाहे हॉट-बाथ हो, या कोल्ड-बाँथ; चिकन सैंडविच को लेकर नहीं तो टर्फ क्लब के घोड़े को लेकर ही सही। मिस्टर बोस जिस घोड़े पर बाज़ी लगाने को कहेंगे, मिसेज बोस उस घोड़े पर हरगिज बाज़ी नहीं लगायेंगी। मिस्टर बोस जो साड़ी खरीदकर लायेंगे, मिसेज़ बोस उसे कभी नहीं पहनेंगी। शादी के बाद से यही चल रहा है। क्यों चल रहा है, यह किसी की समझ में नहीं आता। मिसेज़ बोस का कहना है, उनकी वजह से ही मिस्टर बोस की इतनी उन्नति हुई है। शादी के समय मिस्टर बोस

इतने अमीर आदमी नही थे। बाद में बड़े आदमी हुए। लेकिन मिस्टर बोस यह बात नहीं मानते। उनका कहना है, "तुम्हारी माँ का दिमाग खराब हो गया है !"

मनिला कहती, "लेकिन डैडी, माँ को तुम इस तरह क्यो फटकारते हो ?"

"वाह, तुमने फटकारते हुए कब देखा ?"

यह भी शायद कोई अभिशाप है ! फैमिली की और कितनी ही बातो में मिस्टर बोस इस बात का भी कोई जवाब नहीं खोज पाते। 'लक' ने उनका काफ़ी फेवर किया है। वह एक साधारण आदमी थे। आज असाधारण है। मिस्टर बोस के नाम से आज राइटर्स बिल्डिंग में हलचल पैदा हो जाती है। मिस्टर बोस का नाम लेते ही आज हॉस्पिटल मे बेड मिल जाता है। मिस्टर बोस का नाम उठते ही दिल्ली के मिनिस्टर भी पार्लमेंट में बैठे-बैठे सोते से जाग उठते है। वे वेस्ट बंगाल इंडस्ट्री के एक बडे मेगनेट है।

'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के लिए आज का दिन स्मरणीय है। कम्पनी धीरे-धीरे ऊपर उठ रही है। और भी उठेगी। फिर भी इस दिन मन खराब रखना अच्छी बात नहीं है। अच्छी बात नहीं है, इसलिए मिस्टर बोस का मन भी खराब नहीं है। सभी के साथ खुश-खुश मुसकराते हुए बात कर रहे है। सभी का अभिवादन कर रहे है। इसके बाद शिवप्रसाद बाबू आयेगे, सदाव्रत आयेगा। दोनों ओर से पक्की बात होगी। आज ही पहली बार शिवप्रसाद बाबू मनिला को देखेंगे। वैसे देखना नॉमिनल ही होगा। इस देखने पर शादी का होना-न होना निर्भर नही करता। क्योकि सदाव्रत ने पहले ही नौकरी ऐक्सेप्ट कर ली है। दो हज़ार रुपये महीने की नौकरी लिये बैठा है। इस पर भी क्या शादी नहीं करूँगा, कह सकता है ?

यहाँ आते वक्त मिस्टर बोस ने कहा था, "मनिला, तुम कही पेगी को यहाँ पर न ले आना !"

लेकिन साथ लायेगी, इसीलिए तो सुबह से पेगी की तैयारियाँ हो रही है। सारे दिन साबुन और पाउडर लगाकर उसे तैयार किया गया है। बिना लाये काम कैसे चलेगा ?

मनिला ने कहा, "बिना ले जाये पेगी को पता कैसे चलेगा ?"

"किस बात का ?"

"मिस्टर गुप्त कैसे आदमी हैं ! पेगी की भी तो आखिर कुछ पसन्द-नापसन्द है, डैडी। पुअर डॉग है, इसलिए सोचते हो उसके बुद्धि नहीं है ?"

"लेकिन पेगी को अगर सदाव्रत पसन्द न आये ?"

"पेगी को पसन्द न आने पर मैं कर ही क्या सकता हूँ ?"

"इसका मतलब है पेगी ही तुम्हारे लिए बड़ा है ?"

"डोन्ट बी सिली, डैडी ! तुम क्या कह रहे हो ? बेचारा बोल नहीं सकता इसी से, सुन तो सकता है। मेरी और तुम्हारी तरह उसके भी तो कान है।"

इसके बाद मिस्टर बोस ने और कुछ नहीं कहा।

बाद में मनिला जूडा बँधवाने गाड़ी लेकर पार्क स्ट्रीट गयी। पहले स्काई-स्क्रेप जूड़े की बनवायी पचास रुपये थी। लेकिन आजकल हर चीज की क़ीमत बढ गयी है। हेयर-लोशन, हेयर-क्रीम—सब-कुछ कोस्टली हो गया है। बालो के दाम भी बढ़ गये हैं। नाइलॉन के बाल मध्यम श्रेणी की औरतें लगाती हैं। वह डेमोक्रेटिक है। मनिला असल आदमियों के बालों का ही जूड़ा बँधवाती है। उससे सिर अच्छा रहता है। बाल भी ठीक रहते हैं। आज पिचहत्तर रुपये चार्ज किये थे।

वहाँ से घर लौटकर ज़रा स्पंज-बाथ लेकर ही यहाँ चली आयी है। माँ भी साथ ही आयी हैं। यहाँ आने का उनको अधिकार है। वे दोनों यहाँ गेस्ट नही हैं, होस्ट है। निमन्त्रित नही हैं, निमन्त्रणकारी है। इसीलिए वे लोग सबसे पहले आकर एअर-कंडीशन्ड चैम्बर में बैठ गयी।

मिस्टर भादुडी हाथ मे ट्रे लिये फ्रिज-वाटर ले आये।

"अरे, आप खुद क्यों लाये, मिस्टर भादुड़ी ?" कहकर मनिला ने गिलास लेकर पेगी को पानी पिलाना शुरू कर दिया।

मिसेज़ बोस ने कहा, "मिस्टर बोस उस तरफ क्या कर रहे हैं, मिस्टर भादुड़ी ?"

मिस्टर भादुडी बोले, "मै उन्ही को तो ढूँढ रहा हूँ।"

मिसेज़ बोस—"आप लोगो के मिस्टर बोस को ज़रा भी पंक्चुएलिटी का सेंस नही है। हम लोग कब से बैठे है और आप लोग ही क्या कर रहे है ? इतनी बड़ी फैक्टरी है, कितना बजा, कुछ होश है ?"

कहकर रिस्टवाच मिस्टर भादुडी की ओर कर दी।

"मैं देखता हूँ," कहकर मिस्टर भादुडी ने गिलास लिये बाहर भागकर जान बचायी।

लेकिन बाहर भी मिस्टर बोस का पता नही लगा। आज उनका मिलना मुश्किल है। सभी मिस्टर बोस को खोज रहे थे। वह यहाँ के सर्वेसर्वा हैं।

शिवप्रसाद गुप्त के आते ही उन्होंने जा पकड़ा। कुंज ने गाड़ी बैक करके लाइन में पार्क कर दी।

"आइये-आइये, सदाव्रत कहाँ है ?"

"क्यों ? वह तो सुबह का निकला है। यहाँ आया नही ?"

"नही तो ! ···और मिसेज गुप्त ? वह नही आयी ?"

"उनकी बात छोड़िये। वह कहीं भी नही जाती।"

मिस्टर बोस सोच मे पड़ गये, "लेकिन सदाव्रत क्यो नही आया ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "आ जायेगा, शायद कही चला गया होगा।"

"लेकिन आज फाउण्डर्स-डे है. सभी आ गये है। मिसेज बोस आ गयी है, मनिला आ गयी है। वे लोग सदाव्रत की राह देख रहे हैं। आज के दिन भी क्या देरी करनी चाहिए ?"

शामियाने में स्टेज के सामने लाइन-की-लाइन कुर्सियाँ लगी थी। पहली कतार में अच्छी कुर्सियाँ थी। नामी आदमियों के लिए दामी कुर्सियाँ। वहाँ स्टाफ़ का कोई भी नही बैठ सकता। सारी कुर्सियाँ पैट्रन्स के लिए है। पैट्रन्स के बैठ जाने के बाद अगर जगह बचे तो तुम लोग बैठना। तुम लोग हमारी बराबरी करने की कोशिश मत करो। सब आदमी एक-जैसे नही हो सकते। होना भी नही चाहिए। यह लाइन है। इस लाइन के उस ओर तुम लोग रहोगे, और इस ओर हम लोग रहेंगे। उस ओर तुम लोगों की बिरादरी होगी और इस ओर हम लोगों की।

शिवप्रसाद गुप्त बीच की कुर्सी पर बैठे। बगल में बैठे मि० बोस। बाद मे एक-एक कर सभी आ पहुंचे। सीटों पर सभी के नाम लिखे थे। मि० सान्याल, मिस्टर आहूजा, मिस्टर भोपत्कर, और भी कितने ही। कोई परमिट तो कोई लाइसेंस की, एक ही कड़ी में सब-के-सब बँधे हैं। यह बाहर से पता लगाना मुश्किल था। सब-के-सब सूट-बूट और टाई पहने बैठे थे। सिर्फ़ शिवप्रसाद बाबू खद्दर पहने थे। उन्होंने कहा, "अभी देरी होगी क्या, मिस्टर बोस ?"

"क्यो ? आपको कोई काम है क्या ?"

"नही, फिर मेरा पूजा का समय हो जायेगा न, ज्यादा देर होने पर..."

मिसेज बोस आ पहुंची। उनके लिए नाम लिखी सीट थी। वहीं उनको बिठला दिया गया। उनके आते ही सब उठ खड़े हुए। नमस्कार किया। उनके बैठने पर सभी बैठ गये। पीछे-पीछे मनिला भी आ रही थी। उसकी गोद में पेगी था। मनिला भी बैठ गयी।

मिस्टर बोस ने परिचय करा दिया, "आप ही हैं मिस्टर गुप्त और मिसेज बोस, और मेरी लड़की मिस बोस !"

पेगी को शायद शिवप्रसाद गुप्त पसन्द नहीं आये। चारों ओर सूट-बूट-धारियों के बीच इस खद्दरधारी को बैठा देख जैसे वह डर ही गया। शिवप्रसाद गुप्त को देखते ही मनिला की गोद में बैठे-बैठे ही गुर्राने लगा।

"डोन्ट बी सिली, पेगी !" कहकर महिला ने उसके सिर पर चपत लगायी।

इसके बाद मिस्टर गुप्त की ओर देखकर मनिला ने पूछा, "पेगी ने धोती-कुर्ता पहने कभी किसी को देखा नहीं है न, इसी से ऐसा कर रहा है। आपकी मिसेज क्यों नहीं आयी, मिस्टर गुप्त ?"

मिस्टर भादुड़ी ने मिस्टर बोस के पास आकर पूछा, "हम लोग अब प्ले शुरू कर सकते हैं न, सर ?"

मिस्टर बोस ने चारों ओर देखा।

"लेकिन परचेजिंग ऑफिसर मिस्टर गुप्त को क्या हो गया, अभी तक नहीं आया ! क्यों मिस्टर गुप्त, सदाव्रत तो अभी तक नहीं आया ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "शुरू कर दो, ही मे बी लेट !"

सारी बत्तियाँ बुझा दी गयीं। सिर्फ स्टेज की फुट-लाइट जल रही थीं। और उसके बाद ही 'टन' से घंटे की आवाज हुई। मिसेज बोस चुप हो गयीं। मनिला बोस ने गोद में पेगी को और भी जोर से चिपका लिया। मिस्टर भोपटकर ने एक चुरुट सुलगा ली। ह्विस्की के बाद स्मोकिंग का अपना अलग मजा है। शिवप्रसाद गुप्त ने बायें हाथ से खद्दर की चादर कन्धे पर सरकायी। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' का काफी रुपया खर्च हुआ है। इस एक दिन को सफल बनाने के लिए कितनों ही के कितने ही घंटे खराब हुए हैं। मिसेज बोस बोर हो रही हैं, मिस बोस भी आज क्लब नहीं जा पायीं। पेगी को भी इतनी भीड़ में कुछ अच्छा नहीं लग रहा।

धीरे-धीरे परदा उठने लगा। स्टेज के अन्दर का पूरा दृश्य अब दिखलायी दे रहा था। सामने ही नदी थी। उस नदी के पीछे आकाश में लाल सूरज उग रहा था। पौ फटने का दृश्य था। ज़रा और रोशनी होने पर दिखलायी दिया, स्टेज के एक कोने में कर्नाटक की राजकुमारी लाजवन्ती सूरज की ओर हाथ जोड़े प्रार्थना कर रही है। स्टेज के ऊपर से चेहरे के प्रोफाइल पर फोकस पड़ रहा था। लाजवन्ती संस्कृत-श्लोकों का पाठ करने लगी। पीछे से बैक-ग्राउण्ड म्युजिक सुनायी दे रहा था। वॉयलिन, जौन-

पुरी के परदे छूकर काफ़ी देर से सैंड-इफेक्ट लाने की कोशिश कर रहा था।

जवाकुसुमसंकाशम काश्यपेयम् महाद्युतिम्'''

अँधेरे में अचानक खस-खस की-सी आवाज हुई। मिस्टर बोस ने झुंझलाकर पीछे देखा, ह्वाई नॉयेज देयर ? बाद में सदाव्रत को देख पाये। सदाव्रत चुपचाप ही आ रहा था। उसके लिए रिजर्व सीट पर बैठना था। ऐसा ही इन्तजाम था।

मनिला ने भी देख लिया। सदाव्रत को देखते ही मोतियों-से दाँत निकालकर मुसकरायी।

"दिस इज़ माई पेगी !"

सदाव्रत ने शायद प्यार करने के लिए हाथ बढ़ाया। लेकिन सदाव्रत को देखते ही पेगी नाराज हो गया, "भौं-भौं !"

मनिला बोस ने पेगी के एक चपत जमायी, "डोन्ट बी सिली, पेगी ! बिहेव प्रॉपरली !"

सदाव्रत ने डरकर हाथ खींच लिया। "काटेगा क्या ?"

धवान्तारिम् सर्वपापघ्नम् प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्'''

□ □ □

ग्रीनरूम के अन्दर दुनि बाबू को ही सबसे ज्यादा चिन्ता लगी थी। वेलफ़ेयर ऑफिसर मिस्टर भादुड़ी तो कहकर चलते बने। हर महीने डेढ़ हज़ार रुपये गिनने से ही उनका काम चल जाएगा। लेकिन बदनामी होगी तो दुनि बाबू की ही होगी। नाटक भी नया है। एक्टर भी सब नये है। पूरे एक महीने से रोज रिहर्सल चल रहा है। फिर आजकल के आर्टिस्टों का जो हाल हो गया है—बात-बात में दिमाग। कुछ-न-कुछ लगा ही रहता। तीन फीमेल-आर्टिस्टों के साथ इतने दिन काम चलाया है। उन लोगों को रोज गाड़ी से लाना हुआ, फिर रिहर्सल पूरा होने पर गाड़ी से ही घर पहुँचाना होता। इसके अलावा मिनट-मिनट में चाय। आर्टिस्ट हो या कुछ भी हो, असल में तो लड़की छोड़कर कुछ भी नहीं है। फिर भी वह दुनि बाबू का ही बूता है कि सँभाले रहे। और कोई होता तो धोती छोड़कर भाग जाता।

सारी मुश्किल कुन्ती गुहा को लेकर ही थी। उसकी वजह से डर भी था। लड़की पार्ट अच्छा करती है, इसीलिए इतनी खुशामद करनी होती है। दुधारू गाय की लात खानी ही पड़ती है ! और जब मिस्टर भादुड़ी की निगाह में चढ़ गयी, फिर तो बिना खुशामद किये कोई चारा ही नहीं था। कुछ ही दिन बाद प्रमोशन का चान्स है, रुक जायेगा। सुबह उठते ही दुनि

बाबू कालीघाट जाकर पूजा चढ़ा आये थे। उसकी पूजा का प्रसाद लाकर सबको खिलाया। पत्ते में सिन्दूर लाये, वह भी सबके माथे पर लगाया।

दुनि बाबू ने पहले दिन बार-बार कह दिया था, "कुन्तीदेवी, ठीक वक्त से आइयेगा।"

सिर्फ़ कुन्ती गुहा से ही नहीं; वन्दना, श्यामली सभी से एक ही अनुरोध किया था। पहले सीन में ही कुन्ती की ऐपियरेन्स थी। जरा भी देर होने से सब गुड़ गोबर हो जायेगा।

"आप जिस समय गाड़ी भेजेंगे, हम लोग आ जायेंगे, हम लोगों को क्या है? हम लोगों का तो यही पेशा है, दुनि बाबू!"

तो गाड़ी ठीक वक्त पर ही पहुँच गयी थी। ठीक समय पर ही सब लोगों ने आकर मेकअप कराया। ठीक वक्त पर ही सब तैयार थी। शाम के छः बजे, साढ़े छः बजे। मेकअप कम्प्लीट था। फिर भी ड्रॉप उठ नहीं रहा था। शुरू होने का नाम ही नहीं।

"क्यों दुनि बाबू, इतनी देर क्यों?"

दुनि बाबू भी तैयार थे। बोले, "बस जरा-सी देर होगी, मिस बोस अभी तक नहीं आयी है।"

थोड़ी देर बाद फिर वही तगादा।

"जरा देर और। मिस्टर भोपत्कर अभी तक नहीं आ पाये है।"

धीरे-धीरे खबर आयी, सभी आ पहुचे हैं। मिसेज बोस आयी है, मिस बोस आ गयी हैं। मिस्टर भोपत्कर आये है। मिस्टर बोस के और भी कितने ही दोस्त आ गये। आखिर मे खबर आयी शिवप्रसाद गुप्त भी आ गये हैं।

"कौन आया?"

"शिवप्रसाद गुप्त को नहीं जानती? पॉलिटिकल सफरर, जिनका लड़का सदाव्रत गुप्त है···अपना परचेजिंग ऑफिसर।"

कुन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। आज उसे लाजवन्ती का पार्ट करना होगा। सिर पर कानड़ा स्टाइल का जूड़ा बँधवाया है। चेहरे पर मैक्स फैक्टर लगाया है। सारे बदन पर फूलों का शृंगार है। जूड़े में भी फूल लगाये हैं। फूलों के गजरे, फूलों के गहने। मेकअप किये बैठी-बैठी पसीने में नहा रही थी।

दुनि बाबू तब भी दौड़-धूप कर रहे थे। वेलफ़ेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी की आज्ञा के बिना प्ले शुरू नहीं होगा।

"क्या हुआ, दुनि बाबू, और कितनी देर लगेगी ?"

"बस, ऑडिटोरियम में सभी आ गये हैं। मिसेज बोस, मिस बोस, सभी आ गये है।"

कुन्ती ने कहा, "आप लोग तो मिस्टर बोस के यहाँ नौकरी करते है, हम लोगों को भी क्या वही समझ रखा है ?"

आस-पास मे जो लोग थे, उनके कान मे भी बात गयी। सभी के कान मे खट से जाकर लगी। लेकिन दुनि बाबू ने ही बात सम्हाल ली। बोले, "आप तो जानती ही हैं, ऑफिस का ड्रामा है। मेरी अपनी कोई वॉयस नही है। मालिक जो कहेगा वही करना होगा।"

"लेकिन मालिक की बीबी, मालिक की लड़की, मालिक की लड़की का कुत्ता भी क्या आप लोगों का मालिक है ?"

दुनि बाबू हँस पड़े। इस बात के जवाब मे बिना हँसे चारा ही क्या था!

कुन्ती मुहा और भी गम्भीर हो गयी। "आप लोग अपने मालिक के कुत्ते की भी खातिरदारी कर सकते है। लेकिन हम लोगों का काम तो वैसा करने से नही चलेगा। हमें तो मेहनत करके खाना होता है। बिना मेहनत किये हमें कोई भी पैसा नहीं देगा। आप लोगो ने क्या हमें सूरत देखने को बुलाया है ? बोलिये, सूरत देखने को बुलाया है ? आज अगर स्टेज पर जाकर खराब एक्टिंग करूँ तो क्या आप फिर किसी दिन मुझे बुलायेंगे ?"

वन्दना, श्यामली वगैरह भी जैसे जरा झेंप गयी। इस तरह तीखी-तीखी बातें कहना ठीक नहीं है।

वन्दना ने पूछा, "आप लोगो के बड़े साहब की लड़की नाटक देखने आयी है, तो साथ मे कुत्ता क्यों लायी है ?"

दुनि बाबू ने कहा, "बहुत प्यार करती है न !"

"तो अपने घर के अन्दर प्यार जतलाये ! यहाँ सबको दिखलाने की क्या जरूरत है ?"

श्यामली ने कहा, "कितना अच्छा जूड़ा बँधवाया है, देखा ! बनवाई कितनी पड़ी होगी ?"

किसी को नही पता, कितना पैसा लगा। फिर भी वन्दना और श्यामली को उसी को लेकर बात करना अच्छा लग रहा था। सिर्फ जूड़ा ही नहीं, सिर्फ कुत्ता ही नही। विंग्स के बाहर वे झाँककर देख आयी थी। आगे-पीछे, हर ओर से अच्छी तरह देख आयी थीं। कौन-सी साड़ी पहनी है, कौन-सा गहना पहना है, कौन-सी लिपस्टिक लगायी है, भौंहे कैसे रग

रखी हैं, अँगुलियों के नाखून कैसे बना रखे हैं, किस शेड का क्यूटेक्स लगाया है। सब-कुछ खड़े-खड़े चुपके से देख आयी है। कोई आदमी भी किसी लड़की की ओर इस तरह नजर गड़ाकर नहीं देखता। देख रही हैं, और मन-ही-मन तारीफ कर रही हैं—वाह !

सचमुच मनिला बहुत सुन्दर लग रही थी, जैसे मोम की गुड़िया हो।

"और जिनके साथ शादी होगी वह नही आये ? वह कैसे लगते हैं ?"

दुनि बाबू ने कहा, "वही तो अपने परचेजिंग ऑफ़िसर मिस्टर गुप्त हैं। अभी वह भी नहीं आये हैं। मिस बोस के पास उनकी जगह अभी तक खाली पड़ी है। वह आकर वहीं बैठेंगे। मिस्टर गुप्त के पिता आ गये है, शिवप्रसाद गुप्त---पॉलिटिकल सफरर।"

"कौन-से हैं ?" वन्दना और श्यामली दोनों ने एक साथ पूछा।

"वह बैठे हैं न ! खद्दर पहने। कन्धे पर चादर पड़ी है। बड़े अपराइट आदमी हैं। चाहते तो कांग्रेस में घुस सकते थे। घुसकर शायद अब तक यूनियन मिनिस्टर बन गये होते। लेकिन उस सब झंझट में नहीं पड़ना चाहते। इसलिए अभी तक सोशल वर्क कर रहे है।"

दुनि बाबू इस तरह समझा रहे थे। अचानक पीछे से वेलफेयर ऑफिसर मिस्टर भादुड़ी ने आकर कहा, "दुनि बाबू !"

'यस, सर !"

दुनि बाबू के नजदीक आते ही मिस्टर भादुड़ी ने कहा, "स्टार्ट ! स्टार्ट नाऊ ! मिस्टर गुप्त आ गये हैं।"

इतनी देर से सब लोग इसी बात की राह देख रहे थे। ऑर्डर मिलते ही दुनि बाबू ने घंटी बजाने को कहा। हाथ की ह्विसिल ज़ोर से बजा दी। उधर से शिफ़्टर ने कर्टेन उठा दिया। साथ-ही-साथ फ़ोकस पड़ने लगा।

और लाजवन्ती तैयार ही थी। फर्स्ट एपियरेन्स उसी की थी।

सामने नदी बह रही थी। पूर्व के आसमान में लाल-लाल सूरज उग रहा था। पीछे से जौनपुरी के परदों को छूती वॉयलिन की आवाज़ सैंड-इफेक्ट लाने की कोशिश कर रही थी।

जवाकुसुमसंकाशम् काश्यपेयम् महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिम् सर्वपापघ्नम् प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।

◻ ◻ ◻

नाटक का नाम 'कर्नाटक राजकुमारी' था। दुनि बाबू लोहे-लक्कड़ का काम करते हैं तो क्या हुआ, मर-पचकर एक नाटक लिख ही डाला। लेकिन

वह नाटक इतना अच्छा बन जायेगा, यह उन्होंने कभी नहीं सोचा था। सब मिलाकर पाँच बार क्लैपिंग हुई थी। रात के साढ़े दस बजे प्ले खतम हुआ। लाजवन्ती का पार्ट ही सबसे अच्छा हुआ था। जैसी डिलिवरी, वैसा ही ऐक्शन, वैसा ही पास्चर।

कुन्ती का बदन जैसे थककर चूर हो। जैसे और खड़ी भी नहीं रह पा रही थी। बहुत रोयी, बहुत हँसी, उसे बेहद मेहनत करनी पड़ी थी।

लड़कियाँ जा ही रही थीं। मेकअप साफ़ कर कुन्ती वगैरह निकलने ही वाली थी। अचानक दुनि बाबू दौड़ते-दौड़ते आये।

"रुकिये, कुन्ती देवी, आपके लिए एक मैडल एनाउन्स हुआ है।"

कहकर दुनि बाबू ने खड़े रहने का मौका भी नहीं दिया। एकदम स्टेज पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

फिर से कर्टेन उठा। वेलफेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी ने माइक्रोफ़ोन के सामने खड़े होकर घोषणा की—"आज के श्रद्धेय अतिथि श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त 'कर्नाटक राजकुमारी' का अभिनय देखकर खुश होकर लाजवन्ती की भूमिका के लिए काम करनेवाली अभिनेत्री कुन्ती गुहा को एक स्वर्ण मैडल देने की घोषणा करते हैं।"

एक बार बँगला, फिर अंग्रेज़ी में घोषणा करते ही सारा ऑडिटोरियम तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

कुन्ती अब तक समझ नहीं पायी थी। लेकिन शिवप्रसाद गुप्त का नाम कान में आते ही जैसे करेन्ट लग गया। तभी नज़र आया, सामने ही सदाव्रत बैठा है और उसके पास की सीट पर बड़ा-सा जूड़ा बाँधे मनिला बोस बैठी थी। उसकी गोद में कुत्ता था। सदाव्रत उस कुत्ते को पुचकारने की कोशिश कर रहा था। मनिला बोस के मोम-जैसे सफ़ेद चेहरे पर जैसे कोढ़ हो गया था। सफ़ेद कोढ। कुन्ती को लग रहा था कि कोलतार लेकर उसका चेहरा पोत डालने पर ही जैसे उसके मन की आग बुझेगी। ये बाप-बेटे और बहू मिलकर आराम से रहेंगे। उन्हें सज़ा देनेवाला कोई नहीं है। उन लोगों के सारे पापों की सज़ा भोगने के लिए ही जैसे कुन्ती, वन्दना और श्यामली वगैरह का जन्म हुआ है···

अचानक माइक्रोफोन के सामने खड़ी होकर कुन्ती गला फाड़कर चिल्लाने लगी, "यह मैडल लेना मैं अस्वीकार करती हूँ। जिस प्रकार शिवप्रसाद गुप्त को मैडल देने का हक है, मुझे भी उसे अस्वीकार करने का हक है। जिसने मेरे बाप का खून किया है, उससे मैडल लेते हुए मुझे घृणा होती

है। मुझे खूनी से घृणा है! खूनी के मैंडल से भी घृणा है!"

□ □ □

बहुत रात गये बूड़ी की नींद टूट गयी। हड़बड़ाती हुई बिस्तर से उठ खड़ी हुई। दीदी तब भी दरवाज़ा खटखटा रही थी।

"क्यों री? सो गयी थी क्या?"

दूसरे दिनों जब दीदी घर लौटती तो उसका चेहरा न जाने कैसा गम्भीर-गम्भीर-सा दिखाई देता। दीदी की ओर ताकते भी डर लगता। रात-दिन जितनी देर भी कुन्ती सामने रहती, सिर्फ़ डाँटती। खाली मन लगाकर पढ़ने का उपदेश देती।

जन्म से ही बूड़ी सिर्फ़ गरीबी और अभाव ही देखती आयी है। कुन्ती की तरह सिर्फ ऐश्वर्य के आस-पास घूमती रही है। ऐश्वर्य का स्पर्श पाकर धन्य होने का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ। देखा है कलकत्ता इतना बड़ा शहर है। यहाँ इतने बड़े-बड़े मकान हैं। मकानों के अन्दर के ऐश्वर्य का आभास ज़रा-ज़रा खिड़की और जंगलों से लग जाता। लेकिन कभी भी अन्दर जाने का अधिकार नहीं मिला। कभी पाने की आशा भी नहीं की।

इसीलिए कुन्ती बार-बार उपदेश देती—"अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई करने से तेरी भी अच्छी जगह शादी होगी। तब तेरे पास भी मकान होगा, गाड़ी होगी।"

लेकिन बूड़ी ने अपना दिमाग़ लगाकर देखा कि उसकी टीचर्स, जो उसे स्कूल में पढ़ाती है, जो मास्टरनी चालीस रुपये महीना लेकर उसे रोज़ पढ़ाने आती है, उसकी गाड़ी भी नहीं है, मकान भी नहीं है। कितनी ही की तो शादी भी नहीं हुई है, जब कि सभी एम० ए० या बी० ए० पास हैं। सारी टीचर्स ग़रीब हैं। रुपये के लिए पढ़ाने आती हैं। तब लिख-पढ़कर क्या हुआ? इतनी मेहनत से पढ़ाई-लिखाई करने के बाद अगर स्कूल में मास्टरी ही करनी है तो लिखने-पढ़ने की जरूरत ही क्या है? दीदी भी तो पढ़ी-लिखी नहीं है। दीदी तो उसकी किताबें पढ़कर भी कुछ नहीं समझ पाती। तब दीदी इतना पैसा कैसे कमाती है? किस तरह वह उसके लिए चालीस रुपया महीने की मास्टरनी रखती हैं? बिना लिखे-पढ़े भी तो दीदी काफी रुपया कमा लेती हैं। उनके घर का किराया, खाने-पीने का खर्च, कितना सब है। उसकी बीमारी के समय हॉस्पिटल में ही तो पाँच सौ रुपये खर्च हो गये थे। वह सब पैसा कहाँ से आया?

अन्दर आकर दीदी हठात् जैसे बड़ा अच्छा बर्ताव करने लगी।

"क्यों री, खाना खाया ?"

दीदी इस तरह से कभी नहीं बात करती। दीदी को शायद काफ़ी मेहनत करनी पड़ी थी। चेहरे और गालों पर तब भी ज़रा-ज़रा रंग लगा था। दीदी ने धीरे-धीरे सिर का फॉल्स जूड़ा खोल डाला। दीदी के सिर में पहले काफ़ी बाल थे। अब इन बालों से पूरा नहीं पड़ता। अब दूकान से नाइलॉन के बाल लाकर उसका जूड़ा बनाना पड़ता है। दीदी का चेहरा पहले से काफी सूखा-सूखा लगता है। बूड़ी दीदी की ओर देखने लगी।

"तू सो न ! तू क्यों जागी बैठी है ?"

साड़ी-ब्लाउज़ बदलकर खाने बैठते समय फिर बूड़ी के पास आयी।

"आज तेरी मास्टरनी आयी थी ?"

"हाँ।"

"पढ़ा ?"

"हाँ, पढ़ा। भूगोल और सवाल किये।"

"लेकिन अच्छी तरह से ? अंग्रेज़ी क्यों नहीं पढती? अंग्रेज़ी ही असली चीज़ है, पता है ! मैं अगर ज़रा अच्छी अंग्रेज़ी बोल पाती तो और भी कितने ही रुपये कमा लेती। तुझे इतना क्यों पढा रही हूँ ? तेरे लिए कितने रुपये खर्च कर रही हूँ, देखती है न ! तू बड़ी होकर जिसमें मेरी तरह मुश्किल में नहीं पड़े, इसीलिए। खूब अच्छी तरह से पढ़ना।"

बूड़ी ने कहा, "मैं तो अच्छी तरह से पढ़ती हूँ।"

कुन्ती ने फिर कहा, "खराब लड़कियों के साथ एकदम मेल-जोल मत रखो। बस और ट्रामों में कितनी ही खराब-खराब लड़कियाँ फिरती हैं। उनकी बातें ज़रा भी न सुनना, समझी ? कलकत्ता बड़ी खराब जगह है, री। पहले इतना खराब नहीं था। जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे हैं उतना ही खराब हो रहा है। हर कोई सिर्फ़ पैसे के लिए मर रहा है।"

"लेकिन, दीदी !"

"क्या कह रही थी ? कह !"

"मेरी सभी मास्टरनियाँ पढ़ी-लिखी हैं। बी० ए०, एम० ए० पास किया है ! उनके पास तो रुपया नहीं है ! वे लोग भी खूब ग़रीब हैं।"

कुन्ती इस बात का क्या उत्तर दे, ठीक नहीं कर पा रही थी। फिर अचानक जो कभी नहीं किया वही कर बैठी। बूड़ी को दोनों हाथों से भ लिया। फिर बूड़ी का माथा अपनी छाती के पास लगाकर ज़ोर से लिया। बूड़ी दीदी से अचानक इतना स्नेह और दुलार पाकर भी

गयी। इस तरह तो दीदी ने कभी भी प्यार नही किया। आज दीदी को अचानक क्या हो गया।

दीदी कहने लगी, "अरी, देखती हूँ, तू भी मेरी ही तरह है। तू भी, देखती हूँ, पैसे से ही सब-कुछ नापती है। पता है कलकत्ता में कितने बड़े-बड़े लोग है। रुपयो के पहाड पर बैठे हैं। फिर भी जो हाल हमारा है, वही हाल उनका भी है। वे लोग वैसे बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं। और हम किराये के मकान में रहते है। लेकिन सच मायनों में फर्क कुछ भी नहीं है।"

वूड़ी के लिए जैसे ये सारी बातें नयी थी। ये बातें पहले किसी से भी नही सुनी थी। अगर पैसा ही उद्देश्य नही है तो इतनी मेहनत करके रुपया कमाने की क्या जरूरत है?

कुन्ती ने कहा, "बडो होकर समझ पायेगी, तुझे क्यों इतना पढ़ा-लिखा रही हूँ। तब समझेगी कि हम लोग क्यो गरीब हैं और अमीर लोग क्यो अमीर हैं। दुनिया मे अगर गरीब लोग नही होंगे तो बड़े आदमी किस पर हुक्म चलायेंगे? घर मे किसे नौकर रखेंगे? उनके बर्तन कौन माँजेगा? खाना कौन पकायेगा? घर की सफाई कौन करेगा?"

"लेकिन तब तो तुम भी अमीर हो। दीदी, तुम भी तो बिना पढ़े-लिखे इतना पैसा कमाती हो!"

"चल, पगली! मैं कमाती ही कितना हूँ। दिन-रात खून-पसीना एक करने के बाद कही जाकर घर का खर्च निकाल पाती हूँ। तेरे स्कूल की फीस, मास्टर की फीस, सब-कुछ जुटाना पड़ता है। लेकिन हमेशा तो इतना सब कर नही पाऊँगी। तब तो सब-कुछ तुझी को देखना होगा। तेरी शादी होगी। बाल-बच्चे होंगे। गृहस्थी होगी।"

बाद में खाते समय कुन्ती जैसे खुद से ही कहने लगी, "लेकिन मालूम है मेरी उम्र की कितनी ही लडकियो को कुछ भी नही करना होता। बाप के पैसे से गाड़ी पर घूमती हैं, क्लब जाती हैं, कुत्ते पालती हैं, और ठीक वक्त पर किसी बड़े आदमी के लड़के से उनकी शादी भी हो जाती है।"

सच ही तो, दीदी तो कभी उसके साथ इतनी अच्छी तरह बातें नहीं करती। आज दोनों बहनों में बड़ा मेल हो गया है। खाने के बाद बत्ती बुझाकर बिस्तरे पर लेटने के बाद भी जैसे दीदी की बातें खत्म नहीं हो रही थीं।

"मालूम है अमीर लोग सोचते हैं, हम लोग जैसे आदमी ही नहीं हैं।

हम लोगों के पास पैसा नहीं है, इसलिए जैसे गाय-बकरी समझते हैं हमें। जबकि हम जो यह आदमी से जानवर बन गये हैं, किसकी वजह से ?"

"किसकी वजह से, दीदी ?"

"उन्हीं लोगों की वजह से। उन लोगों की वजह से ही तो हम गरीब हैं। उन्होंने ही तो हमारी जमीन छीन ली है। हमारे पिताजी की हत्या कर दी है, और अब मजे से खद्दर का धोती-कुर्ता पहने देश का उद्धार करते फिर रहे हैं ! असल में वे लोग ही कम्युनिस्ट है।"

"कम्युनिस्ट ? इसका मतलब, दीदी ?"

"वह सब तू बड़ी होकर पढाई-लिखाई करने के बाद समझ पाएगी। कम्युनिस्ट माने जो लोग गरीबों के बारे में नहीं सोचते। गरीबों से घृणा करते हैं। जो लोग चाहते हैं कि वे खुद तो बड़े आदमी बन जायें और दूसरे सब उनकी गुलामी करें ?"

इसके बाद जरा रुककर कहा, "इसी से तो कहती थी, खूब मन लगाकर पढ़। मैं खुद पढाई-लिखाई नहीं कर पायी। मुझे पढ़ाने लायक पैसा पिताजी के पास नहीं था। लेकिन तेरी हालत तो वैसी नहीं है। अच्छी तरह से पढ़-लिखकर और बड़ी आदमिन बनकर क्या इन रईसों के मुँह पर जूता नहीं मार सकती ?"

अँधेरे में दीदी का चेहरा नहीं दीख रहा था। फिर भी लग रहा था जैसे आज दीदी कहीं से अपमानित होकर घर लौटी है। आज ही तो बूड़ी उस बड़े आदमी की जेब से मनीबैग मारकर लायी थी ! दीदी से कहे क्या ? कहे क्या कि चाय की दूकान में उसने दीदी की आवाज सुनी थी ? दीदी जिस दूकान में चाय पीने गयी थी, बूड़ी भी उसी दूकान में पहुँचकर उसकी बगल के कैबिन में बैठी थी, कहे क्या ?

"बूड़ी, सो गयी क्या ?"

"नहीं, सुन रही हूँ।"

"और नहीं ! काफी रात हो गयी है। अब सो जा। मास्टरनी ने कितनी देर पढाया ?"

बूड़ी ने कहा, "शाम से लेकर रात के नौ बजे तक।"

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! तू सिर्फ़ पढ़ाई-लिखाई में मन लगा। और कोई फ़िक्र करने की जरूरत नहीं है। सिनेमा देखने और घूमने-फिरने के लिए बाद में काफ़ी वक़्त मिलेगा। लेकिन यही उम्र खराब है। इस उम्र में ठीक से चल पाती हो तो ठीक है। एक बात हमेशा ध्यान रखना।

इस दुनिया में तुम्हारा नुकसान करनेवाले लोगों की कभी भी कमी नहीं होगी। सभी चाहेंगे कि तुम्हारा नुकसान हो। उसी के बीच तुम्हें सिर ऊँचा रखना होगा। वह भी अपने ही बूते पर ! कोई तुम्हारी सहायता करने नहीं आयेगा। तुम मरी या बची हो, दुनिया का इससे कुछ नहीं आता-जाता।"

बूडी शायद तब तक सो चुकी थी। उसके खुर्राटों की आवाज़ साफ़-साफ़ सुनायी दे रही थी। लेकिन उसके काफ़ी देर बाद तक भी कुन्ती को नींद नहीं आयी। सब-कुछ ख़ामोश था। शायद सारा कालीघाट बूड़ी के साथ ही सो गया था। लेकिन कुन्ती को इतनी आसानी से नींद नहीं आती। कलकत्ता की कुन्तियों के माथे कितने झंझट होते हैं। कुन्तियों की नींद हराम करने के लिए बीसवीं सदी के आदमियों ने जैसे चक्रव्यूह की रचना कर रखी है। कितने ही शिवप्रसाद गुप्त कितने ही सोने के मैडल लिये महान् होने का ढोंग रचाये खड़े हैं। कितनी ही पद्मरानियों ने कितने ही फ़्लैट चलाकर कितनी ही कुन्तियों को टगर बना रखा है। कलकत्ता के आदमी ने तरह-तरह की तरकीबें लगाकर कुन्तियों की इज्जत-आबरू नष्ट करके कलयुगी लज्जाहारी की भूमिका निभायी है। यह कोई एक दिन में नहीं हुआ। एक युग में भी नहीं हुआ। अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद से ही इसकी शुरुआत हुई है। इसके बाद से जैसे-जैसे वक़्त गुज़र रहा है, लोभ का हाथ भी उसी तेज़ी से बढ़ते-बढ़ते जैसे गगनचुम्बी हो गया है। आज कुन्ती पकड़ में आयी है। कल बूड़ी का नम्बर है। उसके बाद कलकत्ता की सारी कुआँरी लड़कियाँ पकड़ में आयेंगी। एक बार जब जाल फेंका गया है तो फिर छुटकारा नहीं है। सबको अपने पंजे में फँसाकर पद्मरानियों को चैन मिलेगा। चैन से करवट लेकर सो जायेंगी।

कुन्ती ने बिस्तरे पर करवट ली।

मिस्टर बोस ने दूसरे दिन ऑफ़िस पहुँचकर दुनि बाबू को बुलाया। दुनि बाबू फैक्टरी में काम करते हैं तो क्या हुआ, नाटक में काम करने की जैसे उन्हें बचपन से ही बीमारी है। शुरू-शुरू में ऐक्टिंग करने का बड़ा शौक था। ड्रामे लिखने का भी बड़ा जोश था। वह जोश कम नहीं हुआ था। पेट के लिए मौका पाते ही 'युनैनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' में घुस पड़े। लोहा-लक्कड़ में माथा-पच्ची करते जरूर, लेकिन दिमाग सिनेमा और नाटकों में ही पड़ा रहता। दुनि बाबू को कभी-कभी लगता, फैक्टरी में आते ही जैसे उनकी सारी क्षमता खत्म हो गयी है। लेकिन रात-रात-

भर जागकर चुपचाप एक नाटक लिख ही डाला। वही नाटक था—'कर्नाटक-राजकुमारी'। हर साल किराये की ड्रामा-पार्टियों को बुलाया जाता था। वे ही लोग पैसा लेकर नाटक कर जाते। लेकिन इस बार वेलफेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी की मिन्नत-चिरौरी करके इस नाटक को खेलने का इन्तजाम कराया था। कम्पनी ने भी देखा कि ठीक ही है। स्टाफ-रिक्रिएशन क्लब भी हाथ में रहेगा और घर का पैसा घर मे ही रहेगा।

दुनि बाबू के आते ही मिस्टर बोस ने फटकारना शुरू कर दिया।

वैसे मिस्टर बोस ने खराब कुछ नही कहा। कल जो घटना हुई वह 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' की जिन्दगी में कभी भी नही घटी थी। इतने सम्माननीय गेस्ट का इस तरह से उनके मुह पर ही अपमान! यह जैसे कल्पना के बाहर की बात थी। मिस्टर गुप्त रेस्पेक्टेबल और सभ्य आदमी हैं। इसी से चुप रह गए। कुछ भी नही कहा, हँसते-हँसते सब सह लिया। लेकिन बग़ल में ही लड़का बैठा था। उसने क्या सोचा होगा। मिस्टर बोस को तो और भी बहुत-कुछ सोचना होता है। आज भले ही मिस्टर गुप्त चुप रह गये। सब-कुछ हँसी-हँसी में पी गये। लेकिन कल ही तो मिस्टर बोस को उनके पास जाना होगा। कोई भी नया लाइसेंस या पर-मिट लेने के लिए एकमात्र मिस्टर शिवप्रसाद गुप्त का ही तो आसरा है।

दुनि बाबू सामने खड़े थर-थर कांप रहे थे।

"वह लड़की कौन थी ?"

"जी, वह एक आर्टिस्ट थी, सर !"

"उसका नाम क्या है ?"

"कुन्ती गुहा।"

"घर कहाँ है ?"

दुनि बाबू ने कहा, "पहले जादवपुर में रहती थी। वहाँ से कुछ दिन के लिए वेहाला सरकार हाट में आकर रही। अब कालीघाट में एक मकान किराये पर लेकर रहती है।"

"रिफ़्यूजी लड़की है ?"

"जी ! लगता है, वैसी ही कुछ है।"

"कम्युनिस्ट है ?"

दुनि बाबू ने कहा, "वह तो पता नही। कितनी ही जगह नाटकों में एक्टिंग करने जाती है। काफी नामी आर्टिस्ट है। इसीलिए उसे बुलाया।"

"आपको पता नहीं था कि वह कम्युनिस्ट है ?"

मुझे कुछ भी पता नहीं था।"

"जी नहीं, सर। मुझे कुछ भी पता नहीं था।"

"अगर कम्युनिस्ट नहीं है तो एक रेस्पेक्टेबल आदमी का नाम लेकर इस तरह क्यों कहा ? उसे क्या पता नहीं है कि शिवप्रसाद गुप्त कलकत्ता के एक विशेष सम्माननीय व्यक्ति हैं ? सिर्फ कलकत्ता ही क्यों, इंडिया के वेल-नोन लीडर हैं। उन्होंने तेरह साल जेल काटी है। चाहते तो अब तक केबिनेट मिनिस्टर हो गये होते। फिर वह मेरे गेस्ट थे। मेरी ही फैक्टरी में खड़े होकर उनका अपमान किया गया। पता है, चाहता तो उसे पुलिस में दे सकता था ? पुलिस-कमिश्नर को फोन करके उसे लॉक-अप करा सकता था ?"

दुनि बाबू चुपचाप खड़े रहे। जवाब नहीं दिया।

"पता है, कल कितने नामी-नामी आदमी मौजूद थे। मिस्टर गुप्त की बेइज्जती करना उन सभी की बेइज्जती करना हुआ। और मिस्टर गुप्त जब मेरे गेस्ट थे तो उनका अपमान मेरा अपमान था !"

दुनि बाबू ने इस बार भी कोई जवाब नहीं दिया।

"उसका पेमेन्ट कर दिया है ?"

"जी हाँ ! हड्रेड रुपीज चार्ज करती है। पूरा पैसा दिया जा चुका है।"

"ठीक किया। अब आपको एक काम करना होगा। आप उसके घर जाइये, जाकर उससे एक रिटिन एपोलॉजी ले आइये। आई वान्ट इट इन हर ओन हैंड-राईटिंग—जाइये !"

दुनि बाबू ने छुटकारे की साँस ली। यह तो भगवान की दया थी कि नौकरी बच गयी। खुद मैनेजिंग डायरेक्टर ने इस तरह कभी भी नहीं बुलाया था। उनके हाथ से छुटकारा मिल गया, यही बड़ी बात है।

मिस्टर बोस ने टेलीफोन का रिसीवर उठाया। डायल करने लगे।

"हलो।"

दूसरी ओर से शिवप्रसाद गुप्त रिसीवर उठाते ही ज़रा सुनकर बोले, "हाँ-हाँ, कहिये !"

"मैंने पता लगाया है, मिस्टर गुप्त, हमारे स्टाफ-रिक्रिएशन क्लब के सेक्रेटरी का काम है। और जिस लड़की ने कल इस तरह का अन-होली बर्ताव किया था, वह रिफ्यूजी कम्युनिस्ट थी।"

शिवप्रसाद गुप्त उस ओर हँस पड़े। "आप क्या अभी तक वही सब सोच रहे हैं ? मैं तो कभी का भूल गया हूँ।"

मिस्टर बोस ने कहा, "नहीं-नहीं, मिस्टर गुप्त ! यह ऑडिनरी मामला

नहीं है। सारे कलकत्ता में आजकल इसी तरह के प्रोपेगंडों की भरमार है। जो लोग सक्सेसफुल है, उनके अगेंन्स्ट सभी एण्टी-प्रोपेगंडा चला रहे हैं। दिम हैज गॉट टु बी स्टॉप्ड। इस तरह की छूट देने से तो कलकत्ता में हम लोगों का रहना मुश्किल हो जायेगा। न गाडी खरीद सकेंगे, न मकान बनवा सकेंगे, रुपया नहीं कमा पायेंगे, और वह सब करते ही कैपिटलिस्ट हो जायेंगे। ह्वाट इज दिस ? इस बार दिल्ली जायें तो नेहरूजी से कह दीजियेगा कि यह है बंगाल का ट्रेन्ड !"

"इस तरह तो कितने ही लोग कहते हैं, मिस्टर बोस ! यह सब लेकर मैं दिमाग खराब नहीं करता। ये लोग पहले भी कहते रहे है, आज भी कह रहे है, बाद में भी कहेंगे ! गाधी, नेहरू, सभी के अगेन्स्ट ये लोग कहते हैं। देखते नहीं, रास्ते में कितने लोग पंडितजी को गाली देते हैं ! उससे पंडित-जी का क्या आता-जाता है ? पब्लिक वर्क करने पर यह सब सहना ही पड़ता है। आप वह सब लेकर माथापच्ची न करें।"

शिवप्रसाद गुप्त ने सचमुच उस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे भी झूठी कितनी ही बातें उनके नाम पर कही जाती हैं। जहाँ भी पार्टी-पॉलिटिक्स होगी, यह सब होगा ही। आज तक किसी भी पब्लिक-मैन को इससे छुटकारा नहीं मिला है।

"और जो लोग थे, उन्होंने क्या कहा ?"

मिस्टर बोस ने जवाब दिया, "वे सभी समझ गये कि यह विलिफिकेशन को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। सभी तो जानते हैं कि पॉलिटिक्स में हैं, इसी से किसी अॅपोनेंट पार्टी के आदमी ने उससे यह सब कहलवाया है।"

"खैर, जो भी हो। मेरे आने के बाद फिर क्या हुआ ?"

"आप जल्दी चले आये नहीं तो मैं उस लडकी को बुलाकर ऑन द स्पॉट आपसे माफी माँगने को कहता। फिर भी आज उससे रिटिन एपोलॉजी लाने के लिए आदमी भेजा है। आई मस्ट हैव इट।"

इसके बाद फिर ज्यादा देर बात नहीं हुई। मिस्टर बोस ने रिसीवर रख दिया तो शिवप्रसाद गुप्त नाराज नहीं हुए। मिस्टर गुप्त के गुस्सा होने या न होने पर उनकी कम्पनी का बहुत-कुछ निर्भर करता है। मिस्टर गुप्त से अभी कितने ही काम कराने बाकी है।

मिस्टर बोस ने अचानक कॉलिंग-बेल दबा दी। चपरासी के आते ही गुप्त साहब को बुला लाने को कहा।

सदाव्रत आया।

मिस्टर बोस ने कहा, "बैठो, सदाव्रत !"

फिर होंठों को जैसे एक अजीब-सी मुसकराहट में भिगो लिया।

"मैंने अभी-अभी तुम्हारे फादर को फ़ोन किया था। कल जो हुआ, उसके लिए मैंने जो एक्शन लिया उन्हें बतलाया। मुझे तो लगता है, लड़की कम्युनिस्ट थी। तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

सदाव्रत ने कोई जवाब नहीं दिया।

उसके कुछ कहने के पहले ही मिस्टर बोस ने कहा, "यह तो मुझे मालूम नहीं कि तुम्हारी इस बारे में क्या राय है, लेकिन जहाँ तक मेरा ख़याल है, हम लोगों की मिडिल क्लास सोसाइटी में आजकल यह स्लोगन खूब स्प्रेड हो गया है। हम लोगों को अभी से केयरफुल होना चाहिए। उन लोगों का ख़याल है, जितने बड़े आदमी हैं, सभी कैपिटलिस्ट हैं। सक्सेसफुल लोगों को ये सहन नहीं कर पाते जबकि अपनी कन्ट्री डेमोक्रेटिक है। यहाँ सभी को तो फ्री स्कोप दिया जाता है, ओपन कम्पीटीशन है। कोई किसी को नहीं रोकता। तुम अगर क्वालीफ़ाइड हो तो तुम भी शामने करो। सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट का जमाना है। लेकिन ये लोग समझते हैं कि हम लोग शायद किसी की खुशामद करके बड़े आदमी हुए हैं। स्कूल हैं। कॉलेज है। वहाँ तुम पढ़ सकते हो। सो तो नहीं, जो लोग पढ़-लिखकर मैरिट दिखलाएँगे, नाम कमा लेंगे, समाज में उठ जाएँगे, उन्हें कैपिटलिस्ट कहेंगे। सिली ! इसीलिए तो बंगाली हर बात में पिछड़े हुए हैं। हर स्टेट के लोग आगे बढ़े जा रहे हैं—बाई लिप्स एण्ड बाउंड्स। क्या कहते हो ? तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

मिस्टर बोस हर बात पर ही सदाव्रत की राय पूछते हैं, लेकिन सदाव्रत की राय जानने से पहले ही अपनी राय ज़ाहिर कर देते हैं। इन कुछ दिनों में ही सदाव्रत मिस्टर बोस का चरित्र समझ चुका है। प्रायः रोज़ ही मिस्टर बोस का लेक्चर सुनने के बाद अब सदाव्रत को अजीब नहीं लगता। कौन-सा जवाब देने से मिस्टर बोस खुश होंगे, यह भी वह अच्छी तरह से जान गया है। चुप बैठे रहने से मिस्टर बोस और भी खुश होते हैं, यह भी सदाव्रत को मालूम है। मिस्टर बोस अपनी ज़िन्दगी में सक्सेसफुल रहे, इसका कारण शायद यही होगा। ऐसे लोग विरोध नहीं सह पाते। जो लोग विरोध करते हैं, उनको वे पास भी नहीं फटकने देते। अपने चारों ओर वे लोग एक ऐसा जाल-सा ताने रहते हैं कि हर आदमी उनकी बात

पर 'यस' ही कहता है। 'नो' सुनते ही उन्हें चोट पहुँचती है। मिस्टर बोस उसी बिरादरी के आदमी हैं।

"तुम्हे पता है सदाव्रत कल जो कुछ हुआ है, वह कोई 'आइसोलेटेड' घटना नही है। इसके बाद एक दिन वह भी आयेगा जब हमें गाडी में बैठे देखकर लोग पत्थर फेंकेंगे। हम लोग क़ीमती कपडे भी नही पहन पायेंगे। हमारे ऊपर वे लोग पान की पीक थूकेंगे। सड़क से किसी सुन्दर आदमी को जाते देखकर एसिड बल्ब फेंकेंगे। इसी का नाम है कम्युनिज्म। इंडिया के कुछ लोग यहाँ भी यही कम्युनिज्म लाना चाहते है। हम लोग अगर अभी से केयरफुल नही होंगे तो आज जैसे उस लडकी ने तुम्हारे फादर का अपमान किया, कल मेरा और परसों तुम्हारा भी करेगी। मिस्टर गुप्त को मैंने यही बात समझाने की कोशिश की। मैंने क्या ठीक नही किया? तुम्हारी क्या राय है?"

सदाव्रत इतने दिनों से काम कर रहा है, उसे भी यह पता है। उसके लिए कुछ भी अनजाना नही है। टी० बी० हॉस्पिटल मे जो कुछ देखा, वहाँ भी यही हाल है। बागबाज़ार मे केदार बाबू के यहाँ भी यही हाल देखा। मधुगुप्त लेन से शुरू कर सारे कलकत्ता मे सभी तो कम्युनिस्ट है। बाकी है ही कौन? बाकी बचे सिर्फ़ मिस्टर बोस, मिस बोस और उनके क्लब के मेम्बर। और जो लोग बाकी बचे वे है इस 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफिसर्स।

एक दिन लाचार होकर अंग्रेज लोग चले गये। न जाते तो उनका सारा धन्धा चौपट हो जाता। आज जो कुछ बाकी बचा है, वह भी नही होता। लेकिन जिन लोगों के हाथ मे वे शासन की बागडोर सौंप गये, वे लोग शायद और भी बडे व्यापारी है। ब्रिटिश कम्पनी से भी बड़े। ये लोग सिर्फ़ व्यापार ही नही करते, व्यापार के साथ-ही-साथ देश के लोगो की बुद्धि पर भी शासन करना चाहते है। उनके खराब और अच्छे लगने की भी चौकसी रखना चाहते हैं।

"तुम्हे आज जो कुछ भी बतलाया, सब जाकर अपने फादर से कहना। कहना कि मैंने क्या एक्शन लिया है। कहना कि मैं इनमें से किसी भी बात को नही मानता।"

"लेकिन मैं मानता हूँ।"

"मानता हूँ माने? वह छोकरी जो कुछ कह रही थी, तुम्हारा कहना है, सब सच है?"

"हा !"

"इसके माने मिस्टर गुप्त ने खून किया है ? मर्डर ? एम आई टु बिलीव दैट ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ, सब सच है !"

"तुम कह क्या रहे हो ?"

सदाव्रत ने फिर कहा, "सिर्फ मेरे पिताजी ही क्यो ; आप, मैं, हम सभी ने खून किया है। आज भी कर रहे हैं।"

"ह्वाट नॉनसेन्स !"

मिस्टर बोस बम के गोले की तरह फट पड़े। "ह्वाट डु यू मीन ?"

सदाव्रत कहने लगा, "ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जिस तरह खुदीराम का खून किया है, गोपीनाथ साहा का खून किया है. दिनेश बादल और विनय का खून किया है, हम लोग भी आज ठीक उसी तरह लड़कियो का खून कर रहे हैं। वे लोग पढाई-लिखाई करना चाहती हैं, हम लोग उन्हें स्कूल के पास भी नही फटकने देते। जिससे वे पढ न लें इसलिए उनके हाथ मे पैसा ही नही रहने देते। बाद मे कही खाकर जिन्दा न रह जायें, इसलिए उनके हाथ मे खाने लायक पैसा भी नही रहने देते। आटे में मिट्टी और चावल मे ककड मिला देते हैं। वे लोग जिससे मलेरिया, टाइफायड या कॉलरा मे मर जायें, हम लोग उनके घर के सामने के नाले को साफ नही होने देते। इसे खून नही तो क्या कहूं ! टी० बी० होने पर बाद मे कही दवा खाकर जिन्दा न बच जायें, इसलिए हम दवा छुपा देते हैं। या गरीबो को बेचते ही नही ! उस लड़की ने तो कल ठीक ही कहा। जरा भी झूठ नही कहा।"

"सदाव्रत ! आर यू औफ योर हैड ? तुम्हारा क्या दिमाग खराब हो गया है ?"

सदाव्रत उठ खड़ा हुआ।

बोला, "क्या और भी सबूत चाहिए ? तो आज आप क्लब न जाकर मेरे साथ कलकत्ता टी० बी० हॉस्पिटल चलिए। वहाँ पर मैं एक और आदमी को दिखाऊँगा। आदमी-सा आदमी, जिसका हम सब लोग मिलकर खून करने वाले है। दो-एक दिन बाद ही उसका भी खून हो जायेगा।"

फिर मिस्टर बोस की ओर देखकर कहा, "चलेंगे मेरे साथ ? देख आइये ! चलेंगे ?"

हैरान मिस्टर बोस सदाव्रत की ओर ताकने लगे।

और वक्त खराब किये बिना सदाव्रत कमरे से निकल गया। फिर नीचे उतरकर गैरेज से गाड़ी निकालकर सड़क पर आ गया। गेट पर के दरवान ने हाथ उठाकर लम्बी सैल्यूट झाड़ी।

□ □ □

हॉस्पिटल में बिस्तरे पर केदार बाबू बेहोश पड़े थे। केबिन में नर्स थी। सदाव्रत के आते ही नर्स उठकर खड़ी हो गयी। जरा देर केदार बाबू की ओर देखकर नर्स से पूछा, "पेशेन्ट का क्या हाल है ?"

नर्स ने जवाब दिया, "टेम्प्रेचर उतना ही है। एक सौ चार !"

"विजिटिंग डॉक्टर आये थे क्या ? उन्होंने क्या कहा ?"

"प्रेसक्रिप्शन बदल दिया है।"

"रात को नींद आयी थी ?"

"डिस्टर्बड स्लीप। सोते-सोते कई बार 'शैल-शैल' कह चिल्ला उठे थे।"

इसके बाद टेम्प्रेचर-चार्ट देखा। देखकर कहा, "प्रेसक्रिप्शन दीजिये। मैं दवा वगैरह ले आऊँ।"

कहकर प्रेसक्रिप्शन लेकर बाहर निकलते ही देखा कि शैल और मन्मथ आ रहे हैं। दोनों केबिन में ही जा रहे थे। मन्मथ की ओर देखकर कहा, "तुम लोग बैठो। मैं आ रहा हूँ।"

इसके बाद कॉरीडोर पार कर सीढ़ी उतर ही रहा था कि अचानक पीछे से शैल की आवाज़ सुनायी दी। सदाव्रत ने पीछे मुड़कर देखा।

शैल का चेहरा और आँखें फूली-फूली-सी लग रही थी। बोली, "एक बात सुनिये !"

सदाव्रत एक-दो सीढ़ी उतर ही चुका था। जल्दी से ऊपर आकर बोला, "जल्दी से कहो क्या कहना है। मैं दवा लेने जा रहा हूँ।"

सदाव्रत को बुलाकर जैसे शैल को पश्चात्ताप हो रहा था। बेकार में क्यों बुलाने गयी ? उसे क्या कहना था ? मन्मथ ही उसे काका को देखने के लिए लिवा लाया था। आने के पहले तक यह सोचा भी नहीं था कि इस तरह से सदाव्रत के साथ मुलाकात हो जायेगी। मुलाकात होते ही उसे बुला बैठेगी, यह भी नहीं सोचा था। अब जैसे सिटपिटा-सी गयी।

सदाव्रत ने फिर से कहा, "मास्टर साहब के लिए तुम चिन्ता मत करो। जो कुछ करने का है, मैं कर रहा हूँ। तुम्हारे नाहीं करने पर भी करूँगा। और हॉस्पिटलवाले भी जहाँ तक हो सकेगा, करेंगे। मैंने आज सुबह खुद टेलीफ़ोन पर डॉक्टर के साथ बात कर ली थी। आदमी के वश

में जो कुछ भी है, किया जायेगा। तुम हताश न होओ।"

शैल क्या कहती, कुछ समझ नही पा रही थी।

जरा रुककर बोली, "मैं आपके साथ चलूँगी !"

"मेरे साथ ? मास्टर साहब को देखने नहीं जाओगी ?"

"आपसे कुछ कहना था।"

सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नही कर पाया। एक मिनट सोचकर बोला, "चलो !"

इसके बाद सीधे बाहर आकर गाडी में बैठा। शैल पहले ही बैठ चुकी थी। शैल ने कहा, "गाड़ी चलाते-चलाते बात करने में आपको मुश्किल तो नही होगी ?"

गाड़ी स्टार्ट हो चुकी थी। सामने से एक गाड़ी आ रही थी। उसमे बचाकर सदाव्रत फिर सीधे ड्राइव करने लगा। काफ़ी देर बाद शैल की ओर देखकर कहा, "तुम मुझसे कुछ कहना चाहती थी ?"

शैल समझ गयी कि सदाव्रत उसकी बात सुन नही पाया। बोली, "आप क्या मुझसे नाराज है ?"

"नाराज ? नाराज होने का मेरे पास समय ही कहाँ है, बोलो ? अपनी नौकरी है, उस पर मास्टर साहब की बीमारी। और भी कितनी ही बातें है, जो कहने पर भी तुम नही समझोगी। और फिर नाराज होऊँगा किस पर ? तुम्हारे ऊपर ? खुद ही अगर अपने ऊपर गुस्सा करके खून जलाती हो तो क्या कह सकता हूँ ?"

शैल ने कहा, "एक बात बतायेंगे ?"

"कौन-सी ?"

"वह लड़की कौन थी ?"

"कौन-सी लड़की ?" सदाव्रत जैसे आसमान से गिरा।

शैल—"क्या सच ही आप लड़कियो के साथ रहकर उनका सर्वनाश करते है ? मेरे साथ क्या इसीलिए आपने खुद आकर परिचय किया ? मैं काफी सोचने के बाद भी किसी नतीजे पर नही पहुँच पायी हूँ। उस दिन पहली बार मकान-मालिक ने नल काट दिया था। आपने आकर सडक के नल से पानी ला दिया था। उस दिन मुझे ज़रा भी सन्देह नही हुआ था कि आप इस तरह के आदमी है। आपको देखकर तो यह सोचा भी नही जा सकता।"

"तुम क्या यही कहने मेरे साथ आयी हो ?"

शैल ने कहा, "इस बात का जवाब मिले बिना मैं पागल हो जाऊँगी। आपकी वजह से मैंने काका के साथ झगड़ा मोल लिया। मन्मथ से झगड़ी। जिन लोगों ने देखा है, वे मेरा आज का व्यवहार देखकर हैरान रह गये हैं। कमी हमारे यहाँ थी, शायद हमेशा रहेगी भी। मुझे उसकी आदत पड़ गयी है, लेकिन मैंने तो किसी को धोखा नहीं दिया है कि दूसरे भी मुझे धोखा दें! मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ा था कि मुझे इस तरह धोखा दिया?"

"मास्टर साहब को यह सब मालूम है?"

"अपने मास्टर साहब को आप अभी तक नहीं पहचानते हैं। काका आपको मुझसे भी ज्यादा चाहते हैं, यह शायद आपको नहीं मालूम?"

"मन्मथ?"

"मेरा व्यवहार देखकर वह भी हैरान रह गया। वह कहता है, मैं ऐसी तो नहीं थी। मुझे भी पता है कि मैं ऐसी नहीं थी। लेकिन ऐसी क्यों हो गयी? आपने क्यों ऐसा किया? मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ा है?"

सदाव्रत ने कहा, "इन सब बातों का इस तरह गाड़ी चलाते-चलाते कहीं जवाब दिया जा सकता है?"

"और उपाय भी क्या है? आप सिर्फ इतना ही कह दीजिए कि वह जो लड़की रास्ते में आपका अपमान कर गयी, वह सब झूठ था। आप सिर्फ कह दीजिए कि आप उसे नहीं जानते। उसके साथ आपका कभी कोई सम्बन्ध नहीं था। आप अपने मुँह से कह भर दीजिए। मुझे यकीन हो जायेगा।"

"नहीं, मैं उसे जानता हूँ!"

"लेकिन मैं यही तो सोच नहीं पाती कि उस-जैसी लड़की को आप क्यों जानते हैं? उससे आपका क्या सम्बन्ध हो सकता है, और क्यों हो सकता है? आप तो काफ़ी ऊपर हैं।"

सदाव्रत थोड़ा झुंझला उठा।

"अजीब बात है। इस हालत में भी तुम्हारे दिमाग़ में ये सारी बातें कैसे आ रही हैं? इस हालत में भी तुम इन छोटी-छोटी बेकार की बातों में दिमाग़ ख़राब कर रही हो? दुनिया को क्या इतना छोटा समझती हो? हम लोग क्या अपने-अपने सुख-दुःख और रोने-धोने में लगे रहेंगे? सोचने के लिए और कुछ नहीं है क्या? तुम्हारे काका बीमार हैं। जिन्दगी-भर सबका भला चाहनेवाले उन-जैसे सच्चे आदमी को इस तरह बीमारी क्यों भोगनी पड़ रही है? तुम लोग क्यों तीस रुपये से ज्यादा मकान का

किराया नहीं दे सकते ? और क्यों एक दूसरा है, जिसके लिए तीन सौ रुपया हाथ-खर्च में फूंककर भी पैसा खर्च करना प्रॉब्लम नहीं होती ? यह बात क्या तुमने कभी सोची है ?"

बात करते-करते सदाव्रत का चेहरा जैसे लाल हो गया।

"तुम्हे पता है, आज मुझे दो हजार रुपये महीना मिलते हैं। और मैं हाथ पसारकर वही ले रहा हूँ। जबकि मुझसे अच्छे लड़कों की क्या कलकत्ता में कमी है ? छाँटकर मिस्टर बोस ने मुझे ही पकड़ा है। और सिर्फ मैं ही क्यों ? मेरे-जैसे क्या और नहीं हैं ? और भी बहुत से हैं, जिनका ख़याल है कि दुनिया में सुख-ही-सुख है ! दुनिया में अच्छे विचार है। न्याय की यहाँ इज्जत है। अन्याय की यहाँ सजा है।"

क्या कहते-कहते क्या कह गया। शैल क्या कहने आयी थी और सदाव्रत क्या बात करने लगा ! इस आदमी को शैल काफी अरसे से देख रही है। काका के पास आता था। काका के साथ कितने ही विषयों पर बातें करता। उसी समय से शैल दरवाज़े की आड़ में खड़ी-खड़ी सारी बातें सुनती और सदाव्रत के बारे में उसने मन में एक धारणा बना ली। लेकिन बाद में नजदीक आने के साथ-साथ जैसे इस आदमी से घृणा करने लगी थी। वैसे यह असली अर्थों में घृणा भी नहीं थी। घृणा में मिला एक अजीब खिंचाव। इसी खिंचाव की वजह से आज शैल अपनी मर्जी के खिलाफ़ सदाव्रत के साथ चली आयी है। यह आदमी जैसे दूसरों से अलग है। और जो लोग उसके काका के पास आते, यही मन्मथ, गुरुपद, शशिपद बाबू—उन सभी को शैल ने देखा है। सभी के बारे में शैल की एक निश्चित धारणा है। वह आदमी सच्चा है, वह परोपकारी है, वह स्वार्थी है—इसी तरह की कोई धारणा हर आदमी के बारे में थी। उसका मकान-मालिक, उसके पड़ोसी, सभी की जैसे कीमत लगा डाली थी। लेकिन इस सदाव्रत के बारे में कोई निश्चित मत नहीं बना पायी थी। एक बार लगता, यह आदमी उसे चाहता है। तो कभी लगता, यह आदमी तो जैसे उसके बारे में सोचता भी नहीं है। उसने उसके साथ ही गाड़ी में आने को कहा तो सदाव्रत खुश तो नहीं हुआ था। वह तो अपने में ही मस्त गाड़ी चला रहा है और बेसिर-पैर की बातें कर रहा है।

कलकत्ता में अँधेरा उतर आया था। सड़क की बत्तियाँ जल उठी थीं। शैल पास बैठी थी। एकदम सदाव्रत के पास।

"अच्छा, आप क्या सारे दिन यही सब सोचते हैं ?"

"क्या सब ?"

"वही जो कह रहे हैं ! या कुछ कहना चाहिए इसी से कह रहे हैं ?"

सदाव्रत इतनी देर से जो सब बातें कह रहा था, अचानक उसमें विघ्न आने से चौंक पड़ा।

बोला, "इसका मतलब ?"

"इसका मतलब यह कि ये सारी बातें अखबारों में छपी रहती हैं। इन बातों को लिखना होता है, इसी से वे लोग लिखते हैं। लेकिन कोई आदमी ये बातें सोचता भी है, यह तो मुझे नहीं मालूम था।"

"सो क्या ? कौन कहता है, कोई सोचता नहीं है ?"

"मैंने जिन लोगों को देखा है, उनमें से कोई नहीं सोचता। सभी ऑफ़िस जाते हैं, ऑफ़िस से लौटकर पार्क में मीटिंग अटेण्ड करते हैं। घर आकर ताश खेलते हैं या बच्चों को पढ़ाते हैं, फिर खाना खाकर सो जाते हैं।"

"तुमने क्या अपने काका को भी नहीं देखा ? मास्टर साहब भी क्या उन्हीं में से हैं ?"

"काका की बात छोड़िए, काका तो [illegible] करते हैं। लेकिन आप क्यों सोचते हैं ? आपको अच्छी तनख्वाह मिलती है। दो हजार रुपये महीना मिलते हैं। दो दिन बाद [illegible]। आप क्यों इन लोगों के 'रोने' को लेकर दिमाग खराब करते हैं ? यह भी क्या आपकी [illegible] का कोई शौक है ? अखबारवालों के लिए कुछ नहीं [illegible], क्योंकि उनकी नौकरी ही इसलिए है। लेकिन आपको इन सब बातों से क्या लेना-देना है ?"

सदाव्रत की गाड़ी रसा रोड पर आ गयी थी।

सदाव्रत ने कहा, "ये सब बातें छोड़ो, तुम मुझसे क्या कहना चाहती थी, कहो !"

"आपके रुपये लौटा दिये, इसलिए क्या आप मुझसे नाराज़ हैं ? हम हज़ार ग़रीब हों, लेकिन आदमी होने के नाते स्वाभिमान नाम की भी तो कोई चीज़ हो सकती है। स्वाभिमान तो शायद कोई बुरी बात नहीं है ?"

"लेकिन मैंने तो तुमसे उसके लिए कोई कैफ़ियत नहीं माँगी !"

"आप कैफ़ियत भले ही न माँगें, लेकिन मुझ पर मेरी तरफ़ से भी तो कोई जवाबदेही हो सकती है।"

"जवाबदेही जो चाहे दो, उसके साथ जवाबदेही [illegible] की कोई ज़रूरत नहीं है। इस [illegible] जवाबदेही देने के लिए [illegible]

बिना देखे तुम्हारा मेरे साथ आना ठीक नही हुआ। यह मत सोचना कि तुम्हारी जवाबदेही सुनकर मैं तुम्हारे काका की देखभाल ज्यादा करूँगा। मास्टर साहब के लिए जितना कर रहा हूँ, तुम्हारे बीमार होने पर भी ठीक उतना ही करूँगा।"

"अच्छा, सच बतलाइये, काका के लिए आप इतना क्यो करते है ? असली कारण क्या है ? उस दिन आप बीस रुपये लेने के लिए भी नही रुके और ऊपर से दो सौ रुपये और दे गये। कल सुना कि काका को यहाँ भर्ती कराने के लिए आपके करीब सात-सौ रुपये खर्च हो गये।"

"क्यो, ऐसी घटना क्या तुमने पहले कभी नही देखी ? कान से सुनी भी नही ?"

"किताबो मे पढ़ा है। सतयुग मे ऐसा होता था और कानो से मार-वाड़ियों के बारे मे सुना है। सच-झूठ तो जानती नही। सुना है कि ये लोग जिन्दगी-भर तो पाप करते हैं। फिर उसी पाप का प्रायश्चित करने के लिए तीर्थस्थानो मे धर्मशाला बनवाते है।"

"समझ लो, मैंने भी कोई पाप किया है।"

"कौन-सा पाप ?"

सदाव्रत ने कोई जवाब नही दिया। सामने की ओर देखकर हँसने लगा।

"उस दिन धर्मतल्ला पर उस लड़की ने जो कुछ कहा, आपने क्या वही पाप किया है ? सच कहिये, उसने जो-कुछ कहा, क्या सब सच था ?"

सदाव्रत ने फिर भी कोई जवाब नही दिया।

"जवाब दीजिये। चुप न रहिये। यह बात पूछने के लिए ही मैं आज आपके साथ आयी हूँ। आप-जैसा आदमी बाग-कोठियों में ले जाकर लड़कियो का सर्वनाश करता है, यह मैं सोच भी नही सकती। मैं ऐसे लोगो से हमेशा घृणा करती आयी हूँ। मैं उन्हें फूटी आँख भी नही देख सकती। सच ही आप क्या वैसे हैं ? आप क्या इतना नीच काम कर सकते हैं ?"

सदाव्रत ने सामने की ओर देखते हुए कहा, "मैंने उससे भी नीच काम किया है !"

"क्या ? आप ठीक कह रहे हैं ?"

"हाँ, यकीन करो। मैंने उससे भी खराब काम किया है।"

सदाव्रत की बात सुनकर शैल चौंक गयी। उसने सदाव्रत के चेहरे की ओर अच्छी तरह से देखा। उस चेहरे पर कही भी जरा शिकन नही थी।

सदाव्रत अब हँस नहीं रहा था। उसका चेहरा गम्भीर हो गया था।

"तो उस दिन जो कुछ कहा, सच था ? सच ही आप लोगों ने उस लड़की के पिता की हत्या की ?"

सदाव्रत ने उसी तरह सिर हिलाया।

बोला, "हाँ।"

"आप कह क्या रहे है ?"

"हाँ, सच ही कह रहा हूँ, शैल। हम लोगों ने मिलकर उस लड़की के बाप का खून किया है। उसने जो कुछ कहा था, सब ठीक ही कहा था। एक भी बात झूठी नहीं थी।"

"लेकिन बड़ी अजीब बात है। आप लोगों को पुलिस ने नहीं पकड़ा ? आप लोगों को फाँसी नहीं हुई ?"

"खून करने पर आदमी को हमेशा तो फाँसी नही होती। ज्यादातर तो पकड़े ही नहीं जाते। फिर फाँसी कैसे हो ? और सिर्फ उस लड़की के बाप की हत्या की हो, इतना ही नही, और भी न जाने कितने लोगों की हत्या की, इसका ठीक नही है ! मजा यह है कि किसी को अभी तक पता भी नहीं लगा। किसी को हम लोगो पर सन्देह तक नहीं हुआ। [illegible] फुलाये ठाठ से घूमते है।"

"लेकिन मेरे काका को क्या यह सब मालूम है ?"

"मास्टर साहब ? वह भले आदमी हैं। [illegible] लगने पर भी विश्वास नही करेंगे। [illegible] उन्हें नही पकड़ती।"

शैल जरा इस ओर खिसक आयी।

"लेकिन खून आखिर किया [illegible]"

"हाँ।"

चीज है ?"

शैल इतनी सब बातें नही सोच पायी। बोली, "लेकिन इसलिए क्या आप आदमी का खून करेंगे ?"

"रुपये के लिए सिर्फ खून ही क्यों, दुनिया में ऐसा कोई पाप नहीं है जो मैं न कर सकूं।"

"लेकिन करेंगे कैसे ? आदमी मे बुद्धि नाम की क्या कोई चीज नही है ?"

"बुद्धि की बात सोचकर तो बड़ा आदमी नही हुआ जा सकता !"

"तब तो आप जरूर शराब पीते होंगे। शराब पीने के बाद सुना है बुद्धि-विवेक जैसी कोई चीज नही रहती। शराब पीकर, सुना है, आदमी जानवर बन जाता है।"

सदाव्रत ने कहा, "उसकी जरूरत नही होती। बिना शराब पिये भी हम लोग हत्या कर सकते है। हत्या करते-करते हम इतने पक्के हो गये है कि अब शराब की भी जरूरत नही होती।"

"अच्छा, आप क्या मेरे साथ मजाक कर रहे हैं ?"

शैल ने गरदन घुमाकर सदाव्रत की ओर देखा। लेकिन सदाव्रत ने तब तक गाड़ी एक जगह खडी कर दी थी। फिर गाडी से उतरकर बोला, "तुम जरा बैठो। मैं दवा ले आऊँ।"

शैल ने चारो ओर देखा। यह शायद विलायती लोगो का मुहल्ला था। सड़क और फुटपाथ पर ज्यादा भीड नही थी। दो-एक कीमती गाड़ी सर्र से गुजर जाती।

अचानक एक बात हो गयी। उस ओर एक गाडी खडी थी। काफी बड़ी और कीमती गाड़ी। गाड़ी के अन्दर लम्बे-लम्बे बालोंवाला एक छोटा-सा कुत्ता था। वरदी पहने एक ड्राइवर गाडी झाड़-पोछ रहा था। अचानक सामने की दूकान से एक लड़की निकलकर आयी। सिल्क की 'बगल-कटी' ब्लाउज और सिल्क की ही साड़ी, जो बार-बार कन्धे से सरक रही थी। आते ही सदाव्रत की ओर देखकर पुकारा, "मिस्टर गुप्त ! मिस्टर गुप्त !"

सदाव्रत दवा की दूकान के अन्दर घुस रहा था। पीछे से पुकार सुनकर घूमकर खडा हो गया। फिर लडकी की ओर बढ आया। शैल अवाक् रह गयी। यह लड़की भी क्या सदाव्रत को पहचान की है ! दोनों का बातें करने का ढंग देखकर लगता था काफ़ी दिनों की पहचान है। पास-पास खडे बात कर रहे थे। आश्चर्य ! सदाव्रत क्या लडकियों के साथ ही रहता है ! उस

दिन जिस लड़की ने सदाव्रत का अपमान किया था, वह शायद गरीब थी। इतना साज-शृंगार भी न था। लेकिन यह तो शायद बड़े आदमी की लड़की लगती है। खुद की गाड़ी, ड्राइवर, कुत्ता। कुत्ता गाड़ी की खिड़की से मुँह बाहर किये जीभ लपलपा रहा था। लड़की ने यह देख उसे जल्दी से गोद में ले लिया।

इसके बाद किसे पता क्या हुआ। सदाव्रत लड़की को लिये शैल के पास आया।

सदाव्रत ने पास आकर कहा, "तुम्हारे साथ परिचय करा दूँ, शैल! यह हैं मिस बोस और यह···"

मिस बोस की ओर देखकर सदाव्रत ने कहा, "यह मिस राय हैं।"

"हाऊ डु यू डु!"

कहकर जरा मुसकराकर शैल की ओर एक हाथ बढ़ा दिया। गोरा हाथ। अँगुलियों के नाखून बड़े-बड़े। नाखून के सिरे पर पॉलिश की हुई थी। अपना हाथ बढ़ाते हुए शैल को शर्म आयी। अपने नाखूनों का ध्यान आया। मसाला पीसने, खाना बनाने और बर्तन साफ करनेवाले हाथों को बढ़ाने में संकोच होने लगा। सारे बदन से खुशबू आ रही थी। वह सदाव्रत के साथ मरने क्यों आयी? वह अस्पताल में काका को देखने गयी थी, वहीं रहती।

लड़की की गोद में बैठा कुत्ता मजे से छाती के साथ चिपक रहा था। लड़की के हाथ बढ़ाते ही शैल की ओर गुर्राकर देखा। फिर शैल के हाथ बढ़ाते ही भों-भों करना शुरू कर दिया।

"डोण्ट बी सिली, पेगी!"

कहकर लड़की ने कुत्ते के सिर पर प्यार से चपत लगायी।

उसने कहा, "आप डरियेगा नहीं। नया आदमी देखते ही पेगी जरा चिल्लाता है। बाद में कुछ नहीं कहता। मिस्टर गुप्त को भी पहले दिन देखने पर 'बार्क' करने लगा था।"

शैल क्या करे, क्या बोले, कैसा व्यवहार करना चाहिए, कुछ भी ठीक नहीं कर पा रही थी। सारा बदन पसीने से लथपथ हो उठा था। जिन्दगी में बहुत-सी लड़कियों को देखा था। खुद भी तो लड़की है। लेकिन ऐसी लड़की, यह साज-शृंगार, गहने और ऐसा जूड़ा उसने पहले कभी भी नहीं देखा था।

सदाव्रत ने कहा, "मलिला, तुम जरा वेट करो, मैं दवा खरीदकर अभी

आता हूँ।"

और मिस बोस सदाव्रत की गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर शैल के बिल-कुल नज़दीक आकर बैठ गयी।

"सो आपके फादर बीमार हैं। पता है मिस राय, बीमारी का नाम सुनते ही मुझे बड़ा दु:ख होता है। मेरा यह पेगी एक बार बीमार हो गया था। कुछ भी नहीं खाता था। मुझे इतना खराब लगा था कि क्या कहूँ।"

मिस बोस फटाफट बातें किये जा रही थी। मुँह, हाथ और सिर हिला-हिलाकर बात कर रही थी। बीच-बीच में हैंडबैग खोलकर होंठों का रंग ठीक कर लेती। शैल उसकी भाव-भंगिमा देखकर हैरान रह गयी। इसके साथ सदाव्रत का परिचय कैसे हुआ? कौन है यह?

"बचपन में मैं भी एक बार बीमार हो गयी थी। उन दिनों मैंने शीशे में अपना चेहरा नहीं देखा। चेहरा इतना खराब हो जाता है कि उस ओर ताका तक नहीं जाता। इसीलिए मैं कभी भी हॉस्पिटल नहीं जाती। मेरे डैडी को जब फ्लू हुआ था, मैं एक दिन भी उन्हें देखने हॉस्पिटल नहीं गयी। मैंने डैडी से कह दिया था—नो डैडी, मैं हॉस्पिटल नहीं आऊँगी। तुम बड़े 'अगली' लगते हो।"

शैल इतनी देर बड़ी मुश्किल से अपना कौतूहल छिपा पायी। अपने को और नहीं रोक पायी।

"सदाव्रत बाबू से आपका परिचय कैसे हुआ?"

"हूँ! मिस्टर गुप्त? अरे, मिस्टर गुप्त तो मेरे डैडी की फर्म में पर-चेजिंग ऑफिसर हैं। डैडी मिस्टर गुप्त को, मन्थली टू थाउजेंड चिप्स देते हैं, आपको नहीं मालूम?"

कहकर काजल लगी आँखों को फाड़कर शैल की ओर देखा।

"चलिए न, क्लब चलेंगी? तीनों बैठकर ताश खेलेंगे। आपको 'किटी' खेलना आता है?"

शैल हैरान थी।

"क्लब? सदाव्रत बाबू क्या इस समय क्लब जायेंगे?"

"आप अगर चलना चाहें तो जायेंगे!"

फिर अपनी हाथघड़ी देखकर बोली, "मैं ऑलरेडी लेट हो गयी हूँ मिस्टर भोपत्कर मेरी राह देख रहे होंगे। मैं यहाँ के सैलून में 'ड्रेस' कराने आयी थी। मेरा जूड़ा कैसा बना है, कहिये न? वेरी ब्यूटीफुल?"

शैल ने जूड़े की ओर देखकर कहा, "हाँ, बहुत अच्छा बना है।"

"बहुत कॉस्टली है, मिस राय ! बड़ा आदमी देखकर ये लोग खूब ठगते हैं। लेकिन क्या करूँ ? इतना अच्छा ड्रेसिंग कलकत्ता मे और कोई भी नही कर पाता।"

शैल अचानक पूछ बैठी, "सदाव्रत बाबू से आपका कितने दिन का परिचय है ?"

"हूँ ! मिस्टर गुप्त ? यही कोई तीन महीने से।"

सिर्फ़ तीन महीने ?"

मिस बोस ने कहा, "मिस्टर गुप्त एक नाइस जैंटलमैन है। पता है, उनके पिताजी सीनियर मिस्टर गुप्त पंडित नेहरू के पर्सनल फ्रेंड है ? आपको पता है, थर्टीन इयर्स जेल काटी है। नॉट ए मैटर ऑफ़ जोक। वह एक बोनाफ़ाइड पॉलिटिकल सफ़रर है।"

शैल ने अचानक ही फिर कहा, "आप दोनो शायद रोज मिलते है ?"

"ऑलमोस्ट रोज।"

"रोज ?"

मिस बोस ने कहा, "हाँ, रोज़ ही तो, मिस्टर गुप्त हमारे क्लब के मेम्बर है न। लेकिन ह्वाट ए सिली। देखिए न, मिस्टर गुप्त को ह्विस्की पसन्द है। अच्छा, आप ही कहिए, अपनी इस ट्रॉपिकल कन्ट्री मे ह्विस्की पीना क्या अच्छी बात है ? मैं तो मिस्टर गुप्त से 'रम' लेने को कहती हूँ। आपकी क्या राय है ?"

शैल चौंक उठी।

"सदाव्रत बाबू शराब पीते हैं ?"

"शराब नही, 'रम'—माइल्ड ड्रिंक।"

" 'रम' माने ?"

शैल समझ नही पायी।

मिस बोस ने कहा, "मेरा यह पेगी भी तो 'रम' पीता है। लेकिन देखिये, इतना पाजी है कि हॉट 'रम' में मुँह नहीं लगायेगा। पेगी को ऑडिनरी वाटर दीजिए, नही पियेगा। लेकिन फ्रिज का पानी दीजिये, चप-चप करके पी जायेगा।"

कहकर बड़े दुलार से पेगी की पीठ पर एक और चपत लगायी।

शैल का सिर जैसे फटा जा रहा था। इच्छा हो रही थी कि दरवाजा खोलकर बाहर सड़क पर खड़ी हो जाये।

अचानक फिर पूछ बैठी, "अच्छा, सदाव्रत बाबू क्या रोज़ शराब

पीते हैं ?"

"रोज नहीं, कभी-कभी। जबकि मेरा कहना है कि रोज एक पेग लेना चाहिए। उससे नर्व ठीक रहती है। आपको तो मालूम ही होगा, हम लोग एंगेज्ड हैं!"

"एंगेज्ड माने ?"

मिस बोस ने आश्चर्य से कहा, "यू डोण्ट नो ? आप 'स्टेट्समैन' नहीं पढ़ती ? हम लोगों का एंगेजमेंट तो एनाउंस हो गया है। हम लोगों की तो 'वेरी सून' शादी होनेवाली है।"

दीप को लगा जैसे बाहर की हवा बिलकुल बन्द हो गयी हो।

और ठीक उसी समय सदाव्रत आ पहुँचा। हाथ में दवा का पैकेट था। आते ही बोला, "चलो-चलो, बड़ी देर हो गयी, हॉस्पिटल का 'विज़िटिंग टाइम' खत्म होने को है। चलो।"

मिस बोस बाहर निकलकर खड़ी हुई। पूछा, "तुम क्लब आ रहे हो न ? हॉस्पिटल से सीधे क्लब चले आओ। मिस्टर भोपतकर शायद अभी भी मेरी राह देख रहे होंगे। मैं तुम्हारे लिए 'वेट' करूँगी। टा-टा !"

□ □ □

मिस्टर बोस को सक्सेसफुल आदमी माने बिना चारा नहीं है। धरती पर जो-जो चीजें होने पर पुरुष को महापुरुष कहा जाता है, उनके पास वही है। आदमी को और क्या चाहिए! घर, गाड़ी, फैक्टरी, रुपया और इन्फ्लुएंस से ही तो आदमी का दाम आँका जाता है। देखना होगा कि दूसरे दस लोग तुम्हारी इज्जत करते हैं या नहीं। देखना होगा कि बैंक में तुम्हारी क्रेडिट पर मिलियन रुपये हैं या नहीं। एक मिलियन से कम होने पर हम तुम्हें सक्सेसफुल आदमी नहीं मानेंगे। वैसे बिना पैसे के भी सक्सेसफुल आदमी हुआ जा सकता है। ऐसी हालत में तुम्हें फेमस होना होगा। आर्टिस्ट बनकर, नहीं तो साइंटिस्ट होकर। नहीं तो कवि या साहित्यिक बनकर ही नाम कमाना होगा। आजकल यह भी खूब चला है। दो-एक कविता या उपन्यास लिखकर जरा नाम होते ही समझने लगते हैं कि फेमस हो गये। ऐसे लोगों का नाम अखबारों में भी छप जाता है। सेक्रेटरी जिस समय अखबार पढ़कर सुनाता है, तब कोई-कोई अजीब नाम कान में आकर लगता है।

"हू इज दैट ? कौन है यह आदमी ?"

"जी, उसे पद्मश्री की उपाधि दी गयी है।"

"क्यों ? उसने क्या किया था ?"

"प्रसिद्ध फिल्म-अभिनेता है, फेमस फिल्म-स्टार !"

फिर भी मिस्टर बोस का सन्देह नहीं जाता, "काफी रुपया होगा न ?"

सेक्रेटरी कहता, "जी हाँ, आजकल सिनेमा-थियेटर में पैसे की क्या कमी है !"

"कितना रुपया होगा ? एक मिलियन होगा ?"

एक मिलियन से नीचे मिस्टर बोस नहीं सोचते।

"तब कितना ? पाँच लाख ?"

"जी, वह तो ठीक से नहीं कह पाऊँगा।"

पाँच लाख रुपये से नीचे होने पर मिस्टर बोस की नजरों में वह पुअर आदमी होता। सड़क पर चलते-चलते मिस्टर बोस बाहर देखते रहते। कभी-कभी हैरान रह जाते। रेस्टोरेंट में देखते, भरा हुआ। सभी खा रहे है। ये लोग कैसे एफोर्ड करते हैं ? कैसे काम चलाते है ? वह खुद भी तो स्टाफ को तनख्वाह देते है। जितना देते हैं उनमें उन लोगों का घर चलना सम्भव नहीं है। फिर भी उसी में से पता नहीं कैसे वे लोग रेस खेलने पहुच जाते है, सिनेमा देखते हैं, चॉप-कटलेट खाते है, और भी भगवान जाने क्या-क्या करते है।

काफी अरसा हुए किसी अखबार में एक लेख छपवाया था, देश की 'इकॉनोमिक कंडीशन' को लेकर। उसमें उन्होंने दिखलाना चाहा था कि अपना देश जो गरीब है, इसके बहुत से कारण है। मुख्य कारण है, बंगाली लोग रुपया बहुत उड़ाते है। जितना कमाते है उसका आधा रेस के मैदान मे जाता है। नहीं तो रेस्टोरेंट या सिनेमा-थियेटर में जाता है। नहीं तो फिल्म-स्टारों को पद्मश्री कैसे मिलती है ? ज़रूर ही उन लोगों के पास पैसा हो गया है ! बिना पैसे के तो सरकार उन लोगों को रिकॉगनीशन देगी नहीं। सच ही मिस्टर बोस को यह बात अच्छी नहीं लगती कि सभी के पास रुपया हो। उस जमाने में जिस तरह ब्राह्मण ऊपर थे, वे लोग शास्त्र से विधान देते, उसी विधान के अनुसार काम चलता था और काफी अच्छी तरह से ही चलता था। आजकल की तरह तब रोज ही स्ट्राइक, रोज-रोज के लॉक-आउट और रोज की मीटिंग्स नहीं थी। बिना किसी कठिनाई के राज्य-कर्म चलता था। आज वैसा क्यों नहीं हो सकता ? होना सम्भव नहीं है। कारण, सभी के पास पैसा है। पहले जिसे गुड़ भी नसीब नहीं था, अब वही आदमी बिना चीनी के चाय तक नहीं पीता। दिस इज़ बैड। अब सभी मिलिऑनर होना चाहते हैं। दिस इज़ बैड। बड़े आदमी अगर कम होंगे तो

दूसरे लोग पहले की तरह से काबू में रहेंगे। मिस्टर बोस का कहना है—'स्टाफ के हाथ में ज्यादा रुपया मत दो, देने पर वे लोग पैसा फूंकेंगे। बाद में रुपया खत्म होते ही फिर मांगेंगे। और अगर रुपया नहीं मिलेगा तो स्ट्राइक करेंगे, हड़ताल करेंगे, सरकार को परेशान करेंगे।'

अचानक टेलीफोन की घंटी बज उठी।

रिसीवर हाथ में लेकर बोले, "हाँ, आपको टेलीफ़ोन किया था। आपने माईनिंग मिनिस्टर को फोन किया था क्या ? मैंने तीन बार ट्रंक बुक किया है, अभी तक नहीं मिला।"

उस ओर से मिस्टर गुप्त ने कहा, "दिल्ली की हालत बड़ी नेस्टी हो गयी है, मिस्टर बोस !"

मिस्टर बोस ने कहा, "क्यों ?"

"श्यामाप्रसाद मुकर्जी के मरने के बाद से अपोजिशन में ढंग की बात करनेवाला भी कोई आदमी नहीं है। नेहरूजी के सामने सभी भीगी बिल्ली बन जाते हैं। इसी का नाम डेमोक्रेसी है।"

"इसीलिए तो कह रहा हूँ, इस बार आप इलेक्शन में भाग लेते तो अच्छा रहता। कम-से-कम वेस्ट बंगाल की प्रॉब्लम तो फोकस हो पायेगी।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे, नहीं जनाब ! इस बुढ़ापे में मुँह पर सफ़ेदी पोतने की इच्छा नहीं है। हम लोगों ने जब पॉलिटिक्स शुरू की, तब यह सोचकर तो की नहीं थी। उस समय देश की आजादी ही हमारा लक्ष्य था। अब देश आज़ाद हो गया है। हमारा काम खत्म। अब ये नये लोग चलायें। हाँ, कोई ग़लती होने पर ठीक करने की कोशिश करेंगे, बस इतना ही।"

तभी जैसे कोई बात याद आ गयी।

"कई दिनों से सदाव्रत काफ़ी देर करके लौटता है, बात क्या है ? आपकी फैक्टरी में आजकल काम ज्यादा है क्या ?"

मिस्टर बोस हैरान रह गये।

"क्यों ? नहीं तो। वह तो आजकल रोज चार बजे ही निकल आता है। फैक्टरी क्लोज होने से काफ़ी पहले !"

"क्यों ? कहाँ जाता है ? मैंने पूछा नहीं था, पर लौटने में काफ़ी देर करता है।"

"सदाव्रत तो कह रहा था कि उसके कोई रिलेटिव टी० बी० हॉस्पि-टल में है। शायद वहीं जाता है।"

"कौन रिलेटिव ?"

"यह तो मुझे नहीं पता, मिस्टर गुप्त। किसी के पर्सनल मामलों में मैं इन्टरफियर नहीं करता हूँ। दैट इज़ माई हैबिट। मैं मनिला के बारे में भी कुछ नहीं कहता। अपनी वाइफ़ के बारे में भी वही है। मैं अपनी वाइफ़ तक से नहीं कहता कि कौन-से हॉर्स पर बाज़ी लगाओ! हर किसी की अपनी-अपनी लाइक्स और डिसलाइक्स होती हैं।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "आप ज़रा पूछियेगा तो! वह किसे देखने हॉस्पिटल जाता है? कौन है वह? उससे उसका क्या रिलेशन है?"

"लेकिन मेरा पूछना क्या ठीक होगा?"

"क्यों, इसमें बुराई क्या है? आप अगर खुद न पूछना चाहें तो मनिला से पुछवाइयेगा।"

"अरे हाँ, मनिला कह रही थी, सदाव्रत को उसने एक लड़की के साथ देखा है। उसे अपनी गाड़ी में लिए ड्राइव कर रहा था।"

काफ़ी देर से टेलीफ़ोन पर ही बात हो रही थी। आखिरकार मिस्टर बोस ने कहा, "आजकल दोनों जने क्लब में तो रोज़ मिलते ही हैं। मैंने मनिला से कह दिया है, तुम लोग जब एंगेज्ड हो गये हो तो यू मस्ट मीट। मैं सदाव्रत से खुद तो कहता नहीं हूँ। सदाव्रत के निकलने से पहले मनिला ही गाड़ी लेकर यहाँ आ जाती है। इसी तरह धीरे-धीरे मनिला सदाव्रत का रेजिमेंटेशन कर लेगी। आप फ़िक्र न करें!"

शिवप्रसाद बाबू ने निश्चिन्त होकर टेलीफोन रख दिया।

□ □ □
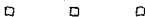
इसी सदी के पचास साल के बाद की बात है। पहले-सा आँख-मुँह बन्द करके रहनेवाला ज़माना अब नहीं है। लड़का एक दिन पैदा हुआ, बड़ा हुआ, पढ़ाई-लिखाई खत्म की। उसके बाद एक गुणवती बहू घर में लाकर घर के बड़े निश्चिन्त हो जाते। वे दिन लद चुके हैं। अब आदमी की सुख-सुविधाओं और आराम के साथ अशान्ति, यंत्रणा, क्षोभ और इच्छाएँ बढ़ती जा रही हैं। हर कदम पर डर है। लड़की इतनी देर से क्यों लौटती है? लड़का किससे मेल-जोल बढ़ा रहा है? कांग्रेसी है या कम्युनिस्ट? हर ओर नज़र रखनी होती है। सड़क पार करते समय जितनी सतर्कता की ज़रूरत है, जीवन-यात्रा का भी वही हाल है। ज़रा-सी चूक हुई कि सब गड़बड़। इतनी मुश्किल से कमाई हुई सारी दौलत बट्टेखाते में जायेगी। हो सकता है, किसी दिन बेटा किसी को साथ लिये आ धमके। आकर कहे,

"यही है मेरी वाइफ़ !"

इस तरह बहुत हुआ है। यह सब देखकर ही मिस्टर बोस डर गये थे, शिवप्रसाद बाबू भी चौंक उठे थे। अब दोनों ही ज़रा निश्चिन्त हैं। 'स्टेट्समैन' में सदाव्रत और मनिला के एंगेजमेंट की न्यूज़ निकल चुकी है। क्लब के मेम्बर, ऑफिसर, ब्रॉदर-ऑफिसर वगैरह सभी को पता लग चुका है। सभी को खुशी हुई। आफ्टर ऑल सदाव्रत लड़का अच्छा है। क्लब में किसी ने उसे नशे की हालत में नहीं देखा। सदाव्रत मनिला के साथ आता और पास ही बैठता। मिस्टर बोस ने कह दिया था, "मिस्टर गुप्त को हमेशा साथ रखना, अकेला न छोड़ना।"

शुरू में सभी खेलने के लिए तंग करते। लेकिन अब नहीं करते। मनिला जब खेलती होती, सदाव्रत एक ओर बैठा कोई किताब पढ़ता।

हर रोज़ इस तरह ताश खेलना इन लोगों को अच्छा भी लगता है। सदाव्रत देख-देखकर हैरान रह जाता। सारे कलकत्ता से अलग ये लोग जैसे अपने में ही खोये रहते। पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाता तो लॉन में जाकर चहल-कदमी करने लगता। रंग-बिरंगे फूलों के आस-पास घूमता। बगीचे के एक कोने में मालियों की कोठियाँ थीं। अँधेरे में किरोसिन का लैम्प जलाये वे लोग अपनी गृहस्थी चलाते होते। सदाव्रत की उन लोगों के साथ बात करने की इच्छा होती। उन लोगों से पूछने की इच्छा होती—आज उन लोगों ने क्या पकाया है ?

सदाव्रत उन लोगों के लिए साहब था। सदाव्रत को आते देखकर वे लोग संकोच से सिमट जाते। इस शराब, टेरिलिन, गैबर्डीन और जुए के सामने उनकी चिथड़ा साड़ी और चीकट फतूरी जैसे उनका मखौल उड़ाती। शोरगुल मचाकर जब ये लोग चले जाते तो वे लोग बाहर निकलते। क़ीमती सिगरेट के डिब्बे बटोरते। टीन के उन डिब्बों के लिए उन लोगों में छीना-झपटी और कभी-कभी तो मारपीट तक की नौबत आ जाती। प्लेटों में पड़े साहबों के जूठे केक और डबलरोटी के टुकड़ों के लिए लड़के-लड़कियों में छीना-झपटी, खींचातानी होती। बाद में काफ़ी रात होने पर भी कोई-कोई मेम्बर तो उठना ही नहीं चाहता। नशे में धुत ! एकदम बेहोश हो गये होते। कुर्सी से फ़र्श पर लुढ़क पड़ते। जिसे सामने पाते उसे ही अँग्रेज़ी में गाली देते। लेकिन इसके लिए किसी को चूँ करने की भी मजाल नहीं होती। कै करने पर भी किसी को कुछ भी कहने का हक़ नहीं होता। तब मैनेजर आकर मालियों और बैरों को बुलाता। साहब उन्हें भी

भद्दी-भद्दी गालियाँ सुनाते ; सभी साहब की 'डंडाडोली' करके गाड़ी में डालकर घर पहुँचा देते। फिर भी किसी को कुछ कहने का हुक्म नहीं था। साहब किसी गवर्नमेंट ऑफ़िस के क्लास-वन ग्रेड के ऑफिसर हैं। पाँच हज़ार रुपये महीना तनख्वाह है।

एक दिन सदाव्रत के सामने ही घटना हो गयी। सदाव्रत सिर से पाँव तक घिनाने लगा। और सभी मिस्टर मल्लिक का हाल देखकर हँस रहे थे। मनिला भी हँस रही थी।

सदाव्रत अपने को और नहीं रोक पाया। बोला, "ह्वाई डु यू लाफ ? आप लोग हँस क्यों रहे हैं ? ब्रूट की हंटर से मरम्मत नहीं कर सकते ?"

सभी खिलखिलाने में मस्त थे।

मिस्टर भोपत्कर ने कहा, "मिस्टर गुप्त, पता है यह कौन हैं ? ही इज नो लेसर ए पर्सन दैन मिस्टर मल्लिक—मिस्टर मल्लिक जो हैं, वेस्ट बंगाल गवर्नमेंट भी वही है !"

और कोई होता तो यह बात सुनकर चौंक जाता। लेकिन सदाव्रत पर इसका कोई असर नहीं हुआ। बोला, "उससे मुझे क्या मतलब ? और आपको ही क्या है ?"

इसके बाद ही मजा किरकिरा हो जाता। खेल ठप हो जाता। पेगी को गोद में लिये मनिला उठ खड़ी हुई। सदाव्रत भी गाड़ी में आ बैठा।

गाड़ी में बैठते ही बोला, "मनिला, मुझसे फिर कभी क्लब आने को न कहना।"

मनिला ने भौंहें टेढ़ी करके पूछा, "क्यों ?"

"दे आर स्कॉण्ड्रल्स ! पाँच हज़ार रुपये तनख्वाह है तो मुझे क्या ? मुझे कोई लोन लेने तो जाना नहीं है ! उसके पास मैं भीख माँगने भी नहीं जाऊँगा। मिस्टर मल्लिक बड़े आदमी हो सकते हैं, लेकिन हम लोगों को दिखला-दिखलाकर इस तरह परेड करना, यह सब बर्दाश्त करना भी ठीक नहीं है।"

मनिला बोली, "न-न, यह बात नहीं है। असल में भूल मि० मल्लिक की ही है। ह्विस्की के साथ कोई जिन पंच करके पीता होगा ? पंच करने पर तो नशा होगा ही। मैंने कितनी बार कहा है, आप इस तरह पंच करके न पिया करें, मि० मल्लिक ! उससे टिप्सी हो जायेंगे। लेकिन वह हैं कि सुनते ही नहीं।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, यह बात नहीं है। तुम समझती नहीं हो।

वह नशा करके जतलाना चाहते हैं कि वह बड़े आदमी हैं। उनके पास चाहे जितनी शराब पीने के लिए पैसा है।"

"वह तो है ही। वह एफोर्ड तो कर ही सकते हैं!"

"लेकिन सबको नास्टी भाषा में गाली-गलौज करने का उन्हें क्या हक है?"

मनिला को शायद कुछ बुरा लगा। बोली, "लगता है तुम्हें तो ड्रिंक करना ही पसन्द नहीं है!"

"नहीं है।"

"तब तो शादी के बाद तुम मुझे भी ड्रिंक नहीं करने दोगे?"

"ड्रिंक करना अच्छी बात नहीं है।"

"यह भी खूब कहा! शादी करूँगी इसलिए ड्रिंक नहीं कर पाऊँगी! ताश नहीं खेल पाऊँगी!"

"वह तुम्हारी मर्जी पर है, लेकिन जिस रास्ते तुम चल रही हो मेरे खयाल से वह ठीक नहीं है।"

"लेकिन हर कल्चर्ड लेडी और हर कल्चर्ड जैंटलमैन ड्रिंक करते हैं, ताश खेलते हैं। मिसेज़ आहूजा, मिस भोपतकर, मिसेज़ मैनियल, मिस फेनी तलियार खान, सभी तो ड्रिंक करती हैं। सभी रेस में बाज़ी लगाती है।"

"मेरी माँ वह सब नहीं करती। शराब नहीं पीती। रेस भी नहीं खेलती।"

"लेकिन मेरी माँ तो ड्रिंक करती हैं। असली विलायती 'रम'! रेस में बैटिंग भी करती है।"

"मनिला, तुम्हारी माँ एक्सेप्शन है। मेरी जान-पहचान की कोई लड़की ड्रिंक नहीं करती, रेस में बाजी नहीं लगाती।"

मनिला यह सुनकर ज़रा खिन्न हो गयी। बोली, "तुम कितनी कल्चर्ड लड़कियों को जानते हो? तुमने कितनी देखी हैं?"

"कई एक ऐसी लड़कियों को जानता हूँ।"

"वे लोग क्या कल्चर्ड हैं? वे लोग क्या कॉन्टिनेंट गयी हैं? उस दिन तुम्हारी गाड़ी में जिसे देखा था, वह कौन है? हू इज़ शी? दैट, दैट हैगर्ड गर्ल! मेरे साथ एक शब्द भी नहीं बोल पायी। कल्चर्ड लेडी को कैसे बात करना चाहिए, यह भी नहीं मालूम। तुम उसे कल्चर्ड कहते हो?"

सदाव्रत ने गम्भीर होकर कहा, "जिसके बारे में तुम जानती नहीं हो,

उसके बारे में इस तरह क्यों कहती हो, मनिला ? वह गरीब हो सकती है, देखने में ख़राब हो सकती है, लेकिन अगर वह कल्चर्ड नहीं है तो तुम भी कल्चर्ड नहीं हो !"

"ह्वाट डु यू मीन, सदाव्रत ? तुम मुझे इतना मीन, इतना ओछा समझते हो ?"

सदाव्रत ने कहा, "तुम्हें ओछा नहीं समझता, लेकिन तुम इतना सब जान-बूझकर उसे ही इतना नीचा क्यों मानती हो ? उसमें भी तो सेल्फ-रेस्पेक्ट जैसी कोई चीज़ हो सकती है ! नसीब का फेर है कि वह गरीब हो गयी। क्योंकि हम लोगों ने ही उसे ग़रीब बनाकर रख छोड़ा है, लेकिन उसकी भी तो गाड़ी में चढ़ने की इच्छा हो सकती है। वह भी तो सिल्क की साड़ी पहनना चाह सकती है। पैसा होने पर वह भी तुम्हारी तरह स्काई-स्क्रेप जूड़ा बँधवाती। उसके काका के पास पैसा होता तो वह भी कॉन्टिनेंट घूमने जाती।"

मनिला गाड़ी के अँधेरे में थोड़ी देर तक सिसकती रही। बोली, "मेरे बारे में तुम्हारी यही ओपीनियन है ? मैं अन्कल्चर्ड हूँ ?"

सदाव्रत को अब होश आया कि वह दो हज़ार रुपये महीना की घूस खाये बैठा है।

धीरे-से बोला, "तुम नाराज न हो, मनिला। मेरा यह मतलब नहीं था।"

मनिला जैसे मन-ही-मन कहने लगी, 'मुझे मालूम था, तुम एक दिन यही बात कहोगे। इसीलिए तो मैं पेगी को इतना चाहती हूँ। पेगी कभी इतना 'रूड' होकर बात नहीं करता। तुम्हें पता नहीं है, पेगी मुझे कितना प्यार करता है। तुमसे भी ज़्यादा प्यार करता है। माँ तो इसीलिए कहती है कि पहले जन्म में पेगी मेरा लवर था।'

अँधेरे में ठीक से नहीं दीख रहा था। लेकिन सड़क की रोशनी में दिखलायी दिया—मनिला के गालों के मैक्स-फैक्टर के ऊपर से आँसू ढुलक रहे थे।

सदाव्रत ने मनिला का हाथ पकड़ा।

"तुम रो रही हो, मनिला ! छिः !"

"मैं रोऊँ नहीं ? तुम क्या कह रहे हो ? मैंने ऐसा क्या किया है कि मुझे इस तरह रुला रहे हो ? तुम्हें शायद पता नहीं है, एक दिन मैं रोयी थी, इसीलिए डैडी ने मेरी आया को डिस्चार्ज कर दिया था। तुम्हें पता

को हुआ था, अब शैल को पकड़ेगा। शैल को भी बचाना मुश्किल होगा।

सदाव्रत ने मन्मथ से भी कहा।

मन्मथ ने कहा था, "हाँ, सदाव्रत दा! वहाँ ले जाकर बचाना मुश्किल होगा।"

"तुम्हारी नजर में और कोई अच्छा मकान है?"

"ढूँढने पर कितने ही मकान मिलेंगे। लेकिन किराया ज्यादा माँगेंगे। इसलिए खोजता नहीं।"

"कितना किराया माँगते हैं?"

"दो सौ रुपये से कम में फ़्लैट नहीं मिलेगा।"

"ठीक है, मैं दो सौ रुपये ही दूँगा। लेकिन घर में हवा, धूप, पानी खूब होना चाहिए। रुपया देने के लिए मैं तैयार हूँ, तुम ठीक करो।" सदाव्रत ने दृढ़तापूर्वक कहा।

अचानक मनिला की बात पर ध्यान टूटा।

"तुमने कभी पान एम की पाँच कोर्स की डिनर ली है? ह्वाट ए लवली डिनर! फॉर्टी थाउजैंड फीट ऊपर एपन, टॉट! हाऊ लवली!..."

सदाव्रत ने सिर्फ इतना ही कहा, "ठीक है, पान एम से ही जाना होगा।"

और इसके बाद ही मिस्टर बोस के पोर्टिको के नीचे पहुँच गाड़ी रुकी। बैरे ने आकर दरवाज़ा खोल दिया।

□ □ □

हिन्दुस्तान पार्क के रिटायर्ड बूढ़े उस दिन भी आये थे।

"अरे, मिस्टर गुप्त हैं क्या?"

कॉलिंग बेल दबाकर थोड़ी देर राह देखनी होती। तब गोविन्द निकल कर आता। कहता, "जी, बाबू तो नहीं हैं।"

बूढ़े लोग पूछते, "इस बार कहाँ, इलाहाबाद, या इन्दौर?"

"जी, बाबू आरामबाग गये हैं, मीटिंग है।"

"बाप रे! इस बुढ़ापे में भी इतनी मीटिंग अटेण्ड कर लेते हैं। हम तो साहब श्यामबाजार जाते-जाते ही हाँफने लगते हैं। मेरी लड़की और जमाई बरानगर में हैं। उन लोगों से मुलाकात ही नहीं हो पाती।"

फिर कॉलिंग बेल।

"कौन?"

गोविन्द ने आकर दुहरा दिया, "नहीं, बाबू नहीं हैं। आरामबाग गये हैं।"

"बाबू नहीं, छोटे बाबू है ? सदाव्रत बाबू ?"

सदाव्रत घर में ही था। सारा दिन ऑफिस, फिर मनिला के साथ क्लब, वह भी एक अजीब हालत होती है। वहाँ से हॉस्पिटल और हॉस्पिटल से अभी घर आया ही था।

"अरे विनय, तू ?"

वही विनय। अन्दर आकर बैठा। सूट-बूट डाटे था। वही डेढ़ सौ वाला इन्स्टॉलमेंट में बनवाया सूट।

"तुझसे भाई एक काम था !"

"तू आजकल कर क्या रहा है ?"

"नौकरी, लेकिन कहने लायक कुछ नहीं है। अढाई सौ रुपये मिलते हैं। सुना है तेरे पिताजी मिस्टर गुप्त अख़बार निकालने वाले हैं ?"

"अख़बार ? न्यूज़-पेपर ?"

"हाँ, सुना है बडे-बड़े कैपिटलिस्टों की बैकिंग होगी। एक करोड़ की लागत से शुरू होगा। अख़बार कोई सौ-दो सौ आदमियों से तो नहीं चलने का। काफी आदमियों की ज़रूरत होगी। हाँ तो, अपने पिताजी से कहकर मुझे एक नौकरी दिला दे न। सुना है मिस्टर बोस भी एक पार्टनर हैं।"

सदाव्रत हैरान रह गया।

"कहाँ, मुझे तो कुछ भी नहीं पता ! लेकिन अख़बार में नौकरी करके तू क्या करेगा ? तेरा लिखने का शौक क्या अभी तक चल रहा है ?"

एक समय विनय को सचमुच लिखने का शौक था। कॉलिज के 'एस्से-कम्पीटीशन' में फर्स्ट आया था। कॉलिज मैगज़ीन में भी कहानियाँ लिखता था। बाद में उसका एडीटर भी बन गया था। वही विनय आज ढाई सौ रुपये की नौकरी कर रहा है और सदाव्रत को दो हज़ार रुपये मिल रहे हैं। ज़मीन-आसमान की तुलना ज़रा बड़ी पड़ती है, फिर भी वही पुरानी तुलना ही याद आयी। वही विनय आज नौकरी के लिए सदाव्रत के पास आया है। उस दिन तक यही विनय सड़कों पर चक्कर काटता फिरता था। बाद में कोई निकम्मा कहे इसलिए घर से निकलकर फुटपाथ और सड़कों पर चक्कर लगाता। सदाव्रत ने विनय के चेहरे की ओर देखा। यह सच है कि उसने क़ीमती सूट पहन रखा था। दाढ़ी भी ठीक से बनी हुई थी, यह भी ठीक था। लेकिन आज विनय बड़ा बुझा-बुझा-सा लग रहा था। इससे तो जब बेकार था तभी उसका चेहरा ज्यादा ब्राइट लगता था। उसकी आँखों में ज्यादा चमक थी। आज अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी मंज़ूर करके विनय

जैसे बुझ-सा गया था। अढाई सौ रुपये की नौकरी करके उसने सिर्फ अपना ही नहीं, सारी बंगाली जाति का मुँह काला किया है। कम-से-कम सदाव्रत को तो यही लगा। सदाव्रत जैसे खुद ससुर के यहाँ काम करके अपने को खत्म कर रहा है, विनय का भी वही हाल है। हो सकता है मन-ही-मन विनय को सदाव्रत से जलन होती हो। लेकिन उसे क्या मालूम कि दोनों का ही एक हाल है। दोनों ही इस शताब्दी के अर्थ-कौलिन्य की बलि हैं। इंडिया के इस नये वर्णाश्रम-धर्म की वेदी पर उन दोनों की बलि चढ़ायी गयी है। क्यों विनय विद्रोह नहीं कर पाया ? आदमी जिस तरह पहले धर्म के लिए लड़ता था, दुश्मन से लड़ता था, भूख, नींद, हर चीज से लड़ा है? विनय के सामने तो उस-जैसी लाचारी नहीं थी। विनय को तो टी० बी० अस्पताल के रोगी का खर्च चलाना नहीं होता। फिर ? लेकिन अढाई सौ रुपये में विनय को क्या मिला ? डेढ सौ रुपये का टेरिलिन या गैबरडीन सूट ? और लोगों को दिखाने के लिए एक काम। विनय इतने-से के लिए फँस गया ! इतने सस्ते दामों में अपने को बेच दिया !

"पता है एक सूट और दिया है बनने। मोहम्मद अली की दूकान में। तुझे बाद में किसी दिन दिखलाऊँगा। एकदम नये डिज़ाइन की कोटिंग है, चालीस रुपये गज।"

फिर जरा रुककर कहा, "तू जो भी कह भाई, मुसलमान दर्जियों की-सी बढ़िया सिलाई कोई नहीं कर सकता।"

अचानक अन्दर से गोविन्द आया। बोला, "छोटे बाबू, आपका टेलीफ़ोन !"

"मेरा टेलीफोन ? कौन है, रे ?"

विनय ने कहा, "अच्छा तो भाई, मैं चलता हूँ। मेरी बात याद रखना।"

जल्दी से अन्दर आकर रिसीवर उठाते ही सदाव्रत अवाक् रह गया। मिस्टर बोस का फोन था।

"तुम जरा अभी सीधे चले आओ, सदाव्रत। मनिला खूब रो रही है। एक सीरियस मामला हो गया है।"

"क्या हुआ ?"

"वह तुम आकर ही जान पाओगे। मनिला के नाम एक चिट्ठी आयी है। तुम्हारे अगेन्स्ट कई 'एलिगेशन' हैं। वेरी सीरियस ऐलिगेशन्स।"

"मेरे अगेन्स्ट ? किसने लिखा है ?"

"नाम नहीं है। लेकिन लगता है ऐसे किसी ने लिखा है, जो तुम्हें काफ़ी

अच्छी तरह जानता है। मुझे लगता सब फैक्ट है। एक बात भी झूठ नहीं है। और मनिला भी करोबॅरेट कर रही है।"

"लेकिन मेरे बारे में ऐसा क्या हो सकता है? और कौन लिखेगा? और आप सब-कुछ सच कैसे मान रहे हैं? लिखाई कैसी है? मर्दानी या जनानी?"

"मेरे खयाल में लिखावट जनाने हाथ की है। इट इज ए लांग लेटर, काफी लम्बी चिट्ठी! मनिला ने पाते ही मुझे दिखलायी। मुझे दिखलाकर अच्छा ही किया। तुम फौरन चले आओ। मनिला रो-रोकर घर भर दे रही है। तुम्हे तो पता ही है, मनिला के रोने से मुझे कितना दु:ख होता है! लगता है मुझे आज भी स्लीपिंग पिल लेनी होगी।"

"अच्छा, मैं अभी आया।"

कहकर सदाव्रत ने टेलीफोन छोड़कर नीचे आकर गैरेज से गाड़ी निकाली। मिस्टर बोस की बात होती तो आराम से जाता। लेकिन यह मिस बोस की बात थी। मिस्टर बोस की इकलौती लड़की। मिस्टर बोस जैसे लोग अगर बाघ होकर पैदा होते तब भी उनकी आदत में, व्यवहार में कोई फर्क नहीं होता। शायद बाघ बनाते-बनाते ही भूल से ब्रह्मा ने उन्हें आदमी बना दिया था। और तभी से मिस्टर बोस ने जैसे सारी पृथ्वी को एक जंगल मान लिया था। खासकर इंडिया को। इंडिया के जंगल में मिस्टर बोस जैसे बेफिक्री से शिकार मारते घूम रहे थे। उन लोगों ने मान लिया था कि इस इंडिया के जो ठेकेदार है, सो बने रहें। उनसे उनका कुछ भी नहीं आने-जाने का। जितने दिन वे जिन्दा हैं हुकूमत करने का अधिकार उन्हीं का है। और किसी का नहीं है। एक 'मुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' हुई है, कल और होंगी। एक दिन एक से अनेक होंगी। बाद में और भी ज्यादा। फिर छांट-छांटकर जिन्हें ऑफ़िसर बनाया है, उनके रेफरेन्स के ज़ोर पर और ऊपर उठेंगे। उठते-उठते एक दिन पूरे जंगल के मालिक बन बैठेंगे। ऊपर और कोई नहीं होगा।

मिस्टर बोस के ऊपर कोई रहे यह उन्हें पसन्द नहीं है।

उनकी इच्छा थी आज वह जैसे अपनी फर्म के मालिक हैं, एक दिन इस इंडिया के भी मालिक बन जायेंगे। कम-से-कम मालिक नाम के लोगों को कंट्रोल करेंगे। उनकी इच्छा थी कि टेलीफ़ोन पर दिल्ली में प्रेसिडेंट को वह जो करने को कहे, प्रेसिडेंट वही करे। या कुछ भी करते वक़्त मिस्टर बोस की राय लेकर करे। एक ही बात है।

और अगर ऐसा ही नहीं होना तो एक जरा-सी फ़र्म के मैनेजिंग डाइरेक्टर होने से फायदा ही क्या है।

यह जो इंडिया है, इतना बड़ा 'वास्ट कन्ट्री', इस पर हुकूमत करना उन्हीं का काम है। ये जो लोग कैबिनेट में हैं! अख़बार पढ़-पढ़कर हँसते और कैबिनेट-मिनिस्टरों की बुद्धि का हाल देखकर दाँतों तले अँगुली दबाते। कहते, 'नहीं, अब इंडिया नहीं रुक सकती। इंडिया विल गो टु डॉग्स !'

इंडिया जैसे उनकी बपौती हो। उनका नुकसान हो और वे बैठ-बैठे देखा करें। इंडिया का नुकसान होते देखकर ही टेलीफोन उठाते। ट्रंक-कॉल पर दिल्ली बात करते, "हलो मिस्टर भोजराज, पार्लमेंट में आप लोग क्या तमाशा कर रहे हैं ?"

मिस्टर भोजराज एम० पी० कहते, "क्यों ? क्या हुआ, मि० बोस ?"

मिस्टर बोस कहते, "आज के पेपर में आपके प्राइम मिनिस्टर का आर्ग्युमेंट पढ़ा। आप लोग क्या इतना भी नहीं सिखा पाते ? काण्ट यू टीच हिम हाऊ टु टाक सेन्स ? लोग हँस रहे हैं। आइज़नहावर, डलेस, मैकमिलन, सब क्या सोचते होंगे ?"

सदाव्रत मिस्टर बोस को जान चुका है। फिर भी गाड़ी ड्राइव करते-करते सोच रहा था, ऐसी कौन-सी जरूरी चिट्ठी है कि मिस बोस रो-रोकर घर भरे दे रही है। और जिसके लिए मिस्टर बोस ने इतनी रात को भी बुला भेजा है। चिट्ठी कौन लिख सकता है ? सदाव्रत के ख़िलाफ़ मिस बोस को कौन लिख सकता है ? शैल ? शैल के साथ मनिला का थोड़ी देर का परिचय जरूर हुआ था। उस दिन, वही जिस दिन दोनों को गाड़ी में छोड़कर दवा लेने गया था। उसी बीच कुछ हो गया क्या ? फिर उसके खिलाफ लिखने को है ही क्या ?

याद आया। उस दिन दवा खरीदने के बाद एक ही गाड़ी में हॉस्पिटल लौटते समय शैल एक शब्द भी नहीं बोली। दोनों ने पूरा रास्ता चुप रह-कर काटा। और बात करने लायक भी तो कुछ नहीं था। कहता भी तो क्या ? मास्टर साहब बीमार हैं। थोड़ी-थोड़ी देर बाद आँखें खोलते और कहते—'मैं अच्छा हो गया हूँ। अब और यहाँ नहीं रहूँगा।'

कहकर आँखें फिर बन्द कर लेते।

नर्स, डॉक्टर सभी पास खड़े रहते। नर्स रात-दिन सेवा करती। सभी कहते, "अजब पेशेन्ट है !"

पेशेन्ट अजीब ही तो था। यहाँ जो लोग आते, वे सभी डॉक्टर और

नर्स सभी को बड़ी तकलीफ देते। इस मरीज को तो हमेशा यही चिन्ता रहती थी कि नर्स को तकलीफ़ होगी। नर्स से कहते, "तुम्हें और परेशान होने की जरूरत नहीं है, बेटी। तुम जाकर सो जाओ।"

केदार बाबू पूछते, "तुम्हे कितने रुपये मिलते है ?"

जो सुनता हैरान रह जाता।

"अरे बेटी, तुम्हे परेशानी होगी ! मेरी वजह से तुम्हें बड़ी तकलीफ हो रही है।"

नर्स कहती, "आपको इन सब बातों के लिए परेशान होने की जरूरत नही है। आपके ठीक हो जाने पर हम लोगो को खुशी होगी।"

केदार बाबू कहते, "मैं ही कैसे पड़ा रह सकता हूँ, बेटी ! मेरी भतीजी घर पर अकेली होगी। यहाँ इस तरह कब तक पडे रह सकता हूँ ! और भी कितने ही काम हैं, बेटी ! मैं अगर ज्यादा दिन यहाँ रहा तो मेरे सब-के-सब छात्र आवारागर्दी करते फिरेंगे। कोई भी नही पढेगा।"

फिर जरा रुककर कहते, "और वह जो लडका मुझे सुबह-शाम देखने आता है, वह मेरा सबसे अच्छा छात्र है। समझी, बेटी ! दो हजार रुपये महीना कमा रहा है। मन लगाकर पढा है। अच्छी तनख्वाह नही मिलेगी ? दो हजार रुपये महीना क्या छोटी-मोटी बात है, कहो न ? वह जो एक और लड़का मेरी भतीजी के साथ आता है, उसके बाप की तनख्वाह एक हजार रुपये माहवार है।"

नर्स कहती, "आप ज्यादा बात न करिये। सो जाइये।"

केदार बाबू कहते, "मुझे नीद नहीं आयेगी, बेटी ! लडकों की वजह से नीद नही आती। इम्तहान सिर पर है।"

केदार बाबू जब किसी भी तरह नही सोते तो नर्स उन्हें नीद की गोली खिलाकर सुला देती। केदार बाबू तब सो जाते। सिर पर लड़कों की चिन्ता का बोझ लिए वह आदमी जैसे शिशु बन जाता। मुँह से और शब्द नही निकलते।

सदाव्रत के आने पर नर्स कहती, "यह बात बहुत करते हैं। इतनी बात करने के बाद किसी को नीद आ सकती है ?"

सदाव्रत ने कहा, "यह हमेशा ही जरा ज्यादा बोलते है।"

"आपके बारे में ही ज्यादा बातें करते हैं। कहते हैं कि आप ही उनके सबसे अच्छे विद्यार्थी हैं। अच्छा, इनकी पत्नी नहीं है ?"

"नही, इन्होंने शादी नही की। इस तरह के लोग ससार में कभी-कभी

ही आते हैं। सर पी० सी० राय को देखा था और दूसरे ये हैं। जरा अच्छी तरह देखभाल करियेगा। इनका कोई नुकसान होने पर मैं अपना नुकसान समझूंगा।"

उस दिन दवा लेकर लौटते समय सदाव्रत ने सोचा था, शैल वे ही सब बातें फिर उठायेगी। लेकिन वह रास्ते-भर चुपचाप बैठी रही। एक शब्द भी नहीं बोली। जो सदाव्रत रात-दिन तरह-तरह की समस्याओं के कारण परेशान था, शायद उसे और परेशान नहीं करना चाहती थी। इसलिए बात नहीं की। इतना ही नहीं, अस्पताल लौटने के बाद भी कोई बात नहीं की।

केदार बाबू को उस समय होश था। सदाव्रत को देखते ही बोले, "सदाव्रत, अब मैं काफ़ी अच्छा हो गया हूँ।"

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा आपको होना ही होगा, मास्टर साहब ! आपके बिना ठीक हुए दुनिया चलेगी कैसे ? मैं जैसे भी होगा आपको अच्छा कर ही लूंगा।"

केदार बाबू के मुंह पर एक हल्की-सी मुसकराहट फूट उठती। कहते, "ठीक कह रहे हो, सदाव्रत ! नहीं तो इम्तहान में सभी फेल हो जायेंगे।"

"नहीं, मास्टर साहब ! इसलिए नहीं ! जिस जंगल में शेर नहीं, वह जंगल, जंगल ही नहीं है। चारों ओर इतने जानवर हैं, पशुराज के न होने पर जो जिसकी मर्ज़ी में आयेगा, करेगा।"

केदार बाबू जैसे फिर सोच में पड़ गये। बोले, "ऐसी बात है क्या ? आजकल क्या हर कोई अपने मन-मुताबिक कर रहा है ?"

सदाव्रत ने कहा, "सर पी० सी० राय के बाद आपको छोड़कर देश में और है ही कौन ?"

"लेकिन मेरी बात तो कोई मानता ही नहीं, सदाव्रत ! मैं तो खाली बकवास करता हूँ। मैं क्या पी० सी० राय हूँ ?"

"पी० सी० राय की बात भी मास्टर साहब, किसी ने नहीं सुनी। उनकी जिन्दगी में किसी ने भी उनकी बात नहीं मानी। लेकिन वह थे, इसी से दुनिया जरा आगे बढ़ पायी। स्वामी विवेकानन्द की बात ही तब किसने सुनी थी ? और आज हर किसी की ज़बान पर स्वामी विवेकानन्द और पी० सी० राय की बातें है। स्कूलों में कम-से-कम उनकी जीवनी तो पढ़ाई जाती है।"

केदार बाबू ने नर्स की ओर देखा। कहा, "देखती हो बेटी, सदाव्रत

मुझे कितना चाहता है। मेरे लिए कितना पैसा खर्च कर रहा है। कल रात को तुम्हें बतलाया था, याद है न !"

इतनी बातें हुई। सब-कुछ हुआ। लेकिन शैल के मुंह से इस बीच एक शब्द भी नहीं निकला। मन्मथ ने भी बात नहीं की। बाद में दवा नर्स के हाथ में देकर सदाव्रत हमेशा की तरह चला गया। और सिर्फ उसी दिन क्या ? हर दिन ही तो शाम के समय मन्मथ के साथ शैल अस्पताल आती और वहाँ उससे मुलाकात होती। लेकिन शैल ने किसी भी दिन तो मुँह नहीं खोला। कोई शिकायत-शिकवा, कुछ भी तो नहीं ! केदार बाबू धीरे-धीरे अच्छे हो रहे थे, इसलिए सभी को आशा थी। सदाव्रत को सभी श्रद्धा और स्नेह की नजरों से देखते। सदाव्रत भी रोज अपनी गाड़ी लेकर आता। आकर बुखार का चार्ट देखता। केदार बाबू के साथ दो-चार बातें करता। नर्स से एक-आध सवाल करता। फिर डॉक्टर के साथ मुलाकात करके चला जाता क्लब ! सुबह से ऑफिस का काम, फिर हॉस्पिटल और फिर क्लब। इसी तरह दिन गुजर रहे थे। इतने दिनों में शैल ने एक बार भी मुँह नहीं खोला।

सदाव्रत को लगता कि शायद वह इतना रुपया खर्च कर रहा है, इसलिए शैल-जैसी तुनुक-मिजाज लड़की भी चुप हो गयी है। लेकिन शैल को क्या पता नहीं कि अगर केदार बाबू बीमार नहीं होते तो वह यह नौकरी छोड़ ही देता। नहीं तो खर्च कैसे चलता ? केदार बाबू का इलाज कैसे होता ? बागबाजार के मकान से वह अपनी जिम्मेदारी पर केदार बाबू को यहाँ लाया था। इसलिए मन-ही-मन उसे भी जरा डर था। अगर कुछ ऐसा-वैसा हो जाता तो शैल को क्या मुँह दिखला पाता ?

काफ़ी रात हो गयी थी। एलिगन रोड पर आकर हॉर्न बजाते ही दरबान ने दरवाजा खोल दिया। गाड़ी को पोर्टिको में पार्क कर सदाव्रत फटाफट सीढ़ियाँ चढ़ता ऊपर पहुँचा।

□ □ □

उस दिन भी बस में शोरगुल होने लगा। बस जिस समय कॉलेज स्ट्रीट के मोड़ के पास पहुँची तब अचानक एक आदमी चिल्लाने लगा, "अरे भाई, मेरा मनीबैग कहाँ गया ?"

देखते-देखते चलती बस के अन्दर करीब सौ आदमी आँखें फाड़े खड़े थे। सभी ने अपने-अपने पॉकेट में हाथ डालकर देखा। सभी ने साँप की तरह फन खड़ा किये सतर्क दृष्टि से चारों ओर सिर घुमाकर देख लिया।

ही आते है। सर पी० सी० राय को देखा था और दूसरे ये हैं। ज़रा अच्छी तरह देखभाल करियेगा। इनका कोई नुक़सान होने पर मैं अपना नुक़सान समझूँगा।"

उस दिन दवा लेकर लौटते समय सदाव्रत ने सोचा था, शैल वे ही सब बातें फिर उठायेगी। लेकिन वह रास्ते-भर चुपचाप बैठी रही। एक शब्द भी नही बोली। जो सदाव्रत रात-दिन तरह-तरह की समस्याओं के कारण परेशान था, शायद उसे और परेशान नहीं करना चाहती थी। इसलिए बात नही की। इतना ही नही, अस्पताल लौटने के बाद भी कोई बात नही की।

केदार बाबू को उस समय होश था। सदाव्रत को देखते ही बोले, "सदाव्रत, अब मैं काफी अच्छा हो गया हूँ।"

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा आपको होना ही होगा, मास्टर साहब! आपके बिना ठीक हुए दुनिया चलेगी कैसे? मैं जैसे भी होगा आपको अच्छा कर ही लूंगा।"

केदार बाबू के मुँह पर एक हल्की-सी मुसकराहट फूट उठती। कहते, "ठीक कह रहे हो, सदाव्रत! नही तो इम्तहान मे सभी फेल हो जायेंगे।"

"नही, मास्टर साहब! इसलिए नही! जिस जंगल मे शेर नही, वह जंगल, जगल ही नही है। चारो ओर इतने जानवर हैं, पशुराज के न होने पर जो जिसकी मर्जी मे आयेगा, करेगा।"

केदार बाबू जैसे फिर सोच में पड़ गये। बोले, "ऐसी बात है क्या? आजकल क्या हर कोई अपने मन-मुताबिक कर रहा है?"

सदाव्रत ने कहा, "सर पी० सी० राय के बाद आपको छोड़कर देश मे और है ही कौन?"

"लेकिन मेरी बात तो कोई मानता ही नही, सदाव्रत! मैं तो खाली बकवास करता हूँ। मैं क्या पी० सी० राय हूँ?"

"पी० सी० राय की बात भी मास्टर साहब, किसी ने नही सुनी। उनकी जिन्दगी मे किसी ने भी उनकी बात नही मानी। लेकिन वह थे, इसी से दुनिया ज़रा आगे बढ़ पायी। स्वामी विवेकानन्द की बात ही तब किसने सुनी थी? और आज हर किसी की ज़बान पर स्वामी विवेकानन्द और पी० सी० राय की बातें हैं। स्कूलो मे कम-से-कम उनकी जीवनी तो पढाई जाती है।"

केदार बाबू ने नर्स की ओर देखा। कहा, "देखती हो बेटी, सदाव्रत

मुझे कितना चाहता है। मेरे लिए कितना पैसा खर्च कर रहा है। कल रात को तुम्हे बतलाया था, याद है न !"

इतनी बातें हुईं। सब-कुछ हुआ। लेकिन शैल के मुँह से इस बीच एक शब्द भी नहीं निकला। मन्मथ ने भी बात नहीं की। बाद में दवा नर्स के हाथ में देकर सदाव्रत हमेशा की तरह चला गया। और सिर्फ उसी दिन क्या ? हर दिन ही तो शाम के समय मन्मथ के साथ शैल अस्पताल आती और वहाँ उससे मुलाकात होती। लेकिन शैल ने किसी भी दिन तो मुँह नहीं खोला। कोई शिकायत-शिकवा, कुछ भी तो नहीं ! केदार बाबू धीरे-धीरे अच्छे हो रहे थे, इसलिए सभी को आशा थी। सदाव्रत को सभी श्रद्धा और स्नेह की नजरों से देखते। सदाव्रत भी रोज़ अपनी गाड़ी लेकर आता। आकर बुखार का चार्ट देखता। केदार बाबू के साथ दो-चार बातें करता। नर्स से एक-आध सवाल करता। फिर डॉक्टर के साथ मुलाकात करके चला जाता क्लब ! सुबह से ऑफ़िस का काम, फिर हॉस्पिटल और फिर क्लब। इसी तरह दिन गुजर रहे थे। इतने दिनों में शैल ने एक बार भी मुँह नहीं खोला।

सदाव्रत को लगता कि शायद वह इतना रुपया खर्च कर रहा है, इसलिए शैल-जैसी तुनुक-मिजाज लड़की भी चुप हो गयी है। लेकिन शैल को क्या पता नहीं कि अगर केदार बाबू बीमार नहीं होते तो वह यह नौकरी छोड़ ही देता। नहीं तो खर्च कैसे चलता ? केदार बाबू का इलाज कैसे होता ? बागबाजार के मकान से वह अपनी जिम्मेदारी पर केदार बाबू को यहाँ लाया था। इसलिए मन-ही-मन उसे भी ज़रा डर था। अगर कुछ ऐसा-वैसा हो जाता तो शैल को क्या मुँह दिखला पाता ?

काफी रात हो गयी थी। एलिगन रोड पर आकर हॉर्न बजाते ही दरबान ने दरवाज़ा खोल दिया। गाड़ी को पोर्टिको में पार्क कर सदाव्रत फटाफट सीढ़ियाँ चढ़ता ऊपर पहुँचा।

□ □ □

उस दिन भी बस में शोरगुल होने लगा। बस जिस समय कॉलेज स्ट्रीट के मोड़ के पास पहुँची तब अचानक एक आदमी चिल्लाने लगा, "अरे भाई, मेरा मनीबैग कहाँ गया ?"

देखते-देखते चलती बस के अन्दर करीब सौ आदमी आँखें फाड़े खड़े थे। सभी ने अपने-अपने पॉकेट में हाथ डालकर देखा। सभी ने साँप की तरह फन खड़ा किये सतर्क दृष्टि से चारों ओर सिर घुमाकर देख लिया।

चोर-गिरहकट-पॉकेटमार कहीं पास में ही है।

"बैग मे कितना रुपया था, साहब ?"

"सचमुच खो गया है क्या ? अपने पॉकेट वगैरह ज़रा अच्छी तरह से देखिये न !"

बेचारा हर पॉकेट अच्छी तरह से देखने लगा। जैसे एकदम पागल हो गया था।

पीछे से किसी ने कहा, "ज़रा पहले जो लडकी उतरी थी, वह आपकी कौन है ?"

"लडकी ? मेरे साथ लड़की कहाँ से आयी, जनाब ? मैं तो अकेला हूँ।"

"लेकिन वह लडकी आपकी जेब में हाथ डाल रही थी। मैंने देखा था।"

अजीब तमाशा है ! सब कोई हैरान रह गये। उत्सुक हो गये। सच ही तो एक लड़की लेडीज़-सीट पर बैठी थी। वह आदमी 'रॉड' पकडे खडा था और वह लड़की उसके पास ही बैठी थी। साधारण मध्यम श्रेणी की लगती थी। क़रीब-करीब सभी की नज़र पड़ी थी। सोचा था, उस आदमी की ही कोई रिश्तेदार होगी। इसीलिए शुरू-शुरू मे किसी को सन्देह नही हुआ। सिर्फ एक ने देखा था कि लडकी ने उस आदमी की जेब मे हाथ डाला। इससे ज्यादा कुछ नही। लेकिन लड़की दो स्टॉपेज पहले ही उतर गयी। लडकी के अकेले उतर जाने पर उस आदमी को ज़रा अजीब-अजीब लगा था। लेकिन वह चुप रहा। कुछ बोला नही।

जिसका मनीबैग खोया था वह आदमी उतर रहा था।

"अरे, अब क्या वह बैठी होगी, साहब ! इतनी देर में कहाँ-से-कहाँ पहुँच चुकी होगी।"

लेकिन फिर भी वह आदमी उतर गया। सत्तासी रुपये क्या कम होते हैं ! सत्तासी रुपये में दो मन चावल खरीदा जा सकता है। बच्चों को भर-पेट दूध मिल सकता है। बहुत कुछ किया जा सकता है। बस में खड़े-लटके यात्री ये ही बातें करने लगे। लेकिन बस तो किसी के लिए रुकती नहीं है। उस आदमी को उतारकर बस आगे बढ गयी।

बूड़ी जिस समय घर लौटी, शाम हो आयी थी। कहाँ कॉलेज-स्ट्रीट' कहाँ बहूबाजार ! कहाँ-कहाँ घूमती-घूमती आखिर थककर घर आ गयी। अपने मुहल्ले में आकर उसने साड़ी को ठीक कर लिया। लेकिन घर मे घुसते ही जैसे चौक पडी। दीदी घर मे ?

कुन्ती बिस्तरे पर लेटी थी।

"क्यों री, इतनी देर से कहाँ थी ? हाथ में क्या है ? देखूँ !"

बूड़ी के हाथ में एक पैकेट था। सच बात कहने में कैसा एक डर-सा लग रहा था।

"क्या है उसमें ? देखूँ ? खोल !"

कुन्ती ने पैकेट हाथ से ले लिया। एक लिपस्टिक, पाउडर-केस और एक सेंट की शीशी, साबुन, और भी कितनी ही छोटी-मोटी चीजें।

कुन्ती ने पूछा, "यह सब कहाँ से खरीदा ? पैसे कहाँ से मिले ?"

"खरीदा नहीं, एक ने दिया है।"

"किसने दिया ?"

"मेरी क्लास की एक लड़की ने !"

"क्लास की एक लड़की ने तुझे दिया और तूने ले लिया ? उसे देने को तू ही मिली ? उसका नाम क्या है ?"

"वासन्ती !"

"उसने तुझे क्यों दिया ? काफ़ी बड़े आदमी है क्या ?"

बूड़ी दीदी के सामने खड़ी थर-थर काँप रही थी। बोली, "हाँ, दीदी, वे लोग 'काफी पैसेवाले हैं। दूकान पर जाकर खुद के लिए भी खरीदा। मेरे लिए भी लिया। मैंने मना किया, दूसरे की दी चीज मैं क्यों लेने लगी ! उसने जबरदस्ती मेरे हाथ में ठूँस दी।"

कुन्ती बूड़ी के चेहरे की ओर ताकने लगी। माँ-जायी छोटी बहन ! वह अपनी छोटी बहन को अच्छी तरह से खिला-पिला भी नहीं सकती। बल्कि उस दिन कितनी बुरी तरह से मारा था ! माथे का दाग अभी भी है। शादी के समय जो लोग देखने आयेंगे, शायद पूछें, "माथे पर यह दाग कैसा है ?"

कुन्ती ने पूछा, "हाँ री, तेरे सिर में अब दर्द तो नहीं होता न ?"

कपड़े बदलकर बूड़ी उस समय पढ़ने की तैयारी कर रही थी। बोली, "नहीं, अब दर्द नहीं होता।"

"हाँ री, तुझे माँ की याद आती है ?"

माँ ?

इतने दिन बाद अचानक दीदी ने माँ की बात क्यों उठायी ! बूड़ी की समझ में नहीं आ रहा था। आजकल दुनिया में इतनी देखने काबिल, सोचने काबिल और मज़े करने लायक चीज़ें हैं कि उनके बीच माँ-बाप की याद

किसे रहती है ? याद रखने लायक समय हो किसके पास होता है ?

"पता है, मैं जब छोटी थी सारा दिन बाहर घूमा करती थी। तब घर मे माँ बैठी-बैठी मेरे लिए परेशान हुआ करती थी। तब मैं माँ की परवाह नही करती थी। अब प्रायः ही माँ की याद आती है।"

बूड़ी सुनती रहती।

"कभी-कभी लगता है, आज माँ होती तो कितना अच्छा होता! आज अगर माँ जिन्दा होती तो मुझे तेरी चिन्ता नही होती। मैं पैसा कमाती और तू सारे दिन पढाई-लिखाई लिये रहती। तुझे खाना नही बनाना होता। तब खूब अच्छा होता न !"

बूड़ी कुछ बोली नहीं। उसे बडा अजीब लग रहा था। दीदी को आज हुआ क्या ? उसके साथ इस तरह तो बात नहीं करती।

अचानक बूड़ी ने सिर उठाकर पूछा, "आज तुम बाहर क्यों नही गयी ? शायद कोई प्ले नही है ?"

कुन्ती तब तक आँख बन्द कर चुकी थी। आँखें बन्द किये पड़ी-पड़ी न जाने क्या सोचने लगी। बूड़ी अपनी दीदी की ओर देखने लगी। सजने पर दीदी काफी सुन्दर दीखती थी। आज सजी क्यो नही ? आज हाथ-मुँह नही धोया, चोटी नही की, साड़ी तक नही बदली ! इतने दिन बाद अचानक दीदी का ध्यान आया। दीदी को क्या हुआ ?

"शान्ति !"

बाहर से मास्टरनी की आवाज सुनकर बूडी उठ खडी हुई। "ओह, बहनजी पढाने आ गयी है।"

मास्टरनी अन्दर आकर चौक उठी।

"यह क्या ? आप आज बाहर नही गयी ! आज शायद आपका प्ले नही है ?"

कुन्ती जैसे पड़ी थी, वैसे ही पड़ी रही। बोली, "आज तबीयत कुछ ठीक नही है। बूड़ी की पढाई-लिखाई कैसी चल रही है ? आपके ऊपर ही छोडकर निश्चिन्त हूँ। आप जरा अच्छी तरह देखियेगा।"

चालीस रुपये महीना की मास्टरनी। महीने की पहली तारीख को ही छात्रा के हाथ से ले जाती। आधे दिनों छात्रा घर पर मिलती ही नहीं थी। कोर्स पूरा न होने पर भी स्कूल के इम्तहान में पास कराकर, पहले मे क्वेश्चन बतलाकर ट्यूशन बनाये रखना था। इम्तहान मे अगर बूड़ी फ़ेल हो तो उसे रखने से फायदा! नही तो शायद कोचिंग क्लास मे भर्ती होगी।

तब ? तब कौन रुपये देगा ? इसी तरह करते-करते बूड़ी क्लास फोर से फाइव मे आ गयी, फिर फ़ाइव से क्लास सिक्स मे। इसी तरह धीरे-धीरे क्लास 'टेन' में आ पहुँची है। इम्तहान में पहले बहनजी सारे क्वेश्चन बतला देती। 'रिज़ल्ट' में ज़ीरो के सामने कभी चार तो कभी पाँच बैठा देती। वही रिज़ल्ट लाकर बूड़ी अपनी दीदी को दिखलाती।

दीदी कहती, "वाह, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा! इसी तरह मन लगाकर पढ़।"

फिर कहती, "बूडी, पता है, मेरा तो कुछ भी नही हो पाया। अगर तू कुछ कर लेगी तो मुझे इसी में खुशी होगी। तेरे लिए ही तो इतनी मेहनत करती हूँ। नही तो गाल और होंठों को रंगकर नाचना-कूदना क्या मुझे अच्छा लगता है!"

□ □ □

सीढ़ी पार कर ऊपर आते ही मिस्टर बोस का 'पार्लर' है। वहीं बैठकर साधारणतः मिस्टर बोस सुबह अखबार की न्यूज़ सुनते है। विज़िटरों के साथ मुलाकात करते हैं। दिल्ली से 'ट्रंक' मिलाते है। सदाव्रत ने वहाँ भी झाँककर देखा। वहाँ से कॉरीडोर पार कर अन्दर 'इन्डोर' के लिए जाना होता है। आफ्टर डिनर मिस्टर बोस वहीं रहते हैं। सिर के ऊपर बिजली के दो झाड़ झूल रहे थे। एक-एक झाड़ में सोलह-सोलह बल्ब और दो-चार कट-ग्लास के वाल-लैम्प। फ्लोर के ऊपर कश्मीरी कार्पेट। छः सोफा, छः कोच और उत्तर की ओर दीवार मे भालू की खाल लटकी थी। भालू अमरकण्टक के जंगल का था। नाइन्टीन-फोर्टी-फाइव में बारह बोर की राइफल से उसका शिकार किया था। यह बात चमड़े के नीचे क़ीमती फ्रेम मे मढ़ी लटकी थी। किसी को अगर जानना हो तो जान ले।

यहीं इसी हॉल में ही डिनर के बाद मिस्टर बोस, मिसेज बोस, मिस बोस रोज थोडी देर के लिए बैठते है। किसी-किसी दिन इच्छा हुई तो थोड़ा ड्रिंक करते हैं। कभी 'ईल्स्ट्रेटेड वीकली' पढते हैं, कभी 'रीडर्स डाइजेस्ट'। मोमादटी की बातें होती, क्लब की बातें होती, टर्फ क्लब के घोड़ों की बातें होती। और होती पॉलिटिक्स। यानी कि नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, कृष्ण मेनन, जगजीवनराम या विजयलक्ष्मी पंडित। मिसेज बोस की पॉलिटिक्स की दौड़ यहीं तक थी।

इसी कमरे में बैठकर सदाव्रत ने कितनी ही बार ये ही बातें सुनी है। यानी कि सुननी पड़ी। बातों मे भाग लेना हुआ है। मिसेज बोस खयाली

औरत है। अगले शनिवार किस घोड़े पर बाज़ी लगायेंगी यह सजेशन भी माँगती। लेकिन सदाव्रत किसी भी तरह मिसेज़ बोस की मदद नही कर पाता।

शुरू में तो मिसेज़ बोस को आश्चर्य हुआ, "क्यों ? जिन्दगी में कभी रेस नही खेली ?"

सदाव्रत ने कहा, "नही !"

"हाऊ स्ट्रेंज। तुम्हें मालूम होगा या नही, बचपन मे टेक्स्ट की एक किताब मे पढा था—'हॉर्स इज ए नोवल एनिमल।' और रेसिंग हॉर्स इज ए नोबलर एनिमल !"

मनिला कहती, "सदाव्रत, पता है माँ हॉर्स के बारे में एकदम अनलकी हैं। सिर्फ किटी मे लकी हैं।"

माँ-बाप और बेटी मे यही बहस चलती। किसने किस हॉर्स पर बाज़ी लगायी, किसे किस घोडे पर ट्रिपल-टोट मिला, कब कौन-सा घोड़ा अपसेट हो गया, इन बातों की लिस्ट बाप-बेटी और माँ को मुँहज़बानी याद थी। सदाव्रत के पास चुपचाप बैठे रहने के अलावा कोई चारा नही था। वक़्त होने पर सदाव्रत उठता। कॉरीडोर पार कर सीढी तक आकर मनिला अचानक सदाव्रत का मुँह दोनों हाथो मे लेकर 'किस' करती। फिर सदाव्रत की ओर जैसे दो शब्द फेंक देती, "बाई-बाई !"

इसी का नाम एंगेजमेंट है। इसी को कोर्टशिप कहते हैं। कुछ महीनों मे सदाव्रत इसी तरह चला रहा था। लेकिन अचानक जैसे किसी ने तालाब में पत्थर फेंक दिया।

सदाव्रत ने हॉल मे आकर देखा। उस दिन भी मिस्टर बोस, मिसेज बोस और मिस बोस बैठी हुई हैं। सभी कोई उत्तेजित थे। मिस्टर बोस आज बडी जल्दी-जल्दी चुरट मे कश ले रहे थे।

सदाव्रत को देखते ही सीधे होकर बैठे।

"हियर इज़ ही !"

सदाव्रत ने मिस बोस की ओर भी देखा। रोते-रोते मुँह, आँख और भौंहों पर का कॉस्मेटिक्स धुल-पुँछ गया था। मिसेज बोस भी उत्तेजित थी। बोलीं, "कम हियर, सदाव्रत !"

मिस्टर बोस के सामने ट्रे में एक चिट्ठी पड़ी थी। चिट्ठी उठाकर सदाव्रत की ओर बढ़ाते हुए मिस्टर बोस ने कहा, "यह देखो सदाव्रत, दिस इज़ द लेटर !"

एक लिफाफा था। लिफाफे के ऊपर मनिला बोस का नाम और पता लिखा था। बंगला मे लिखे टेढ़े-मेढ़े अक्षर। लाइनें भी सीधी नही थी। उसी के अन्दर नोटबुक से फाड़े दो पेजों में लिखी चिट्ठी थी। वह भी वैसी ही टेढी-मेढी। व्याकरण और स्पेलिंग कुछ भी ठीक नहीं था। सैकड़ों गलतियों से भरा।

"तुम कह सकते हो यह किसकी लिखी चिट्ठी है? क्यों लिखी है?"

सदाव्रत ध्यान से चिट्ठी पढ़ रहा था।

"और तुम्हारे अगेन्स्ट जो-जो लिखा है, आर दीज़ फैक्ट्स ?"

सदाव्रत ने सिर उठाया। उसे गुस्सा भी आया। वह चिट्ठी पढ़ने के बाद गुस्सा करना ज़रा भी अस्वाभाविक नही था। लेकिन सदाव्रत का गुस्सा चिट्ठी के लिखनेवाले के ऊपर उतना नही था, जितना मिस्टर बोस के ऊपर था।

मिसेज़ बोस ने कहा, "मैंने भी पढ़ा है, इट इज़ ए डैम सिली लेटर, रियली सिली !"

ज़रा और होने पर ही शायद मनिला बोस फिर से रोना शुरू कर देती। मनिला ने कहा, "लेकिन मुझे क्यों बिट्रे किया, सदाव्रत ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? ह्वाट हैव आई डन टु यू ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "तुम एक बात का जवाब दो, सदावत ! इस चिट्ठी के पीछे कोई ट्रुथ है या नहीं ?"

सदाव्रत ने कहा, "आप क्या चिट्ठी मे लिखी बातों का विश्वास करते है ?"

"बट हू इज़ द राइटर ? हूम डू यू सस्पेक्ट ? तुम्हे किस पर सन्देह है, बोलो ? उत्तर दो !" मि० बोस ने पूछा।

मनिला बोस ने कहा, "डैडी, मैंने तुमसे कहा था न, सदाव्रत ड्रिंक नही करता। किटी नही खेलता। वह कैसे नॉर्मल हो सकता है ?"

मिसेज बोस ने कहा, "लेकिन सदाव्रत, तुम्हे देखकर तो ऐसा नहीं लगता। यू लुक क्वाइट ए जेंटलमैन !"

"तुम्हें किस पर सन्देह है ? जवाब दो !"

सदाव्रत ने कहा, "मुझे किसी पर सन्देह नही है !"

"सन्देह नही है ? तो किसने चिट्ठी लिखी ? घोस्ट ? भूत ने लिखी है ? बोलो, जवाब दो !"

"आपने क्या मुझे यहाँ सफ़ाई देने के लिए बुलाया है ?"

"सफाई के लिए नहीं तो किसलिए ? तुम मनिला से शादी करोगे, उसके भले-बुरे के लिए हम लोगों को नहीं सोचना होगा ? मेरी क्या कोई रेस्पॉन्सिबिलिटी नहीं है ?"

"आपने तो मुझे टेस्ट कर ही लिया है ! मैं कम्युनिस्ट हूँ या कांग्रेसी, सभी कुछ तो देख लिया है !"

"लेकिन तुम्हारा मॉरल कैरेक्टर ?"

सदाव्रत भी अपने को और सम्हाल नहीं पाया। बोला, "आपका सन-इन-लॉ होने के लिए क्या मुझे कैरेक्टर सर्टिफिकेट भी सबमिट करना होगा ? आप मुझे दो हजार रुपये दे रहे हैं, वह मेरे काम के लिए या मेरे 'मॉरल कैरेक्टर' के लिए ? किसलिए, कहिये ?"

"लेकिन तुम जिन्दगी-भर लड़कियों के साथ रहे हो। उन्हें लेकर बग़ीचों और बंगलों में गये हो। उनके साथ ऐडल्ट्री की है। इसके बाद भी क्या तुम पर भरोसा किया जा सकता है ?"

"अगर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं तो मुझे डिस्चार्ज कर दीजिए।" सदाव्रत ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"लेकिन तुमने यह सब पहले से क्यों नहीं बतलाया ?"

मनिला बोस ने कहा, "डैडी, मैंने देखा है। सदाव्रत हैगर्ड, पुअर और अन्कल्चर्ड लेडीज के साथ घूमता है।" सदाव्रत जैसे पहले ही सब-कुछ कह चुका था। अब इस बारे में कहने को उसके पास कुछ भी नहीं था। यहाँ से निकलकर ही उसे शान्ति मिलेगी।

"क्या हुआ, जवाब दो ?"

"मुझे कुछ नहीं कहना !"

"इसका मतलब, चिट्ठी में जो कुछ लिखा है, सच है ? एवरी थिंग ट्रू ?"

"मैं यह भी नहीं कहूँगा। इससे भी बुरे और नीच काम करनेवाले, लोग आपके समाज में सिर ऊँचा किये ठाठ के साथ घूमते हैं। उन लोगों की आप रेस्पेक्ट करते हैं। उन्हें इज्जत बख़्शते हैं। जो ऑफेंस आप सभी लोग कर रहे हैं, उसी के बारे में कैफियत देने को मुझे बुलाया है, मुझे आश्चर्य तो इस बात का हो रहा है !"

"इसका मतलब ?"

सदाव्रत ने कहा, "अब मैं मनिला से शादी करूँगा या नहीं, पहले तो

यही ठीक करूँ !"

इस पर जैसे मिस्टर बोस का सारा नशा हिरन हो गया। सदाव्रत बोलता ही जा रहा था। मिस्टर बोस ने उठकर खड़े होते हुए कहा, "तुम बैठो, सदाव्रत ! टेक योर सीट ! तुम एक्साइटेड हो गये हो। सुनो, जरा-सी बात के लिए इतना एक्साइटेड क्यों हो रहे हो ? बैठो, बैठो !"

मिस्टर बोस ने जबर्दस्ती सदाव्रत को बैठा दिया।

बोले, "मैंने तुमसे कैफ़ियत तो मांगी नहीं थी। मनिला का पता है। वह रोने-धोने लगी, इसी से तुम्हें बुलाया। तुम्हें पता ही है, मनिला के रोने पर मुझे रात को नींद नहीं आती। मुझे स्लीपिंग पिल लेनी होती है।"

जरा देर रुककर फिर बोले, "मिस्टर गुप्त देश के कामों में फँसे रहते हैं। मैं फैक्टरी के झमेलों में फँसा हूँ। तुम्हारे फादर की सारी प्रॉपर्टी, मेरी सारी प्रॉपर्टी, सब-कुछ ही तो तुम 'इनहेरिट' करोगे—तब? तुम्हारे में अगर तब इन्टेग्रिटी नहीं होगी तो इस सब को किस तरह हैंडिल करोगे ?"

फिर एक कश चुरुट का लगाया। धुआँ छोड़कर फिर कहने लगे, "जब तक मिस्टर गुप्त है, और जब तक मैं हूँ, तब तक तुम्हें चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन धीरे-धीरे जिस तरह हर ओर कम्युनिस्टिक एलिमेंट फ़ोर्स गैंदर कर रहा है, तुम्हारा खयाल है कि तुम बाद में भी इसी तरह बिजनेस चला पाओगे ? इसीलिए तो तुम्हें ये सारे लेसन देने के लिए बीच-बीच में बुलाता हूँ, डाँटता भी हूँ, इट इज फॉर योर गुड। तुम्हारे भी अच्छे के लिए। मनिला के भी अच्छे के लिए। इससे तुम इतने नाराज़ क्यों होते हो ?"

सदाव्रत के मन का गुबार जैसे थोड़ा कम होने लगा।

मिस्टर बोस ने कहा, "जरा-सी 'रम' लोगे ? या एक पैग 'जिन' ?"

सदाव्रत उठ खड़ा हुआ। बोला, "मुझे माफ करिये, मिस्टर बोस, मैं कल से ऑफिस नहीं आ पाऊँगा, मैं कल ही आपके पास रेजिग्नेशन भेज दूँगा।"

कहकर और नहीं रुका। सीधे कॉरीडोर की ओर पाँव बढ़ा दिये।

□ □ □
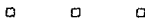
सन् १६०० के बाद क़रीब पचास साल गुज़र जाने पर भी कलकत्ता के आधे से अधिक आदमी जान ही नहीं पाये कि राजा कौन है, उसका नाम क्या है, कहाँ रहता है। जिन्होंने इतिहास पढ़ा नहीं उन्हें बतलाना मुश्किल

है कि—अरे भाई, यह इंडियन राज है ! जो लोग जानते है सो जानते हैं। लेकिन उनकी गिनती बहुत कम है। दूसरे कुछ भी फर्क नहीं देख पाते। अगर कोई कहता है कि इंडिया के प्रेसिडेंट आजकल लार्ड लिनलिथगो हैं, वे लोग वह भी मान लेंगे। अगर पूछा जाय कि यह बौद्ध-युग है या मुगल-युग है या ब्रिटिश-युग है, वे लोग ठीक से वह भी नहीं बतला पायेंगे। राजा कोई भी हो, उससे हमारा क्या आता-जाता है ! हम लोग जनाब अदरक के व्यापारी है। हमे जहाज की बात पूछकर क्या करना है ? राजा लोग क्या हमे राजा बना देंगे ? हम लोगो की तकलीफ़ें हमारे साथ हैं। राजा लोग हमारी तकलीफों को क्या समझें ! जो राजा है वह तो राजमहल मे रहता है। बौद्ध-युग में राजा रामपाल ने वही किया, मुगल-युग मे नवाब अलीवर्दी खाँ ने भी वही किया। ब्रिटिश-युग में लार्ड लिनलिथगो ने भी यही किया। आज जो लोग राज कर रहे हैं वे लोग भी वही कर रहे हैं, और करेंगे भी वही। उन लोगो का कहना है कि यही नियम है। हमेशा से यही हो रहा है। बच्चा जिस तरह हमेशा दूध पीता है, गाय जैसे हमेशा घास खाती है, राजा भी हमेशा घूस खाते है। कोई क्षमता की घूस, तो कोई रुपये की, बात एक ही है। हमने वोट देकर तुम्हें राजा बनाया है, राजा बनकर तुम हमें आँखें दिखलाओ और जरूरत पड़ने पर रोज सुबह अखबार में दो पेजो का उपदेश दो। तुम्हारी ड्यूटी इतनी ही है !

शिवप्रसाद बाबू कहते, "एजूकेशन के बिना आदमी कुछ भी नहीं हो सकता।"

बूढ़े अविनाश बाबू कहते, "आपने ठीक कहा।"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "मेरे ठीक कहने से तो काम नहीं चलेगा। बातें तो काफ़ी कही जा चुकी है, अब काम करके दिखलाना होगा। उस दिन डॉक्टर राय से भी मैंने यही कहा। मैंने कहा—पहले पढ़े-लिखे लोगों की संख्या के लिये बंगाल का अव्वल नम्बर था। यह ब्रिटिश हुकूमत की बात थी। बाद में थर्ड पोजीशन रह गयी। और आजकल क्या पोजीशन है, पता है ?"

बूढ़े दल के सभी लोग उस दिन मौजूद थे।

पूछा, "अरे साहब, हमे क्या पता, कितना नम्बर है। इतनी बातें किसे मालूम होती हैं। अपने ही झंझटों को देखने का वक़्त नहीं मिलता, उस पर देश के झमेले।"

"अब पोजीशन सेवेन्थ है !"

"हैं !"

"आप लोग हैं कहाँ ? कमिंग सेशन में हो सकता है, बंगाल की पोजी-शन टेन्य हो गयी है। एक वक्त था, जब इसी बंगाल में दूसरे सब राज्यों में हम लोग मजिस्ट्रेट, डॉक्टर, वकील, और तो और, क्लर्क तक सप्लाई करते थे। और भी पहले तो दूसरे प्रॉविन्सों में चावल तक हम ही लोग सप्लाई करते थे, और आज हमारे लड़के ही ऑल-इंडिया-सर्विस में स्टैन्ड नहीं कर पाते। अब हर बात में बंगाली लोग पिछड़े हुए हैं। कैबिनेट में एक भी बंगाली मिनिस्टर नहीं है। एक-दो हैं भी तो उनकी कोई वॉयस नहीं है। नेहरू की एक डांट पर सिट्टी-पिट्टी भूल जाते हैं।"

"तब ?"

तब क्या किया जाये, सोचते-सोचते ही बूढ़े पैंशन-होल्डर परेशान होते। काफ़ी देर तक सोचने के बाद भी कोई तरकीब नहीं निकल पाती। सुबह से खा-पीकर दोपहर को एक नींद लेकर बूढ़े लोग शाम को थोड़ा-सा वक्त देश की चिन्ता में काटते। वैसे उनका दोष भी नहीं है। वे लोग ठहरे बूढ़े आदमी। अपनी सारी ताकत जिन्दगी-भर गवर्नमेंट की नौकरी में खर्च कर डाली, अब और एनर्जी नहीं है। अब जैसे दूर से खड़े-खड़े ताकते और मन-ही-मन हाय-हाय करते। कहते, "अब देश गड्ढे में जायेगा।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "इसीलिए तो अखबार निकालने की सोच रहा हूँ।"

"निकालिये, निकालिये, साहब ! लोगों को ज़रा ठीक बातों का पता चले। हम लोग किस युग में जी रहे हैं, लोगों को ज़रा मालूम हो। देश का बड़ा उपकार होगा।"

शिवप्रसाद कहते, "देखें, क्या होता है। काफी रुपयों की बात है न !"

अविनाश बाबू ने कहा, "ज़रा हम पैंशन-होल्डर लोगों के बारे में भी कुछ लिखिएगा। आज हम लोग बूढ़े हो गये हैं तो क्या कभी जवान थे ही नहीं ? या हम लोग टैक्स नहीं देते ?"

अधर बाबू ने कहा, "पंडित नेहरू आपके फ्रेंड हैं, इसलिए उन्हें छोड़ न दीजियेगा।"

"अरे साहब, मैं उस समय का ट्राइड पॉलिटीशियन हूँ। हम लोग कभी ब्रिटिश गवर्नमेंट के खिलाफ़ बोलने से नहीं चूके। इन लोगों की तो बात ही क्या है ?"

"लेकिन आप अखबार निकाल रहे हैं। देख लीजियेगा, फ़ौरन ही

आपका मुँह बन्द कर दिया जायेगा।"

"किस तरह ?"

"घूस देकर।"

"घूस ?"

अधर बाबू ने कहा, "जी हाँ। गवर्नमेंट आपको मोटी-मोटी रकमों के विज्ञापन देगी। स्टाफ की तनख्वाह बढा देने को कहेगी। आप कहेंगे पैसा नही है। तब आपका कागज का कोटा बढा देगी। और क्या इतना ही ? आपको अमेरिका घुमा देगी, वेस्ट जर्मनी घुमा देगी, सारी दुनिया में मुफ्त मे घूमने का इन्तजाम कर देगी। सिर्फ आप अकेले ही को नही, आपकी बीवी-बच्चे सभी को बिना पैसे प्लेन पर घुमा देगी। इसी का तो नाम है घूस !"

शिवप्रसाद बाबू मुसकराये। जानकारी-भरी मुसकराहट। बोले, "अगर ऐसा ही होता तो साहब मैं कभी का कैबिनेट मिनिस्टर हो गया होता। लेकिन मुझसे वह सब नही होगा। नेहरूजी ने कितनी ही बार मुझसे कहा था 'गुप्ता, तुम हमारी कैबिनेट मे आ जाओ।' मैंने कह दिया—'नेहरूजी, सच बात कहने के लिए कम-से-कम एक आदमी बाहर रहे, नही तो देश रसातल मे चला जायेगा।' "

बातों-ही-बातो मे अचानक बद्रीनाथ आ धमकता। तब जैसे सभी को होश आता। शिवप्रसाद बाबू का पूजा करने का समय हो गया। अब उठने की बारी है। शिवप्रसाद बाबू के साथ मुलाकात होना भी एक समस्या है। कभी दिल्ली, कभी इलाहाबाद, तो कभी आरामबाग। सारी इंडिया मे चरखी की तरह घूमते रहते हैं। इसी को जनाब पैट्रिअट कहते हैं। चाहते तो आज क्या नही हो सकते थे ! स्टेट-मिनिस्टर से लेकर कैबिनेट तक सब जगह पहुँचे है। फिर भी कोई लोभ नही, कोई मोह नही, एकदम अहंकार-रहित आदमी। दैत्य-कुल के प्रह्लाद है, प्रह्लाद !

सब लोगों के जाने के बाद शिवप्रसाद बाबू पूजा करने ही जा रहे थे, लेकिन अचानक एक बात याद आ गयी। घडी की ओर देखा। नौ बजे थे। यही ठीक वक्त है। इसी समय मिस्टर बोस डिनर के बाद पार्लर मे आकर बैठते हैं।

टेलीफोन का रिसीवर उठाकर शिवप्रसाद बाबू डायल करने लगे।

"हॉ, शायद आपको मालूम हो गया होगा, आपका कोलतार का परमिट निकल गया है।"

"मैनी थैंक्स, मिस्टर गुप्त ! आपके बिना बड़ी मुश्किल होती। चिट्ठी भेजने पर तो दिल्ली से कोई जवाब आता नहीं है, इसीलिए आपसे कहा। एनी हाऊ, काम हो गया, अच्छा ही हुआ।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "जो तकलीफ हो, आप मुझे बतलाइयेगा। मैं सब ठीक करा दूँगा।"

"लेकिन दिल्ली में इतने मिनिस्टर और इतने सेक्रेटरी, डिप्टी सेक्रेटरी हैं ! ये लोग आखिर क्या करते रहते है, इन्हें क्या चिट्ठी लिखने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती ?"

"समय मिलेगा कैसे ? मैंने सेक्रेटेरियेट में जाकर देखा है। सारे-के-सारे सेक्रेटरी मिनिस्टरों की बर्थ-डे सेलिब्रेट करने में लगे है।"

"बर्थ-डे सेलिब्रेशन माने ? जन्म-दिन ? जन्म-दिन का उत्सव ?"

"अरे हाँ साहब, बारह मिनिस्टर है। हरेक का बर्थ-डे सेलिब्रेट करना क्या आसान बात है ! आज अबुलकलाम आजाद, कल जगजीवनराम तो परसों टी० टी० कृष्णमाचारी। साल में महीने तो होते है सिर्फ बारह। बारह मिनिस्टरों की बर्थ-डे-फ़ाइलें क्लियर करते-करते ही तो सारा साल गुजर जाता है। बाक़ी काम होगा कब, आप ही कहिए ?"

"लेकिन इतने सारे एम० पी० किसलिए हैं ? वे लोग वहाँ बैठे-बैठे क्या करते हैं ?"

"वे लोग हाथ उठाते है।"

"लेकिन पब्लिक अगर इस बात को लेकर क्वेश्चन उठाये, तब क्या जवाब देंगे ?"

"लेकिन पब्लिक के माने तो अखबार है। अखबारों का मुँह तो उन्होंने पहले ही बन्द कर रखा है। अब अखबार पीपुल्स-वॉयस कहाँ रहे है ! अब तो प्रोप्राइटर-वॉयस रह गये है। अखबारों के मालिकों को तो विलायत-सिलायत घुमाकर हाथ में कर रखा है।"

"किस तरह ?"

"वह सब फिर बतलाऊँगा। इसीलिए तो आपसे कहा था, अखबार निकालने के लिए···हाँ, एक बात और। आजकल सदाव्रत कैसा काम कर रहा है ?"

"नाउ ही इज़ ऑलराइट ! यंगमैनों को जो होना है, वही हुआ, और क्या ! उस दिन मेरे पास रेजिग्नेशन भेजा था। उसे बुलाकर मैंने सब समझाया।"

"उसने क्या कहा ?"

मिस्टर वोस ने कहा, "मैंने तो आपसे पहले ही कहा था यह उम्र सबसे डेजरस होती है। किसी तरह तीस क्रॉस करते ही डेंजर खत्म हो जाता है। तीस साल की उम्र तक ही कम्युनिज्म की छूत लगने का डर रहता है। बाद में सब ठीक हो जाता है। आप कुछ भी फिक्र न करिये।"

शिवप्रसाद बाबू ने इस पर पूछा, "तब शादी के बारे में मिस वोस का क्या कहना है ?"

"नेक्स्ट मन्थ में ही शादी हो जाये। मनिला ने भी, देखता हूँ, काफी एडजस्ट कर लिया है। पेगी को बहुत ज्यादा चाहती थी न। आजकल पेगी को लेकर क्लब नहीं जाती।"

"वेरी गुड, वेरी गुड !"

शिवप्रसाद बाबू ने बेफिक्री की साँस ली। इसके बाद टेलीफोन छोड़कर सीधे पूजा के कमरे में जा बैठे। पूजा के कमरे में मूर्ति वगैरह कुछ भी नहीं है। कार्पेट का आसन। सामने डिस्टेम्पर की हुई दीवार। बद्रीनाथ ने वहाँ आकर टेलीफोन फिट कर दिया। सफेद पत्थर की प्लेट में थोड़े-से फूल और ताँबे के मीना का काम किये पाट के अन्दर थोड़ा-सा गंगाजल। दो दिन पहले चन्दननगर के पास एक प्लॉट खरीदा था। दाम लगने पर बेच डाला। लेकिन उस समय क्या मालूम था कि कीमत इतनी बढ़ जायेगी। वहीं तो मोटर की फ़ैक्टरी बननेवाली है। तब तो कुछ दिन और रख लेते। थ्री हंड्रेड परसेंट उनका खुद का प्रॉफिट रहता। बड़ा खराब इन्वेस्टमेंट हो गया। शिवप्रसाद बाबू का मन खराब हो गया। इतने रुपये ! करीब पचास हजार रुपये का नुकसान हो गया था। लैण्ड डेवेलपमेंट सिंडीकेट बनने के बाद इतना बड़ा नुकसान पहले कभी भी नहीं हुआ। हाथ में गंगाजल लिये शिवप्रसाद बाबू लॉस-प्रॉफ़िट-गेन का हिसाब लगाने लगे।

□ □ □

एक दिन दुनि बाबू को ही कुन्ती का पता ढूँढना पड़ा था। प्ले करने के लिए कुन्ती गुहा की खुशामद करनी पड़ी थी। सिर्फ इतना ही नहीं, उसी कुन्ती के पास आकर दुनि बाबू को धरना देना पड़ा था। उस दिन तो कुन्ती ने उन्हें दुत्कार ही दिया।

कहा था, "चलिए-चलिए ! मैं किस बात की कैफ़ियत दूँ ? मुझे कौन गरज पड़ी है ?"

दुनि बाबू ने कहा था, "देखिये, मेरी नौकरी पर बन आयेगी !"

"आपकी नौकरी जाये तो मुझे क्या ? मैं आपके मिस्टर बोस का न दिया खाती हूँ, न पहनती हूँ। मैं कुछ भी नही कर पाऊँगी।"

"लेकिन वह मुझे चार्ज-शीट दे देंगे !"

कुन्ती फिर भी राजी नहीं हुई। बोली, "हम लोग जनाब थियेटर-ड्रामा करती फिरती हैं। रुपये से ही हमें मतलब है। मुझे रुपये मिल चुके हैं। अब आपकी कम्पनी से मेरा क्या मतलब ? अगर फिर कभी आपका प्ले होगा, आप लोग अगर रुपया देंगे तो आऊँगी, नही तो कलकत्ता में थियेटर करानेवालों की क्या कमी है ?"

आखिर दुनि बाबू को उस दिन खाली हाथ ही लौटना हुआ।

लेकिन भाग्य का फेर। उन्ही दुनि बाबू से मिलने के लिए कुन्ती गुहा का मन छटपटाने लगा। उन्ही दुनि बाबू के लिए कुन्ती गुहा सड़क पर, बस में, ट्राम पर इधर-उधर आँखें बिछाए रास्ता देखने लगी। एक बार और अगर मिल जाते तो अच्छा होता ! दुनि बाबू का घर कहाँ है, किस मुहल्ले में रहते हैं, उसे यह भी पता नही था। मधुगुप्त लेन के उस शंभू बाबू से मुलाकात होने पर भी काम चल सकता था। शिवप्रसाद गुप्त के लड़के को वह भी पहचानता है।

"ओ दादा, दादा !"

उस दिन डलहौजी स्क्वायर में सचमुच ही शंभू दीख गया।

"अरे, कुन्ती है न ! क्या हाल है ?"

शंभू कुन्ती को देखकर रुक गया।

"आपके क्लब का क्या हुआ ? 'मरी मिट्टी' स्टेज हुआ या नही ?"

शंभू ने जेब में सिगरेट निकालकर सुलगायी। फिर बोला, "हम लोगों का क्लब तो बन्द हो गया। अब जा कहाँ रही हो ? किसी खास काम से तो नही जा रही ? चलो न, जरा देर चाय की दूकान पर बैठें।"

एक अँधेरी चाय की दूकान के केबिन में जाकर दोनों बैठे।

"क्या खाओगी, बोलो ? आज ही तनख्वाह मिली है। पास में रुपया है। देखो, शरमाना मत।"

काफी कहने के बाद कुन्ती खाने के लिए राजी हुई। बोली, "शंभू दा, बड़ी मुश्किल में पड़ी हूँ।"

"क्यों, तुम लोगों को किस बात की तकलीफ है ? आजकल तुम लोग ही तो सुखी हो। मजे से खाती-पीती हो और रंग लगाकर एक्टिंग करती हो ! और हम लोग खून-पसीना एक करके कमाया रुपया तुम्हारे पैरों पर

डाल देते है !"

कुन्ती ने कहा, "आप लोगों ने बाहरी साडी, ब्लाउज, बॉडिस और रँगा हुआ चेहरा ही देखा। अन्दर झाँककर नहीं देखा।"

"अन्दर दिखलाने से ही देखेंगे ! अन्दर क्या तुम दिखलाती हो ?"

"आप लोग ही क्या किसी के अन्दर को देखना चाहते हैं ? मैं ही अगर ज़रा देर के लिए मुँह भारी किये रहूँ, यह मेकअप वगैरह नही करूँ, शृगार न करूँ, तो क्या आप मुझे बुलायेंगे ? मेरी बीमारी मे क्या मुझे देखने आयेंगे ? मुझे खाना मिल रहा है या नही, इस बात की खबर रखेंगे ? आप लोग तो सिर्फ़ ऐश करते वक्त हम लोगों को याद करते है। उससे पहले तो नही न !"

"न भई, तुम लोग ठहरी थियेटर-ड्रामा करनेवाली एक्ट्रेस। बातो मे तुमसे पार नही पाऊँगा।"

कुन्ती गुहा मुसकरायी। "केवल आप ही क्यो ! सभी का वही हाल है। इस दुनिया मे दादा कोई किसी का नही है, यह बात मैंने काफ़ी पहले ही समझ रखी है। आपको जितने दिन मुझसे मतलब है, आप मुझे ढूँढेंगे। काम निकल जाने पर सन्तरे के छिलके की तरह छीलकर फेंक देंगे।"

"देखता हूँ, आजकल काफी-कुछ सीख गयी हो !"

"सीखी नही हूँ, आप लोगो ने ही मुझे सिखला दिया है। इसी से कह रही हूँ।"

"हाँ, तो काम-काज कैसा चल रहा है ? कितने प्ले हाथ मे है ?"

"अब और इस लाइन में नही रहूँगी, दादा! सोच रही हूँ, कोई दूसरी लाइन पकड़ूँ।"

"अब फिर कौन-सी लाइन ? इस उम्र मे बे-लाइन होगी ?"

"बे-लाइन क्या अपनी मर्जी मे हो रही हूँ ? जाना पड़ रहा है।"

"आखिर वह लाइन है कौन-सी ?"

"गृहस्थी की लाइन !"

"गृहस्थी की लाइन के माने ?"

"यही सोचिये, एक बहन है। उसकी शादी करके मैं घर मे बैठकर बीडी बनाऊँगी। बीडी बनाकर अगर दूकानों पर सप्लाई की जाए या अखबारी कागज के थैले बनाकर दूकानों पर बेच आऊँ तो आसानी से पेट चल सकता है। और कुछ नही तो नर्सिंग। नर्सिंग तो मैंने सीखी भी थी। पूरे दो महीने नर्सिंग सीख चुकी हूँ।"

शंभू ने फिर से एक सिगरेट सुलगायी। बोला, "लेकिन खुद भी शादी क्यों नहीं कर लेती ?"

"शादी !"

कुन्ती जोर से हँस पड़ी। बोली, "मुझसे शादी कौन करेगा, दादा ! लोग हम लोगो को बीवी कैसे मान सकते है ! दो-एक रात मज़ा करने के लिए हमारी याद आती है। बहुत हुआ तो 'कीप' रख सकते है। इससे ज्यादा की आशा हम लोग नही कर सकती।"

कुन्ती की बातो में कही जैसे थोड़ी उदासी छिपी थी। शंभू जैसा आदमी भी आश्चर्य में पड गया। बोला, "बात क्या है, साफ़-साफ कहो न ? किसी के साथ प्रेम के झमेले में पड़ गयी हो क्या ?"

कुन्ती ने कहा, "क्यो मज़ाक करते हो, दादा ? तैंतीस रुपये मन चावल का भाव। यह साडी भी उस दिन सत्ताईस रुपये में खरीदी है। एक कमरे मे रहती हूँ। उसी का किराया तीस रुपये है। ऐसी हालत मे कही प्रेम सूझता है ?"

फिर जैसे अचानक पूछ बैठी, "आपका क्या हाल है ?"

"हाल और क्या होगा ! किसी तरह जिन्दा हूँ, बस इतना ही ! कलकत्ता मे जो लोग पैसेवाले हैं, मजे में सिर्फ वे ही हैं। हम लोगों का क्या है, न मरो में हैं, न जिन्दो में ही हैं। टिके हुए है किसी तरह।"

"और आपके उन मित्र साहब का क्या हाल है ?"

"कौन-सा ?"

"वही एक था न, बड़े बाप का बेटा ! आप लोगो के क्लब में आता था और मेरे पीछे-पीछे घूमता था ?"

"अरे, सदाव्रत की बात कर रही हो न ! बेचारा बड़ी मुश्किल में पड़ गया था।"

"मुश्किल में ! क्यों ? क्या हुआ ? उसे तो सुना था दो हज़ार रुपये महीना की नौकरी मिली थी। कम्पनी के मालिक की लडकी से शादी होने की बात थी !"

शभू ने कहा, "अरे, बड़ी अजीब बात हुई। शादी का सारा इन्तज़ाम हो चुका था। अचानक न जाने कहाँ से एक गुमनाम चिट्ठी गयी उसकी भावी पत्नी के पास। मतलब, उसका कैरेक्टर खराब बतलाते हुए किसी ने चिट्ठी लिखी थी। लिखा था कि सदाव्रत लड़कियों को लेकर बाग-कोठियों मे जाता है। यही बातें लिखी थी। दुनिया में किसी के दुश्मनों की तो कमी

नही है। लोगो ने देखा—अरे, इसे तो बैठे-बैठे दो हजार माहवार मिल रहे है, इसी से जलने लगे, और एक गुमनाम चिट्ठी छोड़ दी।"

"अरे ! फिर ? शादी टूट गयी ?"

"चिट्ठी पढ़कर मिस्टर बोस ने सदाव्रत को बुलाया।"

"फिर ?"

"सब सुनकर सदाव्रत ने नौकरी छोड दी। रेज़िग्नेशन लेटर भेज दिया।"

"तब क्या नौकरी छूट गयी ? तब तो शादी भी नही होगी ?"

"सदाव्रत ने तो नौकरी छोड़ ही देनी चाही थी, लेकिन मिस्टर बोस ने किसी भी तरह नही छोडा। सदाव्रत के पिताजी ने मिस्टर बोस का काफी काम किया है। अब भी करते है। सदाव्रत के साथ शादी न करने पर वह सब भी खत्म हो जाता। यह डर भी तो था !"

कुन्ती की बेचैनी जैसे और भी बढ़ गयी। पूछा, "लेकिन सदाव्रत की नौकरी है या छूट गयी, साफ-साफ बतलाइये न ?"

"है।"

"क्यो ? एक लम्पट लड़के के साथ लडकी की शादी करेंगे ? वह तो एक लम्पट-चरित्रहीन लडका है।"

शभु ने कहा, "यह तुम क्या कह रही हो, कुन्ती ! सदाव्रत वैसा लडका नही है।"

"आपके दोस्त को क्या मै पहचानती नही हूँ ? आपके दोस्त मेरे पीछे-पीछे कितने दिन घूमे हैं, कुछ पता है ? मुझे कितनी बार बाग-कोठी में ले जाना चाहा है, आपको मालूम है ? मेरे पिताजी का उन लोगो ने खून किया है, यह पता है ?"

"तुम्हारे पिताजी का ?"

"देखिये दादा ! मेरी उम्र कोई ज्यादा नही है। लेकिन इस लाइन मे रहकर आदमी पहचानना बाकी नही है ! आज मेरे पास पैसा नही है, इसलिए आपने मेरी बात का यकीन नही किया। दो हजार रुपये महीना की नौकरी अगर करती तो शायद यकीन कर लेते। इस युग का नियम ही यही है।"

"अरे, नही-नही। तुमने उसे अभी भी नही पहचाना। हम लोग उसे बचपन से देख रहे है।"

कुन्ती ने कहा, "आपके साथ बहस नही करना चाहती, दादा ! आपके

मित्र बड़े अच्छे हैं सच्चरित्र ! आप भी अच्छे है ! खराब सिर्फ़ हम लोग हैं, क्योंकि हमारे पास रुपया नहीं है।"

"लेकिन तुम नाराज़ क्यों हो रही हो ?"

"नाराज नहीं होऊँगी। वह गुमनाम चिट्ठी हो या कुछ और भी हो, ऐसी चिट्ठी पाने के बाद भी क्या कोई उसे जमाई बना सकता है ? लेकिन वह लड़की भी क्या है !"

शंभू ने कहा, "सुना है, देखने में काफ़ी अच्छी है।"

"अरे, रहने दीजिए ! मैंने उसे देखा है। ऐसा पचास रुपये का जूड़ा बँधवाने के लायक पैसा होने पर मैं भी सुन्दर लगती !"

"लेकिन तुम तो सुन्दर ही हो। किसने कहा कि तुम सुन्दर नहीं हो ?"

लेकिन इस बार कुन्ती हँसी नहीं, उठ खड़ी हुई। बोली, "देख लेना दादा, मैं वह शादी तोड़कर ही रहूँगी। जिसने मेरा सर्वनाश किया है, मैं उसे माफ नहीं कर सकती। उससे अगर मुझे फाँसी भी होगी तो परवाह नहीं है। मेरी आँखों के सामने ही वे लोग आराम से मज़े उड़ायें, यह मैं नहीं होने दूँगी ! यह मैं कहे देती हूँ ! मुझे काम है, मैं चलूँगी।"

शंभू ने कहा, "कुछ देर और बैठो न ! इस समय तुम्हें क्या काम है ?"

"नहीं दादा, मैं इसका बदला लूँगी ही।"

कहकर कुन्ती उठने लगी। कुन्ती जैसे थर-थर काँप रही थी।

"इसका मतलब तुमने ही वह गुमनाम चिट्ठी लिखी थी ? है !"

लेकिन कुन्ती और रुकी नहीं, दूकान से निकल सड़क पर आ गयी।

शंभू ने पूछा, "तुम किस ओर जाओगी ?"

इस बात का कोई जवाब न देकर कुन्ती ने पूछा, "आपको ठीक मालूम है दादा, सदाव्रत की नौकरी नहीं गयी ?"

"नहीं ! नहीं छूटी !"

"वहीं, उसी लड़की के साथ शादी होगी ?"

"हाँ, जो गड़बड़ हुई थी, सब ठीक-ठाक हो गया। अब सदाव्रत फिर रोज़ ऑफिस जाता है। क्लब जाता है। मोटर में दोनों घूमने जाते हैं।"

"आपको ठीक पता है न ?"

"हाँ, मुझे मालूम नहीं होगा ? मेरे साथ तो उसी दिन मुलाक़ात हुई है। मुझे सब-कुछ बतलाया। बेचारा काफी अफ़सोस कर रहा था। उस लड़की से शादी करने के अलावा कोई चारा नहीं है। क़रीब महीने-भर बाद ही शादी होगी। सब ठीक हो गया है।"

सामने की ओर से एक ट्राम आ रही थी ।

कुन्ती ने कुछ सोचा । बोली, "अच्छा, मैं भी अगर अपने बाप की बेटी हूँ तो कहे देती हूँ दादा, कि मैं यह शादी तुड़वाकर ही रहूँगी ।"

कहकर ट्राम के आकर रुकते ही उसमें चढ़ गयी और साथ-ही-साथ ट्राम चल दी ।

□ □ □

हॉस्पिटल के कॉरीडोर में मन्मथ खड़ा था । शैल भी उसके पास चुपचाप खड़ी थी ।

अचानक फटाफट सीढ़ियाँ चढ़ता सदाव्रत ऊपर आ गया । केबिन की ओर ही जा रहा था ।

मन्मथ ने पूछा, "क्या हुआ, सदाव्रत, रिलीज़-ऑर्डर हुआ ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ ।"

"तब मास्टर साहब को कब ले जाना है ?"

"बस अभी, मैंने सारा पेमेंट कर दिया है ।"

आज मास्टर साहब को हॉस्पिटल से छोड़ दिया जायेगा । इतने दिनों बाद यह केबिन खाली होगा । अब कोई और आयेगा । कितने लोग वेटिंग-लिस्ट के आसरे बैठे हैं । अब उन लोगों का नम्बर है । कोई ठीक हो जायेगा, कोई ठीक नहीं होगा । कोई घर लौट आयेगा, कोई लौट नहीं पायेगा । यहाँ का यही नियम है । हॉस्पिटल के नर्स, मेहतर, जमादार सब आकर इस समय खड़े होते हैं । इस समय हाथ फैलाने पर कुछ मिल जाता है । उन लोगों ने इतने दिन सेवा की है । यह उन लोगों का हक़ है ।

सदाव्रत केबिन के अन्दर गया ।

साफ धुले कपड़े पहने केदार बाबू बिस्तरे पर बैठे थे ।

सदाव्रत को देखते ही बोले, "क्यों सदाव्रत, गुरुपद के यहाँ गये थे क्या? पास हुआ ?"

सदाव्रत को उस बात पर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी । बोला, "आपको मेरी गाड़ी में चलकर बैठना होगा । चलिये !"

"लेकिन तुमसे तो गुरुपद की माँ के पास जाने को कहा था ? गये नहीं ? गुरुपद पास हुआ या फेल, ज़रा पूछ आते ? भूगोल में बेचारा बड़ा कमज़ोर था ।"

सदाव्रत ने कहा, "आप अपने ही बारे में सोचिये, मास्टर साहब ! गुरुपद की फ़िक्र गुरुपद कर लेगा, उसके लिए स्कूल है, मास्टर है, हेडमास्टर

है। देश में चिन्ता करने वाले लोगों की कमी नहीं है। वे लोग मोटी-मोटी तनख्वाहें डकार रहे हैं। देश के चीफ मिनिस्टर है, गवर्नर है, असेम्बली है, पार्लियामेंट है, पुलिस, सोल्जर, मेयर हैं। किसी बात की कमी नहीं है। वे लोग हमसे काफी रुपये ले रहे है। इस समय आप अपने ही बारे में सोचिये, और किसी के बारे में न सोचिये। आपकी फिक्र करने वाला कोई नहीं है। सिर्फ यही बात ध्यान में रखियेगा। चलिये !"

□ □ □

बहुत दिन पहले एक दिन इसी धरती पर पैदा होकर सदाव्रत ने सुना था कि सत्य की जय अवश्य होती है। जिन्दगी का पहला पाठ यही था, हमेशा सच बोलो। हर ओर जब इतना झूठ का बोलबाला है, तब सच के लिए इतनी दौड़-धूप करने की क्या जरूरत है ! मास्टर साहब ने भी एक बार कहा था कि इतिहास में जो कुछ सच है, विज्ञान में भी वही सच है। धर्म, दर्शन और काव्य-साहित्य का सत्य भी वही है। सत्य की कोई जाति नहीं है, श्रेणी नहीं है, सत्य में कोई प्रथा-भेद भी नहीं है। सत्य हमेशा सत्य ही है। चंगेजखाँ के लिए जो सच था, तथागत बुद्ध के लिए भी वही सत्य था। हिटलर के लिए जो सच था, स्टालिन के लिए भी वही सच था। आदमी का सर्वनाश करने वाला इतना उम्दा हथियार और दूसरा नहीं बना। सत्य के लिए नादिरशाह की तलवार ने [illegible]

[illegible]

[illegible] लिए ही उत्तर से अलेक्जेंडर ने हमला किया। बाद में जब एरोप्लेन बन गये, टेलिविजन का आविष्कार हो गया, तब दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा। खास काम भी नहीं रहा। हर ओर से हमला होने लगा। अन्दर-बाहर हर ओर से हमला शुरू हो गया। सत्य अब सत्य नहीं रहा, झूठ भी झूठ नहीं रहा। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर जैसे वह हाइड्रोजन भी नहीं रहता, ऑक्सीजन भी नहीं रहता, पानी हो जाता है, उसी तरह सच और झूठ मिलकर एक तीसरी ही चीज बन जाती है। उसका नाम टैक्ट है !

टैक्ट का कोई हिन्दी या बंगला शब्द नहीं होता। अंग्रेजों ने एक अद्भुत शब्द आविष्कृत किया। एक अद्भुत आदर्श! तरीके से झूठ बोलने पर वह झूठ नहीं रहे। इसी का नाम टैक्ट है ! टैक्ट के बिना सच बात भी झूठी लगती है। जीवन की उन्नति का आदि-गुरुमन्त्र है टैक्ट। जो यह नहीं जानता, वह सारी जिन्दगी केदार बाबू की तरह काटता है। और जो

यह जानता है, वह होता है शिवप्रसाद गुप्त !

सदाव्रत ने शायद पहले से ही सारा इन्तज़ाम कर रखा था। हॉस्पिटल से आने के बाद केदार बाबू कहाँ रहेंगे, इसका इन्तजाम कर रखना ही सबसे ज़रूरी काम था। लेकिन इसका इन्तज़ाम करे कौन ? मन्मथ से मकान ठीक करने को कहा था, लेकिन कर नही पाया। सदाव्रत फिर भी हताश नही हुआ। वह इतना समझ गया था कि मास्टर साहब को अगर स्वस्थ करना है, तो किसी के भरोसे बैठे रहने से काम नही चलेगा।

बागबाज़ार के उसी गन्दे मकान मे आकर केदार बाबू को मन-ही-मन ज़रा ढाढस हुई। उन्होंने सोचा, अगले दिन से ही वह गुरुपद को पढ़ाने जा पायेंगे। अपनी छतरी लिये फिर से लड़कों को पढ़ाने एक घर से दूसरे घर चक्कर काटेंगे। सदाव्रत-जैसे अगर दस लडके भी निकल जायें तो उनका काम पूरा हो जायेगा। देश में फिर से सतयुग आ जायेगा। वे दस लड़के ही सबसे कहते फिरेंगे—'चोरी करना महापाप है। जो चोरी करता है उससे हर कोई घृणा करता है।' वे लोग ही कहेंगे—'किसी से भी बुरा न कहो। जो बुरा बोलता है, उससे सभी घृणा करते हैं।' वे लोग ही कहेंगे—'तुम्हे मन को साफ रखना होगा, और जो कोई तुम्हारे पास आये उसकी सेवा करनी होगी। दूसरों की भलाई करने से तुम्हारा कल्याण होगा। अच्छे काम करने से मन साफ रहता है, और सबके अन्तर मे जो 'शिव' है उनका दर्शन होता है।' वे लोग ही स्वामी विवेकानन्द के वचनों को याद करायेंगे—'अपनी सृष्टि मे ईश्वर ने सभी को समान बनाया है। बुरे-से-बुरे और नीच-से-नीच आदमी में कोई-न-कोई गुण होता है, जो अच्छे-से-अच्छे आदमी मे नही होता। छोटे-से-छोटे कीड़े मे भी कोई गुण हो सकता है जो किसी महापुरुष में भी नही होता।'

लेकिन सदाव्रत ने इतना ही नही सोचा था।

सदाव्रत ने कहा, "नही, मास्टर साहब, पहले आप खुद की चिन्ता कीजिये। तभी लड़कों की भी चिन्ता हो सकेगी। और आप-जैसे आदमी को भी अगर मैं बचा नही पाता तो चाहे यह देश भाड़ मे जाये।"

"लेकिन तुमने तो मुझे बड़ी मुश्किल मे डाल दिया।"

"आपने ही तो एक दिन बतलाया था, यह धरती मिट्टी की नहीं है। यह धरती आदमियों की है।"

"कहा तो था, लेकिन अब तो मैं अच्छा हो गया हूँ।"

"नही, मास्टर साहब ! फिर भी मैं आपको कलकत्ता मे नही रहने

दूंगा । आपको चेन्ज के लिए भेजूंगा ही ।"

"लेकिन उसमे तो तुम्हारे काफी रुपये खर्च हो जायेंगे ?"

"रुपये तो खर्च होंगे ही । मुझे काफ़ी तनख्वाह भी तो मिलती है । वह रुपया कुत्ते, क्लब और बालों के जूड़े बँधवाने वाले सैलूनों मे खर्च होता है। आपके लिए खर्च करके समझूँगा, कम-से-कम एक अच्छा काम हुआ ।"

कुत्ते, क्लब और सैलून की बात केदार बाबू की समझ मे नही आयी। पूछा, "तुमने क्या कुत्तों का क्लब खोला है ?"

"न-न, मास्टर साहब ! वह आप नही समझेंगे । आपके बाहर जाने का सारा इन्तज़ाम मैंने कर दिया है । पुरी में किराये का मकान ठीक हो गया है । छः महीने का एडवान्स किराया भी दे दिया गया है ।"

सुनकर केदार बाबू हैरान रह गये ।

"इसका मतलब ?"

"इसका मतलब कि कल आपको शैल के साथ पुरी जाना होगा !"

"यह कैसे हो सकता है ? वह अकेली कैसे सम्हालेगी ?"

"उसके लिए भी आपको फिक्र करने की ज़रूरत नही है । मन्मथ भी साथ जायेगा ।"

फिर अचानक मन्मथ की ओर घूमकर कहा, "क्यो मन्मथ, तुम साथ नही जा सकोगे ? तुम्हारे 'एक्ज़ामिनेशन हो तो चुके हैं न ?"

सुनकर मन्मथ भी हैरान रह गया । पास ही शैल खड़ी थी । सुनकर वह भी अवाक् रह गयी । लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला ।

अचानक सदाव्रत ने खुद ही कहा, "तुम लोग कोई मास्टर साहब के साथ नही जाओगे ? बोलो, जवाब दो !"

मन्मथ ने कहा, "मैं पिताजी से पूछकर बतलाऊँगा ।"

सदाव्रत नाराज़ हो गया ।

"मास्टर साहब के अच्छे के लिए कुछ करने पर क्या तुम्हारे पिताजी को खराब लगेगा ?"

"नहीं, मेरा यह मतलब नही है ।"

"तब क्या यह कोई खराब काम है ?"

"नही, मैंने वह तो कहा नहीं ।"

"तब आजकल तो तुम्हारी छुट्टी है । तुम्हे ऐसा क्या काम है जिसकी वजह से तुम जा नहीं पाओगे ?"

"नहीं, काम और क्या होगा ?"

"तब ? मैंने तुम्हारी टिकट ले ली है। साथ मे जो लेना हो, ले लेना। मैं शाम को छः बजे गाड़ी लेकर आऊँगा। आठ बजे गाड़ी जाती है।"

कहकर सदाव्रत बाहर निकलने लगा। लेकिन दरवाज़े के बाहर निकलने से पहले ही पीछे से शैल की आवाज़ आयी, "एक बात सुनिये !"

सदाव्रत जाते-जाते रुक गया। लेकिन शैल उसे लेकर एकदम सड़क पर आकर खड़ी हो गयी।

"मुझे ऑफिस पहुँचना है, देर हो रही है, जो कहना हो झटपट कह डालो।" सदाव्रत ने जल्दी मे कहा।

"सचमुच आप हम लोगों के लिए जो कर रहे है, उसके लिए मैं आभारी हूँ।"

आभार और कृतज्ञता की बात जैसे सदाव्रत को अच्छी नहीं लगी। बोला, "आभार की बात क्यो कर रही हो ? मैं क्या तुम्हारे आभार के लिए यह सब कर रहा हूँ ?"

"लेकिन इतना क्यो कर रहे है, मेरी समझ मे नही आ रहा। बिना किसी स्वार्थ के इतनी कोशिश कोई नही करता है। मैं इसका मतलब नही समझ पा रही हूँ।"

"स्वार्थ नही है, किसने कहा ? कौन कहता है कि मेरा कोई स्वार्थ नही है ?"

शैल ने पूछा, "वह स्वार्थ क्या है ?"

"यही, मान लो, मास्टर साहब का मेरे ऊपर ऋण···"

"और कुछ भी नही ?"

"और हो ही क्या सकता है ?"

शैल ने कहा, "मैं भी तो यही सोच रही हूँ, आपके मन में और हो ही क्या सकता है ?"

इसके बाद ज़रा रुककर कहा, "और आपको भी तो कोई कमी नहीं है। इस उम्र मे आप-जैसे लड़के जो चाहते है, सभी कुछ तो आपको मिला है। नौकरी, पैसा, पत्नी, गाड़ी, घर, कुल—कुछ भी तो मिलना बाकी नही है। फिर भी हम लोगो के लिए आप इतना क्यों कर रहे हैं ?"

सदाव्रत इसका क्या उत्तर दे, कुछ ठीक नही कर पा रहा था।

वह बोला, "तुम मेरे बारे मे इतना सोचती हो ?"

"आप सोचने को मजबूर करते हैं, इसी से सोचना पड़ता है। उस दिन

जिन्हें देखा, वहाँ तो आपकी पत्नी होंगी ?"

"ठीक तो यही हुआ है।"

"सुना है, अगले महीने आपकी शादी होगी। यह भी ठीक है न ?"

"हाँ।"

"तब ? तब क्या इसी वजह से हम लोगों को बाहर भेज रहे हैं, जिससे आपकी शादी के समय हम लोग यहाँ न रहें ?"

"छिः !"

शैल ने कहा, "यहाँ खड़े-खड़े मेरा आपके साथ ये सारी बातें करना ठीक नहीं है, जानती हूँ। लेकिन आज पहली बार ही नहीं, कई दिनों से मैं इसी बारे में सोच रही हूँ। काका से भी पूछा है, मन्मथ से भी पूछा है। शुरू-शुरू में गुस्से के मारे आपसे काफ़ी कुछ कहा भी है। लेकिन किसी के किसी भी जवाब से मुझे शान्ति नहीं मिली।"

"काका ने क्या जवाब दिया ?"

"काका की बात जाने दीजिए। काका आपको अच्छे विद्यार्थी के रूप में जानते हैं। आपका कोई दोष नहीं देख पाते।"

"तुम्हें यह तो मालूम ही होगा, आदमी दोष-गुणों से भरा हुआ है।"

"सच ही क्या आपमें दोष हैं ? सच-सच कहिये !"

यह सुनकर सदाव्रत हँस पड़ा। बोला, "जब देवता नहीं हूँ तो दोष तो होंगे ही !"

"उन दोषों के बारे में अपने मुँह से ही कहिए। मैं शान्ति के साथ जा पाऊँगी। आपके मुँह से सब-कुछ सुनने के बाद पुरी ही क्यों, जहाँ भी, जितनी भी दूर भेजेंगे, चली जाऊँगी। मैं आपको वचन देती हूँ कि फिर कभी इस बारे में कोई सवाल नहीं करूँगी।"

सदाव्रत कुछ देर तक शैल की ओर देखता रहा। फिर बोला, "तुम्हारा कहना ठीक ही है। मैं दोषी हूँ। मेरे अपराधों का अन्त नहीं है।"

"कहिये, रुक क्यों गये ? कहिये !"

सदाव्रत जैसे इधर-उधर करने लगा। चेहरे पर ज़रा मुसकराहट लाने की कोशिश की। फिर कहा, "सवाल भी ऐसे समय किया जब जवाब देने का भी वक़्त नहीं है।"

"है, वक़्त है। कल रात के आठ बजे तक वक़्त है।"

"तुम सोचती हो, क्या इतने-से वक़्त में मेरे दोष गिने जायेंगे ? मेरे दुःख, मेरी कसक क्या इतनी ही छोटी है ? इतने से वक़्त में क्या सब-कुछ

कहना सम्भव है ?"

"तब क्या कल शाम से पहले आपसे मुलाकात नही होगी ?"

"मुलाकात होना क्या ठीक है ?"

"क्यों ठीक क्यों नही है, बतलाइये ? आप सोचते हैं क्या इतना सब होने के बाद भी मैं आज की रात सोकर काट पाऊँगी ?"

इसके बाद सदाव्रत ने वहाँ और खड़े रहना ठीक नहीं समझा। सुन-सान गली। धूप काफ़ी तेज़ हो चुकी थी। दो-चार लोग आ-जा भी रहे थे।

सदाव्रत ने कहा, "तुम्हें शायद काम होगा। मुझे भी ऑफिस जाना है। मैं चलता हूँ।"

"लेकिन मुझे इतनी दूर क्यो भेज रहे है, पहले इस बात का जवाब तो दे जाइये ?"

सदाव्रत और रह नही पाया। पूछा, "तुम्हें क्या शर्म नही आती ?"

"शर्म ?"

सुनकर शैल जैसे सिटपिटा गयी। इतनी देर बाद उसे होश आया कि रास्ते पर खुले आसमान के नीचे इस तरह बात करना ठीक नही है। और वह बात कर रही है ?

लेकिन तभी शैल ने अपने-आपको सम्हाल लिया। कहा, "शर्म-हया तो एक दिन थी मुझमें। इतने दिन इसी शर्म की वजह से मैं कही निकलती तक नही थी। लेकिन आपने क्यों आकर मेरी शर्म को छीन लिया? कहिये, क्यो छीन लिया ?"

"इसका मतलब ?"

सदाव्रत थोड़ी देर भौंचक-सा खड़ा रहा। क्या करे, कुछ ठीक न कर पाने पर बोला, "मैं अब चलूंगा।"

शैल ने रोका। बोली, "नही, आप पहले मेरी बात का जवाब दीजिए, तब जाइये। उससे पहले मैं आपको जाने नही दूँगी। कहिए, आपने क्यों मेरी हया-शर्म छीन ली ? क्यो आपने इस तरह से मेरा सर्वनाश किया ?"

सदाव्रत इस पर सचमुच ही चुप रह गया। उसने सिर्फ़ कहा, "चुप रहो, तुम चुप रहो !"

सदाव्रत की बात का कोई जवाब दिये बिना शैल ने कहा, "चुप क्यों रहूँ ? और मुझे चुप करने के लिए ही शायद जल्दी से इतनी दूर भेज रहे हैं ? एक दिन की देरी भी नही सह पा रहे हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "अरे, नही-नही। तुम यकीन करो, मास्टर साहब

की हालत देखकर बाहर भेज रहा हूँ। मास्टर साहब अकेले तो रह नहीं पायेंगे। इसीलिए तुम्हें भेजा जा रहा है…"

"फिर भी आप सच बात नहीं कहेंगे ? मेरा आपको इतना डर है !"

"कहती क्या हो ? मैं तुमसे क्यों डरने लगा ?"

"अगर डरते नहीं है तो अपनी शादी के बाद भी तो हम लोगों को भेज सकते थे। इतने दिन पहले से क्यों भेज रहे हैं ? इतने दिन से काका अस्पताल में थे। एक महीना और रह आते तो उनका क्या नुकसान हो जाता ?"

सदाव्रत क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रहा था। लग रहा था जैसे कोई उसे बांधकर पीट रहा है और वह कुछ नहीं कर सकता।

उसने कहा, "सच कह रहा हूँ, शैल, मेरा वैसा कोई उद्देश्य नहीं।"

"तब मैं कलकत्ता से कहीं नहीं जाऊँगी। जाना ही है तो काका अकेले ही जाएँ।"

"लेकिन वहाँ जाकर मास्टर साहब अकेले कैसे रहेंगे ? तुम समझ क्यों नहीं रही हो ?"

"तब ठीक है। टिकट लौटा दीजिए। एक महीने बाद ही हम लोग सब मिलकर जायेंगे।"

"लेकिन यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यों नहीं हो सकता ? किसलिए नहीं होगा ? मुश्किल किस बात की है ?"

सदाव्रत और भी मुश्किल में पड़ गया। आखिर उसके मुँह से निकल ही गया, "मैं नहीं चाहता कि मेरी शादी के समय मेरी जान-पहचान वाला कोई रहे। मैं नहीं चाहता, कोई मेरी शादी देखे। मैं नहीं चाहता…"

कहते-कहते सदाव्रत बीच में ही रुक गया। अपनी बात पूरी नहीं कर पाया। अपने को छुपाने की कोशिश करता हुआ अचानक शैल के सामने से भाग निकला। बाद में टेढ़ी-मेढ़ी गली पार करता, जल्दी में आकर अपनी गाड़ी में बैठ गया। और साथ-ही-साथ गाड़ी स्टार्ट कर दी। जैसे जान छुड़ाकर भागा हो।

तभी कमरे के अन्दर से आवाज़ आयी, "शैल !"

□ □ □

हावड़ा-स्टेशन के 'इन्क्वायरी' ऑफ़िस के आस-पास बूढ़ी काफ़ी देर से चक्कर काट रही थी। चारों ओर कितने आदमी हैं। यह भी एक

दुनिया है। पहले कभी इस ओर नहीं आयी थी। भवानीपुर, चौरंगी, श्याम-बाजार—हर जगह घूम चुकी है। यह नयी जगह है। यहाँ के सभी लोग जरा देर के लिए आते हैं। थोड़ी देर एक-दूसरे के साथ बातचीत होती। फिर कौन कहाँ चला जाता, किसी को पता नहीं लगता।

थोड़ी देर बाद प्लेटफॉर्म-टिकट की खिड़की के पास जाकर खड़ी हुई।

"एक प्लेटफॉर्म-टिकट तो दीजिए!"

प्लेटफॉर्म-टिकट बेचनेवाली एक लड़की ही थी। सोने की चूड़ियाँ पहने थी। माँग में सिन्दूर था। बैठी-बैठी एक फिल्मी-अखबार पलट रही थी। अखबार रखकर एक टिकट दे दी। बूढ़ी टिकट लेकर वेटिंग-रूम में आ बैठी। वेटिंग-रूम आदमियों से खचाखच भरा था। बोरिया-बिस्तर लिए कोई जायेगा बम्बई, कोई दिल्ली, कोई और भी बहुत दूर जायेगा!

"तुम कहाँ जाओगी, माई?"

बूढ़ी ने बगल में बैठी महिला की ओर देखा। उम्र जरा ढलती पर थी। गोद में एक छोटी-सी करीब साल-भर की लड़की थी। लड़की के गले में सोने का हार चमचमा रहा था।

"मैं?"

बूढ़ी ने यह तो सोचा नहीं था। इस बात का जवाब भी तैयार नहीं था। बोली, "मैं! मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी। मेरे एक रिश्तेदार आनेवाले हैं, उनसे मिलना है।"

चारों ओर आदमी इतनी जल्दी में थे, किसी के साथ बात करने की भी किसी को फुरसत नहीं थी। जो जहाँ था, अपने सामान वगैरह की निगरानी में लगा था।

लड़की के गले का हार तब भी चमचमा रहा था। कम-से-कम दो तोले का तो होगा। एक सौ पचीस के भाव से टाँका काटकर कम-से-कम दो सौ रुपये तो मिल ही जायेंगे। 'बिजली' और 'रूपाली' में दो नयी फिल्में लगी हैं। देख नहीं सकी। एक नयी रिस्टवाच भी खरीदनी है। सभी लोग पहनते हैं। देखने में खूब छोटी-सी। बाएँ हाथ में पहनने पर बड़ी अच्छी लगती है।

"आप लोग कहाँ जायेंगे?"

उस औरत ने कहा, "पुरी घूमने जा रहे हैं, माई। बहुत दिनों से बीमार हूँ। अब डॉक्टरों ने समुद्र की हवा खाने को कहा है।"

सोने का हार फिर से चमचमा उठा।

"आप लोगों की 'पुरी-एक्सप्रेस' कितने बजे छूटती है ?"

बहू ने कहा, "वे कह रहे थे आठ बजे !"

तभी सामान लिए एक बड़ा-सा झुंड वेटिंग-रूम में आ घुसा। सामान काफ़ी था। होलडॉल, सूटकेस, लालटेन और ट्रंक—सभी-कुछ। एक बूढ़ा। शायद हाल ही में बीमारी से उठा था। जरा चलते ही बूढ़ा हाँफने लगा था। कमरे में आते ही वह एक चेयर पर बैठ गया। साथ में एक लड़की थी। दीदी की उम्र की होगी। देखने में खराब नहीं लगती थी। हाथ, गले और कान में, कहीं भी सोने का कुछ भी नहीं था। दोनों हाथों में चार-चार काँच की चूड़ियाँ खनखना रही थीं। पास में एक लड़का था। सामान आ जाने के बाद एक और सूट-बूटधारी आया। लम्बा-चौड़ा और गोरा रंग। हाथ में रिस्टवाच। मर्दानी घड़ी।

"तुम्हारी ट्रेन कब है ?"

बूढ़ी ने कहा, "मेरे मामा तूफान मेल से आयेंगे न !"

"तूफान मेल कब आता है ?"

"आना तो साढ़े पाँच बजे चाहिए। सुना है साढ़े तीन घंटे लेट है।"

"अरे राम ! तब तो तुम्हें काफी रात होगी ? काफी देर बैठना होगा ?"

बूढ़ी ने कहा, "तब क्या करूँ, बतलाइए ! पहले से क्या मालूम था, इतनी देर होगी। पता होने पर देर से ही आती।"

लड़की के गले का हार तब भी चमचमा रहा था।

बूढ़े आदमी ने पूछा, "हम लोगों की ट्रेन कितने बजे छूटेगी ?"

पास बैठे आदमी ने कहा, "ट्रेन आठ बजे है और साढ़े सात बजे गाड़ी प्लेटफार्म पर लगेगी।"

"अब कितना बजा है ?"

"साढ़े छ.।"

लड़की चुपचाप बैठी थी। उसके काका होंगे। काका कहकर ही बातें कर रही थी। दीदी की तरह इस लड़की की भी शादी नहीं हुई थी। बूढ़ी ने फिर से गोद की लड़की की ओर देखा। सोने का हार चमचमा रहा था।

बूढ़ी ने कहा, "लाइये न ! बच्ची को जरा मेरी गोद में दीजिए न !"

महिला ने कहा, "तब तो हो गया ! यह क्या मेरी गोदी से उतरेगी? क्यों री, जायेगी ? ओ मुन्नी, दीदी के पास जायेगी ?"

बूढ़ी तब भी एकटक हार की ओर देख रही थी। सोने का हार,

असली गिनी सोने का हार। कम-से-कम दो तोला भारी तो जरूर ही होगा। एक सौ पचीस रुपये तोला के भाव से टांका काटकर दो सौ रुपये तो मिलेंगे ही। 'विजली' और 'रूपाली' में दो नयी फ़िल्में लगी हैं। देख नहीं पायी। एक नयी कलाई रिस्टवाच खरीदनी होगी।

सोने का हार फिर से चमचमा उठा।

□ □ □

ट्रेन आठ बजे रात को छूटनेवाली थी। लेकिन उसकी तैयारियाँ सुबह से ही चल रही थीं। मसहरी लेनी होगी, लालटेन, पानी की बाल्टी भी लेनी है। मतलब कोई भी चीज छोड़ने से काम नहीं चलेगा। सदाव्रत तो कहकर चलता बना, लेकिन इतना सब करे कौन?

और कलकत्ता शहर तो कोई ऐसा-वैसा शहर नहीं है। बस, ट्राम, आदमी, हर कोई जैसे पागल हो। कोई भी काम धीरे-सुस्ती से, आराम से नहीं किया जा सकता। ट्राम-बस में चढ़ने पर लड़कियों का साबुत रहना भी जैसे मुश्किल हो गया था। कहाँ धर्मतल्ला, कहाँ चाँदनी, कहाँ कॉलेज-स्ट्रीट! एक चीज खरीदने के लिए दस जगह चक्कर लगाने होते हैं। हर जगह भाव अलग। लगता है, जैसे सभी ठगने के लिए दूकान खोले बैठे हैं!

मन्मथ अकेला क्या-क्या करे!

शशिपद बाबू सुबह ही आए थे। सुनकर खुश हुए। कहने लगे, "अच्छा ही हुआ, मास्टर साहब! बाहर गये विना आप ठीक नहीं होंगे।"

केदार बाबू ने कहा, "सदाव्रत ने मेरे लिए काफी रुपया खर्च कर डाला, शशिपद बाबू। इन कुछ ही महीनों में करीब तीन हज़ार रुपया निकल गया।"

"आपके प्राणों की कीमत इससे कहीं ज्यादा है, मास्टर साहब!"

"मैं वही सोच रहा था, जिनके लिए सदाव्रत नहीं है, उनका काम कैसे चलता है?"

"उन लोगों का काम नहीं चलता है।"

"काम नहीं चलता तो उन लोगों का क्या होता है?"

"वे लोग मर जाते हैं।"

केदार बाबू उठकर बैठ गये। बोले, "मरेंगे क्यों? वे लोग क्या इन्सान नहीं हैं?"

"लेकिन गवर्नमेंट तो चाहती नहीं है कि कोई जिन्दा रहे। मर जाने पर गवर्नमेंट की जिम्मेदारी खत्म। जिन्दा रहने पर किसी को नौकरी देनी

होगी, किसी को खिलाना होगा, किसी को पहनाना होगा। जिन्दा रहने पर ये लोग स्ट्राइक करेंगे, यूनियन बनायेंगे, हड़ताल करेंगे। इससे तो मर जायें तो आफत टले !"

केदार बाबू सुनकर थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, "आप और कुछ न कहिये। मेरा दिमाग चक्कर खा रहा है।"

"मुझे भी ऑफिस जाने को देर हो रही है। मैं भी और नहीं बैठूंगा। कभी-कभी मेरा ही दिमाग़ चकराने लगता है। पता है, हमारे ऑफ़िस में जो हुआ है, सुनकर अच्छे-भले आदमी का दिमाग खराब हो जायेगा।"

"क्या हुआ ?"

शशिपद बाबू ने कहा, "उस दिन हमारे ऑफ़िस की इमारत की मरम्मत के लिए चालीस हज़ार रुपये खर्च हुए हैं। मैं बिल पास करता हूं। अपने ऊपरवाले साहब के हुक्म से डेढ़ लाख रुपये का बिल पास करना हुआ, और नहीं करने पर मेरी नौकरी नहीं रहती। इसमें का एक लाख दस हज़ार रुपया 'ब्लैक-मनी' था। साहब और कॉन्ट्रैक्टर ने बाँट लिया।"

"च्यांग-काई-शेक का शासन यही सब करने से तो खत्म हो गया।"

"इस राज्य का भी वही हाल होगा। आप ही क्या कर सकते हैं! मैं ही क्या कर सकता हूं!"

शशिपद बाबू के जाने के बाद केदार बाबू बैठे-बैठे सोचने लगे। शैल और मन्मथ सामान खरीदने बाज़ार गये हैं। शाम को सदाव्रत आयेंगे।

केदार बाबू ने आवाज़ दी, "शैल ! ओ शैल !"

तभी अचानक ध्यान आया, शैल घर में नहीं है। कोई नहीं है। वह अकेले ही घर पर हैं। धीरे-धीरे दीवार की 'शेल्फ' में अपनी डायरी उतारी। फिर तारीख निकालकर शशिपद बाबू की बातें नोट कीं। बाद में भूल सकते हैं। इस तरह की कितनी ही बातें उन्होंने लिख रखी हैं। कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें पढ़ी हैं, सुनी हैं, जिन्दगी में बहुत-कुछ देखा है। सब-कुछ लिख रखा है। एक दिन शायद ज़रूरत होने पर किसी की नज़र पड़ेगी, अभी भी सभी आदमी खराब तो नहीं हुए हैं। हर कोई चोर-डाकू या खूनी नहीं है। क्यों नहीं हुए ? एक दिन इसी दुनिया में वाल्टेयर आये थे, रूसो आये थे, ईसा मसीह आये थे; बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, नानक, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और गांधी आये थे। उनके वचन और उपदेश पढ़कर ही तो आज भी कुछ अच्छे लोग दुनिया में बाकी हैं।

केदार बाबू ने लिखा, "शशिपद बाबू से आज जो कुछ सुना, वह

ही खतरनाक बात है। भारत के लोग धीरे-धीरे विलासप्रिय, आलसी और ईर्ष्यालु होने जा रहे हैं। ये लोग घूस लेते हैं, झूठ बोलते हैं, स्वार्थी हो गये हैं। यह बहुत ही बुरी बात है। प्राचीन रोम-साम्राज्य इन्हीं सब कारणों से नष्ट हो गया था। नेपोलियन का फ्रांस भी उसकी स्वार्थपरता के कारण सर्वनाश की ओर अग्रसर हो रहा था। नेपोलियन ने अपने सम्बन्धी और रिश्तेदारों को बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर अपने ध्वंस का प्रबन्ध खुद ही कर डाला था। राजा की गलती से सिर्फ़ राजा ही खत्म नहीं होता, राज्य भी नष्ट होता है। इंडिया में मुग़ल साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण यही था। बंगाल के नवाबों के चारित्रिक पतन के ही कारण बंगाल विदेशियों के हाथ में चला गया। जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहे तो यह देश फिर दूसरों के हाथ में जायेगा।"

लिखकर डायरी बन्द कर ही रहे थे कि अचानक एक बात याद आयी। नोटबुक खोलकर एक लाइन और लिखी, "पंडित जवाहरलाल नेहरू बड़े सज्जन आदमी हैं। वह भी अगर देश को सर्वनाश से बचाना चाहते हैं, तो उन्हें भी अपने नाते-रिश्तेदारों को पोषण करने वाली नीति को छोड़ना होगा! अपनी बहन, लड़की और बुआ सभी को नौकरी से हटाकर प्रजा के सामने उदाहरणस्वरूप आदर्श पेश करना होगा। वैसा न करने पर दूसरे सब मंत्री भी अपने भाई-भतीजों को घुसायेंगे। नेपोलियन ने अपने ही लड़के 'इयूजिन' को इटली का शासक नियुक्त किया था। एक भाई को, जिसका नाम जोसेफ बोनापार्ट था, स्पेन का राजा बनाया। और एक भाई लुई को हालैंड का राजा बनाया। नेपोलियन खुद ही लिख गया है— 'थ्रू-आउट माई होल रेन, आई वाज़ द की-स्टोन ऑफ एन एडिफाइस एन्टायरली न्यू, एण्ड रेस्टिंग ऑन द मोस्ट स्लेंडर फाउण्डेशन्स। इट्स इयूरेशन डिपेन्डेड ऑन द इश्यू ऑफ माई बैटिल्स। आई वाज़ नेवर, इन ट्रुथ मास्टर ऑफ माई मूवमेण्ट्स; आई वाज़ नेवर एट माई ओन डिस्पोज़ल।' भगवान से मेरी प्रार्थना है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू को मृत्यु से पहले नेपोलियन की तरह पश्चात्ताप न करना पड़े।"

सब लिखकर केदार बाबू ने फिर से डायरी बन्द कर दी। इसके बाद अचानक बाहर से आती पैरों की आवाज़ सुनकर डायरी को वैसे ही 'शेल्फ' में रख दिया, जिससे कोई देख न पाये।"

दौल और मन्मथ लौट आये। वे लोग काफ़ी सामान लाये थे।

"यह देखो, काका, तुम्हारे लिए एक जोड़ी जूता खरीदे हैं।"

आश्चर्य ! केदार बाबू के ऊपर जैसे एक अवसाद का-सा भाव छाया रहा। यहाँ इतने पाप चलते रहेंगे, इतना अन्याय चलता रहेगा और वह किसी की कोई भलाई नहीं कर पायेंगे। उनसे क्या एक भी आदमी का उपकार नहीं हो पायेगा ? वह खुद बाहर जा रहे हैं, हवा बदलने, अपने स्वास्थ्य के लिए। उनके लिए स्वार्थ ही सब-कुछ है।

सारे दिन सभी सामान बाँधने और ठीक करने में लगे रहे। शैल और मन्मथ दोनों ने ही सारे दिन मेहनत करके चीज़ें इकट्ठी कीं। यह घर हमेशा के लिए छोड़ देना होगा। किराया दे दिया गया है। विद्यार्थियों से भी एक बार मिलना नहीं हुआ। सिर्फ गुरुपद आया, दोपहर के बाद।

गुरुपद को देखते ही केदार बाबू नाराज़ हो गये। गुरुपद ने पाँव छुए। पैरों की धूल लेकर माथे से लगायी।

केदार बाबू ने कहा, "मैं पैरों की धूल नहीं दूँगा। जाओ, चले जाओ मेरे घर से !"

गुरुपद ने सिर नीचा किये कहा, "जी, मुझे माफ कर दीजिए !"

"क्यों, क्यों माफ करूँ ? तुम भूगोल में फेल क्यों हुए, बोलो ?"

"कोई पढ़ानेवाला नहीं था।"

"कोई पढ़ानेवाला नहीं था ! मुझे किसने पढ़ाया ? मुझे पढ़ाने के लिए क्या मास्टर था ? विद्यासागर को पढ़ानेवाला कौन था ? गरीबों का भी कोई होता होगा ? मैं अब किसी को भी नहीं पढ़ाऊँगा ! समझे, बेटा ! अब मैं सिर्फ अपने बारे में ही सोचूँगा, और किसी की परवाह नहीं करूँगा। चले जाओ तुम ! आखिर क्या सोचकर तुम फेल हुए, बोलो ?"

गुरुपद रोने लगा। धोती के छोर से आँसू पोंछने लगा।

"रो रहा है ! पास तो हो नहीं पाता, ऊपर से लड़कियों की तरह रोता है। भाग, निकल यहाँ से, भाग जा !"

कहकर उसी बीमारी की हालत में गुरुपद के ऊपर झपट पड़े। इसके बाद उसकी पीठ पर सडासड घूँसे लगाने लगे।

आवाज़ सुनते ही शैल दौड़ी आयी। काका का हाथ पकड़ लिया।

"करते क्या हो, काका ? मार क्यों रहे हो ?"

मन्मथ भी दौड़ा आया। केदार बाबू गुस्से से काँप रहे थे। शशिपद बाबू की बात सुनकर जितना गुस्सा जमा हुआ था, सब जैसे गुरुपद के ऊपर उतरा।

"तुम लोगों को कौन देखेगा ? तुम लोगों का कोई नहीं है, पता नहीं है ! तुम लोगों के लिए स्कूल नहीं है, मास्टर नहीं है, सरकार नहीं है, नाते-रिश्तेदार कोई नहीं है ! तुम लोग मर क्यों नहीं जाते ? किसलिए ज़िन्दा हो ? तुम्हारे मरते ही तो सबको शान्ति मिलेगी, तुम खुद भी छुट्टी पाओगे, गवर्नमेंट को भी छुट्टी मिलेगी ।"

शैल तब तक गुरुपद को पकड़कर कमरे के बाहर ले आयी। गुरुपद अभी तक रो रहा था।

शैल उसे दिलासा देने लगी, "छि, रोओ मत। तुम तो काका को पहचानते हो। उनकी बात पर गुस्सा नहीं करना चाहिए। जाओ, घर जाओ।"

गुरुपद को समझा-बुझाकर घर भेज दिया। फिर कमरे में आकर देखा, काका चुपचाप बैठे हैं। दोनों आँखें डबडबा रही थीं। शैल को देखकर केदार बाबू ने पूछा, "क्यों री, गुरुपद चला गया ?"

"तुम इस तरह मारोगे तो जायेगा नहीं ?"

"काफ़ी ज़ोर से मार दिया क्या ?"

"ज़ोर से नहीं मारा ? धमाधम घूँसे लगाये। लगती नहीं है क्या ?"

"उसके काफ़ी लगी है क्या ? काफ़ी ज़ोर से ?"

फिर मन्मथ की ओर देखकर कहा, "हाँ, मन्मथ, मैंने क्या ज़ोर से मार दिया ?"

मन्मथ ने भी कहा, "हाँ, मास्टर साहब, आपने उसे काफ़ी ज़ोर से मारा।"

केदार बाबू जैसे अपने को रोक नहीं पाये। बोले, "तो तुम खड़े-खड़े क्या देख रहे थे ? मेरे दोनों हाथ नहीं पकड़ सकते थे ? मुझे बतलाना चाहिए था कि मैं काफ़ी ज़ोर से मार रहा हूँ। तुम क्या गूँगे हो गये थे ? खड़े-खड़े तुम क्या कर रहे थे ? तुम क्या···?"

हठात् उसी समय सदाव्रत कमरे में आया। ठीक छः बजे थे। सदाव्रत अन्दर आते ही हैरान रह गया।

"यह क्या ? अभी तक आप लोगों का कुछ भी नहीं हुआ है ! आठ बजे ट्रेन है !"

केदार बाबू ने कहा, "यह देखो, सदाव्रत, तुम आ गये। मन्मथ ने अभी तक कुछ भी नहीं किया। खाली खड़ा था। मैंने गुरुपद को इतना मारा, मुझे एक बार···"

सदाव्रत ने उस बात पर ध्यान नही दिया। मन्मथ की ओर देखकर कहा, "अच्छा, और क्या-क्या रखना बाकी है ? सात बजे के अन्दर स्टेशन पहुँचना ही होगा। मेरी गाडी तैयार है।"

□ □ □

चितपुर से निकलते ही अँधेरी गली थी। सुफल कुन्ती को लिये उसी ओर चला।

सुफल ने कहा, "तुम्हे मैं ऐसी जगह ले जाऊँगा टगर दी, किसी को पता नही चलेगा।"

अचानक सुफल जैसे करुणा और ममता मे भर उठा। बोला, "टगर दी, इतने दिन कहाँ थी ? मैं रोज माँ से तुम्हारे बारे मे पूछता था।"

कुन्ती ने पूछा, "मुझ पर क्या तुम्हारा कुछ बाकी है, सुफल ?"

सुफल ने जीभ काट ली।

"अरे राम-राम, टगर दी ! मेरा क्या यह मतलब है ? मुझे क्या वैसा ही आदमी समझ रखा है ? मेरे साथ क्या तुम्हारा पैसे का ही नाता है ? तुम भी क्या कहती हो, टगर दी ! कसम से सुफल को तुम लोग आज भी नही पहचान पायी। चाट की दूकान खोल रखी है, इसलिए क्या मैं आदमी नही हूँ ?"

"नहीं-नहीं, मेरे कहने का वह मतलब नही है, सुफल ! मैं क्या तुम्हें जानती नही हूँ। फिर भी वह तुम्हारा धन्धा है।"

"हाँ धन्धा। धन्धा करता हूँ तो क्या मुझे पूरा चश्मखोर समझ रखा है ? धन्धेबाजी उस सेठ ठगनलाल के साथ करूँगा। सेठ ठगनलाल ! साला खुद तो गवर्नमेंट को ठगता है और अगर हम लोग उसे ठगें तो गुस्से के मारे लाल हो जाता है !"

कुन्ती गुहा इस सुफल को काफी अरसे से देख रही है। तभी से जब ऑकलैंड ऑफिस के बड़े बाबू के साथ पहली बार यहाँ आयी थी। पराँठे, मटन, कटलेट, केंकड़े की भुनी टाँगें वगैरह कितनी ही चीजें इस सुफल ने खिलायी हैं। मीठ-मीठी बातें की। बाद मे पद्मरानी के फ्लैट में आना-जाना शुरू होने के बाद तो प्रायः ही सुफल की दूकान का सामान खाती। कभी नकद तो कभी उधार। इधर-उधर दूसरे मुहल्लों से भी लोग सुफल की दूकान पर खरीदने आते। पद्मरानी के फ्लैट में कितनी ही बार पुलिस आयी। कितनी ही बार पुलिस ने आकर फ्लैट की तलाशी ली। यह सुफल ही हमेशा सबसे पहले होशियार कर देता। सिविल ड्रेस मे कितने ही सी० आई० डी० घर

एडवान्स लगेगा ?"

"कितना ?"

"चाहिए कब, यह बतला पहले ? मुझे बनाने मे एक दिन लगेगा।" भूलो ने कहा।

सुफल ने इस वार कुन्ती की ओर देखा। पूछा, "तुम्हें कब चाहिए, टगर दी ? बोलो न।"

कुन्ती का जैसे दम घुट रहा था। दिल धुक्-धुक् कर रहा था। पैरो तले से मिट्टी खिसक रही हो, लग रहा था, और ज़रा देर रुकने पर जैसे बेहोश हो जायेगी।

"चलाना कहाँ है ? कलकत्ता में ही या बाहर ?"

सुफल हैरान रह गया। बोला, "बाहर भी सप्लाई होती है ?"

अब कही जाकर जैसे कुन्ती के मुँह से कोई बात निकली। बोली, "चलो, सुफल ! मैं फिर कभी आकर बतला जाऊँगी। बाद में खबर कर दूँगी।" कहकर दरवाज़े की ओर उसने पाँव बढाया।

सुफल फिर अवाक् रह गया—क्या हुआ ? इतनी हुज्जत करके फिर बहाना कैसे ?

कुन्ती तब तक खुद ही दरवाजा खोलकर बाहर जा चुकी थी। सुफल भी पीछे-पीछे बाहर आ गया।

"क्या हुआ, टगर दी ? माल नही लेना ?"

कुन्ती ने कहा, "पता नही क्यो मुझे डर-सा लग रहा है। चलो, यहाँ से चलें।"

"लेकिन भूलो क्या कहेगा, ज़रा सोचो ? भूलो आज बारह साल से यह धन्धा कर रहा है। वह कभी नमकहरामी नही कर सकता। वह वैसा आदमी ही नही है।"

कुन्ती ने कहा, "जो भी हो। उसकी सूरत देखकर मुझे बड़ा डर लग रहा था। वह आदमी तो जैसे खूनी-खूनी लग रहा था।"

"कसम से, तुमने भी खूब कहा, टगर दी। पुलिस के बाप की भी मजाल नही है उसे पकड़ने की। वह घर पर माल रखता ही नही है। घर की तलाशी लेने पर पुलिस को कुछ भी नही मिलेगा।"

"नही सुफल, मुझे अब ज़रूरत नही है। तुम्हें बेकार परेशान किया। दूकान छोड़कर आये, लेकिन..."

सुफल ने कहा, "मुझे दूकान की परवाह नहीं है। तुम्हारा काम हो

जाय, इसीलिए आया था। तुम कितनी मुश्किल में फँसी हो, लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा, टगर दी !"

"मेरे दु.खों के लिए परेशान न हो, सुफल ! मेरे नसीब मे तो दु.ख ही लिखे है।"

कुन्ती की बात सुनकर सुफल को बड़ा अजीब लगा। बोला, "सिर्फ़ तुम्हीं क्यों, टगर दी, मुझे ही देखो न। साले खुद अपने माँ-बाप ने ही जब नहीं देखा तो साला भगवान क्या देखेगा !"

"जबकि देखो, सुफल ! तुम्हारे असली माँ-बाप शायद मजे से पाँव पर पाँव रखे इसी कलकत्ता शहर में मोटर-कार की सैर कर रहे होंगे। बाप भी लड़के को नहीं पहचान पा रहा और तुम भी बाप को नहीं पहचान पा रहे।"

बातें शायद सुफल के मन-माफ़िक ही थीं। बोला, "बाप साला अगर मिल जाये तो मुँह पर कम-से-कम सौ जूते मारकर साले के मुँह का भुरता बना दूँ, यह तुमसे कहे रखता हूँ, टगर दी !"

"और भी देखो न, जो लोग हमारा खून चूस रहे है उनसे कोई कुछ नहीं कहता। वे लोग मजे मे बालीगंज में बँगला बनवाकर आराम से रह रहे है। खद्दर पहनते हैं। मीटिंगों मे जाते है और गाड़ियों पर घूमते हैं। इतना ही नहीं, हमें देखकर घृणा से मुँह फेर लेते हैं।"

सुफल खुश हो गया। बोला, "मैं भी तो भूलो से यही कहता हूँ, टगर दी ! कहता हूँ, भूलो, जो होगा देखा जायेगा। तू काली माई की जय बोलकर सारे कलकत्ता को जलाकर राख कर दे।"

तब तक सड़क आ गई थी। रोशनी से पूरी सड़क जगमगा रही थी। सुफल अपनी दूकान में घुस गया। पद्मरानी के फ़्लैट में जाने से पहले कुन्ती ने भी कहा, "मै ज़रा और सोच लूँ, सुफल ! एकाएक कुछ कर बैठना ठीक नहीं है।"

कहकर कुन्ती सदर दरवाज़े से अन्दर आँगन की ओर चली गयी।

□ □ □
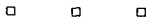
शशिपद बाबू ऑफ़िस से सीधे स्टेशन आये थे। लड़के के काफ़ी पुराने मास्टर है। शशिपद बाबू की तनख्वाह जब कम थी, तभी से केदार बाबू मन्मथ को पढाते आ रहे हैं, एकदम इन्फ़ैन्ट क्लास से ही। एक तरह से केदार बाबू ने ही मन्मथ का भार ले रखा था। बाद में शशिपद बाबू ने धीरे-धीरे नौकरी मे तरक्की की। लेकिन केदार बाबू को नहीं छोड पाये।

एकदम घर के आदमी हो गये। शशिपद बाबू के दुःख-सुख में केदार बाबू जैसे बँध-से गये। यह ही केदार बाबू आज जा रहे हैं। मन्मथ को भी साथ भेज रहे हैं, नहीं तो कौन उन्हें देखेगा? उनका है ही कौन?

प्लेटफॉर्म के अन्दर सभी ट्रेन के लिए खड़े थे। खाली गाड़ी रामराजतला से आयेगी। लेकिन उससे पहले ही प्लेटफॉर्म जैसे आदमियों से भर गया। थर्ड क्लास के पैसेन्जर बेसब्री से खड़े थे। ट्रेन आते ही किसी तरह घुसना होगा।

सदाव्रत आज क्लब नहीं गया। मिस्टर बोस ने पूछा जरूर था—उसे ऐसा कौन-सा काम है? मलिला ने भी पूछा था। लेकिन उन लोगों को तो पता नहीं। उन लोगों को तो पता नहीं कि यह फ़र्म का सवाल नहीं है। केदार बाबू की सेवा करना सदाव्रत के लिए कितना जरूरी है, यह कहने पर भी उन लोगों के लिए समझना मुश्किल है। हर रोज वही क्लब, वही किटी, ड्रिंक, फिर एल्गिन रोड लौटना। वहाँ उन लोगों के साथ ही डिनर लेना। और डिनर के बाद 'रीडर्स डाइजेस्ट' या 'ईल्स वीकली' के पन्ने उलटना। यह उससे कहीं अच्छा है। इतने सारे लोग, इतनी भीड़, इसी के बीच जैसे असली भारत के दर्शन हो जाते हैं। यही फर्स्ट क्लास, सेकंड क्लास, थर्ड क्लास। समाज का असली रूप जैसे इस रेलवे स्टेशन में ही दिखलाई देता है। यह स्टेशन ही जैसे छोटा-सा इंडिया है।

देखते-देखते ट्रेन आ गयी। गाड़ी प्लेटफॉर्म पर लगते ही मारा-मारी और हाथापायी शुरू हो गयी। मन्मथ ने ही रिजर्व-कम्पार्टमेंट खोज निकाला। चार बर्थ के कम्पार्टमेंट में तीन आदमी। चौथी सीट पर एक और आदमी। मन्मथ ने चटपट सामान कम्पार्टमेंट में चढ़ाया। प्लेटफॉर्म पर अभी भी जगह और कुलियों को लेकर झगड़ा चल रहा था। शैल अन्दर जाकर जो एक कोने में बैठी तो फिर उसने इस ओर नजर नहीं फेरी।

शशिपद बाबू ने कहा, "कल सुबह पहुँचते ही चिट्ठी दे दीजिएगा।"

केदार बाबू ने कहा, "मन्मथ से कहिए। मैं कुछ नहीं हूँ। सब काम उसे ही बतला दीजिए।"

बाद में अचानक रुककर कहने लगे, "जानते हैं शशिपद बाबू, मैं जा भले ही रहा हूँ, लेकिन शाम से ही मन बड़ा खराब हो गया है।"

"क्यों? आप स्वास्थ्य के लिए ही तो जा रहे हैं। सब ठीक हो जायेगा।"

"अरे, नहीं, यह बात नहीं है। आज गुरुपद बेचारे को बहुत मारा।"

"गुरुपद ? गुरुपद कौन ?"

"मेरा एक विद्यार्थी। भूगोल में फेल हो गया है, जनाब ! मैं गुस्सा नहीं रोक पाया। धमाधम दस-बारह घूँसे जमा दिये। जब कि यह मन्मथ पास ही खड़ा था, मुझे एक बार भी नहीं रोका।"

सदाव्रत को जैसे अचानक याद हो आया। प्लेटफॉर्म से डिब्बे की खिड़की में झाँककर उसने शैल से कहा, "तुम्हारे साथ ले जाने को कुछ रुपये लाया था, सँभालकर रख लो !"

कहकर मनीबैग निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। है ! मनीबैग कहाँ गया ? एक-एक कर सारी जेबें टटोल डालीं। सदाव्रत जैसे ऊपर से नीचे तक बेचैन हो गया। कहाँ गया ? कोट के अन्दर की जेब में ही तो रखा था। स्टेशन आने से पहले अच्छी तरह गिनकर देखे थे। कहाँ गया ? तीन टिकटें भी तो उसी में थीं।

"क्या हुआ ? मनीबैग नहीं मिल रहा ?"

केदार बाबू, मन्मथ, शैल, शशिपद बाबू—सब-के-सब भौंचक्के खड़े सदाव्रत की ओर देख रहे थे।

"कहाँ रखा था ? सामने की जेब में ? कितने रुपये थे ?"

सदाव्रत को ध्यान आया। जरा देर पहले एक लड़की उसके काफ़ी नज़दीक खड़ी थी। एकदम बदन से सटी हुई। बदन से बदन छू जाने के कारण सदाव्रत ने माफ़ी भी माँगी थी। उसी ने निकाला क्या ? लड़कियाँ भी चोरी करती हैं ?

"टिकटें भी क्या उसी में रखी थीं ? यह तो बड़ा गजब हुआ ! अब क्या किया जाये ?"

सभी आश्चर्यचकित हो उठे।

सदाव्रत ने अचानक दूर की ओर देखा। वही लड़की जैसे जल्दी-जल्दी गेट की ओर जा रही थी। वही हरे रंग की साड़ी, बड़ा-सा जूड़ा पीछे की ओर झूल रहा था।

सामने हज़ारों की भीड़। प्लेटफ़ॉर्म पर जैसे आदमियों का जुलूस रुका हुआ था। ट्रेन के छूटने में बीस मिनट बाकी थे। सदाव्रत जल्दी-जल्दी उसी ओर जाने लगा। गेट पार करते ही पकड़ से बाहर हो जायेगी। सड़क पर पहुँचते ही ट्राम और बस के गोरखधन्धे में पता नहीं कहाँ खो जायेगी।

लगभग भागते-भागते सदाव्रत चिल्ला उठा, "चोर, चोर !"

प्लेटफ़ॉर्म के सारे लोग सुनकर उसी ओर देखने लगे।

और आश्चर्य ! हरी साडीवाली लड़की ने एक बार पीछे देखकर भागना शुरू कर दिया।

सदाव्रत फिर चिल्लाया, "चोर, चोर !"

सदाव्रत के पीछे-पीछे दूसरे लोगों ने भी दौडना शुरू कर दिया।

पुलिस के कुछ सिपाहियों ने, जो अभी तक पता नही कहाँ छुपे थे, अचानक दौड़ती हुई लड़की को पकड़ लिया। सदाव्रत के वहाँ पहुँचते-पहुँचते हजारों आदमियो की भीड़ जमा हो चुकी थी। जितने लोग, उतनी ही बातें ! भीड़ को चीरते हुए अन्दर घुसकर सदाव्रत ने लड़की के चेहरे को अच्छी तरह से देखा।

लड़की डर के मारे थर-थर काँप रही थी।

सिपाही ने कहा, "चलो जी० आर० पी० के ऑफिस में !"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन मनीबैग मे पुरी-एक्सप्रेस के तीन टिकट थे। ट्रेन डिटेन कर दो। गाडी छूटने में सिर्फ़ बीस मिनट का वक़्त है।"

लेकिन कौन किसकी सुनता है ! भीड़ की गरमी की वजह से किसी के दिमाग का ही ठिकाना नही था। सभी तमाशा देखने आ जमे थे। जी० आर० पी० के ऑफिस में लड़की को ले जाकर बैठने को कुर्सी दी गयी।

"तुमने मनीबैग चुराया है ?"

लड़की ने कुछ भी नही कहा, सिर्फ़ रोना शुरू कर दिया।

"देखो, नही मानने पर तुम्हारी बॉडी सर्च करेंगे। निकालो जल्दी !"

लडकी ने फिर भी कुछ नही कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है ? रहती कहाँ हो ? स्टेशन क्या करने आयी हो ?"

एक के बाद एक सवालों की जैसे झड़ी लग गयी थी, फिर भी लड़की के मुँह मे जैसे आवाज़ ही नही थी, जैसे गूँगी हो गयी थी।

□ □ □

पद्मरानी के फ़्लैट में रात जैसे और भी गहरी हो आयी थी। किसी-किसी दिन तो गुलाबी, कुन्ती घर भी नही लौट पाती। घर आये 'बाबू' को छोड़ने से धन्धा खराब होता है। पद्मरानी की बदनामी होती सो अलग। ग्राहक आकर पद्मरानी से कहते, "कैसी सब लड़कियाँ रखी हैं तुमने ! खातिरदारी करना भी नहीं जानती !"

पद्मरानी चारपाई पर बैठे-बैठे ही कहती, "क्या हुआ, भैया ? मेरी लड़कियों से भूल हो गयी क्या ?"

"गलती नहीं ? हमने पैसे खर्च कर पी है, एडवांस पैसा दिया है। अब कहती हैं—देर हो रही है, उठिये ! हम लोगों का पैसा क्या पैसा नहीं है ? हमारा पैसा क्या मुफ़्त का आता है ?"

सब नये-नये कल के छोकरे। अभी ठीक से पाजामा पहनना भी नहीं सीखा। लफंगबाज़ी में अभी हाल ही पाँव रखना शुरू किया है। इन दिनों ज्यादातर वही लोग इस ओर आते है। इन्हें नाराज करना पद्मरानी के वश का रोग नहीं है। ये लोग कारखानों में शायद कुछ काम करते है। हाथ में चार पैसा आते ही उड़ाना सीख गये हैं।

पद्मरानी ने कहा, "कितना नम्बर ? किसकी बात कर रहे हो, बेटा ?"

जिनकी घर-गृहस्थी है, जो यहाँ कुछ घंटे पैसा कमाने आती है, उन्हीं को जल्दी रहती है। वे ही कहती—"ज़रा जल्दी-जल्दी ! देर हो रही है।"

देशी माल एक घूँट में तो गटागट नहीं चढाया जा सकता। जो लोग यहाँ आते है, कितना देख-सुनकर आते हैं। वे लोग जी भरकर ऐयाशी करेंगे। सोचकर ही आते हैं। ऐसे वक्त जल्दबाज़ी करने से गुस्सा आना स्वाभाविक ही है।

लेकिन गुलाबी तब तक दरवाज़े मे ताला लगाकर सडक पर जा चुकी थी। एक बस आ रही थी, उसी में चढ़ गयी। पीछे-पीछे कुन्ती भी आ रही थी। वह भी चढ़ आयी। दोनों ने एक लेडीज़ सीट पर दखल जमाकर जैसे निश्चिन्तता की साँस ली।

गुलाबी ने कहा, "लड़की को बुखार में छोड़ आयी हूँ, इसी से मन ज़रा छटपटा रहा था। मैं तो सोच रही थी, आज आऊँगी ही नहीं। फिर सोचा, न आकर भी क्या करूँगी ? पेट तो वह सब नहीं सुनेगा···"

फिर ज़रा रुककर बोली, "माँ से जाकर जो मर्ज़ी में आये कहो। मुझे किसी का डर नही है। जाने कहाँ-कहाँ के सब गुण्डे और बदमाश आते है। सब-के-सब मेरे लड़कों की उम्र के हैं। मुझसे कहते है कि···"

फिर जैसे अचानक ध्यान आया। बस की भीड़ में ये सारी बातें कहना ठीक नहीं है। खुद को ज़रा सम्हाल लिया। फिर भी कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से पूछा, *"आज सुफल के साथ कहाँ गयी थी, टगर ?"*

बात सुनकर कुन्ती चौंक उठी।

"मैं ! तुमसे किसने कहा ?" फिर कुछ रुककर कुन्ती ने कहा, "अरे, कहीं नहीं, ऐसे ही।"

"ऐसे ही माने ? आजकल लगता है, सुफल दलाली करने लगा है ! किसी बाबू को फँसाने ले गया था क्या ?"

"हट, दलाली क्यो करने लगा ? मैं उधर से आ रही थी, वह भी आ रहा था, रास्ते मे मिल गया। सुफल बड़ा अच्छा आदमी है। बेचारे के माँ-बाप नही हैं। मेरे भी माँ-बाप नही है।"

गुलाबी के भी माँ-बाप मे से कोई नही है। हमेशा किसी के भी माँ-बाप नही रहते। फिर भी उन्ही के लिए लोग जिन्दगी-भर अफसोस करते है। कुन्ती तो फिर भी थियेटर में काम कर लेती है। वैसे आजकल उतनी बुलाहट नही होती, फिर भी बीच-बीच मे थोड़ा पैसा आ ही जाता है। इन लोगों के पास तो वह भी नही आता। इन दुलारी और गुलाबी को ही लीजिये। ये लोग कब पैदा हुई, इसका हिसाब किसी के पास नही है। जिस दिन मर जायेंगी कोई उसका भी हिसाब नही रखेगा। श्मशान के क्लर्क के रजिस्टर में काली स्याही से सिर्फ सबका नाम और पता लिखा रहेगा। बाद में वह रजिस्टर भी किसी दिन रद्दी कागजों के साथ तुलकर बिक जायेगा। फिर वह कागज या तो चूल्हा जलाने के काम आयेगा या लिफाफा बनकर एक दूकान से दूसरी दूकान पर चक्कर काटेगा। तब वे लोग हमेशा के लिए निश्चित हो जायेंगी। और हो सकता है, उसी के बदले किसी पार्क के बीच संगमरमर के सफेद पत्थर का बना शिवप्रसाद गुप्त का स्टैच्यू प्रतिष्ठित होगा जो उस दिन उसे सोने का मैडल देने आया था। हरामजादा, सूअर का बच्चा ! उसी का लड़का उसी की इज्जत लेने के लिए उससे दोस्ती गाँठने आया। उसी के लड़के की शादी हो रही है। काफी बड़े आदमी की लडकी के साथ शादी होगी।

"हाँ री, कुछ मुझसे कह रही थी ?"

गुलाबी को लगा कि टगर उससे कुछ कहना चाहती है।

कुन्ती ने कहा, "कहाँ, नहीं तो !"

कोई कुछ नही कह रहा, फिर भी इस संगदिल कलकत्ता के इतने सारे लोगों के बीच वे दोनों एक-दूसरे को बड़ा नजदीक महसूस कर रही थीं। शायद ज़रा देर बाद ही बस से उतरने पर दोनों एक-दूसरे को देख भी नही पायेंगी। कल अगर कुन्ती फिर पद्मरानी के फ्लैट पर जाती है, तब शायद ज़रा देर के लिए दोनों की मुलाकात हो। नहीं तो दोनों के कमरों में बाबू होंगे, दोनों ही थोडी देर तक सब-कुछ भूलकर बाबुओं का दिल बहलाने की कोशिश करेंगी। उस समय और किसी की बात दिमाग में नहीं आयेगी।

कलकत्ता शहर जैसे चल रहा है, चलता रहेगा। किसी के लिए बैठा नही रहेगा। पाप, पुण्य, आनन्द और वेदना सब-कुछ भुलाकर इतिहास सृष्टि करता रहेगा। उसमें कौन मरा, कौन बचा, लेकर वह माथापच्ची नहीं करेगा।

"अरे कुन्ती, क्या खबर है ?"

कुन्ती ने जैसे साँप देख लिया हो।—कौन ? उसका नाम लेकर किसने पुकारा ?

नजर उठाकर सामने देखा। पाजामा पहने एक छोकरा था। काफ़ी पुरानी जान-पहचान हो, इस तरह उसकी ओर देख रहा था। कुन्ती ने पहचानकर भी न पहचानने का बहाना किया। कितने क्लब, कितने संस्कृति संघ और कितने ऑफिसों के ड्रामों में काम किया है। सभी को क्या याद रखा जा सकता है ?

"कौन हैं आप ?"

गुलाबी भी हैरान रह गयी। टगर को कुन्ती क्यों कह रहा है ?

"मुझे नहीं पहचानतीं ? तुमने हमारे क्लब के नाटक में पार्ट किया था न ! 'रंगमहल' में ओल्ड बालीगंज क्लब का प्ले हुआ था, याद नहीं है ?"

"आप किसको क्या समझ रहे हैं ! मैं तो एक्टिंग कर नहीं पाती।"

"लेकिन तुम्हारा नाम कुन्ती है न ? कुन्ती गुहा ?"

गुलाबी और चुप न रह पायी।

"ओ माँ, यह कुन्ती क्यों होने लगी ! आपको बात करने के लिए और कोई नहीं मिला ? ज़रा खिसककर तो खड़े होइए ! गरदन पर झुके बिना शायद लड़कियों से बात नहीं की जा सकती ?"

रात काफी हो चुकी थी। शायद बस का यह आखिरी ट्रिप था। पैसेन्जर थोड़े ही थे। फिर भी बस में जितने मर्द थे, उन्होंने सारा मामला हाथोंहाथ अपने ऊपर ले लिया। "अरे जनाब, इधर चले आइये, काफ़ी जगह खाली पड़ी है, उधर जनानी सीटों पर क्यों लदे पड़ रहे हैं ?"

लेकिन वह लड़का इन लोगों की बात पर कान देनेवाला नहीं था।

"अरे, याद नहीं है हमारे यहाँ 'शेष लग्न' नाटक में तुमने नन्दिता का पार्ट किया था और मैंने सुधामय का पार्ट किया था ! याद नहीं है ?"

कुन्ती ने गुलाबी की ओर देखकर कहा, "देखो न भाई, ये साहब किससे क्या कह रहे हैं। मैंने कब तो नाटक करना सीखा और कब पार्ट ही किया ?"

अन्दर की ओर से एक आदमी आगे की ओर आ गया।

"अरे जनाब, उधर काफी जगह पड़ी है। जाकर बैठ क्यों नही जाते? लडकियो के ऊपर भुके-भुके क्या कर रहे है ?"

फिर जैसे अचानक शक हुआ। "अरे, शराब भी पी रखी है !"

शराब !

शराब का नाम सुनते ही सारे पैसेन्जर चौंक उठे—"ऍं !"

सामने भूत देखकर भी शायद कोई इतना नही चौंकता। शराब का नाम सुनते ही सब लोग जैसे भभक उठे।

"कडक्टर, पकडकर बस से उतार दो ! उतारो !"

"अरे जनाब, आपके क्या हाथ नही है ? गरदन पकड़कर दो धक्के लगाइये न वच्चू को ! ज़रा-ज़रा-से छोकरे ! शराब पीना सीख गये हैं!"

लेकिन और ज्यादा नहीं कहना हुआ। लड़के ने खुद ही उतरकर सब लोगों की बेचैनी दूर की। कुन्ती का दिल तब भी धुक्-धुक् कर रहा था। गुलाबी का भी। शराब की बू तो उन लोगों के ही मुँह से आ रही थी। लौंग-इलायची खाने पर भी पूरी तरह से गयी नही थी।

कुन्ती के उतरने का समय भी हो आया था। गुलाबी ने पूछा, "कल आ रही है न ?"

"तू आ रही है न ?"

"आऊँगी नही तो कहाँ जाऊँगी, भाई! मरते-मरते भी आना होगा।"

कुन्ती को उतारकर बस दायी ओर चली गयी। रात की आखिरी बस थी। सडक खाली हो चुकी थी। वही पान की दूकान अभी तक खुली थी।

"ज़रा दो पान तो देना !"

खाना खाने के बाद कुन्ती पान खाती। शीशे में एक बार अपना चेहरा भी देख लेती। बूड़ी शायद अब तक सो चुकी होगी। बेचारी सारे दिन स्कूल में पढ़ती है, फिर शाम को खाना बनाती है, और उसके बाद ही किताब लेकर फिर पढ़ने बैठ जाती है। सचमुच बूड़ी के लिए इतना पैसा खर्च हो रहा है, इतनी मेहनत कर रही है, आखिर में क्या होगा, कौन जानता है ! कौन उससे शादी करेगा ? रुपये कहाँ से आएँगे ? कम-से-कम तीन हज़ार तो लगेंगे ही। वह तो 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के मालिक की लडकी नहीं है! बूड़ी की शादी होते ही कुन्ती पद्मरानी के यहाँ जाना छोड़ देगी। तब तक उम्र भी काफी हो जायेगी। एक तरह से बूढ़ी

ही हो जायेगी। तब कौन उसे पार्ट करने के लिए बुलाने आयेगा ! वन्दना, श्यामली वगैरह को ही अब कोई नही पूछता। पहले इस लाइन में कम लड़कियाँ थीं। इसीलिए कुन्ती की बुलाहट होती थी। अब तो जिसे देखो, नाटक करने चला आ रहा है। लड़कियों का जैसे जमघट लग गया है। इतनी लड़कियाँ और इतने आदमी पता नही क्या खाकर पैदा हुए हैं !

घर के दरवाज़े के पास आते ही पता नही कैसा खटका-सा लगा। एक बार ठेलते ही ताई ने अन्दर से दरवाज़ा खोल दिया। ताई को देखकर कुन्ती चौंक गयी।

"यह क्या ताई, अभी तक जग रही हैं ?"

ताई ने सुबक-सुबककर रोना शुरू कर दिया।

"सत्यानाश हो गया, बेटी, तुम्हारी बूडो को पुलिस ने पकड़ लिया!"

"हैं ! पुलिस ने पकड़ लिया है ? क्यों ? उसने क्या किया था ? कब पकड़ा ?"

इतने सारे सवाल एक साथ कर कुन्ती जैसे हाँफने लगी। ताई रोये या सब-कुछ खोलकर बतलाये, कुछ ठीक नही कर पा रही थी।

"आपसे किसने कहा, ताई ?"

"एक आदमी आकर कह गया। हावड़ा-स्टेशन थाने में बन्द कर रखा है। चोरी की थी।"

"क्या चुराया था ?"

"रुपया, बेटी, रुपया ! किसी भले आदमी की जेब से दो हज़ार रुपये निकाल लिये थे। सुनकर मेरे तो हाथ-पैर ठंडे पड़ गये, बेटी ! नींद भी नही आती, कुछ भी नही। तभी मैं तुम्हारे लिए जागी बैठी हूँ।"

"अब मैं क्या करूँ, ताई ?"

ताई भी आखिर क्या कहती ! ऐसी बात तो कभी सुनने में नही आयी। ऐसी घटना कितनों के साथ घटी है। एक बार कुन्ती को पुलिस ने पकड़ लिया था। उस बार ज्यादा कुछ नहीं किया। हवालात में बन्द कर दिया। बाद में एक दिन बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दिया। लेकिन थाना और पुलिस माने क्या होता है, यह कुन्ती अच्छी तरह से समझ गयी थी। कितनी ही बार आधी रात के समय पुलिसवाले पद्मरानी के फ़्लैट में आ धमकते।

पद्मरानी के फ़्लैट का ध्यान आते ही कुन्ती ने सोचा एक बार पद्मरानी से इस बारे में बात करे क्या ? माँ के साथ पुलिसवालों का बड़ा

रसूरत है। खबर करके किसी को फोन करवाकर अगर बूड़ी को छुड़वा सके !

"अरे, अब इस समय कहाँ जा रही है तू ?"

कुन्ती उसी हालत में फिर सड़क पर आ गयी। बोली, "ताई, दरवाजा बन्द कर लीजिए। मैं एक बार हो आऊँ। देखूँ, अगर कुछ हो जाये तो !"

"तो क्या ऐसे ही जायेगी ? बिना कुछ खाये-पिए ?"

"इस समय मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। बूड़ी बिना खाये बैठी होगी, मैं किस मुंह से खा लूं !"

इसके बाद सड़क के मोड़ पर आकर टैक्सी पकड़ी। टैक्सी के अन्दर बैठकर बोली, "चलो चितपुर, सोनागाछी !"

□ □ □
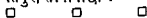
रात काफ़ी हो चुकी थी। लेकिन पद्मरानी के फ़्लैट में जैसे पूरी गर्मी थी। आँगन से ऊपर दूसरी मंज़िल में हारमोनियम पर गाना चल रहा था 'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख।' सुफल गोश्त और घुघनी की सप्लाई अच्छी तरह से नहीं दे पा रहा था। फूलमाला वाले आकर क़रीब चार-पाँच बार घूम गये थे। पद्मरानी ने अपने निजी स्टॉक में माल सप्लाई करना शुरू कर दिया है।

कुन्ती को इस समय लौटते देखकर पद्मरानी चौंक उठी।

"अरे, बेटी टगर ! इस 'टेम' कैसे ?"

कुन्ती ने बिना किसी भूमिका के कहा, "गजब हो गया, माँ ! बूड़ी को पुलिस ने पकड़ लिया है।"

"बूड़ी कौन ? तेरी छोटी बहन न ?"

"हाँ माँ, हावड़ा-स्टेशन पर पता नहीं क्या कर रही थी। मुझे तो घर पहुँचने पर पता चला। मेरी मकान-मालकिन को आकर कोई खबर दे गया था कि बूड़ी को हवालात में बन्द कर रखा है।"

"तेरी बहन ने किया क्या था ?"

"मुझे कुछ भी नहीं पता, माँ ! खबर मिलते ही मैं तुम्हारे पास दौड़ी आयी हूँ। तुम्हारे साथ तो माँ, पुलिस के कितने सारे लोगों की जान-पहचान है। किसी से कहकर मेरी बहन को छुड़वा दो।"

पद्मरानी जैसे कुछ सोचने लगी। फिर बोली, "पर इत्ती रात में किससे कहूँ ? मेरी कौन सुनेगा ?"

कुन्ती फिर भी मिन्नतें करने लगी। बोली, "जैसे भी हो माँ, तुम

मेरी बहन को छुड़वा दो।"

"पर हावड़ा-पुलिस मेरा कहा क्यों सुनने लगी ? मुहल्ले का थाना होता तो कह देती। और इत्ती रात मे कौन जगा बैठा होगा, बेटी ?"

फिर भी काफी कहने-सुनने पर पद्मरानी ने टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाया। बात की। कोई पकड़नेवाला नहीं था। आखिर किसी ने कह दिया कि कोई नही है। भुँझलाकर फोन छोड़कर बोली, "धत्, पहरेदारो को छोड़कर थानेदार सोने चला गया है।"

"तब क्या होगा, माँ ?"

"सवेरे कोशिश करके देखूँगी। तू, बेटी, अब जाकर सो रह, नही तो बाबुओ को पटा।"

लेकिन कुन्ती जैसे कमर कसकर आयी थी। "नही माँ, तुम्हे कुछ तो करना ही होगा। बिना माँ-बाप की मेरी एक ही बहन है। उसके लिए मैंने काफ़ी पैसा खर्च किया है। अच्छे घर में शादी करूँगी, सोचकर उसे पढ़ा रही हूँ। मेरा अपना कहने को और है ही कौन, माँ !"

"अच्छा-अच्छा ! यह सब छिनालपना छोड़ ! कौन किसे देखता है, जरा सुनूँ ? मेरी खबर रखने को कितनी बहनें थी ?"

इतनी बातें सुनने का वक़्त कुन्ती के पास नहीं था।

"फिर क्या होगा, माँ ?"

"होगा क्या ! अपनी बहन को यहाँ लाकर रखेगी ? देखती हूँ मुँहजले पुलिसवाले क्या करते हैं ! तब तो बड़े ज़ोर-ज़ोर से गला फाड़ रही थी, यहाँ नही [लायेगी ! अब क्या हुआ ? तब तो सेठ ठगनलाल तुझे नथ-खुलायी के पचीस हज़ार दे रहा था। अब क्या हुआ ? तब मैंने ही तेरे हाथ मे पाँच हज़ार रुपये रखे थे। तू ने फटाक से फेंक दिये। कहती थी—रुपयों पर मैं मूतती हूँ ! तो अब क्या हुआ ? सारी ठसक कहाँ गयी अब ? ज़रा सुनूँ ? अब तो तेरी बहन को यही सड़े छीन-झपटकर खायेंगे। तुम्हारा खयाल है, पहरेवालों ने क्या उसे अब तक छोड़ रखा होगा ?"

"माँ !!"

कुन्ती के मुँह से जैसे अचानक एक टीस निकल गयी। पद्मरानी के गाल पर कसकर एक तमाचा जड़ने की इच्छा हुई। लेकिन तभी कुन्ती ने अपने को सम्हाल लिया।

पद्मरानी तब भी कहे जा रही थी, "कहते है न, खुजलाने पर दाद कोढ़ हो जाता है। तेरा भी वही हाल है। तुझसे मैंने कित्ता कहा था—

टगर, अपनी बहन को यही ले आ, बेटी ! कुछ नगद भी मिल जायेंगे, पेट भी चलेगा। अब ठीक हुआ न ! पेट भी न भरा, बदनामी भी हुई !"

बात करने से पहले ही टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी।

"कौन ?"

इतनी पूरी रात को कौन टेलीफ़ोन कर रहा है ? किसे लड़की की जरूरत पडी ?

नही, यह बात नही है। ट्रककॉल है ! पद्मरानी ने गला फाड़कर कहा, "हलो !"

उस ओर से जवाब आया। इंडिया के एक छोर से दूसरे छोर पर ट्रंककॉल आया है।

"सुन्दरियाबाई !"

उधर से सुन्दरियाबाई ने पता नही क्या जवाब दिया। और इधर पद्मरानी से पता नहीं क्या बातें होने लगी। कुन्ती की समझ में कुछ भी नही आया। ये सब बातें सुनने मे भी अच्छी नही लगती। वह धीरे-धीरे कमरे से निकल गयी। सड़क जरा सूनी हो आयी थी। एक टैक्सी जा रही थी। रोककर कुन्ती उसमे बैठ गयी। फिर दरवाजा बन्द कर बोली, "हावड़ा स्टेशन !"···

□ □ □

हिन्दुस्तान पार्कवाले बँगले में बद्रीनाथ बहुत व्यस्त था। शिवप्रसाद बाबू फिर बाहर गये है। बूढे पेंशन-होल्डर लोग शाम को आकर वापस लौट गये हैं। इसके अलावा शाम से कितने ही टेलीफ़ोन आये। बाबू के घर न होने पर बद्रीनाथ की ही आफत आती।

बद्रीनाथ कहता, "बाबू तो बाहर चले गये है, आफत मेरी आती है।"

टेलीफ़ोन की आवाज सुनते ही मन्दाकिनी कहती, "ओ बद्रीनाथ ! ज़रा देख तो, कौन टेलीफोन कर रहा है ?"

बाबू भी घर नही रहते। छोटे बाबू भी नहीं हैं। हर काम के लिए बद्रीनाथ का ही आसरा है। बद्रीनाथ कहता, "और नही होगा, बाबा ! जान ले डाली !"

बद्रीनाथ इस घर मे काफी अरसे से है। कब से इस घर का हाल-चाल देख रहा है। वैसे कुंज भी है, लेकिन कामकाज न होने पर कुंज गैरेज में पड़ा-पड़ा सोता रहता है। ज़रा जवाब भी देते नही बनता।

मन्दाकिनी ने पूछा, "क्यों रे बद्रीनाथ, बाबू को कौन पूछता था ?"

"बाबू को नहीं, छोटे बाबू को !"

"तूने क्या कहा ?"

"कह दिया, इस समय क्या बाबू घर रहते हैं ? ऑफिस चले गये हैं।"

"कौन आया था ?"

"जी, एक औरत थी।"

कुन्ती ने सोचा था, सुबह-सुबह न जाकर जरा देरी से जाना अच्छा रहेगा। क्या पता, बड़े आदमी ठहरे। शायद देर से उठते होंगे। लेकिन सदाव्रत इतनी जल्दी ऑफिस चला जायेगा, वह नहीं सोच पायी। कुन्ती को सारी रात नींद नहीं आयी थी। पूरी रात चक्कर काटती रही। पद्म-रानी के फ़्लैट से सीधी हावड़ा स्टेशन। वे लोग तो मिलना ही नहीं चाहते थे, लेकिन शायद नसीब अच्छा था। जान-पहचान का आदमी था। जो दारोग़ा ड्यूटी पर था उसने देखते ही कुन्ती को पहचान लिया।

"सुना है आप लोगों ने मेरी बहन को थाने में बन्द कर रखा है ?"

इंस्पेक्टर ज़रा झुँझला उठा। बोला, "लेकिन इस समय ? कल सुबह आइयेगा ?"

कुन्ती ने कहा, "देखिये, मैं भले घर की लड़की हूँ। मेरे माँ, बाप, भाई कोई नहीं है। क्या करना चाहिए वह भी नहीं जानती।"

"जो कुछ जानना चाहें कल सुबह आकर पता लगाइयेगा। इस समय बेकार नींद क्यों ख़राब कर रही हैं !"

"देखिये, मेरी बहन बहुत छोटी है। वह किसी भी तरह चोरी नहीं कर सकती है। ज़रूर ही किसी ने फँसा दिया है।"

पुलिस-इंस्पेक्टर को जैसे अचानक कुछ ख़याल आया।

"आप रहती कहाँ है ?"

"कालीघाट ! देखिये न, ख़बर मिलते ही कालीघाट से भागी आ रही हूँ।"

"अच्छा, आपका नाम क्या है ?"

"कुन्ती गुहा !"

अचानक इंस्पेक्टर का चेहरा मुलायम हो गया।

"अरे, आप ड्रामों मे पार्ट करती है न ? हम लोगों के पुलिस-क्लब में आपने हीरोइन का पार्ट किया था न ?"

अचानक जैसे सब-कुछ याद आने लगा। इतनी देर बाद जैसे कुन्ती को सहारा मिला। कुन्ती के सिर का जूड़ा अचानक खिसककर पीठ पर

आ गिरा। काफी मुश्किल से बार-बार कोशिश कर कुन्ती को यह सब सीखना हुआ था। लेकिन वह सीखना आज यहाँ थाने में काम आयेगा, यह उसकी कल्पना के बाहर की बात थी। फिर बदन में उभार लाकर दोनों हाथ ऊपर कर जूड़ा ठीक करते-करते बोली, "आप ही ने तो हीरो का पार्ट किया था !"

"खूब याद है ! आई० जी० ने आपको मैडल दिया था न ! लेकिन आपकी बहन चोरी करने क्यों गयी ?"

कुन्ती ने कहा, "देखिये, मेरी समझ में कुछ भी ठीक-ठीक नहीं आ रहा है। मैं तो रात-दिन थियेटर-ड्रामा और रिहर्सल में ही फँसी रहती हूँ। उसके लिए मास्टरनी लगायी है। वह तो सारे दिन पढ़ाई-लिखाई करती रहती है। वह यहाँ हावडा-स्टेशन पर क्यों आने लगी ! मेरी समझ में नहीं आ रहा। आप मेहरबानी करके उसे छोड दीजिये। मैं मारते-मारते उसकी जान ले डालूंगी। लेकिन अगर उसे सजा हो गयी तो मैं कैसे मुँह दिखलाऊँगी ? आपके पाँव पडती हूँ, मुझ पर रहम खाइये, उसे छोड़ दीजिये !"

"लेकिन अब तो कुछ नहीं हो सकता। डायरी लिखी जा चुकी है।"

"एक बार लिख जाने पर क्या काटा नहीं जा सकता ?"

इंस्पेक्टर ने कुछ सोचा। बचपन से ही नाटक वगैरह का शौक था। आज भी इस लाइन के लोगों को देखकर जरा रहम आता है।

बोला, "अब तो कुछ भी नहीं हो सकता।"

"कोशिश कर देखिये न, अगर गरीब का कुछ भला कर सकें !"

"लेकिन केस काफ़ी उलझ चुका है।"

"क्यों ? उलझन किस बात की ?"

"अरे, इसी पिक-पॉकेटिंग की वजह से कल पुरी-एक्सप्रेस दो घंटे लेट हो गयी थी। हैड ऑफिस तक खबर पहुँच चुकी है। सभी को पता लग चुका है। और कम्प्लेन करनेवाला भी कोई ऐसा-वैसा नहीं है, शिवप्रसाद गुप्त का लड़का !"

"कौन ? किसका नाम लिया ?"

"शिवप्रसाद गुप्त ! उन्हीं का लड़का सदाव्रत गुप्त ! आपकी बहन ने उसी की जेब काटी थी। जेब में दो हज़ार रुपये थे, तीन फर्स्ट क्लास के टिकट थे ! पूरे हावडा-स्टेशन पर बात फैल गयी थी। गरीब होने पर कोई झमेला नहीं था। किसी को कानों-कान खबर तक न लगती। उस हालत में, मैं अपने रिस्क पर आपकी बहन को अभी हाल छोड़ देता। लेकिन

शिवप्रसाद गुप्त के साथ मिनिस्टरों तक का उठना-बैठना है। पता नहीं, कहाँ से रिपोर्ट हो जायेगी, तब ?"

"तब मैं क्या करूँ ?"

"अगर सदाव्रत गुप्त केस 'बिगड़' कर लें, तब कुछ किया जा सकता है। आपको शिवप्रसाद गुप्त का पता मालूम है ?"

कुन्ती चुप रही। जैसे उसकी जवाब देने की ताक़त भी खतम हो चुकी थी।

"पता नहीं मालूम ? मैं बतलाता हूँ…"

ज़रा रुककर कहा, "अरे, आप बालीगंज में हिन्दुस्तान पार्क जाकर जिससे भी पूछेंगी, वही आपको दिखला देगा। इतने बड़े पॉलिटिकल सफरर ठहरे। सुना है, नेहरूजी से भी गहरी दोस्ती है। यह केस क्या ऐसे ही छोड़नेवाला है ? बाद में हम लोगों की नौकरी पर ही बन आयेगी।"

कुन्ती ने फिर भी कुछ नहीं कहा।

"आप और देर मत करिये। सुबह ही जाकर उनके लड़के से मिलिये। बड़ा भला आदमी है। अगर आप अपनी मुश्किल ठीक से समझा पायेंगी, तब ज़रूर ही काम हो जायेगा। फिर हम लोगों के करने का काम हम लोग करेंगे। वायदा करता हूँ।"

कुन्ती फिर भी चुप रही।

"हाँ, तो इस समय कौन-सा प्ले चल रहा है ?"

उसका सिर जैसे भन्ना रहा था। सिर की आग मे जैसे सारा शरीर जला जा रहा था। कुन्ती को लगा, इससे तो स्टेशन पर इंजिन के नीचे सो रहना ज़्यादा अच्छा है। पद्मरानी के फ़्लैट में जाकर अपने कमरे में कड़े से लटककर फाँसी लगा लेना ज़्यादा आसान काम है। इससे सब-कुछ आसान है। उसके सामने जाकर खड़ा होना…नहीं-नहीं ! यह नहीं हो सकता ! जाकर आखिर कहेगी क्या ? माफ़ी माँगेगी ? गाली-गलौज करेगी ? उसके पाँवों में सिर रखेगी ? क्या करने और कहने पर वह माफ़ करने को राजी होगा ?

"देखिये न, कल सदाव्रत बाबू किसी को छोड़ने आये थे। उन बेचारों को भी देर हुई। उफ़, क्या हंगामा हुआ था ! शुरू में तो हम लोगों को पता ही नहीं था कि वह शिवप्रसाद गुप्त के लड़के हैं। बाद में जब उसने आई० जी० को टेलीफोन किया, साउथ ईस्टर्न रेलवे के जनरल मैनेजर को फोन किया, भाग-दौड़ मच गयी। वे लोग कांग्रेसी ठहरे ! उन्हीं लोगों के हाथ में

तो आजकल पावर है। रेलवे भी उन्हीं की है, पुलिस भी उन्हीं की है। अगर वे लोग कहें तो मैं फौरन छोड़ दूँ। मेरा क्या है! अगर आज पंडित नेहरू कहें, जेलखाने मे जितने कैदी है, सभी को छोड दो, तो क्या छोड़ न दूँगा ?"

इस्पेक्टर और भी न जाने क्या-क्या कहने लगा।

रात खत्म होने को थी। पूरी रात ही जैसे कुन्ती के सिर पर से सायँ-सायँ करती गुज़र गयी। लेकिन इतने अत्याचार के बाद भी उसे उन्ही के सामने सिर नवाना होगा ? दुनिया में उन्ही लोगो की चलेगी ? और कुन्ती वगैरह कुछ भी नही है ? कुन्तियाँ अगर मर भी जायें तो कोई पूछने वाला नही है। किसी के सिर मे दर्द भी नही होगा। उन लोगो के लिए दो हज़ार रुपये क्या चीज़ है ! और रुपया, टिकट सभी तो वापस मिल गया। फिर भी ज़रा-सा तरस नही खायेंगे। कुन्ती को लगा कि बूड़ी अगर उस समय सामने होती तो उसी मोटे रूल से उसका सिर फोड़कर दम लेती। एक बार दराँती से मारकर बूडी को बेहोश कर दिया था। बाद मे अस्पताल जाकर उसी के लिए खून दिया। अब की बार उसे खत्म करके निश्चिन्त हो जाती। ऐसा मारती कि फिर बचने की कोई उम्मीद ही नही रहती। मुँह से खून उगलती-छटपटाती मर जाती। ऐसी लड़की को ज़िन्दा छोड़-कर क्या होगा ! मर जाये ! जेलखाने मे सड़ा करे ! कुन्ती उसके बारे मे सोचेगी भी नही। ऐसी बहन के होने से भी क्या फायदा ! न होना ही अच्छा है। कुन्ती आज़ादी से घूमेगी !

कुन्ती ने पूछा, "बाबू ऑफिस से कब लौटेंगे ?"

बद्रीनाथ ने कहा, "ऑफिस से घर तो नही लौटेंगे, क्लब जायेंगे। वहाँ से आते-आते रात के दस बजेंगे। आप तभी आयें।"

कहकर कुन्ती के मुँह पर ही धड़ाम से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

□ □ □

केदार बाबू उस दिन वाकई काफ़ी परेशान हो गये थे। सिर्फ बीस मिनट रह गये है। अगर गाडी छूट जाये ? सदाव्रत कहाँ गया ? सभी को पकड़ेगा क्या ?

मन्मथ ने समझाने की कोशिश की। बोला, "आप कुछ फिक्र न करें। सदाव्रत दा तो देखने गये हैं।"

"लेकिन अगर गाड़ी चल दे ? तुम लोग किसी काम के नहीं हो !"

आखिर शशिपद बाबू से नही रहा गया, वह सदाव्रत को ढूँढने चल

दिये। और शैल गाड़ी के अन्दर पत्थर का बुत बनी चुपचाप बैठी रही। कहीं कुछ रुक-सा गया था। जिन्दगी में पहली बार वह कलकत्ता से कहीं बाहर जा रही थी। वास्तव में वह आज पहली बार गाड़ी पर चढ़ी थी। अब तक ट्रेन उसने सिर्फ दूर से ही देखी थी। बागमारी की उस कीचड़ और पोखरों से भरी सुनसान ज़मीन पर आसमान के नीचे यह ट्रेन ही उसकी एकमात्र सहेली थी। उस ट्रेन के साथ ही शैल जगह-जगह घूम आती। उसकी छोटी-छोटी खिड़कियों के साथ जैसे उसकी गहरी दोस्ती हो गयी थी। आज वह उस ट्रेन पर ही चढ़ी है। इस ट्रेन पर ही चढ़कर वह अब बेमतलब मन-माफिक घूमेगी। इससे तो खुश होने की ज़रूरत थी। कहाँ पुरी, कैसा वह शहर है! समुद्र कैसा होता है, उसे तो यह भी नहीं मालूम। फिर भी जैसे लग रहा था इस कलकत्ता की अँधेरी गली का वह गन्दा कमरा ही जैसे उसके लिए अच्छा था। उस कोठरीनुमा कमरे के लिए ही उसका दिल न जाने कैसा हो गया। सारे दिन सामान सहेजती रही, मन्मथ के साथ सारे दिन काम की एक-एक चीज़ बाँधती रही। लेकिन कलकत्ता छोड़कर जाते पता नहीं क्यों दिल टूट-सा रहा था।

और तभी यह गड़बड़!

हे भगवान, किसी तरह उसका जाना रुक जाय! डॉक्टर और दवा मिलने पर काका यहीं क्यों ठीक नहीं हो सकते!

"हाँ री शैल, सदाव्रत कहाँ गया? मन्मथ, तुम उतरकर ज़रा देखो न। कोई किसी मतलब का नहीं है, सब-के-सब कामचोर हैं! तुम्हें साथ ले जाकर देखता हूँ काफी मुश्किल में पड़ना होगा!"

"मेरे उतरते ही अगर गाड़ी छूट जाये?"

"छूटेगी कैसे? कोई मज़ाक है? टिकट के पैसे नहीं दिये हैं? मुफ्त में जा रहे हैं?"

"लेकिन टिकट तो चोरी चले गये!"

"तुम तो हर बात में बहस करते हो! टिकट चोरी जाने से क्या हुआ, रेलवे ऑफिस में रिकॉर्ड नहीं है? हम लोगों के नाम सीटें रिज़र्व नहीं हैं? अँधेर समझ रखा है क्या? गवर्नमेंट ऑफिसर चोर हैं तो क्या दिन-दहाड़े डकैती करेंगे?"

फिर जैसे खयाल हुआ कि दूसरे का आसरा देखना बेकार है। बोले, "कोई किसी मतलब का नहीं है, देखता हूँ मुझे ही उतरना होगा।"

कहकर जल्दी से उतरने जा रहे थे, शैल ने हाथ पकड़ लिया। उसने

कहा, "काका, तुम समझते क्यो नही हो ?"

"मैं समझता नही हूँ माने ? सदाव्रत कहाँ गया देखना नहीं होगा ? वह बेचारा हम लोगो के लिए इतना कर रहा है, इसकी कोई कीमत ही नही है ? मेरे ऊपर खर्च करने की उसे क्या पड़ी है ? वह कौन है मेरा ? वह किसी मुश्किल में तो नही पड़ा, देखना नहीं होगा ?"

तब तक सभी लोग ट्रेन से उतरकर प्लेटफ़ॉर्म पर जमा हो गये थे। सभी की ज़बान पर एक ही सवाल था—ट्रेन कब छूटेगी, कौन पकड़ा गया, इतनी देर तक ट्रेन किसके लिए रुकी है ?

लेकिन उस दिन सदाव्रत का पारा जितना चढ़ गया था, और कभी वैसा नही हुआ। जी० आर० पी० के ऑफिस मे उस दिन सदाव्रत का चेहरा जिसने नहीं देखा वह कल्पना भी नही कर पायेगा।

पुलिस-ऑफिसर ने सिर्फ इतना ही कहा, "तो आपका मतलब है आपकी तीन टिकटो के लिए इतने पैसेन्जर सफर करेंगे ?"

सदाव्रत ने कहा, "जिससे सफर न करें वही करिये !"

"लेकिन हम पुलिसवालों का भी तो कोई कानून है ?"

"पुलिस का कानून क्या पब्लिक को तकलीफ देने के लिए है, या उनकी मदद करने के लिए है, पहले तो यही बतलाइये ?"

आखिर पुलिस-ऑफिसर के धैर्य का बाँध टूट गया। उसने कहा, "देखिये, मुझे आपसे कानून नही पढ़ना है ! आप यहां से जाइये !"

"ठीक है, अपना टेलीफोन मुझे दीजिये, मैं आप लोगो के सुपरिन्टेंडेंट से बात करूँगा।"

कहकर खुद ही फ़ोन उठाकर सुपरिन्टेंडेंट की लाइन माँगी। लेकिन वह नही थे। उस समय वह शायद क्लब, होटल या किसी पार्टी मे गये थे। फिर टेलीफोन किया आई० जी० को। वह भी नही थे। फिर किया रेलवे के डी० टी० एस० को। वह भी नही मिले। आखिरकार जनरल मैनेजर को फ़ोन किया। सदाव्रत ने जनरल मैनेजर को भी सावधान कर दिया—"आप अगर कोई स्टेप नहीं लेंगे तो मैं रेलवे बोर्ड को फोन करूँगा। अगर उसने भी कोई स्टेप नही लिया जाता तो मैं रेलवे-मिनिस्टर को फोन करूँगा। उसमे भी अगर कोई फ़ायदा न हुआ तब मैं चेन खीचूंगा ! आप लोग मुझे अरेस्ट कीजिये। आई वान्ट दैट !"

केदार बाबू वहीं खड़े-खड़े देख रहे थे और हिस्ट्री से मिला रहे थे।

चारों ओर भीड़ थी। अप-डाउन हावड़ा-स्टेशन की सारी ट्रेनें उस

दिन 'अपसेट' हो गयी थी। शशिपद बाबू, केदार बाबू, सभी सदाव्रत को देखकर हैरान खड़े थे। पैसे खर्च कर, लाइन में धक्का-मुक्की करने के बाद इतनी मुश्किल से कराया रिज़र्वेशन क्या यों ही जायेगा ? इंडियन रेलवे इंडिया के प्रधानमन्त्री अथवा जनरल मैनेजर की निजी सम्पत्ति नहीं है। यह जनता की है। इसकी बुराई-भलाई 'इंडियनों' की बुराई-भलाई है। अमेरिका जब आज़ाद हुआ, तब वहां के 'डिक्लेरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेन्स' में आम जनता के अधिकारों की बात लिखी गयी। इतिहास में पहली बार जन-साधारण को मान्यता मिली। लिखा गया : 'वी होल्ड दीज़ ट्रुथ्स टु बी सेल्फ-एवीडेन्ट : दैट ऑल मैन आर क्रीएटेड ईक्वल; दैट दे आर एण्डोउड बाई देयर क्रीएटर विद सर्टेन अनेलियनेबल राइट्स, दैट एमंग दीज़ आर लाइफ, लिबर्टी, एण्ड द परस्यूट ऑफ हैपीनेस, दैट टु सीक्योर दीज़ राइट्स, गवर्नमेंट्स आर इन्स्टीट्यूटिड अमंग मैन, डिराइविंग देयर जस्ट पॉवर्स फ्रॉम द कन्सेन्ट ऑफ द गवर्न्ड; दैट ह्वेनएवर एनी फॉर्म ऑफ़ गवर्नमेंट बिकम्स डिस्ट्रक्टिव ऑफ दीज़ एण्ड्स, इट इज़ द राइट ऑफ़ द पीपुल टु आल्टर ऑर टु एबॉलिश इट एण्ड टु इन्स्टीट्यूट न्यू गवर्नमेंट, लेइंग इट्स फाउण्डेशन ऑन सच प्रिंसिपल्स एण्ड ऑर्गनाइज़िंग इट्स पॉवर्स इन सच फॉर्म, एज़ टू देम शैल सीम मोस्ट लाइकली टु इफ़ेक्ट देयर सेफ्टी एण्ड हैपीनेस'''बट ह्वेन ए लॉंग ट्रेन ऑफ एब्यूज़ेज़ एण्ड यूज़रपेशन्स, परस्युइंग इनवैरिएबली द सेम ऑब्जेक्ट—इविन्सेज़ ए डिज़ाइन टु रिड्यूस देम अण्डर एब्सोल्यूट डेस्पोटिज्म, इट इज देयर राइट, इट इज़ देयर ड्यूटी, टु थ्रो ऑफ़ सच गवर्नमेंट एण्ड टु प्रोवाइड न्यू गार्ड्स फॉर देयर फ्यूचर सेफ्टी।'

सदाव्रत ने कहा, "हमारी ही सरकार, हमारी ही पुलिस—आप लोगों के जी में जो आये, मैं वह नहीं करने दूंगा ! आप अपराधी को लॉक-अप में बन्द कर मेरा पर्स, मेरी टिकटें वापस करिये !"

शशिपद बाबू ने कहा, "सर, पता है, यह कौन है ? यह शिवप्रसाद गुप्त के लड़के है, इनका नाम सदाव्रत गुप्त है। यह केस पार्लियामेंट तक जायेगा, मैं कहे देता हूँ। पंडित नेहरू शिवप्रसाद गुप्त के पर्सनल फ्रेंड है।"

साथ ही जैसे जादू का-सा असर हुआ। पुलिस इन्स्पेक्टर के चेहरे का भाव बदल गया। उठकर बोला, "आप खड़े क्यों हैं, बैठिये न !"

१७८१ में अमेरिका की आज़ादी के आठ साल बाद ही सन् १७८९ में फ्रांस में राज्यक्रान्ति हुई। हम चर्च नहीं मानेंगे, पुरोहित और पण्डों को नहीं मानेंगे; रायसाहब, रायबहादुर, पद्मश्री और पद्मविभूषण को नहीं

मानेंगे। हम सिर्फ एक बात मानेंगे—"मैन आर बॉर्न एण्ड रिमेन फ्री एण्ड ईक्वल इन राइट्स। लॉ इज द एक्सप्रेशन ऑफ द जनरल विल। ऑल सिटीज़न्स हैव द राइट टु टेक पार्ट पर्सनली ऑर बाई देअर रिप्रिज़ेण्टेटिव्स इन इट्स फॉरमेशन। नो मैन कैन बी एक्यूज्ड, अरेस्टेड ऑर डिटेण्ड एक्सेप्ट इन द केसिज़ डेटरमाइन्ड बाई द लॉ एण्ड एकोर्डिंग टु द फॉर्म्स इट हैज प्रिस्काइब्ड। प्रॉपर्टी बीग ए सैक्रिड एण्ड इनवाओलेबल राइट्स, नो वन कैन बी डिप्राइव्ड ऑफ़ इट अनलेस ए लीगली एस्टेबलिश्ड पब्लिक नेसेसिटी एवीडेंटली डिमाण्ड्स इट अण्डर द कंडीशन ऑफ ए जस्ट एण्ड प्रायर इण्डेमनिटी।"

केदार बाबू सब देख रहे थे और मन-ही-मन हिस्ट्री के साथ मिला रहे थे। अमेरिका में डिक्लेरेशन ऑफ इंडिपेंडेन्स और फ्रेंच-रिवोल्यूशन के बाद तो दरबार में आम जनता की पूछ बढ़ गयी। लेकिन इंडस्ट्रियल-रिवोल्यूशन के बाद सब गोलमाल हो गया। कागज आया, प्रेस आया, टाइपराइटर और नोट छापने की मशीन आयी, कपड़ा बुनने की मशीन आयी, मोटर कार और हवाई जहाज़ आये। राजा की जगह बड़े आदमी आये। आम जनता फिर से नौकर की नौकर रह गयी। आदमी को फिर नये सिरे से नयी जाति-पूँजीपतियों की गुलामी करनी पड़ी। उसके बाद ही आयी लड़ाई। उसके बाद ही एक और समस्या आ खड़ी हुई। तब सभी कहने लगे। 'गवर्नमेंट इज़ ऑफ़ द रिच, बाई द रिच एण्ड फॉर द रिच।'

केदार बाबू ने इतनी देर बाद मुँह खोला, "मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था, सदाव्रत, लेकिन तुमने मेरी बात नही मानी।"

सदाव्रत पसीने से तर हो रहा था। घूमकर पूछा, "क्या कह रहे थे?"

केदार बाबू ने कहा, 'तुम्हे कुछ भी याद नही रहता—तुमसे कहा नही था फ्रास मे १८८२ में लुई ब्लान्क ने यही बात कही थी—गवर्नमेंट इज़ ऑफ द रिच, बाई द रिच एण्ड फॉर द रिच।"

"आप रुकिये तो!"

"रुकूँ क्यों? मैने क्या गलत कहा है? हिस्ट्री की किताब नही लाया हूँ, नहीं तो तुम्हें दिखलाता।"

कहकर अचानक बूढ़ी की ओर घूमकर ज़रा नीचे झुके। फिर पूछा, "अच्छा बेटी, बतलाओ तो, तुमने आखिर चोरी क्यो की?"

शायद पुलिस-इंस्पेक्टर ही आपत्ति करता। लेकिन तभी ऊपर के हलके से फ़ोन आ गया। मनीबैग, मनीबैग के रुपये और टिकट वगैरह का

पूरा ब्यौरा रखकर जिसकी चीज है उसी को लौटा दो। ट्रेन अभी छोड़नी होगी। और ज़रा भी देर नहीं होनी चाहिए।

उस दिन हावड़ा-स्टेशन से पुरी-एक्सप्रेस दो घंटे लेट छूटी।

जी० आर० पी० थाने के इस्पेक्टर ने डायरी में नोट किया, 'ए केस ऑफ पिक-पॉकेटिंग ऑफ-डेयरिंग नेचर।'

उसके बाद थाने के लॉक-अप में अपराधी को बन्द करके कांस्टेबल ने दरवाजे पर ताला लगा दिया। अपराधी के रोने की आवाज अब बाहर से सुनायी नहीं दे रही थी। इस्पेक्टर ने निश्चिन्त मन से एक सिगरेट सुलगायी। एव्री थिंग ऑलराइट इन द स्टेट ऑफ़ डेनमार्क!

□ □ □

दूसरे दिन सुबह ही ट्रेन के पुरी पहुँचने की बात थी। पहुँची भी होगी। सदाव्रत हमेशा की तरह जल्दी ही उठा था। उसके बाद आदत के अनुसार घड़ी देखी। कलकत्ता शहर की सुबह रात के बारह बजने के बाद शुरू होती है। और रात के बारह बजने के साथ-ही-साथ रात खत्म होती है। रात के बारह बजे ही खबरें आतीं। मैक्सिको, पेरू, न्यूयॉर्क, लन्दन, बम्बई और दिल्ली की खबरें। ये ही खबरें रोटेरी मशीन में छापकर ठीक समय पर घर-घर पहुँचा दी जाती। सुबह पांच बजे उठते ही सुबह के ब्रेकफास्ट की टेबल पर वह अखबार हाज़िर रहता। न्यूयॉर्क के बुलियन मार्केट का लेटेस्ट भाव सुबह उठते ही मिलना चाहिए। मद्रास टर्फ क्लब की लास्ट रेस का हाल जाने बिना भी काम नहीं चलेगा। ऑयरन, स्टील, जूट, एल्यूमिनियम, सारे शेयरों का पूरा-पूरा हाल जाने बिना ब्रेकफास्ट हज़म नहीं होगा। शेयर-मार्केट और रेस ये दोनों देखने के बाद आती पॉलिटिक्स। कहाँ पर किस मिनिस्टर ने क्या लेक्चर दिया। कौन डिप्टी मिनिस्टर किस देश में स्टेट-विज़िट पर गया। किस गवर्नर ने कहाँ पर कौन-सी कांफ्रेंस ओपन की। यह सब सुबह ही जानना ज़रूरी होता है। इसके बिना तुम बैक-डेटेड हो। सोलह नये पैसे का टैक्स दिये बिना तुम्हें दुनिया का कल्चर्ड आदमी नहीं माना जायेगा। इसके बाद तुम्हें खाना मिलता है या नहीं यह देखना हमारा काम नहीं है। तब तुम अपना हाल खुद समझो।

मिस्टर बोस काफ़ी सालों से सुबह का वक्त इसी तरह काटते आ रहे हैं। उनकी उन्नति के पीछे भी यह अखबार ही है। सोलह पैसे टैक्स देते-देते आज वह सोलह मिलियन रुपये के मालिक हैं। जब देखा बुलियन मार्केट गिरा है, खरीद लेते। उन्होंने राजनैतिक दूरदृष्टि पायी

थी, इसीलिए कभी धोखा नही खाया। पॉलिटिकल लीडरों से जान-पहचान कर रखी है। लेटेस्ट खबरें रखते। और हिसाब लगाकर रुपया इनवेस्ट किया है। किसके जमाई को नौकरी देने से इनवेस्टमेंट सेंट-परसेंट प्रॉफिट में आयेगा, किसके लडके को प्रमोशन देने मे स्टील का परमिट मिलने मे आसानी होगी, यह सब इन अखबारों की बदौलत ही किया है। इस मामले में उन्हे कोई धोखा नही दे सकता।

उनका कहना है, "ब्लड में कोई डिफेक्ट होने पर आदमी या तो पोयट होता है या फिलॉसफर हो जाता है।"

वह कहते, "जिसस क्राइस्ट के खून में जरूर कोई खराबी थी, गाधी-जी का भी वही हाल था…"

वह कहते, "असली आदमी वही है, जो सक्सेसफुल है, बाकी सब एनिमल होते है।"

कलकत्ता के सारे आम लोगो को वह जानवर ही मानते थे। जैसे पेड-पौधे के सूख या मर जाने पर किसी को खास चिन्ता नही होती, उसी तरह आम लोगो के जीने-मरने से उन्हे कोई मतलब नही था। जिन अखबारो में आम लोगों के दुःख-सुख की कहानी होती, या भूखो मरते लोगों की या किसी नौजवान की आत्महत्या करने की कहानी होती, या तनख्वाह बढाने के लिए स्ट्राइक की खबरे होती, इन खबरो की ओर वह देखते भी नहीं थे। उनका सेक्रेटरी सिर्फ आइजनहॉवर, चर्चिल, नेहरू, कृष्णमेनन, अतुल्य घोष, बी० सी० राय और प्रफुल्ल सेन की खबरे पढ़कर सुनाता।

सेक्रेटरी अगर पूछता, "कलकत्ता मे कल एक एक्सिडेंट हो गया, पढ़ूँ, सर ?"

"कैसा एक्सिडेंट ?"

"एक रिफ्यूजी-गर्ल को गुडो ने ले जाकर 'रेप' किया।"

मिस्टर बोस को यह सब अच्छा नही लगता। कहते, "लीव इट, यह रहने दो—और क्या है ? ह्वाट नेक्स्ट ?'

"सर, विजयलक्ष्मी की एक लड़की की कल शादी हुई है—पढ़ूँ ?"

"यस, यस, यू मस्ट, कहाँ पर ? किसके साथ ? इनवाइटेड गेस्ट कौन-कौन थे ?"

सुबह के वक्त यह अखबार और दोपहर को फैक्टरी—एक-न-एक झंझट लगा ही रहता है। फिर रात। रात होती है सब-कुछ भूल जाने के

लिए। रिलेक्स करने के लिए। जिसके लिए था क्लब, अलकोहल और नींद की गोलियाँ। क्रॉसवर्ड पज़ल्स,'रीडर्स डाइजेस्ट' और 'ईव्स वीकली' से मन भुलाना होता।

पिछले दिन डिनर के समय सदाव्रत नही आ पाया था। क्लब भी नही आया।

"क्यों ? क्यों नही आया ?"

"कह रहा था कोई काम था।"

"क्या काम ? उसे कौन-सा काम हो सकता है ? मनिला, तुमने उसे क्यों छोड़ा ? ऑफ़िस के अलावा उसे और कौन-सा काम है ? और काम होने पर भी तुम्हे साथ-साथ रहना चाहिए। तुम्हे भी मालूम होना चाहिए सदाव्रत कहाँ जाता है। तुमने पूछा नही, उसे क्या काम था ?"

दूसरे दिन ऑफिस पहुँचते ही मिस्टर बोस ने सदाव्रत को बुला भेजा।

"कल तुम कहाँ गये थे ?"

सुनकर सदाव्रत को बडा अजीब लगा। उसे क्या रोज इसी तरह कैफ़ियत देनी होगी !

"मनिला कह रही थी कल तुम क्लब नही गये ?"

"कल हावड़ा-स्टेशन गया था कुछ लोगो को सी-ऑफ करने।"

"ओह, वही तो सोच रहा था। तुम नही गये। मनिला को बड़ा लोनली लग रहा था। तुम्हे तो मालूम ही है मनिला बड़ी सेन्सेटिव लडकी है, वेरी टची—हाँ तो, आज क्लब जा रहे हो न ?"

"हाँ।"

इसी का नाम शायद नौकरी होता है। इसी नौकरी के लिए शम्भू, बिनय वगैरह उससे जलते है। यह नौकरी है इसीलिए समाज मे उसकी इतनी इज्जत है। सभी जानते है सदाव्रत गुप्त गाडी ड्राइव करके ऑफिस जाता है। उसे बस और ट्राम मे भूलते हुए नही जाना होता। सभी उसकी आर्थिक अवस्था जानते हैं। लेकिन मैनेजिंग डायरेक्टर के रूप में जाकर उसे जो यह कैफियत देनी होती है, यह कोई नही जानता। किसी को नही पता कि मैनेजिंग डायरेक्टर की लड़की को लेकर उसे रोज शाम घूमने जाना होता है। उसकी लडकी के कुत्ते को प्यार करना होता है। नौकरी मंजूर करते ही उसकी सारे दिन की आजादी गयी। अब शाम के वक्त की आजादी भी गयी। पहले वह इस समय गाड़ी को कही पार्क कर सड़कों पर चक्कर काटता था। घूम-घूमकर इन्सानों को देखता। सड़कों पर धक्कम-

धक्का करती लोगों की भीड़, छोटे-छोटे कमरे, छोटे-छोटे आकार। बन्द और घुटन-भरे कमरों में बैठे रहने के कारण इन लोगों का दम अटकने लगता था। तब साड़ी-ब्लाउज और ट्राउजर शर्ट पहनकर सड़क पर खुली हवा के लिए निकल पड़ते। खुद को दिखलाते और दूसरों को भी देखते। तभी मनिला को बगल में बैठाकर सदाव्रत को घूमने निकलना पड़ता।

चलते-चलते किसी दिन सदाव्रत पूछता, "आज किस ओर चलना है ?"

मनिला किसी दिन कहती, "चलो, न्यू-मार्केट चलें।"

या कहती, "चलो, लेक चलते हैं।"

गाड़ी के टैंक में काफी पेट्रोल है, जेब में पैसा और सामने न खत्म होनेवाले मौके। मनिला की आस नहीं मिटती। देखकर या दिखलाकर किसी तरह भी आस नहीं मिटती। सिर्फ लगता जैसे दुनिया हाथ में से फिसलकर भाग रही है। दुनिया में से सब-कुछ निचोड़कर, उसमें का सब लेकर तब छोड़ो।

उसके बाद सिनेमा है। अमेरिका में मैन्यूफैक्चर किया हुआ और हाथ में आया, यौवन यों ही निकलने नहीं दिया जा सकता। कहती, "चलो, 'मेट्रो' चलें।"

फिर जैसे इन सारी चीज़ों से मनिला ऊब उठती। तब फिर क्लब। क्लब पहुँचकर फिर वही किटी, वही ड्राई जिन और···

मनिला कहती, "कलकत्ता अब और अच्छा नहीं लगता।"

सदाव्रत पूछता, "क्यों ? अच्छा क्यों नहीं लगता ?"

मनिला कहती, "न एक भी अच्छी पिक्चर आ रही है, न कोई पार्टी ही हो रही है—लाइफ डल हो गयी है !"

इसका शायद कोई अन्त नहीं है। इसी अच्छे न लगने का। आजकल मनिला को 'पेगी' भी अच्छा नहीं लगता।

सदाव्रत कहता, "तब तो किसी दिन मैं भी तुम्हें अच्छा नहीं लगूंगा ?"

"मुझे कुछ भी ज्यादा दिनों तक अच्छा नहीं लगता। मेरे लिए सब-कुछ दो दिन में ही पुराना हो जाता है। मैं क्या करूँ, कहो ?"

"तब क्यों बेकार के लिए मुझसे शादी कर रही हो ?"

"शादी करने पर सारी जिन्दगी क्या अच्छा भी लगना होगा ? ऐसा क्या कोई कान्ट्रैक्ट है ?"

"तब तो तुम से शादी करना मुसीबत मोल लेना है !"

मनिला हँस पड़ी, "वाह, माँ ने भी तो डैडी से शादी की है, लेकिन माँ को तो डैडी ज़रा भी पसन्द नहीं हैं। सारे दिन दोनों लड़ते हैं, डैडी जिस घोड़े पर बाज़ी लगाने को कहते हैं, माँ उस पर कभी बाज़ी नहीं लगाती।"

"अपनी माँ और डैडी की बात जाने दो। तुम तो इस युग की हो!"

"लेकिन मैंने तो कहा न कि मैं क्या करूँ? मेरे लिए सब चीज़ें पुरानी हो जाती है, इसीलिए बीच-बीच में डैडी के साथ कुछ दिनों के लिए बाहर चली जाती हूँ। और कभी-कभी तो यह इंडिया भी पुरानी हो जाती है।"

सदाव्रत पूछता, "क्यों, पुरानी क्यों हो जाती है, कभी सोचकर देखा है?"

"वह सब नहीं सोचती। लेकिन अच्छा नहीं लगता। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ड्रिंक करती हूँ लेकिन ड्रिंक करने पर पहले जितना अच्छा लगता था, अब उतना अच्छा नहीं लगता। अब तो आदत पड़ गई है इसीलिए ड्रिंक करती हूँ!"

फिर ज़रा रुककर पूछने लगी, "लेकिन बतला सकते हो, ऐसा क्यों होता है?"

सदाव्रत कहा, "कहूँ?"

"सच बतलाओ न?"

"तुम्हें खराब तो नहीं लगेगा?"

"नहीं!"

सदाव्रत ने कहा, "ज्यादा पैसा होने पर ऐसा ही लगता है। तुम्हारे डैडी के पास कम पैसा होता तो तुम्हारे लिए अच्छा होता, तुम्हारी माँ के लिए भी अच्छा होता। डैडी और माँ में झगड़ा नहीं होता।"

"लेकिन मैं गरीबों को तो देख भी नहीं पाती। देखने पर घृणा होती है।"

"क्यों, घृणा क्यों होती है? तुमने कभी गरीब देखे है?"

"देखे हैं, अपनी आया को देखा है। बड़ी गरीब है बेचारी। मुझसे देखा नहीं जाता।"

सदाव्रत ने कहा, "चलो, तुम्हें गरीबों की बस्ती दिखला लाऊँ?"

कहकर सदाव्रत ने गाड़ी घुमा दी। "इसका नाम है टालीगंज। देखो कैसे छोटे-छोटे कमरे हैं! यहाँ एक कमरे में छः-सात लोग सोते है। ज़रा यहाँ के लोगों की ओर देखो। ये भी इसी कलकत्ता के आदमी है। ये भी

टैक्स देते है। तुम्हारी ही तरह टैक्स। लेकिन सरकार ने जो सुख और सुविधाएँ तुम्हे दे रखी हैं, इन्हे नही देती। इन लोगों की भी शादी होती है, इन लोगो के भी बाल-बच्चे होते है, इन्हें भी प्यार करना आता है, ये भी तुम्हारी और मेरी तरह आदमी है!"

मनिला ने ज़िन्दगी में कभी भी यह कलकत्ता नही देखा था। उसने देखी है चौरंगी, पार्क कॉर्नर और एलिगन रोड। और देखी है न्यू मार्केट। इसके अलावा ग्राड, ग्रेट ईस्टर्न और स्पेन्सर्स होटल देखा है। लेकिन कालीघाट नही देखा, बहुबाजार नही देखा, चित्पुर या जोड़ासाँको भी नही देखा है।

"वे लोग कौन है? ये सब लड़कियाँ खड़ी है न?"

"वे लोग है प्रॉस्टीट्यूट्स। उन्हे वेश्या कहते हैं। रुपये के लिए ये लोग अपना शरीर बेचती हैं।"

मनिला ने सिर ज़रा झुकाकर फिर से अच्छी तरह देखा। चेहरे पर रंग पोते घर के बरामदे मे सड़क की ओर ताकती खड़ी थी।

"हाऊ फनी! लेकिन ये लोग तो शादी भी कर सकती हैं!"

"इन लोगो की शादी नही होती।"

"क्यो नही होती?"

सदाव्रत ने कहा, "इन लोगो को पोसे बिना सरकार बेकार जो हो जायेगी!"

"क्यो?"

"वह सब जानने की तुम्हे ज़रूरत नही है। उधर देखो, अफ्रीका के जंगल मे भी लोग इससे अच्छी तरह रहते है।"

"ये लोग इतने गन्दे कपड़े क्यो पहनते है? ये लोग अपने कपड़े ड्राई-क्लीनिंग के लिए क्यो नही देते?..."

सदाव्रत रोज़ इसी तरह कलकत्ता दिखलाने लगा। पूछा, "और देखना है?"

"यह भी कलकत्ता है?"

"अगर और देखना चाहो तो दिखला सकता हूँ। देखोगी यह कलकत्ता अरेबियन नाइट्स से ज्यादा इन्टेरेस्टिंग है। तुम्हारी तरह चाऊ-एन-लाई, ख्रुश्चेव, क्वीन एलिजाबेथ ने भी कलकत्ता आकर इस कलकत्ता को नही देखा। तुम लोगो को यह कलकत्ता देखना नही चाहिए। तुम्हारे डैडी ने भी इसीलिए तुम्हे यह कलकत्ता नही दिखलाया।"

"लेकिन इसे देखने में मेरा लाभ ही क्या है?"

"जिस देश मे तुम पैदा हुई हो, उसी को नही देखोगी ? तुम्हारे घर जो अखबार आते हैं उनमें भी तो इस कलकत्ता की कोई खबर नही होती। तुम जो 'रीडर्स डाइजेस्ट' पढती हो, 'ईव्स वीकली' पढती हो, उनमें भी इन आदमियों के बारे मे कुछ नही होता।"

"चलो-चलो, इन गरीबो को देखते देखते मेरा तो सिर घूमने लगा, आज लगता है दो रंग जिन लेनी होगी। यह सब क्यो दिखलाया मुझे ? यहाँ इतना धुआँ, इतनी कीच और घुटन है, यहाँ भी क्या कोई रह सकता है ?"

"तुमने भी खूब कहा ! कलकत्ता से तुम्हारा जी भर गया था इसीलिए दिखलाया। कल और भी कई जगह दिखलाऊँगा। दिखलाऊँगा, किसके पैसे मे कलकत्ता की सड़कें तैयार हुई है, किसकी बनायी सडक पर हम गाडी ड्राइव करते जाते हैं, उन सब लोगो को भी दिखलाऊँगा।"

"देखती हूँ तुम बहुत ही बड़े-आदमी-हेटर हो। डैडी क्या इन लोगों को ठगकर बड़े आदमी बने हैं ?"

इस बात का जवाब दिये बिना सदाव्रत ने कहा, "चलो, और नही, अब क्लब चलो, यह सब तुम्हारे देखने लायक जगह नही है, किसी के भी देखने लायक नही है। चाऊ-एन-लाई, ख्रुश्चेव, क्वीन एलिज़ाबेथ, आइज़नहावर और कैनेडी, जो कोई भी कलकत्ता आयेगा, उन्हे हम लोग यह सब नही दिखलाएँगे। देखने पर वे लोग हमे गरीब समझेंगे, हम लोगो के ऊपर तरस खायेंगे। सोचेंगे, इन तेरह-चौदह सालो मे कांग्रेस ने देश का कोई भी काम नही किया। इससे तो हम उन्हे चण्डीगढ दिखलायेंगे, भाखरा नगल, हीराकुड और डी० वी० सी० दिखलायेंगे। राजघाट ले जाकर गाधीजी की समाधि पर दो सौ रुपये की फूलमाला चढवाकर फोटो लेंगे। फिर उसी फ़ोटो को फ्रेम मे मढवाकर अपने कमरे मे टाँगेंगे। सभी को दिखलाकर कहेंगे—'देखो, सब लोग इंडिया के कितने अच्छे दोस्त है !'

□ □ □

"आज तुम लोग किस ओर गये थे ?"

डिनर के बाद चुरुट मे कश लगाते-लगाते मिस्टर बोस ने गॉसिपिंग शुरू की।

यह रोज़मर्रा की बात है। सिर्फ़ कल हावडा-स्टेशन जाने की वजह से नागा हो गयी। यहाँ से सदाव्रत सीधा जायेगा और सो जायेगा।

मिस्टर बोस ने कहा, "पेपर मे आज देखा मिसेज़ पडित की लड़की

की शादी हुई है, 'कैलकटे' से कौन-कौन इनवाइट हुआ था, तुम्हें पता है न ?"

१७८१ में अमेरिका में नागरिकों को पहली बार अधिकार मिले, मान्यता मिली। फिर फ्रांसीसी-विद्रोह के समय वहाँ के राजा और राजवंश के लोगों को हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा लेनी हुई थी। सबसे ऊपर इन्सान ही सच है—यह बात मान ली गयी थी। लेकिन मशीनों के आविष्कार के साथ-ही-साथ वे लोग जैसे कब्र से उठकर आ गये। वे लोग मरे नहीं थे। लुई द फोर्टीन मरकर फिर से रॉकफ़ेलर, हेनरी फोर्ड, बिड़ला, गोयन्का और डालमिया बनकर जी उठा। बोला, "गवर्नमेंट इज़ ऑफ़ द रिच, बाई द रिच एण्ड फ़ार द रिच।"

एल्गिन रोड के मिस्टर बोस का दरबान चीखा, "कौन है ?"

फिर अच्छी तरह से देखा, कोई औरत थी।

"क्या माँगता ?"

कुन्ती काफ़ी देर से दरवाज़े के पास खड़ी-खड़ी राह देख रही थी। बड़े आदमियों का मुहल्ला है। सुबह हिन्दुस्तान पार्क के बँगले के नौकर से सुन आयी थी सदाव्रत बाबू ऑफ़िस चले गये हैं।

कुन्ती ने पूछा था, "बाबू कब आयेंगे ?"

बद्रीनाथ ने कहा था, "आते-आते रात के दस बजेंगे।"

"शाम को कहाँ रहते हैं ?"

बद्रीनाथ ने कहा था, "शाम के वक्त एल्गिन रोड पर मिस्टर बोस के बँगले में रहते हैं।"

और ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं हुई। कुन्ती समझ गयी 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के मिस्टर बोस का बँगला। पता मालूम था, लेकिन कभी गयी न थी। लेकिन बहन के लिए आज वहाँ भी जाना हुआ। कुन्ती ने जिस-जिसका इतना अपमान किया उसी से माफ़ी माँगनी होगी। इससे ज्यादा शर्मनाक बात और क्या हो सकती है ? फिर भी सारी शर्म-हया छोड़कर उसे यह काम करना ही होगा। सारे दिन ठीक से कुछ खा भी नहीं पायी। पिछली रात को दौड़-धूप करने की वजह से सो भी नहीं पायी थी। सिर दर्द कर रहा था। वैसे उसे रात को जागने की आदत है। पद्मरानी के फ़्लैट में या ड्रामों में उसने पूरी-की-पूरी रात कितनी ही बार जागकर काटी है। फिर भी इस तरह सिरदर्द कभी नहीं हुआ।

साड़ी अच्छी तरह सम्हालकर कुन्ती गेट के अन्दर पाँव रखते-रखते कई बार रुक गयी। अगर दरवान भगा दे ! बड़े आदमी का घर ठहरा। अगर वेइज्ज़ती कर दे।

दरवान के साथ किस तरह बात शुरू करे, शाम से खड़ी-खड़ी यही सोच रही थी।

तभी अचानक लगा एक गाड़ी आ रही है। फ़ाटक के सामने रुकते ही दरवान ने सलाम कर गेट खोला। अँधेरे के बावजूद अन्दर बैठे सदाव्रत और मनिला दिखाई पड़ रहे थे। गाड़ी अन्दर जाकर पोर्टिको में रुकी। दोनों उतरे। फिर अन्दर चले गये।

दरवान की सूरत देखते ही पहले तो कुन्ती डर गयी। फिर पास जाकर बोली, "सदाव्रत बाबू हाय ?"

"केया माँगता ?"

"सदाव्रत बाबू ! अभी जो बाबू गाडी में आया, उसी को थोड़ा बुलाना।"

दरवान ने सिर से पैर तक एक बार कुन्ती को देखा। फिर न जाने क्या सोचकर अन्दर खबर देने चला गया। शायद औरत देखकर दया आ गयी थी। औरत होने का यही फ़ायदा है। सुविधाएँ जितनी है मुश्किलें भी उतनी ही हैं।

"कौन हाय ? किसे चाहती हो ? तुम कौन हो ?"

कुन्ती ने देखा पोर्टिको के नीचे वही लड़की आकर खड़ी है। गेट के अन्दर घुसकर कुन्ती धीरे-धीरे उसी ओर बढने लगी। बजरी-बिछा रास्ता। उसके मन मे अभी तक धुक-धुक हो रही थी।

"मैं ज़रा सदाव्रत बाबू से मिलना चाहती हूँ।"

"तुम हो कौन ?"

"मेरा नाम लेने पर आप नही पहचानेंगी। मैं अपनी बहन के लिए आयी हूँ। उसे पुलिस ने पकड़ रखा है। उसी बारे मे सदाव्रत बाबू के साथ कुछ बातें करनी हैं।"

"लेकिन सदाव्रत के साथ बात करना चाहती हो तो यहाँ क्यों ? उसका घर नही है ?"

"उनके घर भी गयी थी, नौकर ने यहाँ आने को कहा। कहा था—शाम के समय वह यहीं रहते हैं।"

"नही, यहाँ बाहरी आदमी के साथ मुलाकात नही होगी !"

"लेकिन उन्हे आप ज़रा खबर तो दीजिये।"

"वह इस समय यहाँ नहीं है।"

"लेकिन मैंने अपनी आँखों से उन्हें आते देखा ! आप झूठ बोल रही है ! अभी हाल ही तो वह गाडी से उतरे थे !"

मनिला से और न रहा गया। चीख पडी, "तुम निकल जाओ ! भागो यहाँ से ! भागो, निकलो !"

"आप फिर भी झूठ बोल रही हैं !"

"दरवान, निकाल दो इसको ! बेवकूफ ! बदतमीज़ ! तमीज़ से बात करना तक नही आता है। गरदन पकडकर निकाल दो इसे ! हटा दो सामने से !"

कुन्ती ने अचानक मनिला के दोनो पाँव पकड़ने की कोशिश की। "आपको पता नही है मुझ पर कितनी आफत बीत रही है। मेरी बहन जेल में है। मेरे दिमाग का ठीक नही है, आप···"

लेकिन मिस्टर बोस का दरवान ऐसा-वैसा दरवान नही था। बड़ा स्वामीभक्त था। तब तक आकर कुन्ती के बाल पकड़ चुका था।

"बाहर निकालकर गेट बन्द कर दो।"

कुन्ती तब खुद ही सीधी खडी हो गयी। आँखों से जैसे अँगारे बरस रहे थे। बदन की साडी ठीक कर, जूडा ठीक किया। पैर से चप्पल निकल गयी थी, उसे फिर से पहना।

मनिला के दिमाग मे तब तक ड्राई जिन ने काम शुरू कर दिया था।

"निकाल दो, सडक पर निकाल दो !"

कुन्ती को लगा, अथाह ससार मे कही कोई भी आलम्बन होने पर वही जाकर आश्रय लेती। यहाँ की सारी रुकावटें जैसे पहाड़ बनी उसके दिल पर एक साथ चोट कर रही थी। इनसे वह अपने को कैसे बचाये ? कौन है उसका ? सारे कलकत्ता शहर को जैसे उसके अपमान से मज़ा आ रहा था। सभी जैसे उसकी ओर देखकर हो-हो कर रहे है—अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ ! बड़े आदमियों को मिजाज दिखलाने चली थी ?

□ □ □

पद्मरानी के फ्लैट को छोडकर सारा कलकत्ता सो चुका था। सिर्फ पद्मरानी या फ्लैट ही क्यों, कलकत्ता शहर मे क्या पद्मरानी का फ्लैट एक है ? १६९० मे जब इस कलकत्ता शहर की नीव पडी, तभी से ये लोग यहाँ पर हैं। यह कुन्ती, यह दुलारी, यह गुलाबी और टगर, सब-की-सब। ईस्ट

इंडिया कम्पनी के साहबों का अकेलापन दूर करने के लिए ये ही लोग बाई जी बनकर नाची हैं, फिर इन्होंने ही महाराजा नवकृष्ण मुंशी के यहाँ दुर्गा-पूजा के समय बाबुओं के गिलासों में शराब ढाली है। आज इतने दिन बाद भी ये लोग मौजूद है। इन्हीं लोगों ने कलकत्ता शहर में डेरा जमाया हुआ है। एक समय था जब ये लोग एक खास इलाके की वाशिन्दा थीं। अब मुहल्ले-मुहल्ले में फैल गयी हैं—पार्क स्ट्रीट, पार्क सरकस, क्वीन्स पार्क और बालीगंज—हर जगह ये लोग मौजूद है। इन्हीं के लिए बम्बइया करोड़पति उड़कर यहाँ रात काटने आते हैं। एक रात यहाँ काटकर कोई फिर भुला नहीं पाता। उन्हें बार-बार यहाँ आना होता है।

यहाँ जो भी आया, जाते समय कह गया 'कैलकटा इज़ ए लवली प्लेस !'

यहाँ अकाल है, भुखमरी है, महामारी है, मक्खी हैं, मच्छर हैं, कॉलरा और चेचक, सभी-कुछ है। यहाँ गरीबी है, चोर-गिरहकट, गुण्डे-बदमाश भी है। यहाँ क्या नहीं है? १९४७ के बाद से आकार, आयतन और डिग्री सिर्फ़ बढ़ रही है। लेकिन इसके अलावा दूसरी चीज भी है, उल्टा भी है। यहाँ कभी खत्म न हो इतनी शराब है, बेशुमार दौलत है, बेशुमार औरतें और मौके हैं। गाने की मजलिसें होने पर यहाँ भीड़ टूटती है, मुहल्ले में नाटक होने पर भी कुर्सियाँ रखने को जगह नहीं मिलती, बन्दर का नाच देखने के लिए भी यहाँ आदमी क्यू लगाते हैं।

केदार बाबू इस कलकत्ता के आदमी है, मिस्टर बोस भी इसी कलकत्ता के आदमी हैं, शिवप्रसाद गुप्त भी इसी कलकत्ता के लीडर हैं, और कुन्ती गुहा भी यहीं की आर्टिस्ट है!

'साहब बीबी गुलाम' में जिस कलकत्ता की कहानी लिखी है, वह १९११ में दिल्ली चला गया। 'खरीदी कौड़ियों से मोल' का कलकत्ता ब्रिटिश एम्पायर का सेकंड सिटी कलकत्ता था। १९४७ की पन्द्रहवीं अगस्त की रात के बारह बजने के बाद से वह कलकत्ता भी धुल-पुँछकर साफ हो गया। लेकिन यह कलकत्ता 'इकाई, दहाई, सैंकड़ा' का कलकत्ता है। आपका, मेरा, और भी कितने ही लोगों का कलकत्ता। चालीस लाख आदमियों की खुशी-रंज, पाप-पुण्य, आहों और आँसुओं का कलकत्ता।

इस कलकत्ता की कुन्तियाँ इसी शहर में रहती हैं, लेकिन यह शहर उन्हें अपना नहीं मानता। इस कलकत्ता के केदार बाबू जैसे लोग इसी का भला चाहनेवाले हैं, लेकिन यह शहर उन्हें नहीं चाहता। इस

के मिस्टर बोस इसी शहर का नमक खाते है, लेकिन यह शहर उनका भी गुणगान नही करता। यहाँ पर सभी आउटसाइडर हैं। सदाव्रत से लेकर विनय, शंभू, शैल और मनिला, सभी बाहरी है। ट्रेन की रिटर्न टिकट कटाकर सभी यहाँ आकर धर्मशाला मे ठहरे है। मियाद पूरी होने पर एक दिन चले भी जायेंगे।

वास्तव मे सुफल ही सुखी है। कुन्ती को इन सबसे ज्यादा सुफल ही सुखी लगता है।

सुफल कहता, "दो दिन टगर दी, दो दिन फूंक मारते निकल जायेंगे।" फिर कभी कहता, "पता है टगर दी, सब सालों का कैरेक्टर खराब हो गया। बदनाम खाली मैं और तुम हैं।"

फिर अचानक कुन्ती की ओर देखकर बोला, "तुम्हे हुआ क्या है, कमरे मे धूनी और गंगाजल नही छिड़कोगी ?"

"नही सुफल, जी अच्छा नही है।"

"अरे, तुमने भी खूब कहा ? कब किसका जी अच्छा रहा है ? जरा-सी 'देसी' ढाल लो, देखोगी जी एकदम चगा हो गया।"

"नही रे, आज बहन को जेल हो गयी !"

सुफल चौंक पडा। फिर अचानक अँगूठा और बीच की अँगुली से चुटकी बजाकर बोला, "तब तो किला फ़तह, टगर दी—एकदम फतह।"

"मजाक नही रे, मुझे इस समय कुछ भी अच्छा नही लग रहा है !"

सुफल ने कहा, "अच्छा, तुम ऊपर चलो तो, ऊपर जाओ, मैं अभी तुम्हारी दवाई लेकर आया।"

कुन्ती ने कहा, "नही भाई सुफल, मैं अब चलूंगी !"

"अरे, दूकान नही खोलोगी तो इधर आयी क्यो ?"

"क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? सारे दिन तो अदालत में थी, बूढ़ी खूब रो रही थी, पुलिसवाले ले गये। सोचा, अब कहाँ जाऊँ ? घर में तो रह नही पाऊँगी, इसीलिए इधर चली आयी। माँ को सब-कुछ बतलाया। अब जा रही हूँ।"

"लेकिन आखिर जाना तो वही होगा।"

"और जगह भी कहाँ है !"

सुफल ने कहा, "यहीं क्यों नही रह जाती ? यहीं पद्मरानी के फ्लैट मे। बाबू बैठाने की मर्जी न हो तो कमरे की बत्ती बुझाकर, दरवाजे मे कुण्डी लगा लो और आराम करो। मैं गरम पराठे बनाकर तुम्हें खिलाऊँगा।

पैसे नहीं देने होंगे।"

कुन्ती पता नहीं क्या सोचने लगी।

मुफ़ल ने कहा, "कसम से टगर दी, आज मैं तुम्हें ऐसे ही खिलाऊँगा, पैसे नही देने होंगे।"

कुन्ती हँस पडी। बोली, "अरे, नहीं। इस बस के आते ही चली जाऊँगी, कुछ अच्छा नही लग रहा।"

सारा दिन अदालत में गुज़रा। वकील, मुंशी, पेशकार और चपरासी ने जैसे हाड़-मास तक नोचकर खा लिया था। कुन्ती मे ताक़त ही कितनी है? बूता ही कितना है? जितने दिन तक मामला चला, अदालत जाकर उसने रुपया पानी की तरह बहाया। पान खाते, अर्ज़ी लिखते, यहाँ तक कि एक गिलास पानी तक पीने के लिए पैसा खर्च करना पड़ा, ऐसी जगह।

सदाव्रत भी गवाही देने आया था।

एक बार इच्छा हुई जाकर उससे सब-कुछ कहे। अपनी बहन की बात, खुद अपनी बात। सदाव्रत को दूर से देखने पर कितनी ही बार इच्छा हुई कि मामला रफ़ा-दफ़ा करने की बात उठाये—आप मुझे एक बार, सिर्फ़ एक बार के लिए बचा लीजिए। आपसे मैंने जो कुछ कहा है, उस सबके लिए मैं माफ़ी माँगती हूँ।

"तुमने चोरी क्यों की?"

"मेरे पास रुपयों की कमी थी।"

"तुम्हे मालूम है चोरी करना पाप है?"

"मालूम है।"

वकील के पास जाकर कुन्ती ने धीरे-से पूछा, "वकील साहब, क्या होगा? मेरी बहन को जेल हो जायेगी?"

वकील ने कहा, "ज़रा सब्र करो न। मैं सब ठीक किये देता हूं।"

"उन लोगों से अगर मामला वापस लेने को कहूँ तो क्या केस खत्म नही हो जायेगा?"

"किससे कहोगी?"

"उन लोगों का जो खास गवाह है न, उसके साथ मेरा परिचय है। मैं क्या उससे जाकर कहूँ? आप अगर कहें तो कोशिश करूं।"

गवाह के कटघरे में खड़ा सदाव्रत उस दिन की घटना का सिलसिले-वार वर्णन दे रहा था। किस तरह वेटिंग-रूम के अन्दर से ही वह ल उसके पीछे लगी थी। किस तरह सब लोगों की निगाह बचाकर उसकी

से मनीबैग निकाला। शीशे की तरह साफ भाषा में एक के बाद दूसरी घटना का वर्णन कर रहा था। कोई जानता नही था। किसी को पता नही लगा। किसी को पता लगने की बात थी भी नही। बूड़ी रोज़ शाम को बैठकर अपनी टीचर से पढती है, कुन्ती को तो यही मालूम था। घर जाकर रात को कुन्ती ने कितनी बार पूछा, बूडी ने झूठ बोलकर उसे बेवकूफ बनाया। आज सब पानी की तरह साफ हो गया। हर महीने उसकी मास्टरनी को चालीस रुपये देती रही, वह क्या इसीलिए? कचहरी में बैठी *बूडी वकील की जिरह के सामने कुछ भी छुपा नहीं पायी।* बेवकूफ लडकी, दुनिया को अभी भी अच्छी तरह से नही जान पायी। वकील की जिरह के सामने सब-कुछ साफ-साफ़ बतला दिया। यह भी हो सकता है कि उसने सोचा हो, अपना अपराध मान लेने पर, यह दुनिया उसे क्षमा कर देगी। शायद सोचती हो पश्चात्ताप से न्यायाधीश महोदय पिघल जायेंगे, उसे माफ कर देंगे।

लेकिन नही। सदाव्रत अकाटच गवाही देकर कुन्ती की सारी कोशिशों को नाकाम करके अपनी गाड़ी में बैठकर चला गया। दूर भीड़ में खडी *कुन्ती गुहा असहाय की तरह उसी ओर देखती रही।*

"तब क्या होगा, वकील साहब?"

"आज-भर और देख लो न, बेटी, कल तो फैसला होगा ही। फिर अपील तो अपने हाथ मे है ही।"

दूसरे दिन ही फैसला निकल गया। कौन-सा एक सेक्शन है, उसी की धारा के अनुसार बूडी को छः महीने की कैद हो गयी। शान्ति गुहा को। कलकत्ता शहर निरापद हो गया। अब डरने की कोई बात नही है। कलकत्ता के भले आदमी अब बेफ़िक्री से घूम-फिर सकेंगे। इंडियन पैनल कोड की सबसे कडी धारा के अन्तर्गत शान्ति गुहा को सजा सुनाकर आज़ाद भारत निश्चिन्त हो गया।

"फिर?"

कुन्ती ने कहा, "फिर आज फैसला सुनाया गया सुफल, कल रात को मुझे नींद नही आयी, आज सुबह की जो निकली हूँ तो बस घूम ही रही हूँ, खाना-पीना तक नही हुआ है, घर जाने को भी जी नही चाहता।"

"नही-नही, तुम घर जाओ, टगर दी! सोचना बेकार है। अपील करने से भी कुछ नही होगा। देख लेना जेल जाकर तुम्हारी बहन की सूरत बदल जायेगी। मेरा तो जेल जाकर अढाई सेर वज़न बढ़ गया था। तुम

फ़िक्र मत करो।"

सड़क की ओर देखते ही अचानक जैसे भूत देख लिया।

"कौन ? वह कौन है ?"

सुफल ने भी देखकर कहा, "उस गाड़ी की बात कर रही हो ?"

लेकिन कुन्ती सुफल की बात नहीं सुन पायी। अँधेरे में मद्धी रोशनी में एक चमचमाती गाड़ी ट्राम-लाइन से गुजर रही थी। अन्दर बैठा सदाव्रत गाड़ी चला रहा था और बगल में बैठी थी मिस्टर बोस की वही लड़की। ऊँचा, बड़ा-सा जूड़ा। और मेकअप किया चेहरा। गाड़ी चलाते-चलाते शायद सदाव्रत आस-पास के मकान दिखला रहा था, और लड़की भौंचक बनी सुन रही थी।

"उस गाड़ी को पहचानती हो क्या, टगर दी ?"

कुन्ती तब भी अपलक उसी ओर ताक रही थी।

सुफल ने कहा, "शायद कलकत्ता में नया आया है। बीवी को शायद रंडियों का मुहल्ला दिखलाने निकला है। एक और दिन भी आयी थी यही गाड़ी। उस दिन भी बहू पास में बैठी थी।"

कुन्ती को लगा जैसे पूरा आसमान उसके सिर पर टूट पड़ा हो। इतने दिनों तक बाहरी आदमियों ने उसके ऊपर जो अत्याचार किये, उसकी बहन के ऊपर पुलिस के सिपाही और दारोगा ने जितने अत्याचार किये, यह जैसे उसके सामने कुछ भी नहीं है। यह और भी संगदिल है, और भी कठोर है।

"उस दिन श्यामबाजार के मोड़ पर केकड़े खरीदने गया था। वहाँ भी यही गाड़ी देखी। समझीं टगर दी, यहाँ नया आया है। शायद गाड़ी नयी ही खरीदी है, दिखलाता फिर रहा है।"

तब तक गाड़ी नजरों से बाहर हो गयी।

"वह सब देखने से क्या फ़ायदा, टगर दी, इससे तो तुम फ्लैट पर चलो। मैं गरम-गरम परांठे बनाये देता हूँ, खाकर सो रहो।"

उस समय तक शायद सुफल के खरीदार आने शुरू हो गये थे। दूकान पर भीड़-सी जमा हो गयी थी। केंकड़े की भुनी हुई टाँगें, कलेजी और एग-करी का बाजार गर्म हो चला था। हाथों में कोहनी तक लटकाये फूलमाला वाला घूमने लगा था, कुलफी-मलाईवाला भी शायद अपनी हाँडी लिये आता होगा। पचरानी के फ्लैट में दुलारी के कमरे में हारमोनियम बज उठेगा, गाना शुरू होगा—'चाँद कहे जो चकोरी, तिरछे नैनों से न देख।'

ग्राहक देखकर सुफल को दूकान का ध्यान आया। लोहे के कड़ाह में तेल जल रहा था। सुफल ने जल्दी से जाकर उसमें कच्ची चापें डालनी शुरू कर दी। चाप जब तक गरम न हो माल खाने में मजा नहीं आता। सोनागाछी के हर मुहल्ले के लोग चाट खरीदने सुफल की दूकान पर ही आते थे। सुफल कहता, "ज़रा रुको भाई, हाथ तो एक ही है, क्या-क्या देखूं?"

नौकरानियाँ कहतीं, "खड़े रहने से हमारा काम नहीं चलेगा। बाबू लोग लाल-पीले होंगे तो सम्हालने कौन आयेगा?"

सुफल भी झल्ला उठा। कहता, "मुझसे इतना नहीं होगा, कहे देता हूँ! सुफल किसी के बाप का नौकर नहीं है! चीज जब तैयार होगी तब दूंगा···ए पचा, देख क्या रहा है, गरम मसाला पीस डाल न! ग्राहक खड़े है, देख नहीं रहा?"

फिर चार चाप एक प्लेट में रखकर ऊपर से कटी प्याज डालकर बोला, "जा, यह दौड़कर सत्रह नम्बर के कमरे में दे आ, और आकर थोड़ा-सा आटा मलना, टगर दी के लिए परांठे बनाने हैं।"

"सुफल!"

सुफल भी अवाक् रह गया। टगर दी फिर लौट आयी।

कुन्ती ने कहा, "तुमसे एक काम था सुफल, ज़रा इस ओर आओ न!"

सुफल हाथ का काम छोड़कर नीचे आया। फिर एक ओर होकर बोला, "क्या हुआ? पराठे तो बना रहा हूँ।"

"नहीं, तुमसे एक और काम है।"

"कहो, क्या काम है?"

"वह भूलो था न? तुम्हारा दोस्त भूलो?"

"हाँ-हाँ, भूलो के पास तो तुम्हें उस दिन ले गया था न? वहाँ चलना है? खरीदोगी क्या?"

कुन्ती ने कहा, "हाँ।"

"लेकिन पैसे लायी हो?"

"मेरे पास काफी रुपये हैं। माँ से उधार लायी हूँ। मुझे एक बार वहाँ ले चलो न! ज़रूरी काम है।"

"लेकिन मेरे···ग्राहक खड़े है···"

फिर जाने क्या सोचने लगा। उधर पंचा भी सत्रह नम्बर कमरे से चाप देकर लौट आया था।

"ठीक है, चलो, ज्यादा देर नहीं लगेगी। उसके पास माल तैयार ही रहता है। लोगी किस चीज में ?"

"अपने इस बैग में, इसमें आ जायेगा ?"

"चलो, चलो, जरा जल्दी पाँव बढ़ाकर।"

वही अँधेरी गली। घोर अन्धकार। सारी जिन्दगी जब अँधेरे से नहीं घबरायी कुन्ती, तो आज इतना सब होने के बाद किस बात का डर ?

"वह गाड़ी क्या सारे कलकत्ता में चक्कर काटती है ?"

उस बात पर कोई ध्यान दिये बिना सुफल ने एक पुराने मकान की कुण्डी खटखटायी। कोई आवाज नहीं आयी। फिर धीरे-धीरे दबी आवाज से पुकारा, "भूलो—ओ भूलो !"

□ □ □

शिवप्रसाद गुप्त को ऐसे ही वक्त नहीं मिलता। थोड़े-से वक्त में काफ़ी कुछ करना होता है। फालतू वक्त होने पर भी उन्हें अच्छा नहीं लगता। दिनभर में कम-से-कम बीस टेलीफ़ोन आएँ। कम-से-कम पन्द्रह टेलीफ़ोन खुद करें, तभी तो जिन्दगी जिन्दगी है। रोज कम-से-कम पन्द्रह मीटिंगों में जाने का निमन्त्रण आये, कम-से-कम तीन की अध्यक्षता करें और चालीस के लिए असमर्थता जाहिर करें। अब अखबार निकालने के बाद तो यह सब और भी बढ़ जायेगा। उम्मीदवारों की और भी बढ़ोतरी हो जायेगी। तीन सौ आदमियों से मुलाकात करेंगे और क़रीब दो सौ बिना मिले निराश होकर चले जायेंगे।

इतने दिन इसी तरह गुज़ार दिये। अब उम्र ज्यादा हो गयी है, साथ ही आदत भी उतनी ही जकड़ गयी है। जिस दिन मुलाकात करने लोग कम आते हैं, जिस दिन टेलीफ़ोन कम आते हैं, उस दिन मिज़ाज खराब हो जाता है।

लेकिन जिस समय अविनाश बाबू वगैरह आते हैं, कहते हैं, "और नहीं होता साहब, अब यह सामाजिक काम छोड़ दूँगा—अकेला आदमी, क्या-क्या देखूँ ?"

सामने बैठे जो लोग सुन रहे होते, वे सब मिनिस्ट्री सर्किल की भीतरी बातें जानने को उत्सुक होते। किसका भंडा फूटा, किस पर नेहरूजी की नेक नज़र है, दिल्ली में किसकी क्या पोज़ीशन है, इन बातों में ही उन लोगों की खास दिलचस्पी होती थी।

शिवप्रसाद बाबू कहते, "क्या पता साहब, स्कैंडल सुनने का न तो

ही मिलता है, न मुझे इसमें कोई दिलचस्पी ही है। मैं तो जाता हूँ, मेरे आने की खबर मिलते ही पडितजी बुला भेजते है। काम होते ही चला आता हूँ।" -

जरा देर रुककर फिर कहते, "यह देखिये न अमेरिकन एम्बैसी मुझसे अमेरिका जाने की 'रिक्वेस्ट' कर रही है।"

"अमेरिका ? क्यो ? अचानक अमेरिका क्यो जाने लगे ?"

"अरे, क्यो क्या, ऐसे ही !"

"तब तो काफी रुपया खर्च होगा ?"

"वह तो होगा ही।"

"वहाँ जाकर आप करेंगे क्या ?"

"वह कौन सुनता है ! मैंने तो कह दिया, 'मेरी अपनी कन्ट्री को कौन देखेगा ? उन लोगो का जो प्रोग्राम है उसके अनुसार मुझे ले जाने मे करीब पचीस हजार रुपया खर्च होगा। लेकिन खर्चा होता है तो हो, आइजनहावर देगा।"

इसके बाद फिर जरा देर के लिए रुके।

कहने लगे, "अरे, मुश्किल तो यही है ! उन लोगों को तो पता है कौन ईमानदार है और कौन नही ! यही विजयलक्ष्मी पडित को ही लीजिये न, साहब ! रूस की एम्बैसेडर होकर गयी थी। स्टालिन के साथ मिलने की कितनी कोशिश की, मुलाकात नही हुई। बाद मे जब डॉक्टर राधाकृष्णन उसी पोस्ट पर गये, साथ-ही-साथ स्टालिन ने बुला भेजा और पूरे आधा घटा बात की। इसीलिए तो कह रहा था ऑनेस्ट लोगो की ही मुसीबत है। उधर रूस कह रहा है मास्को विज़िट करने के लिए, इधर वाशिगटन जाने के लिए अमेरिका कह रहा है। बडे झमेले मे पड़ गया हूँ—कहाँ जाऊँ, कहाँ नही जाऊँ, कुछ समझ मे नहीं आता !"

"लेकिन वहाँ जाकर आप करेंगे क्या ?"

"वह कौन सुनता है ! सिर्फ लालच दिखला रहे हैं, और क्या ! पैसा खर्च करके ले जायेंगे, आराम से बढ़िया होटल मे रखेंगे, बढ़िया-बढ़िया खाना खिलायेंगे, प्लेन और मोटर-कारो में घुमायेंगे, छाँटकर सुन्दर-सी लडकी को इन्टरप्रेटर बनायेंगे।"

अविनाश बाबू बोले, "हम लोगों को तो कोई चान्स ही नही देता, साहब ! जिन्दगी-भर जजगिरी की, हम लोग क्या बिलकुल ही अनफिट है ?"

अम्बिका बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, शिवप्रसाद बाबू, यह मौका न छोड़िये। परमी थाली और हुक्का कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।"

"सच ही तो, इतने दिन से जान लगाकर देश-सेवा की, मिनिस्ट्री तक में नहीं गये, अब की बार घूम आइये, जरा हैल्थ का भी तो खयाल रखना चाहिए—अब क्या पहले-जैसी उम्र है ?"

शिवप्रसाद बाबू मुसकराये। कहने लगे,"अगर अपना स्वार्थ ही देखना होता तो आप लोग मुझे इस बुढ़ापे में मेहनत करके खाते नहीं देखते। आज भी सोचना होता है, कल क्या खाऊँगा—पता है !"

अम्बिका बाबू बोले, "सो तो है ही, हम लोगों की तरह आपको तो पेंशन भी नहीं मिलती।"

"देखिये न, आज अगर कुछ हो जाये और बिस्तरा पकड़ लूँ तो खाना भी नसीब न होगा।"

"फिर भी तो आपका लड़का मौजूद है, मोटी तनख्वाह मिल रही है, एकदम फ़ाक़ेबाज़ी नहीं करनी होगी।"

शिवप्रसाद बाबू—"लड़का ? आजकल के लड़के की बात कर रहे हैं ? आजकल के लड़के क्या बाप का कहना सुनते है ! लड़के को तो दो हजार रुपये महीना मिलते हैं, कभी एक पैसा भी उससे नहीं माँगा !"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"नहीं साहब, लड़के की कमाई मुझे नहीं खानी। मैंने पंडित नेहरू से भी इस बार यही कहा। मैंने कहा, मैं सेल्फ-मेड मैन हूँ, मुझे ऑनर नहीं चाहिए, पोस्ट नहीं चाहिए, मैं केवल देश की सेवा करते रहना चाहता हूँ। अगर वाशिंगटन या मास्को जाना ही पड़े तो मैं देख आऊँगा कि वे लोग अपने देशों में कैसे क्या करते हैं, उनके देश की एजूकेशन-प्रॉब्लम, फूड-प्रॉब्लम उन लोगों ने किस तरह सॉल्व की है। मैं तफ़रीह करने के लिए जाना नहीं चाहता। मैं जानना चाहता हूँ, सीखना चाहता हूँ।"

"फिर ? पंडितजी ने इस पर क्या कहा ?"

शिवप्रसाद गुप्त ने उत्तर दिया, "पंडितजी ने मेरे दोनों हाथ पकड़-कर कहा, 'गुप्ता, तुम इस वक़्त देश मत छोड़ो। आजकल देश के बुरे दिन चल रहे हैं। कम्युनिस्टों ने बड़ा एजिटेशन शुरू कर दिया है। सारा एशिया इस वक्त टरमॉयल के बीच से गुजर रहा है, इस समय तुम हर्गिज इंडिया छोड़कर न जाना।'"

"फिर ?"

"इसके बाद मैं और क्या कहता, आप लोग ही बतलाइये ? मैंने भी सोचकर देखा, बात सच ही है। पाकिस्तान-प्रॉब्लम, इन्दोनेशिया-प्रॉब्लम कांगो-प्रॉब्लम, क्यूबा-प्रॉब्लम, जिस ओर देखो प्रॉब्लम। अब सिर्फ़ इंडिया के बारे में सोचने से ही तो काम नहीं चलेगा। अब दुनिया उतनी छोटी नहीं रही है। अब गुटबाजी करके बचना होगा। अब हमें भी सीटो, नाटो जैसा कुछ करना होगा। देख नहीं रहे कांगो में क्या हुआ, क्यूबा में क्या हो रहा है, एक ओर ख्रुश्चेव और दूसरी ओर अमेरिका के नये प्रेसिडेंट कैनेडी। कहाँ का पानी कहाँ बह रहा है ! खुद पंडित नेहरू की समझ में भी नहीं आ रहा मैं किस खेत की मूली हूँ। याद नहीं है सीलोन के प्राइम मिनिस्टर भण्डारनायके का किस तरह खून कर दिया गया। नित नये हथियार तैयार हो रहे हैं, साथ-ही-साथ नयी-नयी समस्याएँ भी सामने आ रही हैं। आदमी यह भूल रहा है कि वह आदमी है।"

अविनाश बाबू बोले, "अच्छा, कैपिटलिज्म अच्छा है या कम्युनिज्म ? आपके खयाल से कौन अच्छा है ?"

"अरे, यही सवाल रोटेरी क्लब में मिस्टर पॉल इवेन्स ने भी किया था।"

"यह कौन है ?"

"अरे, इंडिया विजिट करने तो आजकल कितने ही आ रहे हैं। हम लोगों के लिए तो सभी वी० आई० पी० हैं। मुझसे पूछने लगा—'ह्वाट इज कैपिटलिज्म ?' मैंने जवाब दिया—'मैन एक्सप्लॉयटिंग मैन !'"

अम्बिका बाबू ने हामी भरी, "आपने बिलकुल ठीक कहा—ठीक कहा !"

इसके बाद मुझसे पूछा, "एण्ड ह्वाट इज कम्युनिज्म ?"

मैंने कहा, "उसी बात को उलट लो।"

"माने ?"

"माने उसी बात को घुमाकर कहने पर भी बात वही रहती है—मैन एक्सप्लॉयटिंग मैन !"

अचानक टेलीफोन की घंटी बजने लगी। रिसीवर उठाकर शिवप्रसाद गुप्त ने कहा, "हलो !"

रात हो गयी थी। पेंशन-होल्डरों का दल उठने लगा। अब शिवप्रसाद बाबू काम की बात करेंगे। इसके बाद शिवप्रसाद बाबू का नौकर आयेगा, पूजा की याद दिलायेगा। सभी उठ खड़े हुए। दरवाज़े की ओर बढ़ने लगे।

यहाँ आकर फिर भी कुछ अच्छी-अच्छी बातें सुनने को मिल जाती है। बूढ़े होने की वजह से लड़के-बहू कोई भी अच्छी तरह से बात नही करता था। अखबार और रेडियो ही एकमात्र भरोसा था। इसीलिए सरकार की अन्दरूनी और चटपटी खबरें सुनने सब-के-सब यहाँ आते। जिस दिन शिवप्रसाद बाबू नहीं रहते, पार्क की बेंचों पर उन लोगों की मीटिंग जमती, इधर-उधर की कितनी ही बातें होतीं, फिर रात ज्यादा होने पर ठंड लग जाने के डर से मुंह-कान ढँककर सब अपने-अपने घर चले जाते।

मिस्टर बोस की आवाज काफी भारी हो रही थी। इसी से शुरू-शुरू में पहचान नहीं पाये।

"मिस्टर बोस ? आप ? क्या हुआ ? अचानक इस वक्त ?"

"आप फौरन चले आइये।"

"कहाँ ? कहाँ चला आऊँ ?"

"पी० जी० हॉस्पिटल !"

"क्यों ? पी० जी० हॉस्पिटल में क्या हुआ ? कौन बीमार है ?"

"बीमार नहीं, एक्सिडेंट हुआ है।"

"किसका एक्सिडेंट ?"

"यह मालूम नहीं है। अभी-अभी पुलिस ने मुझे फोन किया। मेरी गाड़ी तैयार है, मैं चल रहा हूँ। आप भी फौरन चले आइये।"

"लेकिन किसका एक्सिडेंट ? कहाँ हुआ है ?"

मिस्टर बोस के पास शायद और वक्त नहीं था। उन्होंने लाइन काट दी। रिसीवर रखकर शिवप्रसाद बाबू सोचने लगे।

फिर पुकारा, "बद्रीनाथ !"

बद्रीनाथ हर समय पीछे ही रहता। सामने आया।

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "कुंज कहाँ है ? कुंज से गाड़ी निकालने को कह।"

"नौ बज रहे हैं। आपका पूजा करने का समय हो गया है।"

पूजा ! पूजा करने पर तो और भी एक घण्टा लग जायेगा। जो भी हो, सामने 'माँ' का चित्र लगा है। वीसियों झमेले हैं। कांगो, क्यूबा, लुमुम्बा, कैनेडी, भण्डारनायके, नाटो, सीटो, पाकिस्तान। जादवपुरवाला मकान तैयार हो आया है। पर रूम फॉर्टी रुपीज। यानी कुल दो हजार रुपये महीना। कुंज सामने आकर खड़ा हो गया।

"मुझे बुलाया था ?"

"तुम जरा ठहरो। गाड़ी निकाल रखो। पूजा करके एक बार पी० जी० हॉस्पिटल जाऊँगा।" कहकर शिवप्रसाद बाबू कुर्सी से उठे।

लेकिन पूजा करने बैठे ही थे कि टेलीफोन फिर बज उठा।

"हलो!"

उस ओर से मिस्टर बोस की भारी आवाज सुनायी दी, "आप अभी तक नहीं आये। फौरन आ जाइये। वेरी सीरियस कंडीशन, मैं पी० जी० हॉस्पिटल से बोल रहा हूँ।"

□ □ □

विद्रोह जब होता है, तब ज्यादातर लोगों को उसका पता नहीं चलता। हर युग के सब लोग अपने-अपने झमेलों में फँसे रहते हैं। अपना धन्धा, बाल-बच्चे, स्वास्थ्य! इसके बाद जो और भी बड़े लोग हैं, उन लोगों के लिए होती है लड़कियाँ, क्लब और सम्पत्ति। इन्हीं चीज़ों के बीच जिन्दगी गुजर जाती है। अच्छा खाने को मिले, अच्छा पहनने को मिले, इसके अलावा अगर थोड़ा आराम और आज़ादी भी मिल जाय तो फिर क्या चाहिए? १९४७ के शुरू में जब राजगोपालाचार्यजी लाटसाहब बनकर कलकत्ता आये, उस समय भी किसी ने नहीं सोचा था, समय इतना बदल जायेगा। समझ ही नहीं पाये कि विद्रोह शुरू हो गया है। क्योंकि यह विद्रोह बहुत ही धीरे-धीरे आता है, चुपचाप आकर एकाएक दबोच लेता है। पकड़े जाने पर आदमी चौंकता है। तब उसकी नींद टूटती है। इतने दिन आदमी सुनहले भूत को लिये ही मग्न था। आज जिनकी उम्र चालीस है, वे लोग पीछे फिरकर देख सकते हैं, किस तरह इन्सान की हज़ारों साल की मान्यताएँ, धारणाएँ अचानक टूटकर चूर-चूर हो जाती हैं। एक युग के बाद दूसरा युग आया है और साथ ही मौत का डर भी कम होता गया है, भगवान का डर भी कम हो गया है। डर कम हुआ है, साथ ही भक्ति भी कम हुई है। उसकी जगह ली है युक्ति ने। इस युक्ति से ही इन्सान ने अपने को आविष्कृत किया है। और आविष्कार किया है कि देवता हो या प्रेसिडेंट, सभी आदमी के बनाये हैं। एक समय जिस तरह देवता नाराज़ हो जाने पर भस्म कर देता था, प्रेसिडेंट भी गुस्सा करते हैं। प्रेसिडेंट भी उसी तरह एक को उठाता है और दूसरे को गिराता है। जो लोग ऊँचे-ऊँचे ओहदों के मालिक हैं, उनकी खुशामद करने से जिस तरह अच्छी नौकरी मिल जाती है, उसी तरह इन्हीं मालिकों के कोपभाजन हो जाने पर नौकरी जाने का डर भी बना रहता है। भाग्य आदमी को प्रेसिडेंट नहीं बनाता, आदमी ही प्रेसिडेंट बन

जाने पर अपना भाग्य खुद-ब-खुद बना लेता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, आदमी को यह भी पता लग चुका है कि मनुष्य-जीवन बड़ा सुखकर है। वह अमृत-सन्तान है, इससे बड़ा झूठ दुनिया में दूसरा नहीं है। इस अमृत-सन्तान को ही रोज नये-नये टैक्स लगाकर खत्म किया जा सकता है। आदमी का कहना है यह हमारी डेमोक्रेसी है, तुम लोगों ने हमारे हाथ में शक्ति दी है, इसी से हम मंत्री बन गये है। आदमी ही दूसरी ओर यह भी कहता है, तुम जो मंत्री बने हो, इसी वजह से हमारे दुखों का अन्त नहीं है। तुम लोगों की ही वजह से हम भूखों मर रहे हैं। इसीलिए बेलफ ने कहा था––"गवर्नमेंट इज़ नथिंग बट कॉन्सपिरेसी ऑफ़ द फ्यू अगेन्स्ट मैनी हूट एवर फ़ार्म इट टेक्स।"

"तुमने हिस्ट्री पढ़ी है ?"

मनिला ने कहा, "पढ़ी थी, भूल गयी हूँ।"

सदाव्रत ने कहा, "मुझे एक प्राइवेट ट्यूटर हिस्ट्री पढ़ाते थे, इसलिए नहीं भूला हूँ ! नहीं तो मैं भी कभी का भूल गया होता।"

फिर जरा रुककर कहा, "जिन अंग्रेज़ों ने इतने दिन हमारे ऊपर शासन किया, उन्होंने ही एक दिन अपने राजा का सिर काट लिया था। और एक को सिंहासन से उतार दिया था। यह पता है ?"

"ये सब हिस्ट्री की बातें इस समय छोड़ो।"

"तुम्हारी तरह फ्रांस की रानी भी यह सब सुनना पसन्द नहीं करती थी। कहती––इस समय ये सब बातें रहने दो––और ठीक इसके बाद ही फ्रेंच-रिवोल्यूशन हो गया।"

अचानक मनिला बेचैन हो उठी। चेहरा घुमाकर बोली, 'यह टैक्सी हमारे पीछे क्यों आ रही है ?"

"कौन-सी टैक्सी ?"

गाड़ी चलाते-चलाते सदाव्रत ने मुड़कर देखा।

"नहीं, बेकार की बात है। कुछ भी नहीं है।"

लेकिन मनिला को जैसे फिर भी यकीन नहीं हुआ। पिछले कई दिनों से वह देख रही है, शाम के वक्त जब दोनों गाड़ी लेकर निकलते हैं, जिस समय लेक जाते है, रेड-रोड पर से गुज़र रहे होते, तब जैसे अचानक एक टैक्सी तीर की तरह बगल से निकल जाती। और अन्दर से कोई उन लोगों की ओर तेज़ नज़रों से देखता।

इस तरह एक दिन नहीं, एक बार नहीं, कई दिनों से एक सन्देह-सा

हो रहा था। ग्राड ट्रंक रोड से जाते-जाते किसी-किसी दिन लगता, बस अब एक्सिडेंट हुआ। दोनों ओर टूटी मोटर-गाडियाँ पडी हैं। ड्राइवर क्या शराब पीकर गाडी चला रहा है?

"चलो, चलो, लौट चलो, सदाव्रत! इधर जाने की ज़रूरत नही है।"

सदाव्रत कहता, "तब फिर क्लब चलें—वहीं जाकर बैठा जाये।"

मनिला कहती, "क्लब में अच्छा नही लग रहा था, इसीलिए तो घूमने निकले।"

"तब लेक चला जाये!"

मनिला को यह बात भी पसन्द नही आयी। बोली, "लेक बडी डेमोक्रैटिक जगह है।"

"तब चलो, जेस्सोर-रोड चलते हैं।"

जेस्सोर-रोड पर जाते-जाते भी मनिला को न जाने कैसा लगने लगा। सदाव्रत बगल में बैठा गाडी चला रहा था। हर रोज़ नयी साडी, नया ब्लाउज, नया जूडा, नये कॉस्मेटिक्स और सेंट लगाकर मनिला निकलती, फिर भी अच्छा नही लगता।

"अच्छा, फ्रांस की मेरी एन्टोनिएट की कहानी तो सुनी न, अब रूस की ज़ेरीना कैथेरिन द ग्रेट की कहानी सुनाता हूँ।"

"फिर हिस्ट्री!"

"अरे सुनो तो, अच्छी लगेगी। उस समय रूस और इंग्लैंड की लडाई चल रही थी, ज़ार लड़ाई में गया था, ज़ेरीना को अचानक पूरा क्रेमलिन सूना-सूना लग रहा है, पुलिस-पहरा कहीं कोई नहीं है। राजा के पास एक टेलिग्राम भेज दिया। लेकिन ज़ेरीना को पता नहीं था कि उस समय सिविल-वार शुरू हो गयी थी। पोस्ट-ऑफिस से टेलिग्राम लौट आया। उसमें लिखा था—'ह्वेयरएवाउट्स ऑफ द एड्रेसी इज नॉट नोन!'"

मनिला ने अचानक जैसे घबराकर कहा, "वहाँ कौन है?"

"कहाँ?"

मनिला खुद भी अवाक् रह गयी। श्यामबाज़ार के मोड़ पर भीड़ की वजह से गाडी चलाना मुश्किल हो रहा है। उन लोगों की गाडी के ठीक सामने एक टैक्सी आकर रुकी। और तभी टैक्सी से उतरकर कोई उनकी ओर ही आ रहा था, फिर भीड़ में छिप गया।

"कौन आ रहा था? कैसा लगता था?"

"एक आदमी, गुंडा-सा लग रहा था।"

सदाव्रत अचानक ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। बोला, "अरे, गुंडा तुम्हारा क्या करेगा ?"

"वह तो पता नही। इसी गुडे को उस दिन भी देखा था, मेरी ओर ही ताक रहा था।" सदाव्रत ने फिर से गाडी स्टार्ट कर दी।

कहने लगा, "अरे, कुछ भी नही है। कलकत्ता के सारे कॉमन लोग गुंडे-जैसे ही लगते है। तुम्हारी नज़रों मे सभी गुंडे है। वे लोग साफ़ कपड़े नही पहन पाते, सिर में तेल तक नही लगा पाते, इसी से गुडे लगते है। असल में गरीब है बेचारे।"

गाड़ी अपर सर्कुलर रोड से जा रही थी। सीधा रास्ता। विपत्ति का रास्ता हमेशा सीधा ही होता है। उसमें कोई मोड़ नहीं होता, घुमाव नही होता। उसकी राह बड़ी चिकनी और फिसलन-भरी है। मनिला जिस समाज में पली है, वहाँ कोई घुमाव-फिराव पसन्द नही करता। सुबह के ब्रेकफास्ट के बाद सीधे लच पर आकर हॉल्ट। फिर वहाँ से सीधे डिनर। और डिनर के बाद रिलैक्स। इस समाज में दिन भी ऐसे ही चलते हैं, रात भी ऐसे ही गुज़र जाती हैं। इसके बीच कोई भी सेमीकोलन अथवा कौमा नहीं होता। ट्रैंक्विलाइज़र की एक गोली रात को शान्तिपूर्ण और आराम-दायक बना देती।

लेकिन उस दिन शायद पहली बार टेढ़े रास्ते पर जा फँसी थी। सदाव्रत कई दिन से सोच रहा था। कितने ही दिन के इन्तज़ार के बाद आखिर एक चिट्ठी आयी थी। चिट्ठी मन्मथ ने लिखी थी।

मन्मथ ने लिखा था :

"सदाव्रत दा,

पिछले महीने जो सात सौ रुपये भेजे थे, उसका हिसाब भेज रहा हूँ। दूध के पैसे बाकी हैं। जैसा कि कहा था, मास्टर साहब के लिए दो सेर दूध रोज़ लिया जा रहा है। मास्टर साहब कलकत्ता जाने के लिए छटपटा रहे है। यहाँ और रुकना नहीं चाहते। कहते हैं, तबीयत ठीक हो गयी है। मैंने काफ़ी समझा-बुझाकर रोक रखा है। लेकिन किसी भी तरह नही मान रहे। तुम एक बार उन्हें समझाकर लिखो। एक तुम्हारी ही बात सुनते है। दिन-भर मेरे साथ बक-झक करते रहते है। बेकार नाराज़ होते हैं। शैल ठीक है। वह भी यहाँ आने के बाद से न जाने कैसी हो गयी है। वह भी शायद यहाँ पर ज़्यादा दिन नहीं रुकना चाहती है। ऐसी हालत में मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नही आता। तुम्हारे जवाब की राह देख रहा हूँ।

तुम जैसा कहोगे, वही होगा।"

उस दिन क्लब में मिस्टर बोस ज़रा ज्यादा पी गये थे। सदाव्रत कुछ कहने गया था। उसे देखकर बोले, "चियर अप माई बॉय, चियर अप!"

मनिला ने कहा, "डैडी!"

मनिला ने फिर से कहा, "डैडी, आज कितने पैग पी ली है ?"

मिस्टर बोस ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। कल की लड़की! उनकी नज़रो के सामने पैदा हुई! वही लड़की आज उन पर रौब गाँठ रही है! बेटी की बात का कोई जवाब नही दिया। एक पैग और लाने का ऑर्डर दे दिया। इडिया काफी आगे बढ चुका है। फाइव-इयर प्लान के बाद से औसत आय बढ गयी है। रूस-अमेरिका सभी 'एड' दे रहे है। किसकी परवाह करें ? उन्हे डर किसका ? बाडुंग कान्फ्रेंस में सब-कुछ डिसाइड हो गया है। हम किसी के निजी मामलो मे दखलन्दाजी नही करेंगे। लिव एण्ड लैट लिव। पचशील। डर की कोई बात नही है। डोण्ट केयर अमेरिका हमारा दोस्त है, रूस हमारा दोस्त है, नासिर हमारा दोस्त है माओत्सेतुग हमारा दोस्त है, दलाई लामा इडिया में भाग आये है। आएँ वी आर एव्रीबॉडी'ज़ फ्रेंड!

"डैडी आज आउट-ऑफ-गियर हो गये है!"

गाडी में बैठकर मनिला हँसने लगी। फिर बोली, "आज माँ के साथ खूब झगडा हुआ है न, इसी से डैडी जरा आउट-ऑफ-गियर हो गये हैं।"

"क्यो, झगडा किस बात पर हुआ ?"

"आज ब्रेकफास्ट के समय 'पॉरीज' नही खायी; इसी बात को लेकर! वह बात जाने दीजिये। आज किधर चलोगे ?"

"जिधर कहो।"

"देखो, सेकंड को हम लोगों की शादी है। शादी के बाद वी मस्ट गो सम ह्वेयर। हनिमून के लिए कहाँ चलना है ?"

"क्या हुआ, हिस्ट्री के बारे मे सोच रहे हो क्या ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं।"

"तब क्या सोच रहे हो ? आज माँ ने ब्रेकफास्ट नही लिया, डैडी से झगड़कर लंच नही लिया। दोपहर को देखा, सिर्फ एक बोतल गोल्डन बियर पिये बैठी है। डैडी ने भी छ: पैग ह्विस्की पी। वह तो तुमने देखा ही न! अब देख रही हूँ तुम भी अन्माइंडफुल हो रहे हो।"

सदाव्रत ने कहा, "अरे, नहीं-नहीं! ऐसी कोई बात नही है। मैं कुछ

और ही सोच रहा था।"

"कौन-सी बात ? हम लोगों की शादी के बारे में ?"

साथ-ही-साथ एक ज़ोर का धमाका-सा हुआ। सदाव्रत स्टियरिंग ह्वील सँभाले था। उसका सारा शरीर जैसे क्षण-भर में फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गया। तभी बगल में नज़र जाते ही देखा मनिला का सारा बदन जैसे जल रहा था। बम से जलने पर आदमी जिस तरह चीखता है, मनिला के मुँह से भी वैसी ही चीख़ निकली। पूरा चेहरा, छाती, हाथ, कन्धे—सब झुलस गये थे। और मनिला दर्द से छटपटाने लगी।

एक सेकंड !

सड़क पर चलते लोग भी घबराकर इधर-उधर छितरा गये। जो लोग दूसरी ओर जा रहे थे उनके कानों में भी धमाके की आवाज़ पहुँची। रात के समय इस ओर वैसे ही काफ़ी भीड़ रहती है। ट्राम, बस, टैक्सी और रिक्शों की वजह से रास्ता चलना मुश्किल हो जाता है। आस-पास की दूकानों पर ख़रीद-फ़रोख़्त चल रही थी। खरीदार, फेरीवाले, भिखारी सभी चौंक उठे थे। बस, ट्रामें और टैक्सी रुक गयी थीं।

"पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो उसको !"

कहता हुआ लोगों का झुंड पीछे-पीछे दौड़ने लगा। सदाव्रत ने तब तक गाड़ी रोक दी थी। लेकिन मनिला अभी भी चीख़ रही थी, "माई गॉड ! माई गॉड !"

लेकिन उससे बोला नहीं जा रहा था। शायद गला रुँध गया था। सदाव्रत के गाड़ी से उतरकर यह देखने से पहले ही कि क्या हुआ, पुलिस आ पहुँची थी। और जो कुछ देखा उसके बाद कुछ करने को नहीं था।

□ □ □

मधुगुप्त लेन के क्लब में उस दिन फिर 'मरी मिट्टी' की बात चली। कालीपद ने अभी तक हिम्मत नहीं हारी थी। तभी शंभू दौड़ता आया।

"अरे कालीपद, गज़ब हो गया !"

"क्या हुआ ?"

क्लब के सारे मेम्बर 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' कहने लगे। वैसे असल में शंभू ही मधुगुप्त लेन के इस ड्रामैटिक क्लब का मुखिया था। कालीपद ने अभी तक हिम्मत नहीं हारी थी। शंभू के हाथ-पैर जोड़कर उसे एक बार फिर से कोशिश करने को तैयार किया। तय हुआ कि शंभू ही कुन्ती को बुलाकर लाएगा। काफ़ी दिनों पहले पूरे सौ रुपये एडवान्स ले जा चुकी

है। इसलिए उसे हर हालत में आना ही होगा।

"अरे, आज उसी की वजह से आने में देर हो गयी! डलहौज़ी स्क्वायर की सारी ट्रामें और बसें बन्द हो गयी थीं।"

"क्यों ? बन्द क्यों ? फिर से गोली चली है क्या ?"

"अरे, नहीं ! अपनी वह कुन्ती गुहा थी न, उसे ही सुना पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया है।"

सुनते ही सब लोग जैसे चौंक उठे।

"क्यों ? क्या किया था ?"

"एक लड़की के ऊपर एसिड-बल्ब फेंककर मारा था।"

"कौन-सी लड़की ? वह कौन है ? लड़की क्या मर गयी ?"

सिर्फ मधुगुप्त लेन का क्लब ही नहीं, यह बात जैसे आग की तरह सारे कलकत्ता में फैल गयी। ऑफ़िस से लौटनेवाले बाबू लोग जगह-जगह झुंड बनाये इसी बारे में बात कर रहे थे।

पद्मरानी भी हैरान रह गयी थी।

"अरी, कहती क्या है, अपनी टगर ? टगर को पुलिस ले गयी ? ठीक सुना है ?"

बिन्दू ने कहा, "हाँ माँ, सुना तो यही है।"

"अरे, उसने किया क्या था, री ?"

"सुना है, किसी का खून कर दिया।"

"अरे, जा-जा, तूने ठीक से सुना नहीं होगा। वह कैसे खून कर सकती है ! वह क्यों खून करने लगी, री ? उसके सिर पर तो वैसे ही तलवार झूल रही है। उसकी बहन को छः महीने की सजा हो गयी है। अरे, वह क्यों खून करेगी, बेटी ? उसे क्या अपनी जान प्यारी नहीं है ? खून क्या ऐसे ही हो जाता है ?"

पद्मरानी के फ़्लैट की दुलारी, गुलाबी, वासन्ती, सभी सुनने के बाद गाल पर हाथ रखकर बैठ गयीं। आँखों के सामने से सारी रोशनियाँ जैसे एकाएक गुल हो गयी हों।

कालीघाट वाले मकान में बूढ़ी ताई अगले दिन के लिए दीये की बत्तियाँ बना रही थीं। बात सुनकर थर-थर काँपने लगीं।

"अरे राम, तू कहती क्या है ! खबर कौन लाया ?"

"उन्होंने ऑफिस से आकर बतलाया।"

१९५७ में मास्को से खबर फैली थी, आसमान में स्पूतनिक उड़ाया

गया है। सुनकर सारी दुनिया के लोग चौंक उठे थे। यह ख़बर भी वैसी ही थी। आसमान में जब स्पूतनिक उड़ रहा है, तभी ज़मीन पर आदमी, आदमी के ही बदन पर एसिड फेंककर मार रहा है। यह भी कोई छोटी बात नहीं है। पुलिस ने जगह को चारों ओर से घेर लिया। इंडियन पैनल कोड के सेक्शन थ्री हंड्रेड थ्री या टू। या तो फाँसी होगी, नहीं तो ट्रांस-पोर्टेशन फ़ॉर लाइफ़।

मिस्टर बोस उस दिन ज़रा गहरी डोज़ लेकर क्लब से लौटे थे। सुबह ही बेबी के साथ झगड़ा हो गया था। ब्रेकफ़ास्ट के वक्त बेबी ने पॉरीज नहीं ली। हालाँकि मेजर सिन्हा ने कह दिया है—शी मस्ट हैव ओट्स पॉरीज! लौटकर आये तो सुना—मेमसाहब ने ब्रेकफ़ास्ट भी नहीं लिया, लंच भी नहीं लिया। फ़्रिज से निकालकर सिर्फ़ एक बोतल गोल्डन ईगल पी। पीकर अभी तक बिस्तरे पर अन्कॉन्शस हुई पड़ी हैं।

तभी अचानक थाने से फ़ोन आया।

"हलो!"

"यस!"

ख़बर सुनकर छः पैग ह्विस्की का सारा नशा जैसे काफ़ूर हो गया। साथ-ही-साथ शिवप्रसाद गुप्त को फ़ोन किया। ज़्यादा बात करने का वक़्त नहीं था। गाड़ी लेकर सीधे पी० जी० हॉस्पिटल चले आये। वहाँ एमर्जेन्सी वार्ड में जैसे सब-कुछ रुक गया था। डॉक्टर, नर्स, वार्ड-मास्टर, पुलिस! सदाव्रत बेचैनी से इधर-उधर चक्कर काट रहा था।

"ह्वाट हैपेन्ड, सदाव्रत? हाऊ? मनिला कैसी है?"

पूरी बात सुनने से पहले ही शिवप्रसाद गुप्त की याद आयी। मोस्ट इन्फ्लूएन्शियल मैन।

"तुम्हारे फ़ादर अभी तक नहीं आये! इतनी देर क्यों कर रहे हैं? पुलिस-कमिश्नर को ख़बर की गयी है या नहीं? पुलिस-मिनिस्टर कौन है? मैंने तो सुनते ही उन्हें रिंग किया था।"

इसके बाद क्या करें, कुछ ठीक नहीं कर पा रहे थे। एक बार वार्ड के अन्दर जाने की कोशिश की। पुलिस ने रोका।

पुलिस-सार्जेंट ने नरमी के साथ कहा, "नॉट नाऊ, सर!"

"तब टेलीफ़ोन कहाँ है? आई वान्ट टु रिंग अप समबडी!"

इसके बाद टेलीफ़ोन करने के कैबिन में जाकर रिसीवर उठाया।

"मिस्टर गुप्त! इतनी देर क्यों कर रहे हैं? हैंग योर पूजा! आप

फौरन चले आइये। कंडीशन वेरी सीरियस !"

□ □ □

कलकत्ता के लोग उस रोज़ हैरान रह गये थे। वैसे हैरानी की कोई बात नहीं थी, फिर भी रह गये थे। सुबह अखबार पर नज़र पड़ते ही चाय का कप और भी मीठा हो गया। उस दिन लोगों ने कितनी ही दूकानों पर एक की जगह दस-दस कप चाय पी डाली।

"मैनेजर, एक कप और, कसम से बडी चटपटी खबर है।"

और दिनों जो लोग सिनेमा-स्टारों को लेकर माथापच्ची करते थे, काम न मिलने की वजह से जो लोग सड़कों पर आवारागर्दी करते फिरते थे, उनको भी आज जैसे एक नयी खुराक मिल गई थी। कुछ बडे घरों के पाप का भंडाफोड होने पर खुश हो रहे हैं। जो हालत चल रही है उससे और तो कोई आशा है नहीं, सभी जैसे निराश हो गये हैं। बीच-बीच में नमक-मिर्च लगाकर कोई किस्सा अखबारों में छपता, लाखों रुपये की चोरी होने का भंडा फूटता, फिर सब-कुछ दबा दिया जाता। जो लोग ब्लैक-मार्केटिंग करते हैं, जो लोग पब्लिक-मनी चुराने के अपराध में गिरफ्तार होते हैं, उनकी खबर अखबारों में छपने पर लोगों को आशा होती है, इस बार मजा मिलेगी। लगता है अब की बार फाँसी होकर रहेगी। चावल में कंकड़ मिलाने के लिए, दवाओं में मिलावट करने के लिए कम-से-कम एक आदमी को तो क़ैद या जुर्माने की सज़ा भुगतनी ही होगी। लेकिन होता कुछ नहीं। दो-चार दिन में सब ठंडा पड़ जाता है।

इसी वजह से लोगों ने आशा करना छोड दिया था।

'लेकिन अब? अपने काले-कारनामों को अब कहाँ छिपाओगे, बच्चू ? फेंटा खोलते ही तो साँप बाहर आ जायेगा !'

'पता है, वह लडकी थिएटरों में काम करती है!'

'लेकिन वह उस लडकी को मारने क्यों गयी ? जरूर ही कोई भीतरी बात है !'

थिएटरों और क्लबों में इसी बात को लेकर बहसें होती। टाला से लेकर टालीगंज तक जिन्हें एक क्लब से दूसरे क्लब में रिहर्सल करके पेट पालना होता वे सारी लड़कियाँ भी हैरान रह गयी थी।

श्यामली कहती, "कुन्ती दी ने यह क्या किया, भाई ?"

बन्दना कहती, "सुनते ही भाई, मेरी तो छाती धक्-धक् करने लगी।"

सबसे ज्यादा नुकसान कालीपद का ही हुआ। काफी दिनों के झगड़े

के बाद क्लब के मेम्बरों से फैसला हुआ था। 'मेरी मिट्टी' के स्टेज होने की जो बची-खुची आशा थी, वह भी गयी। शंभू के आते ही कालीपद ने पूछा, "क्यों रे, आज कोई खबर मिली क्या ?"

शम्भू का चेहरा भारी हो रहा था। बोला, "मैं आज सदाव्रत के घर गया था, जानने के लिए, आखिर मामला क्या है।"

"सदाव्रत ने क्या कहा ?"

"कहता क्या ? बेचारा एकदम हताश हो गया है। इसी लड़की के साथ ही तो उसकी शादी होनेवाली थी। और इसी शादी के लिए उसकी नौकरी लगी थी।"

"अब क्या होगा ? हाँ, वह लड़की अभी जिन्दा है या मर गयी ?"

"जिन्दा है। पूरा चेहरा, छाती, सब-कुछ जल गया है। आँख-नाक कुछ भी नहीं है। सिर्फ मर्फिया के इंजेक्शन लगा-लगाकर बचा रखा है। इससे तो मर जाना ही अच्छा होगा !"

"और कुन्ती गुहा ?"

अचानक क्लब के फाटक पर पुलिस के दो आदमियों को देखकर कालीपद रुक गया।

"यह आप लोगों का ड्रामेटिक क्लब है न ?"

शम्भू ने उठकर कहा, "हाँ, अन्दर आइये !"

दो पुलिस सब-इंस्पेक्टर थे। अन्दर आकर वहाँ बिछी चटाई पर बैठकर हाथ की फ़ाइलें एक ओर रखीं।

"हम लोग थाने से आ रहे हैं। आप लोगों के नाम ?"

नाम वगैरह सुनकर एक ने कहा, "देखिये, हम लोग कुन्ती गुहा नाम की एक एक्ट्रेस के बारे में इन्क्वायरी करने आये हैं। आप लोगों के यहाँ, इस क्लब में भी वह रिहर्सल के लिए आती थी !"

क्लब के सारे मेम्बर जैसे सकपका गये। क्या कहना चाहिए, कुछ ठीक नहीं कर पा रहे थे।

"देखिये, असामी ने जो स्टेटमेंट दिया है, उसमें आपके इस क्लब का भी नाम है। उसका कहना है कि आप लोग उसे अच्छी तरह से जानते हैं। शम्भू बाबू और कालीपद बाबू का नाम उसने लिया है। हम लोग तहकीकात करने आये हैं। आप लोग उसे पहचानते हैं या नहीं ?"

कालीपद ने कहा, "हम लोगों के यहाँ रिहर्सल के लिए आती थी, बस इतना ही। इससे ज्यादा तो कुछ पता नहीं है।"

"और आप ?"

"मैं भी उसे इतना ही जानता हूँ।"

"कभी उसके घर गये थे ?"

"हाँ, जब वह जादवपुर में रहती थी, कांट्रेक्ट के लिए दो-एक बार गया था। उसके साथ और कोई वास्ता नही था।"

"उसके साथ टैक्सी से किसी दिन किसी होटल में जाकर एक कमरे में रात नही गुज़ारी ?"

शम्भू चौंक पड़ा, "अपने स्टेटमेंट में उसने यह भी कहा है क्या ?"

"उसने क्या कहा है, वह बाद की बात है। आप पहले तो यह बतलाइये कि थिएटर के नाम पर उसके साथ कहाँ-कहाँ गये थे ?"

कालीपद ने कहा, "हम लोग साहब, शाम के वक़्त ऑफिस से आकर यहाँ क्लब मे थोड़ी देर थिएटर और रिहर्सल पर गपशप करते है। हम आर्टिस्टो के साथ वह सब क्यों करने लगे !"

"लेकिन आप लोगो ने थिएटर-क्लब ही क्यो बनाया है ? लड़कियों के साथ उठने-बैठने के लिए ही न ?"

"नही, वह क्यो करने लगे ? हम लोगो के यहाँ घरो मे बीवी और बाल-बच्चे है, बेकार मे इन सब लड़कियो से क्यो मिलने लगे ? ऐक्टिंग करना भी तो एक आर्ट है। अपने आर्ट और कल्चर के लिए ही हम थिएटर वगैरह करते हैं।"

सब-इंस्पेक्टर ने सारी बातें नोट कर ली। फिर बोले, "तब आप लोगों का कहना है कि और कोई उद्देश्य नही था ?"

"और क्या उद्देश्य हो सकता है ? थिएटर करके इंडिया के कल्चर को ग्लोरीफाई करने की कोशिश कर रहे हैं। नही तो सरकार हम लोगों को हज़ारो रुपये क्यो दे रही है ?"

"सरकार आप लोगो को रुपया देती है ?"

"हमारे क्लब को नही दिया, लेकिन दूसरे क्लबो को तो दे रही है। किसी को चालीस हज़ार, किसी को बीस हज़ार, किसी को दस हज़ार और किसी को पाँच हज़ार। दो-एक सफल नाटक खेलने के बाद ही हम लोग मिनिस्टर के पास एप्लीकेशन भेजेंगे। हम लोगों को भी रुपया मिलने की आशा है। सभी को मिल रहा है, हम ही को क्यों नही मिलेगा ?"

दारोगा साहब ने जो लिखना था, लिख लिया। फिर चले गये।

शम्भू साथ-साथ बाहर आया। पूछने लगा, "अच्छा, बतला सकते हैं,

वह यह सब करने क्यों गयी ? क्या हुआ था ?"

पुलिस से इतनी आसानी से कुछ बात निकलेगी, ऐसी बात तो नहीं थी। और शायद पुलिसवालों को भी पता नही था। इन्वेस्टीगेशन होगा, इन्क्वायरी होगी, तब तो ? अगर कोई बात नही होगी तो बेकार में क्यों मारने जायेगी बेचारी को ? ज़रूर अन्दर-ही-अन्दर कोई बात थी, जो किसी को भी नही मालूम। घटना जिस वक़्त घटी, किसी ने भी नहीं देखा। सभी अपने-अपने काम मे लगे थे। सिर्फ़ ज़ोर की आवाज कान में आयी थी। चारों ओर अँधेरा हो चुका था। मनिला के साथ बातें करता सदाव्रत गाड़ी चला रहा था। सब इधर-उधर की बातें। अगले महीने की दूसरी तारीख को उनकी शादी होगी, इसी बारे में बात चल रही थी।

"आपको पता नही चला कि कोई आपको फॉलो कर रहा है ?"

"नही ! धमाके की आवाज कान में आते ही मुझे जर्क-सा लगा। मैं चौंक पड़ा। फिर क्या हुआ है, देखने के लिए बगल में नज़र जाते ही देखा, मनिला का सारा बदन जल गया था। उसके जलते बदन से धुआँ उठ रहा था। चमड़ी जलने की बदबू आ रही थी।"

"फिर ?"

"इसके बाद मैंने जल्दी से ब्रेक लगाकर गाड़ी रोकी। तब तक चारों ओर पुलिस और भीड़ जमा हो चुकी थी।"

"इससे पहले, आवाज़ सुनने के बाद आपने और कुछ नही देखा ?"

सदाव्रत ने ज़रा सोचने की कोशिश की। फिर कहा, "मुझे धुँधली-सी याद है, गाड़ी के पास कोई दौड़ रहा था, उस आवाज के होते ही भागा।'

"उसकी हुलिया कैसी थी ?"

"मैंने बगल से देखा था। सामने से ठीक-ठीक नही देख पाया।"

"फिर भी बगल से देखने पर क्या लगा ? उम्र क्या होगी ? मर्द या औरत ?"

"लड़की, उम्र करीब···"

"चौबीस-पचीस के करीब ?"

"हाँ, ऐसी ही होगी।"

"अच्छा, मैं अगर आपको वह लड़की दिखलाऊँ तो क्या आप उसे पहचान पाएँगे ?"

"ज़रूर। न पहचान पाने की तो बात ही नही हो सकती।"

इसके बाद जेल में लोहे का एक दरवाज़ा खोलकर वे लोग सदाव्रत

को दूसरे कमरे मे ले गये। दिन के समय भी वहाँ अँधेरा था। अजीब-सी मिचलाँद-भरी वदबू आ रही थी। सदाव्रत को ऑफिस से बुलाकर 'आईडेंटीफिकेशन' कराया जा रहा था। मिस्टर वोस काफी हताश हो गये थे। इकलौती लडकी। बीवी से सारी ज़िन्दगी कभी शान्ति नही मिली। इसी वजह से उनके लिए मनिला ही भरोसा थी। डैडी से मनिला ने जो कुछ भी चाहा, उसे मिला। उसकी कोई भी जिद, कोई भी माँग कभी ठुकरायी नही गयी। इसी वजह से आज मिस्टर वोस की आँखें छलछला रही थी। शायद सारे 'मुवेनीर इजीनियरिंग वर्क्स' के जलकर राख हो जाने पर भी उन्हें इतना दुःख नही होता। उन्होने सदाव्रत मे कह दिया था, "द कलप्रिट मस्ट वी पनिश्ड !"

उन्होने ही पुलिस-कमिश्नर को फोन कर दिया था कि उनकी लडकी के मामले में स्पेशल केयर ली जाये पूरी-पूरी तहकीकात हो। पुलिस-मिनिस्टर मे भी मुलाकात की। अकेले नही, शिवप्रसाद गुप्त को भी साथ ले गये। दिस इज़ हॉरीबुल। कलकत्ता का अगर यही हाल रहा तो यहाँ पर रहने वाले पीस-लविंग लोगो का क्या होगा ? वे लोग कहाँ जायें ? कलकत्ता मे आज जो इतने रिफ़्यूजी भरे हैं, यही है इसकी जड़। सरकार इन लोगो पर जरूरत से ज्यादा मेहरबान हो गयी है। हज़ारो रुपये लोन दे-देकर आप लोगो ने इन्हे हम लोगो के सिर पर विठा दिया है। हम लोग वेस्ट-वगाल के लोग है। इन लोगों ने आज हमे अपने ही घर में आउटसाइडर वना दिया है।

शिवप्रसाद गुप्त को जो कहना था, उन्होंने कहा।

अन्त में पुलिस-मिनिस्टर ने पूछा, "अव पेशेण्ट का हाल कैसा है ?"

शिवप्रसाद गुप्त ने कहा, "पता नही बचेगी भी या नही ! लेकिन वह तो डॉक्टर का काम है। रिफ़्यूजी लोग जव शुरू-शुरू में कलकत्ता आये थे मैंने श्यामाप्रसाद मुकर्जी से कह दिया था—यही लोग एक दिन वेस्ट-बंगाल की इन्टेग्रिटी बिगाडेंगे। मैंने जो कुछ कहा था, वही हुआ न !"

"आप डॉ० राय से इस बारे मे कहिये।"

"ज़रूर कहूँगा। मैंने वियना टेलिग्राम कर दिया है। लौटते ही कहूँगा। मैं आप लोगो की तरह डॉक्टर राय से क्यों डरने लगा ? मुझे किस बात की परवाह है, जनाव ? मैं कांग्रेस का भी कोई नही हूँ, मिनिस्ट्री का भी कोई नही हूँ, मुझे किस बात का डर ? जरूरत होने पर पंडित नेहरू से कहकर स्पेशल पुलिस से इन्वेस्टीगेशन कराऊँगा।"

"लेकिन आपको क्या लगता है ? अचानक एक इनोसेंट लड़की को मारने क्यों गयी ?"

मिस्टर बोस बीच ही में बोले, "मेरी लड़की को आपने नहीं देखा, शी इज़ एन इनोसेंट गर्ल !"

"कोई पर्सनल ग्रज थी क्या ? जान-पहचान थी ? जैलसी ?"

"एक हैगर्ड लड़की के साथ कैसे जान-पहचान हो सकती है ?"

पुलिस-मिनिस्टर ने शिवप्रसाद गुप्त से पूछा, "लेकिन आपके लड़के के साथ ?"

"आप कह क्या रहे हैं ? मैं अपने लड़के को नहीं जानता ? असल में यह कम्युनिस्टों का काम है। मैं आपसे कहे देता हूँ, इन कम्युनिस्टों को अगर आप लोग यहाँ से सबडिउ नहीं करेंगे तो इसका फल आपको भुगतना होगा। मैंने अतुल्य बाबू से भी इस बारे में बात की है।"

पुलिस-इंस्पेक्टर से लेकर पुलिस सब-इस्पेक्टर तक सभी ने तहकीकात शुरू कर दी। मिस्टर बोस की यह ट्रेजैडी, उनकी निजी ट्रेजैडी नहीं है, इस स्टेट की भी ट्रेजैडी है। अगर अभी से इन कलप्रिटों को सख्त-से-सख्त सज़ा नहीं दी जायेगी तो यह वेस्ट-बंगाल स्टेट भी एक दिन मुश्किल में पड़ने वाली है।

□ □ □

अँधेरी सेल।

एक सेल के सामने जाकर पुलिस-ऑफ़िसर ने ताला खोला।

पहले तो सदाव्रत कुछ देख ही नहीं पाया। फिर अचानक लगा जैसे अन्दर कोई हिला। पुलिस-ऑफिसर के हाथ में टार्च थी। टार्च की रोशनी पड़ते ही जनाने गले की चीख सुनायी दी। जोर की चीख। ठीक इसी तरह उस दिन मनिला के मुँह से चीख निकली थी। जैसे टार्च की रोशनी उसके बदन में ज़हर में बुझे तीर की तरह जाकर घुसी। आँखें धुंधली पड गयी थीं। रोशनी पड़ते ही जैसे छटपटा उठी।

"इसको पहचान सकते हैं ? आपने इसी को उस दिन देखा था ?"

सदाव्रत पहचान गया। अब चेहरे पर टार्च की रोशनी अगर नहीं भी पड़ती तो भी काम चलता।

"आपकी गाडी के पास यही तो दौड़ रही थी ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ।"

"इसके साथ क्या कोई और भी था ? किसी को इसके साथ देखा था ?"

"नही।"

जिस काम के लिए आना हुआ, वह एक मिनट मे ही हो गया। लोहे का दरवाजा फिर से बन्द हो गया। सदाव्रत का माथा अभी भी झुका हुआ था। इतने दिन बाद कुन्ती गुहा को इस तरह देखना होगा, वह सोच भी नही पाया था। वही कुन्ती गुहा ! सारी घटनाएँ एक-एक कर दिमाग मे चक्कर काटने लगी। पहले-पहल उसे शम्भू के क्लब मे देखा था। वहाँ से काफी देर तक टैक्सी मे एक साथ घूमना। बाद मे शायद एक दिन उसका पता ढूँढता उसके घर की तलाश मे भी गया था। लेकिन उसको दिया पता गलत था। इसके बाद की मुलाकात धर्मतल्ला में हुई। शैल चप्पल मरम्मत करा रही थी, कुन्ती गुहा ने जान-बूझकर धक्का दिया था। एक के बाद एक पर्दा खुलता जा रहा था। जैसे कुन्ती गुहा को लेकर काफी दूर तक जाया जा सकता है। उसके बाद की मुलाकात ही आखिरी थी। जिस दिन 'सुवेनीर इजीनियरिंग वर्क्स' के फाउण्डर्स-डे के उपलक्ष्य मे ड्रामा हुआ था। पिताजी के दिये मैडल को उसने लौटा दिया था।

"इसका पनिशमेंट क्या होगा ?"

सब-इस्पेक्टर भला आदमी था। बोला, "अगर गिल्टी साबित होती है तब डैथ सेंटेन्स।"

"उसने स्टेटमेंट क्या दिया है ?"

"उसने स्टेटमेंट दिया है कि वह उस जगह पर थी ही नही। वह एक आर्टिस्ट है, अमेच्योर क्लबो मे ऐक्टिंग करती है।"

"वह तो मुझे भी मालूम है।"

"आपको पता है ? आपने उसकी ऐक्टिंग देखी है ?"

"हाँ, एक बार।"

"तब तो आप उसे पहले से ही जानते हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "बहुत ही कम। मेरे दोस्त के क्लब में वह रिहर्सल के लिए आती थी। वही दो बार देखा था।"

"एक बात और···"

सदाव्रत रुका।

"कहिये।"

"उसने स्टेटमेंट दिया है कि एक समय वह नर्स थी। आपको इस बारे में कुछ पता है ? आपने उससे किसी भी सिलसिले में कभी काम लिया है ?"

"नहीं।"

"तब इसके पीछे क्या कारण हो सकता है, कुछ बतला सकते हैं ?"

"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा।"

"मिस बोस के साथ आपकी शादी को लेकर कोई जैलसी हो सकती थी क्या ?"

"यह कैसे हो सकता है ? मिस बोस के साथ उसका क्या सम्बन्ध ? शी इज़ नो बडी टु मी ऑर टु हर—उसके साथ मेरा कोई भी रिलेशन नहीं था, मिस बोस का भी नहीं।"

पुलिस-स्टेशन पर ही देर हो गयी थी। वहाँ से सीधे हॉस्पिटल। हॉस्पिटल के कैबिन में उस समय तक मरीज़ के लिए दुनिया की सारी कोशिशें जैसे बेकाम होकर पड़ी थीं। इतने कॉस्मेटिक्स, इतना रूज़, इतनी लिपस्टिक, इतना मैक्स-फैक्टर, आज सब-कुछ बेकार था। सिर पर पीछे की ओर थोड़े-से बाल हैं। आँख, मुँह, नाक, कान में से कौन-सा क्या है, पता नहीं लगता। पार्क-स्ट्रीट की सैलून ने इसी चेहरे को सजाने और सँवारने के लिए मोटी-मोटी रकमें वसूली हैं। इन्हीं बालों को सँवारकर जूड़ा बनाकर स्काइ-स्क्रैप में बदलने में उन्हें काफी मेहनत करनी हुई है, आज इनमें सिर्फ 'ऑयन्टमेंट' लगाया जाता है, चमड़ी झुलसकर लटक पड़ी है, गले में एक छेद कर उसमें रबर का ट्यूब डालकर खाना खिलाया जाता है। ज़रा-सी भी आवाज़, ज़रा भी एक्साइटमेंट नहीं होना चाहिए। एक जान को किसी भी तरह बचाना ही होगा। ब्रिटिश 'फार्माकोपिका' में जितनी भी दवाएँ हैं, खरीद लाओ। मैं रुपया दूँगा, मैं करोड़पति हूँ। मैं मिस्टर बोस हूँ। मेरी इकलौती बच्ची, शी मस्ट लिव।

मिसेज बोस एक दिन आयी थीं।

डॉक्टर ने पहले से ही कह दिया था—ज़रा-सी भी आवाज़ करने में जान का खतरा है, ज़रा भी एक्साइटमेंट होने पर। माँ-बाप आये हैं, पता लगते ही कोलैप्स कर जायेगी। गाड़ी से उतरते वक्त भी मिसेज़ बोस ने गारन्टी दी थी कि मनिला को एक बार देखकर ही वह चली जायेंगी।

लेकिन कैबिन में घुसते ही जैसे भूत घेर लिया।

बात न चीत ! एक ज़ोर की चीख मारकर वहीं ज़मीन पर फेन्ट होकर गिर गयीं। दाँत भिंच गये। हॉस्पिटल वालों ने बड़ी मुश्किल से स्ट्रेचर पर लिटाकर उन्हें गाड़ी तक पहुँचाया। एक के ऊपर दूसरी आफत। मिस्टर बोस ने जेब से निकालकर वही 'ट्रैंक्विलाइज़र' की एक टिकिया

निगल ली।

कह रहे थे, "मेरी ऑन्ली चाइल्ड ! शी मस्ट नॉट डाई, डॉक्टर ! उसे जैसे भी हो बचाना होगा। वह बचनी ही चाहिए !"

और दिनो की तरह उस दिन भी सदाव्रत आया था। उस दिन भी हमेशा की तरह चुपचाप सिरहाने खड़ा रहा। बात करना मना है। मनिला कैसी है—पूछना भी जुर्म है। चार नर्स, चार आया, छः डॉक्टर हर समय पेशेण्ट को अटेन्ड कर रहे थे। इसलिए मनिला को बचना ही चाहिये। मिस्टर बोस की इकलौती बेटी को बचाना ही होगा। नही तो बहुत-सा रुपया आइडल हो जायेगा। इधर-उधर के लोग लूट खायेंगे। सोलह मिलियन रुपये। और सुवेनीर इंजीनियरिंग का मालिकाना सब ज़ब्त हो जायेगा। उसे बचाना ही होगा। शी मस्ट लिव, शी मस्ट !

हर रोज़ इसी तरह यहाँ आना होता है। आकर इस बेजान चीज़ के सामने गड़े रहना होता है। ज़रा-सा मानसिक शोक भी 'शो' करना होता है। इसके बाद सिर नीचे किये चला आता है। सदाव्रत को सोचने में भी न जाने कैसा लगता है कि यही शरीर एक दिन 'जिन' न मिलने पर चुस्त नहीं रहता था। इसी चेहरे पर बिना मैक्स-फैक्टर चुपड़े बाहर नहीं निकला जा सकता था। आज वही चेहरा असहाय और निर्जीव पड़ा था।

मिस्टर बोस भी आते।

धीरे से पूछते, "हाऊ इज़ शी ?"

सदाव्रत कहता, "अच्छी है।"

"एनी होप ?"

लगता था आजकल मिस्टर बोस ने ड्रिंक की मात्रा बढ़ा दी थी। रेसकोर्स में भी ज़्यादा रुपयों की बाज़ी लगाते थे। क्लब में भी काफ़ी रात तक किटी खेलते थे। बाद में जब लौटकर घर आते, मिसेज़ बोस की डिनर पूरी हो चुकी होती। बिस्तरे पर 'साइड-लैम्प' की रोशनी पर रेस-हैंडी-कैप देखती-देखती सो जाती। मिस्टर बोस भी एक-दो नींद की गोली निगलकर बिस्तरे पर जा पड़ते।

□ □ □

इसके बाद वह दिन भी आ गया।

सदाव्रत के ये कुछ दिन बड़ी बेचैनी में कटे। सिर्फ़ सदाव्रत ही क्यों, सारे कलकत्ता के लोगों को ही बेचैनी हो रही थी। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के स्टाफ़ में भी खुस-फुस शुरू हो गयी थी। वे लोग दूर से देखते।

चहारदीवारी के अन्दर तुम्हारा साम्राज्य है। तुम उसकी महारानी बनकर रहो। तुम हमारे मामलों में सिर खपाने मत आओ। इस कलकत्ता शहर में इतनी बातें हो जाती हैं। पपरानी के इतने पर्लैट, इतने सारे वस्त्र, इतनी किटी, इतनी टी० बी०, इतने झंझट और झमेलों से तुम्हें दूर रखकर हम लोगों ने निश्चिन्त कर दिया है। इसके लिए हमें धन्यवाद देना चाहिए। तुम गृहलक्ष्मी हो। लैंड-डेवेलपमेंट कॉरपोरेशन मे कितना प्रॉफिट और कितना लॉस होता है, इससे तुम्हे क्या मतलब ? तुम्हें यह भी जानने की कोई जरूरत नहीं है कि तुम्हारा लड़का 'मुखेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफिस से हर महीने दो हजार रुपये लेकर किसी बैंक में जमा नही करता, दान कर देता है।

उस दिन अचानक बद्रीनाथ अन्दर आया।

"माँ, एक आदमी तुमसे मिलना चाहता है।"

मन्दाकिनी हैरान रह गयी। "मुझसे ? कौन है ? मुझसे क्यों मिलना चाहता है ? तूने शायद गलत सुना है।"

बद्रीनाथ ने कहा, "नही, माँ ! मैंने कहा था घर में कोई नही है। फिर भी आपसे मिलना चाहता है।"

"कौन है ? कहाँ से आया है ? क्या काम है ?"

ऐसा तो कभी होता नहीं। मन्दाकिनी के साथ तो सिर्फ ग्वाला, ऊपले-वाले, कहारिन, नौकरानी और महाराज को ही काम रहने की बात है। फिर भी जल्दी से बाहर के कमरे में आ गयी। आकर अनजान चेहरो को देखकर हैरान रह गयी।

मन्मथ बैठा था। मन्दाकिनी को देखते ही उठ खड़ा हुआ।

"आप लोगों को ठीक से पहचान नही पा रही ?"

केदार बाबू आगे आये। कहने लगे, "आपने मुझे देखा है, माँ ! मैं सदाव्रत का मास्टर हूँ। मधुगुप्त लेन वाले मकान में पढाने जाता था।"

फिर भी न पहचानने की ही बात थी। पास की कुर्सी पर एक लड़की चुपचाप बैठी थी।

"यह मेरी भतीजी शैल है। शैल बेटी, प्रणाम करो !"

शैल की उठने की या प्रणाम करने की इच्छा नही थी। लेकिन मन्दाकिनी ने खुद ही बचा दिया।

"नही-नही, प्रणाम नही करना होगा, मैंने अभी स्नान नही किया है।"

मन्मथ ने कहा, "हम लोग अभी-अभी पुरी से आ रहे है। मास्टर साहब

की बीमारी की वजह से गये थे। लेकिन अखबार में सदाव्रत दा के एक्सि-डेंट की खबर पढ़कर मास्टर साहब वहाँ और ज्यादा दिन नहीं रुकना चाहते थे। कहने लगे, और एक मिनट भी यहाँ नही रुकूँगा। टिकट मिलने में दस-बारह दिन की देर हो गयी। नही तो और पहले चले आते। हावड़ा-स्टेशन से सीधे यहीं आ रहे हैं।"

केदार बाबू ने मन्मथ को रोक दिया। बोले, "अच्छा, तुम चुप रहो। बहुत बेकार की बात करते हो। आप बतलाइये माँ, सदाव्रत को क्या हुआ? अखबार मे तो सारी खबरें मिलती नही हैं। किसने यह काम किया? जब से सुना है माँ, मेरा मन बेचैन हो रहा है।"

मन्दाकिनी ने कहा, "क्या पता, मास्टर साहब, मुझे भी ठीक-ठीक सब-कुछ मालूम नहीं है।"

"आपको नही पता? तो कौन जानता है? किसके पास जाने पर सब पता लगेगा? सदाव्रत कहाँ है?"

"वह तो सुबह का ऑफिस गया है।"

"तब हम लोग ऑफिस ही चलें। मन्मथ, चलो, ऑफिस ही चलें। हम लोग अब चलें, माँ! चलो, शैल, सदाव्रत के ऑफिस चलते हैं। देखता हूँ काफी मुश्किल हो गयी है।"

मन्मथ शायद विरोध करने जा रहा था। बोला, "सारी रात ट्रेन मे काटकर अब फिर निकलेंगे? खा-पीकर ज़रा देर आराम कर लेते, फिर···"

"तुम चुप रहो न! चलो, शैल! एक बार बैठ जाने पर तेरा तो उठने को मन ही नही करता!"

"तुम लोगो का खाना-पीना अभी नही हुआ क्या?"

केदार बाबू ने ही उत्तर दिया, "खाना होगा कैसे? सदाव्रत के साथ इतनी बड़ी घटना हो गयी और मैं खाऊँगा? शादी टूट गयी न? दो हज़ार की नौकरी क्या रहेगी अब? काफी मुश्किल हो गयी।"

"तब तुम लोग यहाँ ही खा-पी लो न! मेरे यहाँ रसोई उठी नही है···"

केदार बाबू उठकर खड़े हो गये थे। बोले, "रसोई उठी नही है?"

"हाँ। महाराज अभी पाँच मिनट मे खाना तैयार कर देगा।"

केदार बाबू शैल की ओर मुड़े। बोले, "क्यों री, खायेगी? भूख लगी है न? शरमाने की कोई बात नहीं है। कह दे। रसोई अभी उठी नही है। महाराज अभी हाल लिये आता है।"

फिर मन्दाकिनी की ओर देखकर बोले, "सिर्फ चावल! और कुछ

नहीं। ज़रा से चावल, आलू और मूंग की दाल।"

"तुम रुको तो, काका !"

केदार बाबू ने कहा, "क्यो ? मैंने क्या कुछ खराब कह दिया ? ये लोग बड़े आदमी है। हम लोग खा लेंगे तो ऐसा क्या खर्च हो जायेगा ! क्यो, माँ ?"

"लेकिन घर पर भी तो खाना बना है। मैंने खबर भी भिजवा दी थी।" मन्मथ ने कहा।

केदार बाबू नाराज़ हो गये। "तुम बेकार की बात बहुत करते हो, मन्मथ ! तुम्हारे घर का खाना और यहाँ का खाना ? इस घर के साथ अपनी तुलना कर रहे हो ? पता है ये कितने बड़े आदमी हैं ? तुम्हारे पिताजी को खरीद सकते है। आप बतलाइये माँ, मैंने कुछ गलत कहा ?"

मन्दाकिनी को हँसी आ रही थी। लेकिन शैल तब तक उठकर खड़ी हो चुकी थी। उठकर मन्मथ से बोली, "मन्मथ दा, मेरे साथ चलो। काका को यही रहने दो !"

कहकर सीधी बाहर जाकर खड़ी हो गयी।

भतीजी के इस व्यवहार से केदार बाबू हैरान रह गये। मन्मथ भी तब तक बाहर चला आया था। बाहर टैक्सी खड़ी थी। टैक्सी के अन्दर ट्रक, बिस्तरे और ज़रूरत की सारी चीज़ें थी।

केदार बाबू भतीजी की बात समझ नहीं पाये। ऐसा आराम और स्नेह भी कोई ठुकरा सकता है, उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

और कोई रास्ता न देख वह भी सीढ़ी उतरकर सबके साथ टैक्सी में बैठ गये। बैठने से पहले मन्दाकिनी से बोले, "तब सदाव्रत से कह दीजियेगा माँ, कि हम लोग आ गये है। शैल और मन्मथ सभी आ गये है। कह दीजियेगा। भूल न जाइयेगा।"

टैक्सी चली गयी।

□ □ □

अदालत में अपराधी के कठघरे में उस समय एक आदमी की मूर्ति खड़ी एक-एक मिनट गिन रही थी। दुनिया के सारे लोगो, देख लो, मैं आज अपराधी हूँ। अब तक मैं ही फरियादी थी। मेरी फरियाद ने एक दिन इस दुनिया की धरती, आसमान, हवा हर चीज को छू लिया था। उन दिनों मैं भूखी मर रही हूँ या नहीं, इस बात को लेकर इन लोगों ने सिर नहीं खपाया। मैं जिन्दा हूँ या मर गयी, इस बात को जानने की भी इन लोगों

ने जरूरत नहीं समझी। मेरी मौजूदगी के बारे में हर कोई बेखबर था। जिस चीज की ओर हर किसी की नजर थी—वह थी मेरी उम्र, मेरा स्वास्थ्य। उस दिन मेरी उम्र और मेरी सुडौल देह देखकर लोगों ने मुझे सोने का मैडल देना चाहा। मेरा अभिनय देखकर ताली बजाने, वाह-वाह! मेरे साथ सोने के लिए पैसे देते। ऑकलैंड प्लेस के बड़े बाबू विभूति बाबू से लेकर सेठ ठगनलाल तक सभी मेरे साथ सोये हैं। मेरे लिए तालियाँ पीटीं, और काम निकल जाने पर जूते के सूखे तल्ले की तरह निकालकर फेंक देते। मेरी रात कटी है रोने में, दिन ऐक्टिंग करने में और रिहर्सल देने में। मेरे रहने की जगह तक गुंडे लगवाकर जलवा दी। उस आग में मेरे बूढ़े पिता जलकर मर गये। फिर भी दूसरे हाथ से आँसू पोंछकर और रंग पोतकर मैंने ड्रामे में रानी की भूमिका की। इस फरियाद पर किसी ने कान नहीं दिया। रुपये देकर जिन लोगों ने पास सोने के लिए मेरी खुशामद की, आज उन्होंने ही अपराधी बनाकर इस कठघरे में खड़ा किया है।

एक-एक गवाह आता और पता नहीं क्या-क्या कह जाता। कुन्ती के कान में कुछ भी नहीं जाता। कुछ दिनों में अदालत में जैसे मेला लगा था।

शंभू भी आया था। शंभू बाबू।

"आप लोगों के क्लब में अपराधी रिहर्सल के लिए जाती थी?"

"जी हाँ।"

"इसका मतलब है कि आप इसे पहचानते हैं! इसके स्वभाव और चरित्र के बारे में कुछ बतलाइये।"

"अच्छा ही है।"

"आपको क्या यह भी मालूम है कि यही अपराधी सोनागाछी के चकलों में 'टगर' के नाम से अपना शरीर बेचती थी?"

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर के इस सवाल से शंभू चौंक उठा। उसने कहा, "मुझे तो मालूम नहीं है।"

"अच्छा, अब आप जाइये।"

इसके बाद की गवाह पद्मरानी थी। सिर को अच्छी तरह ढँककर पद्मरानी गवाह के कठघरे में आयी।

◻ ◻ ◻
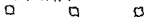
आखिर में शशिपद बाबू के घर जाकर ही टैक्सी रुकी। केदार बाबू, मन्मथ और नील तीनों ही। कल रात को पुरी से ट्रेन में चढ़े थे। सदाव्रत हर महीने रुपये भेजता था। इतने कामों के बीच भी सदाव्रत रुपया भेजना

नही भूला । रजिस्टर्ड लिफाफे में हर महीने की तीसरी तारीख को डाकिया रुपये पहुँचा जाता और केदार बाबू रसीद पर दस्तखत करके ले लेते।

हर महीने सात-सौ रुपये। उसमें भी कभी-कभी कम पड़ता।

दूध की कीमत बढ़ रही है, दवाओं की कीमतें बढ़ रही हैं, अनाज का भाव भी चढ़ गया है। शुरू-शुरू में जिस भाव चावल मिलता था, बाद में वही चावल डेढ़ गुने भाव में खरीदना पड़ा। और दवाएँ ? पैसा खर्च करने से ही क्या दवाएँ मिलती है ?

एक दिन मन्मथ के ऊपर बिगड़ गये ।

बोले, "दवा मिलती नही है, माने ? कहने से ही हो गया ? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

मन्मथ ने ये कुछ महीने किस तरह काटे, यह वही जानता है। केदार बाबू एक आदर्श आदमी हैं। इन्सान और इन्सानी सरकार के ऊपर अटूट विश्वास रखकर उन्होने जीना चाहा। लेकिन उन्हे हर बार ही धक्का लगा। धक्के के बाद धक्का खाते-खाते आजकल न जाने कैसे हो गये हैं।

कभी-कभी कहते, "नही मन्मथ, और नही होगा।"

"क्या नही होगा, सर ?"

"हम लोगों से कुछ भी नहीं होगा। हमारा मॉरल-कैरेक्टर ही खराब हो चुका है।"

पुरी में केदार बाबू को कोई काम नही था। इसी वजह से सोचने का वक्त और भी ज्यादा मिलता था। इस सोचने की ही वजह से उनकी हालत ज्यादा नही सुधर पाती थी। हीगेल कह गया है: स्टेट इज द नेचुरल, नेसेसरी एण्ड फाइनल फॉर्म ऑफ़ ह्यूमन ऑर्गनाइजेशन। गांधीजी इस बात को नही मानते थे। गांधीजी का कहना था: एन आइडियल स्टेट शुड बी एन ऑर्डर्ड एण्ड एन्लाइटण्ड अनार्की। इन सच ए स्टेट एव्री वन इज़ हिज़ ओन रूलर। ही रूल्स हिमसेल्फ इन सच ए मैनर दैट ही इज़ नेवर ए हिंडरैन्स टु हिज़ नेबर्स। इन दिस आइडियल स्टेट देयरफोर देअर इज़ नो पॉलिटिकल पॉवर बिकॉज़ देअर इज नो स्टेट।

पुरी में गरजते समुद्र के किनारे बैठे यही सब ज़मीन-आसमान के कुलावे लगाया करते। किसकी बात सच है ? कौन-सी बात से मनुष्य जाति का भला होगा ? किस तरह इस जाति का शुभ हो ? एक गवर्नर या प्रेसिडेंट के बदल देने से अगर अच्छा होना होता तो नैपोलियन के मर जाने के बाद फ्रांस में शान्ति होनी चाहिए थी। फज़लुलहक साहब एक

दिन बंगाल के चीफ़ मिनिस्टर थे। उनके हटते ही अगर बंगाल में शान्ति आनी होती तो आज बंगाल का यह हाल न होता। यहाँ कोई तकलीफ़ न होती। वह फ़ज़लुलहक़ भी नहीं हैं, निज़ामुद्दीन साहब भी नहीं हैं। तब क्यों चावल के दाम बढ़ रहे हैं और दवाओं में क्यों मिलावट की जाती है?

यूक्लिड साहब काफ़ी दिन हुए लाइन की परिभाषा देते हुए लिख गये हैं—ए लाइन इज़ वन व्हिच हैज़ लैंथ बट नो ब्रैड्थ। लेकिन यूक्लिड साहब की परिभाषा के अनुसार लाइन कोई खींच पाया है? यह क्या सम्भव है? शायद यह आदर्श की बात होगी। इसी बात को ध्यान में रखकर ही आज भी ज्यॉमिट्री आगे बढ़ रही है। इसी तरह सारे इन्सान अच्छे ही हों, यह सम्भव न होने पर भी गवर्नमेंट तो आगे बढ़ेगी ही। तो बढ़ क्यों नहीं रही?

केदार बाबू सामने किसी को देखते ही पूछते, "क्यों मन्मथ, तुम्हारा क्या ख़याल है? आगे क्यों नहीं बढ़ रही है?"

मन्मथ इस बात का क्या उत्तर देता! उसको और भी बहुत-से काम हैं। बाज़ार से सामान लाना, दवा लाना, सभी कुछ उसे ही तो देखना होता था। शैल जाने कैसी हो गयी थी। ज़्यादा बात नहीं करती थी।

केदार बाबू शैल से भी पूछते "क्यों शैल, तेरा कहना क्या है?"

पहले तो शैल काका की बातों पर ध्यान देती थी, लेकिन बाद में उस ओर ध्यान नहीं देती थी।

केदार बाबू कहते "अच्छा, तुम लोग कोई कुछ भी नहीं बोलोगे? कोई कुछ भी नहीं सोचोगे? मैं अकेला ही सब-कुछ सोचूँ?"

शैल हँसे स्वर में कहती, "हम लोगों का तो दिमाग़ अभी ख़राब नहीं हुआ है। हम लोगों को और भी काम हैं।"

सच ही तो! केदार बाबू और नाराज़ नहीं हो पाते। सभी क्यों उनकी तरह से सोचने लगें? हर कोई अगर सोचने लगता तो धरती स्वर्ग न बन जाती। बाहर सड़क पर इधर-उधर देखने की कोशिश करते। सभी साड़ियों के बारे में सोचते हैं, गहनों के बारे में सोचते हैं। हर किसी को प्रमोशन, डिवीडेंड और प्रॉफ़िट की पड़ी है। रुपया, बँगला, गाड़ी और नाम की पड़ी है। अपने मतलब की चीज़ के सिवाय और कुछ सोचने का वक़्त किसी के पास नहीं है। चीज़ों की कीमतें क्यों बढ़ रही हैं? लड़ाई क्यों होती है? ईमानदार आदमी रातों-रात बेईमान क्यों बन जाता है? इसका ऐतिहासिक कारण क्या है, इसका कोई भी पता नहीं लगाता। तुम्हारे पड़ोस में आग लगने पर तुम क्या बचोगे? पाकिस्तान में गड़बड़ होने पर तुम्हारा

इंडिया क्या ऐसे ही रह जायेगा ? वर्मा, ईजिप्ट और सीलोन में रिवोल्यूशन होने पर क्या तुम शान्ति से रह पाओगे ?

इन्ही दिनों खबर फैली। अखबार में सदाव्रत की खबर पढ़ने के बाद केदार बाबू के लिए पुरी में और एक दिन भी रुकना मुश्किल हो गया। उनको लगा, जैसे उनका हिसाब मिल गया है—अब ? मैंने तभी कहा था कि दुनिया में चैन से रहने के दिन बीत चुके हैं। अब हर वक्त होशियार रहना होगा। हमारे पुरखे जो दिन देख गये हैं अब वे दिन नहीं रहे। आज भी अगर समस्या का हल नहीं होगा तो हम लोग कहीं के नहीं रहेंगे। हम डूब जायेंगे। घर आते ही 'हर्बर्ट रीड' की किताब खोलकर बैठ गये। कहने लगे, "यह देखो, हर्बर्ट साहब ने क्या लिखा है !"

इसके बाद पढ़ने लगे, "इट इज ए सोसायटी विद लयज़र—दैट इज टु से स्पेयर टाईम—विदाऊट कम्पेन्सेटरी ऑकूपेशन आऊट ऑफ ह्विच क्राईम गैंगस्टर्डम एण्ड फासिज्म इन्एविटेबली डेवेलप।"

इसके बाद पियारीलाल की किताब खोलकर दिखलायी—यह देखो, पियारीलाल ने लिखा है—देयर इज ए ग्रोइंग क्लास ऑफ पीपल टु-डे इन अवर मिडस्ट हू आर प्राउड ऑफ द जॉब्स बिकॉज़ ऑफ देयर रेम्यूनेरेशन एण्ड सोशल स्टेटस इट गिव्स देम बट दे हेट द वेरी साईट ऑफ देयर वर्क। इट इज़ दे हू, टु कवर द एशेन्शियल एम्प्टीनेस ऑफ बोर्डम ऑफ देयर ऑकूपेशन गिव देमसेल्व्स अप टु द एडवान्समेंट ऑफ मोर्बिड ड्रीम्स ऑफएमबिशन एण्ड पॉवर।

तभी अचानक नज़र उठाकर देखा, सामने कोई नहीं था। मन्मथ और शैल नज़रों के सामने से न जाने कहाँ ओझल हो गये थे। कोई उनकी बात नहीं सुनता। कोई सुनना भी नहीं चाहता। जानना भी नहीं चाहता।

और इसके दूसरे ही दिन कलकत्ता चले आये। पहले सदाव्रत से ही मिलना चाहते थे। सदाव्रत होता तो शायद उनकी बातें समझता। उसमे कहकर तसल्ली मिलती। भले ही आज एक लड़की गिरफ्तार हुई हो, भले ही आज एक लड़की अपना चेहरा और आँखें झुलसवाकर अस्पताल में पड़ी हो, जिस दिन हालत और भी खतरनाक होगी, उस दिन की बात सोचकर ही केदार बाबू मन-ही-मन सिहर उठे।

शशिपद बाबू तब तक ऑफिस चले गये थे। मन्मथ ने पहले से ही माँ को लिख दिया था। खाना तैयार ही था।

बाहर आते हुए मन्मथ की माँ ने कहा, "आओ बेटी, चली आओ।"

केदार बाबू बीच ही में बोल उठे, "माँ, आप पहले इस शैल को कुछ खिला दीजिये। न खाने की वजह से मुझ पर खूब गुस्सा है। कल से मेरे साथ बात नहीं कर रही।"

"क्यों, आपने भी तो खाना नहीं खाया होगा। आप भी खा लीजिये, सब तैयार है।"

मन्मथ ने कहा, "माँ, ऊपरवाले बड़े कमरे में मास्टर साहब रहेंगे, कमरा साफ करा लो।"

"उस सबके लिए तुझे परेशान होने की जरूरत नहीं है, मैंने सब ठीक कर रखा है।"

□ □ □

शाम को सदाव्रत आया। कोर्ट से सीधा यहीं आया था। [illegible]
भारी-भारी-सा लग रहा है। रोज ही एक बार कोर्ट और [illegible]
एक दिन वह इसी कलकत्ता को देखने निकला [illegible]
जगह पार्क कर इधर-उधर घूमता था। [illegible]
जमाने के इन्सान को देखना, उसे अच्छा ही [illegible]
है ये इन्सान! लेकिन उन्हें कोई 'आवर्तन' [illegible]
खड़े होकर फाँक या बनियानों का [illegible]
उस विनय की तरह 'इन्सटॉलमेंट' में [illegible]
ड्रामेटिक क्लब में बैठकबाजी करने के [illegible]
नहीं है।

"किसलिए?"

"यही ज़रा गाना-बजाना होता है, और क्या! मेरी बिटिया नाच भी जानती है न। लेकिन मेरा कहना है कि भले आदमियों के लड़के अगर वहाँ बैठकर जरा देर···"

"अच्छा एक बात और। आपने क्या इसे कभी नाटक वगैरह मे काम करते देखा है?"

"अरे राम, नाटिक कैसे करेगी बेचारी? मैं ही नाटिक-वाटिक मे काम नही कर पायी, तब वह कैसे करेगी?"

"मकान के किराये से हर महीने आपकी कितनी आमदनी होती है?"

"उसका क्या कोई हिसाब है, भैया? हिसाब ही अगर रख पाती तो क्या मेरा यह बुरा हाल होता?"

"आपकी आमदनी कितनी है, आपको नही मालूम?"

"नही भैया, खयाल मे नही है।"

"अच्छा, अब आप उतर आइये।"

पद्मरानी की आँखें शायद भर आयी थीं। ज़िन्दगी मे बहुत-से वकील देखे, पुलिस देखी। लेकिन इतनी मुश्किल में पड़ने का मौका नही आया। निचले कोर्ट मे जो पद्मरानी शुरूसे आखिर तक झूठ बोलती रही, वही पद्मरानी हाईकोर्ट मे वकील की जिरह से परेशान हो गयी। अट-संट कहने लगी।

"आपने सुन्दरियावाई का नाम सुना है?"

पद्मरानी पसीने-पसीने हो गयी थी। उसकी हालत देखकर पूरी अदालत के लोग हैरान थे। पिछले दिन जो भी आया था, उसने पद्मरानी को देखा था। फुलाकर काढ़े गये बाल, पान से रंगे होंठ। भारी-भरकम गोल-मटोल देह। खून-खराबी के मुकदमे में सुनने आनेवाले बेकार लोगों की अदालत मे कमी नही रहती। सोनागाछी की चकलेवाली का बयान सुनने के लिए लोग अपना सारा काम छोड़कर आये। इस मामले को महीनों हो गये। बड़े घर के किस्से सुननेवालों की जैसे फिर भी कोई कमी नही है। अखबारी सूखी रिपोर्ट पर उन्हें विश्वास नही है। मुजरिम को अपनी आँखों से देखने आते। नाटकों में जो काम करती थी यहाँ वह हाड़-माँस की मूर्ति थी। इस हाड़-माँस की पुतली को रोज़ देखा जा सकता है। इसी लड़की को कलकत्ता के लोगों ने रात-रात-भर भोगा। रुपये लेकर जो पहुँचा, उसी को यह देह मिली। दूसरी ओर 'सिराजुद्दौला' नाटक में

'आलिया' का अभिनय करके इसी लड़की ने लोगों को मंत्रमुग्ध किया। कभी कुन्ती गुहा होती तो कभी टगर !

हर मुहल्ले, हर गली में यही चर्चा थी, हर जगह कुन्ती गुहा का नाम गुलजार था।

कोई कहता, 'अरे, असल में छोकरी कम्युनिस्ट है—इस मामले के पीछे कम्युनिस्टों का हाथ है।'

तो कोई कहता, 'धत् ! कम्युनिस्ट क्यों होने लगी ! इसके पीछे कांग्रेस का हाथ है—शिवप्रसाद गुप्त के लड़के के साथ ज़रूर ही कोई साँठ-गाँठ है।'

किसी-किसी दिन हियरिंग होती और रातों-रात हवा का रुख बदल जाता।

'और पता है सुन्दरियाबाई ही असली सप्लायर है ?'

'सुन्दरियाबाई कौन ?'

लोअर कोर्ट में सुन्दरियाबाई का नाम नहीं आया था। हाईकोर्ट में जब मामला ज़ोरों से चल रहा था, अचानक एक दिन उसका नाम लिया जाने लगा। राजस्थान में कोई जयपुर नाम की जगह है, वहीं रहती है, और पद्मरानी को लड़कियाँ सप्लाई करती है। इधर-उधर की लड़कियों को फँसाकर लाती और अच्छे भाव पर पद्मरानी को बेच देती। सिर्फ़ राजस्थान ही नहीं, उड़ीसा, बिहार, यू० पी०, आसाम, ईस्ट पंजाब वग़ैरह सभी जगहों पर उसके दलाल और एजेन्ट फैले थे। पद्मरानी इन लड़कियों को सजा-सँवारकर और सिखा-पढ़ाकर आदमी बनाती। बाद में पैर-पर-पैर रखे उनकी कमायी खाती।

और क्या सिर्फ़ इतना ही ! एक घंटे-दो घंटे के लिए कमरा किराये पर लेकर बाहरी लड़कियाँ भी धन्धा करतीं। किसी-किसी के घर तो उसका आदमी और बाल-बच्चे भी होते। ऐसी भी कितनी ही लड़कियों ने पद्मरानी के यहाँ किराये पर कमरे ले रखे थे।

जिरह के समय एक-एक करके बातें खुलतीं और दूसरे क्षण कलकत्ता-वालों की ज़बान पर होतीं। इतना सब हो रहा ! अन्दर-ही-अन्दर ये गुल खिल रहे हैं ! ऊपर से तो प्लानिंग कमीशन और फॉरेन-एड की बातें की जातीं, और अन्दर-ही-अन्दर यह चल रहा है।

हर गली और मुहल्ले के लोगों की ज़बान पर यही बात थी। ऑफ़िसों और क्लबों में भी विषय यही था।

लोअर-कोर्ट के मजिस्ट्रेट ने कुन्ती से पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है ?"

कुन्ती सिर्फ सुन रही है। एक के बाद एक गवाह आता और पब्लिक-प्रॉसीक्यूटर के सवालों का जवाब देकर चला जाता। और बातें उसके कान में घुस ही रही थी। किसी भी दिन उसकी ज़बान से कुछ नहीं निकला। कुन्ती गुहा को पता है कि यह कलकत्ता सिर्फ उसका नुकसान कर सकता है, भला करने की ताकत यहाँ किसी में नहीं है। बूढ़ी के मुकदमे के वक्त उसने इसी कलकत्ता को देखा है। किसी ने जानने की कोशिश नहीं की, क्यों उसने चोरी की। आज किसी को इस बात से भी कोई मतलब नहीं है कि उसने एसिड-बल्ब क्यों फेंका? अगर जानने की कोशिश की जाती?

तभी मजिस्ट्रेट ने फिर कहा, "तुमने तो सभी-कुछ सुना। इस केस के मुख्य गवाह, खुद सदाव्रत गुप्त ने ही तुम्हें बल्ब फेंकते हुए देखा है। इस बारे में तुम्हें क्या कहना है? तुम कसूरवार हो या बेकसूर?"

कुन्ती ने सिर झुकाये कहा, "मैं बेकसूर हूँ।"

मजिस्ट्रेट शायद सुन नहीं पाये।

कहा, "जरा जोर से साफ-साफ कहो, मैंने सुना नहीं।"

पूरी अदालत में खामोशी छा गयी।

कुन्ती गुहा ने फिर से साफ आवाज में कहा, "मैं एकदम बेकसूर हूँ!"

□ □ □

सदाव्रत ने एक बार नजर उठाकर कुन्ती की ओर देखा। इसके बाद दोनों ओर से दो कान्स्टेबल आकर मुजरिम को ले गये। अदालत के सारे लोग बाहर सड़क पर आ गये। जो लड़की रास्ता चलते आदमी की भोग्या है, वह भी कहती है मैं बेकसूर हूँ। इससे ज्यादा, मज़ेदार बात जैसे कोई भी नहीं हो सकती। इससे बड़ा झूठ दुनिया में सुनने को नहीं मिलेगा।

लेकिन हाईकोर्ट में उस दिन पद्मरानी का बुरा हाल हो गया।

स्टैंडिंग कौंसिल ने फिर से सवाल दुहराया, "आपने सुन्दरियाबाई का नाम सुना है?"

पद्मरानी क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रही थी।

"कहिये, सुना है या नहीं? अगर सुना नहीं है तो हम उसी सुन्दरिया-बाई को बुलाते हैं। वह आकर बतलायेगी कि आप उसे जानती हैं या नहीं! अब कहिये, उसके साथ आपका क्या सम्बन्ध है?"

पद्मरानी—"उसे कभी-कभी कुछ रुपया भेजती थी।"

"कभी-कभी या हर महीने?"

"हर महीने।"

"रुपया क्यों भेजती थी ?"

"वह मेरा काम करती थी।"

"क्या काम ?"

"जिन सब लड़कियों का कोई नहीं होता, ऐसी अनाथ और असहाय लड़कियों को मेरे पास भेज देती। मैं उन्हें खिलाती-पिलाती, आदमी बनाती।"

"फिर ?"

"फिर वे लोग मेरे फ्लैट में कमरा किराये पर लेकर रहतीं, और···"

स्टैंडिंग कौंसिल ने फिर सवाल किया, "सुन्दरियाबाई के साथ आपकी जान-पहचान कैसे हुई ?"

पद्मरानी चुप रही।

"कहिये, कैसे जान-पहचान हुई ?"

पद्मरानी ने सिर झुकाये कहा, "खयाल नहीं है।"

"याद करने की कोशिश करिये न !"

"खयाल नहीं पड़ता।"

अदालत खचाखच भरी थी। अचानक घंटे की आवाज आयी। जूरी लोग अपने चैम्बरों में चले गये। ट्राइंग जज भी अपने चैम्बर में चले गये। लंच। लंच टाइम हो गया था।

लंच के बाद फिर से सुनवायी शुरू हुई। सब लोग अपनी-अपनी जगह आ बैठे थे। इस बार एक नया गवाह था। नये गवाह का नाम सुन्दरियाबाई था।

"मैं ईश्वर की कसम खाकर कहती हूँ कि सच छोड़कर झूठ नहीं बोलूँगी।"

"तुम कहाँ रहती हो ?"

"जयपुर।"

"तुम पद्मरानी दासी को जानती हो ?"

"हाँ।"

"उससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?"

"मैं उसके साथ धन्धा करती हूँ।"

"किस चीज का धन्धा ?"

"लड़कियों का।"

"ठीक से समझाओ, लड़कियों के धन्धे से तुम्हारा क्या मतलब है ? जज साहब तुमसे साफ़-साफ़ सुनना चाहते हैं।"

सुन्दरियाबाई का घूंघट जरा खिसक गया। अब उसका पूरा चेहरा साफ-साफ दिखलाई दे रहा था। वह बतलाने लगी—सारी इंडिया में उसका जाल किस तरह बिछा हुआ है। उड़ीसा, यू० पी०, मध्यप्रदेश, बम्बई, हर जगह। उसकी कलकत्ता की एजेन्ट है पद्मरानी दासी। पद्मरानी को अभी तक उसने करीब तीन-चार सौ लड़कियाँ बेची हैं। एक-एक लड़की दो-दो हज़ार के हिसाब से। कम उम्र और ज्यादा खूबसूरत लड़की होने पर चार हजार तक लिया है। उसके कितने ही दलाल है। वे लोग ही उसके लिए लड़कियाँ लाते है। गांवों और शहरों मे उसके एजेन्ट हैं। ये एजेन्ट और दलाल लोग ही बहला-फुसलाकर या गहनों का लोभ दिखलाकर लड़कियाँ फँसाते और जगह-जगह सप्लाई कर देते है।

"इस मुजरिम की ओर देखो, इसे भी क्या तुमने सप्लाई किया है ?"

सुन्दरियाबाई ने अच्छी तरह से कुन्ती की ओर देखा। फिर कहा, "नही हुजूर, यह मेरी भेजी लड़की नही है।"

"तुम्हें कैसे पता लगा ? हर लड़की को क्या देखकर भेजती हो ?"

"जी हाँ।"

"जिस-जिसको तुमने पद्मरानी के यहाँ भेजा है, देखने पर हर किसी को पहचान पाओगी ?"

"सो तो ठीक-ठीक नही कह सकती, फिर भी आसामी या बंगाली। हाँ, मैंने कभी बंगाली लड़कियों का धन्धा नही किया है।"

"बंगाली लडकियों का इन्तजाम क्या पद्मरानी खुद ही करती है ?"

"वह तो मैं कह नही सकती।"

"तुम जो धन्धा करती हो इसके लिए क्या पद्मरानी से तुम्हारी चिट्ठी-पत्री चलती है ?"

"जी नही। चिट्ठी-पत्री लिखकर यह धन्धा नही होता। हम लोग लिखा-पढ़ी के झमेले में नही पड़ते। मैं ट्रंककाल कर देती हूँ, टेलीफोन पर ही भाव-ताव ठीक हो जाता है।"

"तुम जो आज ये सब बातें बतला रही हो इससे तुम्हारे धन्धे को नुकसान नही पहुँचेगा ?"

"नुकसान होगा, यह जानकर ही कह रही हूँ।"

"क्यों ?"

"हुजूर, अब मुझे कोई डर नहीं है। मुझे रुपयों की भी जरूरत नहीं है।"

"पता है, इन सारी बातों के लिए तुम्हें सजा हो सकती है ?"

"मुझे सजा मिल चुकी है, हुजूर !"

"कैसी सजा ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "मेरा एक लड़का था, इकलौता लड़का। लड़के की शादी नहीं हुई थी। शादी का सब ठीक-ठाक कर रखा था। आज एक महीना हुआ, वह लड़का मर गया।"

पूरी अदालत ने जैसे एक गहरी साँस ली।

"आज मेरा अपना कहने को कोई नहीं है। आज मेरे लिए रुपया-पैसा सब-कुछ फिजूल है, हुजूर !"

"लेकिन तुम्हें क्या यह भी मालूम है कि तुम्हारी गवाही पर पद्मरानी को सजा हो सकती है ?"

"मैं चाहती हूँ कि उसे सजा मिले।"

"क्यों ?"

"पद्मरानी ने मुझे बड़ा धोखा दिया है, हुजूर ! पूरे पचास हजार का नुकसान करा दिया है। मैंने कितनी ही बार आदमी भेजे। खुद भी उसके फ्लैट पर आयी। रुपया माँगा। बाद में कितनी ही बार ट्रंककाल भी किया। फिर भी रुपया नहीं दिया।"

उस दिन की सुनवायी पूरी हो गयी। झुंड-के-झुंड कलकतिया फिर से सड़क पर आ गये। गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले में मीटिंगें जमने लगीं।

कोर्ट से हॉस्पिटल जाकर सदाव्रत जरा देर कैबिन के सामने खड़ा हुआ। कैबिन के अन्दर वही अचल और वीभत्स देह पड़ी हुई है। दोनों ओर खड़ी दो नर्सें ऑक्सीजन दे रही होंगी। गले के पास छेद कर नली में शायद उसे खिलाया जा रहा है।

मिस्टर बोस एक कुर्सी पर बैठे थे। सदाव्रत की ओर देखा। फिर बाहर आये।

पूछा, "कोर्ट की प्रोसीडिंग्स कहाँ तक पहुँची ? हाऊ इज इट प्रोग्रेसिंग ?"

"ठीक हो रही है।"

मिस्टर बोस ने पूछा, "एक्यूज्ड का कहना क्या है ?"

"कहती है नॉट गिल्टी—एकदम बेकसूर।"

"अभी तक नॉट गिल्टी कह रही है ? तुमने अपनी आँखों देखा है, फिर भी कह रही है ?"

सदाव्रत ने पूछा, "मनिला का क्या हाल है ?"

"शी मस्ट लिव। उसे बचाना ही होगा, नहीं तो मैं मर जाऊँगा, आइ वान्ट टू लिव।" जरा रुककर फिर सदाव्रत से पूछा, "मिस्टर गुप्त कहाँ है ?"

"पिताजी दिल्ली गये है।"

"कब तक लौटेंगे ?"

"वह तो मालूम नहीं है। वहाँ कल्चरल मिनिस्ट्री की ओर से अमेरिकन लिटरेरी डेलीगेशन का रिसेप्शन किया जा रहा है, उसी सिलसिले मे गये है।"

उस दिन की हॉस्पिटल ड्यूटी बजाकर सदाव्रत घर चला आया।

□ □ □

घर आते ही पता लगा। मन्दाकिनी ने कहा,"आज तेरे मास्टर साहब आये थे।"

"मास्टर साहब ! किस समय ?"

"सुबह। यही करीब दस बजे।"

"वे लोग गये कहाँ ?"

"यह तो मालूम नही है।"

सुनकर सदाव्रत रुका नहीं। उसी हालत में सीधा मन्मथ के घर पहुँचा। इस तरह अचानक चले आने के लिए तो उसने मना किया था। फिर भी यह मन्मथ मास्टर साहब को क्यों ले आया ?

मन्मथ ने ही दरवाजा खोला।

सदाव्रत को देखकर शशिपद बाबू हैरान रह गये। बोले, "तुम ?"

केदार बाबू ने भी शायद तब तक आवाज सुन ली थी।

"समझे सदाव्रत, मैं फिर नहीं रुक पाया। अखबार में तुम्हारा केस देखकर वहाँ कैसे पड़ा रह सकता था, तुम्ही कहो ? मैं तो कह रहा था हियरिंग सुनने कोर्ट जाऊँगा, लेकिन शैल और मन्मथ जाने ही नहीं देते।"

उस बात का कोई जवाब दिये बिना सदाव्रत ने पूछा, "आपकी तबीयत कैसी है ?"

"मेरी बात छोड़ो। तुम्हारा यह मुकदमा क्यों हुआ, यह बतलाओ ? तुम्हारी शादी भी रुक गयी न ! राम-राम, अखबारों में आजकल क्या सब

निकल रहा है ! सुना है, यही सब किस्से पढ़ने के लिए आजकल अखबार
खूब बिक रहे हैं। क्यों, कुछ बोल नहीं रहे हो, सच ?"

फिर शशिपद बाबू की ओर देखकर कहने लगे, "शशिपद बाबू से भी
तो यही कह रहा था, बेचारे की आजकल बड़ी मुश्किल है। अपने पिताजी
की ही बात लो न ! यह सब पिताजी की नज़रों में भी तो पड़ा होगा।"

शशिपद बाबू—"नजर में तो पड़ेगा ही। वैसे जो दो-एक सच्चे
आदमी हैं, वे ही पढ़ रहे हैं और थू-थू कर रहे हैं।"

"लेकिन अख़बारवाले यह सब छाप क्यों रहे हैं ?"

"क्यों नहीं छापेंगे, उनका तो धन्धा ही यही है।"

"लेकिन धन्धा है तो ये सब छापेंगे ? कलकत्ता के छोटे-छोटे बच्चे भी
तो पढ़ते होंगे ?"

शशिपद बाबू—"सो तो पढ़ते ही होंगे। सारे देश में ही जब आग
लगी है तो क्या सोचते हैं, आप और हम बचे रहेंगे ?"

केदार बाबू ने पूछा, "लेकिन उस लड़की से तुम लोगों की क्या दुश्मनी
थी, सदाव्रत ? तुम्हारी गाड़ी पर ही उसने एसिड-बल्ब क्यों फेंका ?"

सदाव्रत चुप रहा।

"इतने लोगों के रहते तुम्हारा नुकसान करके उसने कौन-सा बदला
लिया ? तुम लोगों ने उसका क्या बिगाड़ा था ?"

"मैं उसे जानता था।" सदाव्रत ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"तुम उसे जानते थे ?"

शशिपद बाबू भी हैरान रह गये। बोले, "तुम उस कुन्ती गुहा को
पहचानते थे ?"

सदाव्रत चुप रहा। उसकी जबान से एक शब्द भी नहीं निकला। पिछले
कुछ महीनों से वह जैसे गूँगा हो गया था। उसी दिन, जिस दिन से मनिला
हॉस्पिटल में गयी है। उसके बाद जिस दिन से अदालत में मामला आया
है, उस दिन से वह चुप्पी जैसे और भी बढ़ गयी है। एक्सिडेंट होने के दूसरे
दिन से जाने-अनजाने कितने ही लोग उसे परेशान कर रहे हैं। उसका
जीना दुश्वार किये दे रहे हैं। सभी जानना चाहते हैं, उस लड़की के साथ
उसका क्या रिश्ता था ? क्या रिश्ता है, इस बात को क्या वह खुद ही
जानता है ? या, किसी से कहता है तो क्या वही विश्वास करेगा ? इसके
अलावा सदाव्रत जान भी कैसे सकता है कि कुन्ती गुहा सिर्फ अमेच्योर
एक्टर ही नहीं है, वह पद्मरानी के फ़्लैट की लड़की भी है। सदाव्रत कैसे

जान सकता है कि हावड़ा स्टेशन पर जिस लड़की ने उसका बटुआ चुराया था वह इसी कुन्ती गुहा की छोटी बहन थी ? उसे कैसे पता लग सकता है कि उसी की गवाही पर उसकी बहन को छः महीने की सजा हुई ? वह किस तरह जान सकता है कि यही कुन्ती गुहा एक दिन उसे खोजते-खोजते एल्गिन रोड वाले मकान में आयी थी, और मनिला ने उसे दरबान से धक्के लगवाये थे ? उसे क्या पता कि उन लोगों की जादवपुर वाली जमीन पर कुन्ती वगैरह शरणार्थी होकर आये थे और उन्हीं लोगों ने गुंडे लगाकर वहाँ आग लगवा दी थी ? वह कैसे जानेगा कि उन्हीं गुंडों की लाठी की चोट से कुन्ती गुहा के पिताजी मर गये ? अगर यह केस नहीं होता तो क्या सदाव्रत यह सब जान पाता ? उसके पीठ-पीछे जो सब हो गया था, इसका अगर जरा भी पता होता तो क्या आज मनिला की यह हालत हुई होती ? और कुन्ती गुहा ही क्या इस तरह मुजरिम के कठघरे में खड़ी होती ?

शशिपद बाबू ने कहा, "मैं तो तभी समझ गया था कि इस मामले में जरूर कोई मिस्ट्री है।"

केदार बाबू का सन्देह अभी भी नहीं मिटा था। पूछा, "सच ही तुम्हारे साथ उस लड़की का परिचय था ?"

सदाव्रत चुप रहा। इन सब बातों का जवाब देने को उसका मन नहीं हो रहा था।

अचानक अन्दर से शैल आ गयी। बोली, "हाँ काका, मुझे मालूम है, सदाव्रत बाबू का उससे परिचय था।"

"है ! तुझे भी मालूम है ?"

"हाँ, मुझे पता है। मैंने उस लड़की को देखा है।"

"कहाँ देखा है ?"

केदार बाबू और शशिपद बाबू दोनों ही शैल की बात सुनकर जैसे आसमान से गिरे।

"तुम्हारी बीमारी के दिनों में मैं सदाव्रत बाबू के साथ दवा लेने धर्मतल्ला स्ट्रीट गयी थी। उसी दिन देखा था। मेरी चप्पल टूट गयी थी। मैं मोची के पास चप्पल की सिलाई करा रही थी, तभी !"

"फिर ? फिर ?"

सदाव्रत गम्भीर होकर शैल की ओर देखने लगा।

उस ओर बिना देखे शैल कहती रही, "मुझे उसी दिन सन्देह हुआ था, नहीं तो हम लोगों के साथ वह इतनी बुरी तरह क्यों पेश आती ? इस

बुरी तरह गाली-गलौज क्यों करती ?"

"है ! तुझे गाली ?"

"मुझे नहीं, सदाव्रत बाबू को !"

सदाव्रत की ओर देखकर केदार बाबू ने कहा, "सचमुच यह बात थी, सदाव्रत ?"

सदाव्रत और बैठ नहीं पाया। उठ खड़ा हुआ।

बोला, "इस बात का जवाब मैं आज नहीं दे पाऊँगा, मास्टर साहब ! सारे दिन अदालत में था। काफ़ी थक गया हूँ, इसका जवाब कल दूँगा।"

फिर कहा, "आज चलता हूँ।" कहकर सड़क पर आकर गाड़ी में बैठकर इंजिन स्टार्ट कर दिया। मन्मथ दरवाजे तक आया था। सदाव्रत ने उसकी ओर भी नहीं देखा।

□ □ □

दुनिया में ऐसे बहुत-से दुःख है जिनसे छुटकारा पाना इन्सान के हाथ में नहीं है। फिर भी कोई सब-कुछ छोड़कर बेकार नहीं बैठता। इन्सान भाग-दौड़ करता है, सलाह करता है, छुटकारे का उपाय खोजने के लिए नाते-रिश्तेदारों और पड़ोसियों के पास जाता है। कोई मन-ही-मन आकाश-वासी देवता की प्रार्थना करता है।

लेकिन आज सदाव्रत वास्तव में बड़ा असहाय महसूस कर रहा था।

बचपन से ही वह अकेला था। बचपन से एक मास्टर साहब से ही उसे अपने अस्तित्व का समर्थन मिला था। सदाव्रत की जीवन-समस्या को एक केदार बाबू ही जानते थे; लेकिन आज जैसे वह सहारा भी टूट चुका था। इतने दिनों में आज पहली बार लगा कि वह भी उस पर संदेह करते है।

गाड़ी लेकर मन्मथ के घर से निकल तो पड़ा, लेकिन अपने घर जाने को भी मन नहीं चाह रहा था। इतने दिन की धारणा, इतने दिन का विश्वास, सब जैसे अचानक खत्म हो गया था। सिर्फ इन्सान को देखने के लिए वह एक दिन कलकत्ता की सड़कों पर घूमता था। पिता का नाम और रुपया उसे सन्तुष्ट नहीं कर पाया। पिताजी से रुपया लेता, उसी रुपये से कॉलेज की फीस भरता, किताबें खरीदता और कार रख पाने पर जान-पहचान की दूकान से पेट्रोल भी लेता। सब-कुछ पिताजी के पैसे से। फिर भी वह रुपया सदाव्रत को आकर्षित नहीं कर पाया।

इस आकर्षण के न होने की वजह थे केदार बाबू। केदार बाबू ने ही रोज का साथ देकर, रोजमर्रा की फिक्र और हर मिनट का जीवन-साथ

देकर उसे आदमी बनाया। उसने इतने दिन तक इस शहर को मास्टर साहब की नज़रों से ही देखा है, यहाँ के लोगों को जाना है।

आज अचानक इस उलट-पुलट के बाद अँधेरी सडक पर गाड़ी चलाते-चलाते लगा कि उसका सब देखना, सब जानना जैसे बेकार गया।

अँधेरी सड़क के बाद बड़ी सड़क आते ही ट्रैफिक-सिगनल की लाल रोशनी देखकर गाड़ी रोकनी पड़ी।

दूसरी ओर भी और कई गाड़ियाँ खड़ी थी। ज़रा देर बाद ही एम्बर सिगनल होगा और फिर ग्रीन। ग्रीन होते ही फिर चलना होगा।

लेकिन सदाव्रत को लगा कि रुके रहना ही जैसे उसके हक में अच्छा होगा। अनन्तकाल तक रुके रहने पर ही जैसे वह बच जायेगा। काफी दिनों तक लगातार चलने के बाद आज पहली बार उसे थकान महसूस हो रही थी। ऐसा क्यों हुआ ? रुकना माने ही तो मौत है! आज वह इस तरह मृत्यु क्यों चाह रहा है ? वह क्या इतना टूट चुका है ? उसे क्या हुआ है ? अस्तित्व में चोट लगते ही क्या आदमी अपने चारों ओर देखता है ? ऐसा तो नही है। इतने दिनों तक इतना बड़ा रास्ता पार कर उसने क्या देखा ? वही एक दिन, जिस दिन वह पैदा नहीं हुआ था, उस दिन तो कलकत्ता की ही छाती पर सात समुद्र पार कर एक आदमी किस्मत आजमाने निकला था। वह यहाँ नाव से उतरा। उस दिन क्या जॉब चॉर्नक ने ही स्वप्न देखा था कि एक दिन यहाँ एक बस्ती बस जायेगी। इस बस्ती के लोग ही बाद में उन क़िस्मत आजमानेवालों को भगा देंगे ? इसी शहर में एक दिन ईस्ट इंडिया कम्पनी से पाए धन से पैसे और ऐशो-आराम की लहर उमड़ पड़ी थी। और इसी शहर में ही एक दिन आस-पास के आत्मा को पहचानने में लगे लोगों ने अपने-आपको पाया। दुनिया में और कही भी क्या ऐसा शहर है, जिसका अतीत इतना अजीब हो, वर्तमान इतना रोमांचकारी और भविष्य इतना अन्धकारमय ! इस शहर की कहानी में अलिफ-लैला की कहानी का मजा आता है ! लेकिन किसने इसका इतना बड़ा नुकसान किया ? कौन है वह ? कौन ? किसने उस कहानी को आगे बढ़ने से इस तरह रोका ? किसने इस कहानी के भविष्य को इतना अन्धकारमय बना दिया है ?

सदाव्रत को याद आया, एक दिन पिताजी ने उससे एक सवाल पूछा था, "पाकिस्तान किसने बनाया, बतला सकते हो ?"

"किसने ?"

जवाब देते वक्त शायद टेलीफोन आ गया था। और जवाब नहीं दे पाये। उसके बाद काफी दिन गुजर गये, कितने ही साल निकल गये। इतने दिन बाद जैसे सदाव्रत को जवाब मिल गया। आदमी के बेसहारा होने का फ़ायदा उठाकर जो लोग उसके साथ जानवर की तरह पेश आते है, इसके पीछे भी वही लोग हैं। वे ही लोग एक दिन अचानक सरसों के तेल का भाव बढ़ा देते हैं। उन्ही लोगों की वजह से अचानक बाजार से चीनी गायब हो जाती है, और वे ही लोग कुन्ती गुहा को किराये पर चढ़ाकर पैसे कापहाड़ खड़ा कर लेते हैं।

अदालत में प्रोसीडिंग सुनते-सुनते अचानक शर्म और घृणा से सदाव्रत की आँख, कान और चेहरा लाल हो उठना। उसकी यह नालिश किसके खिलाफ़ है ? मनिला को मारने के लिए किसने एसिड फेंकी ? वह क्या कुन्ती गुहा थी ?

एक के बाद एक लाइन-की-लाइन गाड़ियाँ खड़ी थी। अचानक इतनी रात को पता नहीं कौन एक सड़क पार करते समय सदाव्रत के ठीक सामने उसकी ओर देखकर जरा मुसकराया। कौन ? सदाव्रत क्या इस लड़की को पहचानता है ?

"मुझे जरा लिफ्ट देंगे ?"

सदाव्रत ने अच्छी तरह से देखा। कभी देखा हो, याद तो नहीं पड़ता। अचानक जैसे दिमाग में बिजली कौंध गयी। हो सकता है, यह भी कुन्ती गुहा में से एक होगी। शायद यह भी कुन्ती गुहाकी तरह किसी सुन्दरिया-बाई की शिकार होगी। किसी महारानी की किरायेदार होगी।

"मैं आपको जरा-सी तकलीफ़ दूँगी।"

"आइये।"

इस बार सदाव्रत को साफ़-साफ़ दिखलायी दिया। बगल कटी स्लीवलेस ब्लाउज, सूखे बाल, होंठ और मुँह पर रंग पोते हुए, जबकि बदन का रंग एकदम काला था।

"आपको कहाँ जाना है ?"

काफी दिन हुए, ठीक इसी तरह एक दिन सदाव्रत ने कुन्ती गुहा को गाड़ी मे बिठाया था। इसी तरह उसने सवाल किया था। लेकिन इस बार जैसे यह लड़की अपनी मर्जी से ही सदाव्रत की ओर खिसककर बैठने की कोशिश करने लगी। अजीब बात है ! यह भी क्या कुन्ती गुहा की तरह उसे लुभा रही है ?

"तुम रहती कहाँ हो ?"

"आपकी जहाँ मर्ज़ी हो उतार दीजियेगा। मुझे इस समय कोई काम नहीं है।"

"मतलब ?"

लड़की ने कहा, "लगता है आप काफ़ी डर गये है। डरने की कोई बात नही है। मैं कुन्ती गुहा नही हूँ।"

"कुन्ती गुहा ? कुन्ती गुहा कौन ?"

"क्यों, आप जानते नही है ? अखबारों में देखा नही, केस चल रहा है। हम लोगों को खराब लड़कियो में से न समझियेगा।"

"कुन्ती गुहा क्या खराब लडकी है ?"

"आप कह क्या रहे है, खराब लडकी नहीहै ? इन्ही लोगोंकी वजह से तो सारी लडकियाँ बदनाम हो रही है। यही देखिये न, कितनों से ही तो लिफ्ट देने को कहा, किसी ने नही दी। आजकल लोग हम लोगों पर भी सन्देह करने लगे हैं। उसे ज़रूर ही फाँसी होगी।"

"तुम्हे कैसे पता लगा ?"

"वाह, सभी जानते है। कुन्ती गुहा ने जिस लडकी को मारा है उसके पिता बहुत बड़े आदमी हैं, और जो लडका उसके साथ था···"

"कौन-सा लड़का ?"

"वही, जिसका नाम सदाव्रत गुप्त है। पता है वह कौन है ?"

"तुम्हें पता है ?"

"सुना है, काफी बड़े आदमी का लड़का है। शिवप्रसाद गुप्त का तो नाम सुना होगा, इतने बड़े पॉलिटिकल सफरर, कितनी ही बार जेल गये हैं। अब ज़मीन-जायदाद का धन्धा करते है, उन्ही का लड़का।"

सदाव्रत और भी उत्सुक हो उठा। पूछा, "तुम्हें कैसे पता लगा ?"

"सिर्फ़ मैं ही क्यो, सभी को पता है। कलकत्ता मे जिससे पूछेंगे वही बतला देगा। क्यों, आपने नही सुना ? आप शायद कलकत्ता में नहीं रहते ? मिस्टर बोस की लड़की के साथ शादी होने पर लडके को और भी बहुत रुपया मिलनेवाला था, जानते हैं ?"

सड़क की रोशनी पड़ने से लडकी के कान के झुमके चमचमाने लगे।

"अपने बापका भी पैसा और ससुर का भी रुपया—इस कुन्ती गुहा ने सब गोलमाल कर दिया।"

सदाव्रत को न जाने कैसा सन्देह हुआ, "तुम कुन्ती गुहा को जानती

हो ?"

लड़की जैसे सचमुच ही डर गयी। कहने लगी, "सच कह रही हूँ, मैं नहीं जानती। आप यकीन करिये।"

"तब रात में इस समय सड़क पर अकेली क्यों घूम रही हो ?"

लड़की और भी डर गयी।

"तुम करती क्या हो ? कहाँ रहती हो ?"

लड़की अब ज़रा हटकर बैठी।

"बोलो, मेरी बात का जवाब दो ! नहीं तो मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूँगा, थाने ले जाऊँगा।"

लड़की की आँखों से पानी गिरने लगा।

"आप मुझे यहीं उतार दीजिये।"

"लेकिन उससे पहले बतलाओ तुम कौन हो ?"

तब तक आँसुओं से गाल का पाउडर, आँखों का काजल, होठोंकी लिपस्टिक सब कुछ जैसे घुल-पुँछकर धुँधली हो गयी थी। और भी दूर हटकर कहा, "मुझे आप यहीं उतार दीजिये, आपके पाँव पड़ती हूँ।"

कहकर दरवाज़ा खोलकर उतरने लगी। सदाव्रत ने झट से लड़की का एक हाथ पकड़ लिया। और साथ-ही-साथ लाल रोशनी हो गयी।

"सदाव्रत !"

इधर-उधर की गाड़ियों ने तब तक खिसकना शुरू कर दिया था। पास की गाड़ी से अपना नाम सुनते ही सदाव्रत चौंक उठा। मिस्टर बोस !

मिस्टर बोस ने गाड़ी लाकर पास की सड़क पर लगा दी। सदाव्रत ने भी पीछे-पीछे ले जाकर अपनी गाड़ी लगायी।

"यह कौन है ?"

मिस्टर बोस उस लड़की के लिए ही कह रहे थे। लड़की तब तक मौका पा दरवाज़ा खोलकर भाग गयी। देखते-देखते अँधेरे में खो गयी।

"हू इज़ शी ?"

"पता नहीं कौन थी। शायद ब्लैक-मेल करना चाहती थी। मेरी गाड़ी पर लिफ़्ट लेना चाहती थी।"

मिस्टर बोस ने कहा, "बी केयरफुल। होल कैलकटा इस समय ब्लैक-मेल करनेवालों से भरा हुआ है।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता।"

"ह्वाट डु यू मीन ?"

"मुझे तो लगता है यह कुन्ती गुहा जैसी एक है।"

"कुन्ती गुहा कौन ?"

मिस्टर बोस शायद क्लब से ही आ रहे थे। इस सब के बाद भी नशा नहीं छोड़ पाये थे। सदाव्रत की बात सुनकर नाम याद आ गया। बोले, "ओह, यू मीन दैट स्कैंडल ऑफ ए बिच।"

कहकर चुरुट का कश लेकर धुआं छोड़ा। फिर कहा, "लेकिन न्यूज़ बहुत फैल गयी है। मैं चाहता था कि अखबारवाले इसे न छापें। काफ़ी रुपया देना भी चाहा, लेकिन अखबार की बिक्री के लिए इन लोगों ने छाप ही दी। ख़ैर, जो भी हो, मैं इन सब बातों की परवाह नहीं करता। जिन्दगी में यह सब सहना ही होता है। आई एम अफ़्रेड ऑफ़ नो बडी। इस वक़्त मुझे मनिला की फ़िक्र है।"

सदाव्रत चुप रहा।

मिस्टर बोस ने ही कहा, "हो सकता है, मनिला बच जाये। मैं इस समय हॉस्पिटल से आ रहा हूँ। उन लोगों का कहना है, वह हमेशा इसी तरह 'इनवैलिड' होकर ही पड़ी रहेगी। माने लम्प ऑफ फ्लैश या मांस का लोथड़ा। इस बारे में तुमसे कुछ बातें करनी थी। तुम्हें तो मालूम ही है, मुझे सलाह देनेवाला और कोई नहीं है। बेबी आजकल और भी गुम रहती है। दिन-रात ह्विस्की के नशे में डूबी रहती है। पुअर लेडी ! आजकल मुझे उस पर दया आती है, जानते हो !"

सड़क पर खड़े-खड़े ये सब बातें करना ठीक नहीं है; मिस्टर बोस में जैसे यह सब सोचने तक की ताकत नहीं थी। आजकल के मिस्टर बोस पहले वाले मिस्टर बोस नहीं थे। ऑफिस में भी ज्यादा देर नहीं रुकते थे। शायद क्लब भी नहीं जाते। सिर्फ़ हॉस्पिटल और ड्रिन्क्स ! और है कोर्ट।

"तुम्हारा एवीडेन्स कब है ?"

"परसों।"

"तुम प्रिपेअर्ड हो न ? इन सारे ब्लैक-मेलरों को मुँहतोड़ जवाब देना होगा। इन लोगों को, जिन्होंने कलकत्ता की पीसफुल लाइफ को मिज़रेबल बना दिया। चैन से रहना मुश्किल कर दिया। इन स्कैंडल करने-

लिए फाइव-ईयर प्लान बना रही है। फिर भी ये लोग खुश नहीं हैं। हम लोग गाड़ी में बैठकर घूमते हैं, इसलिए उन सबको भी गाड़ी चाहिए। हाऊ सिली !"

मिस्टर बोस जैसे अपने-आपमें बात कर रहे थे।

सदाव्रत ने एक बार टोका, "आपको शायद देर हो रही है।"

"क्यों ? तुम्हें घर जाना है ?"

"नहीं।"

"और इम्मॉरेल ट्रैफिक ! यह किस देश में नहीं है ? इंग्लैंड में नहीं है ? अमेरिका में नहीं है ? फ्रांस में नहीं है ? इटली में नहीं है ? टोकियो, बर्लिन—कहाँ नहीं है यह प्रॉस्टीट्यूशन ? मैं तो मनिला (पुअर गर्ल) को लेकर सारी दुनिया में घूमा हूँ। यह हर जगह है। हर जगह पर रहेगा भी। फिर इसे लेकर इतना गला फाड़ने की क्या जरूरत है ?"

सदाव्रत ने फिर कहा, "आपको काफ़ी देर हो रही है।"

"हो देर। मुझे कोई जल्दी नहीं है। मेरे लिए जैसी सड़क वैसा घर।"

"चलिये, आपको घर पहुँचा दूँ।"

इतनी देर बाद जैसे मिस्टर बोस को होश आया। मिस्टर बोस को हाथ का सहारा देकर सदाव्रत अपनी गाड़ी में ले आया। मिस्टर बोस का ड्राइवर गाड़ी लेकर पीछे-पीछे आ रहा था।

□ □ □

सदाव्रत का कोई-कोई दिन इसी तरह कटता। हमेशा की तरह सुबह होती और समय होने पर हमेशा की तरह रात होती। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफ़िस में अपने चैम्बर में जाकर भी बैठना होता। किसी-किसी दिन अचानक मिस्टर बोस का टेलीफ़ोन आता।

मिस्टर बोस घर से ही टेलीफ़ोन करते, "सदाव्रत !"

सदाव्रत आवाज़ सुनते ही कहता, "यस सर !"

इसके बाद मिस्टर बोस इधर-उधर के तमाम कामों की लिस्ट देते। मिस्टर बोस की गैरहाजिरी में सदाव्रत ही कम्पनी का मालिक था। कम-से-कम दूसरे ऑफिसरों को यही मालूम था। उसी के अनुसार सब उसे सम्मान भी देते थे। सदाव्रत मिस्टर बोस के काम करता। किसी-किसी दिन कम्पनी भी चलाता।

और उधर मिस्टर बोस का सेक्रेटरी अखबार पढ़कर सुनाने आता। मिस्टर बोस को कोई भी खबर खुश नहीं कर पाती थी। लोकल अखबारों

में ही कुन्ती गुहा का केस बड़े-बड़े टाइप में निकलता। सेक्रेटरी उस ओर देखता भी नहीं।

मिस्टर बोस कहते, "ह्वाट नेक्स्ट ? उसके बाद और क्या है ?"

एक-एक कर सेक्रेटरी सारी खबरें पढ़ जाता। मिस्टर बोस के मिजाज के साथ किसी खबर का मेल नहीं बैठेगा, यह बात सेक्रेटरी आगे से नहीं समझ पाया। नेपाल के किंग महेन्द्र ने अपने प्रधानमंत्री को बरखास्त कर शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली है। मेरे पास नेपाल को लेकर माथापच्ची करने का वक्त नहीं है। वह रहने दो। फिर ? पंडित नेहरू ने विनोबा भावे को आसाम भेजा है।

"ह्वाई ?"

"जी, वहाँ पर लैंग्वेज को लेकर बड़ा झमेला हो रहा है। असमिया भाषा को वे लोग वहाँ की स्टेट लैंग्वेज बनाना चाहते हैं···बंगालियों का कहना है, बँगला ही रहेगी।"

"उफ़ ! तुम मेरा समय नष्ट कर रहे हो। ह्वाट नेक्स्ट ?"

"दलाई लामा ने यू० एन० ओ० में अपील की है।"

"क्यों ?"

"उनका कहना है तिब्बत एक सॉवरेन पॉवर है, सॉवरेन पॉवर नहीं होता तो जब मैकमोहन लाइन तैयार हो रही थी, उस समय भारत और चीन के साथ तिब्बत के हस्ताक्षर क्यों माँगे गये ?"

मिस्टर बोस ने मुँह से चुरुट निकाल ली।

"दिस दलाई लामा। इसे इंडिया में शैल्टर देकर नेहरू ने बड़ी भारी गलती की है। फिर ? ह्वाट नेक्स्ट ?"

रोज इसी तरह चलता। अखबार की बातें सुन-सुनकर और अच्छी नहीं लगती। सेक्रेटरी से चले जाने को कहते। फिर खुद उठते। अन्दर जाते-जाते अचानक बेबी का ध्यान आ जाता। बेबी के कमरे की ओर जाते।

"बेबी !"

बेबी नहीं, मिसेज बोस की आया बाहर आती। वह जैसे साहब को देखकर चौंक उठी थी।

"मेमसाहब कहाँ है ?"

कहते-कहते कमरे में अन्दर जाकर देखा। बेबी अभी तक सो रही थी। आया शायद पाँव दाब रही थी। गहरी नींद में बेखबर सो रही थी। मिस्टर बोस पास गये। शायद सो रही है। जगाना ठीक नहीं समझा। आया को

[illegible] पूछा, "मेमसाहब ने क्या आज भी गोली खायी है ?"

"जी, हाँ।"

"मैंने कितनी बार कहा है, गोली बिलकुल मत देना। [illegible] कौन लाता है ?"

जिस दिन से मनिला हॉस्पिटल गयी है, पेगी ने उसी दिन से नींद की गोलियाँ खाना शुरू किया है। पहले कभी-कभी खाती थी। आजकल रोज चार-पाँच गोलियाँ खाना शुरू कर दिया है। मेजर मित्रा ने गोलियाँ न खाने के लिए खास तौर पर कहा है। शुरू-शुरू में अच्छी लगेगी। शुरू-शुरू में इसके खाने से नींद भी आयेगी, भूख भी लगेगी, लेकिन बाद में नुकसान कर देगी। पार्किनसन्स डिजीज भी हो सकती है।

दरवान को भी बुलाया। नौकर-चाकर सभी को बुलाया। घर के सारे कर्मचारी आकर साहब के सामने खड़े हो गये। ड्राइवर, कुक, बबर्ची, खानसामा, बर्दली सभी।

"तुम लोगों ने फिर मेमसाहब को गोली लाकर दी ?"

"जी, मैं नहीं लाया, हुजूर !"

"स्टॉप !"

मिस्टर बोस चिल्ला उठे।

"मैं किसी की बात सुनना नहीं चाहता। जो गोली [illegible] लाता है, मैं उसे 'सैक' करूँगा। आइ मस्ट !"

सोलह मिलियन रुपये के मालिक मिस्टर बोस अचानक जैसे खुद को बड़ा बेसहारा महसूस कर रहे थे। अपने स्टाफ को डाँटते-डाँटते जैसे खुद को ही डाँट रहे थे। एक दिन उन्होंने खुद ही ये गोलियाँ लाकर [illegible] को प्यार से खिलायी थीं। उस समय खाने में बड़ा अच्छा लगता था, [illegible] फुल लगता था। आज वही गोलियाँ उनकी [illegible] [illegible] नहीं थीं। प्यार से कितनी ही बार मनिला को भी खाने को देते थे।

अचानक कॉरीडोर की ओर नजर जाते ही [illegible]। पेगी भी इस घर में है, यह बात वह जैसे भूल ही गये थे। [illegible] को देख नहीं पाते थे, यह बात पेगी जानता था। [illegible] बोस को पहचान नहीं पा रहा था।

धीरे-धीरे पेगी के पास गये। मनिला आज नहीं है। [illegible] से उस पर का मनिला का खिंचाव भी कम हो गया था।

पास आकर बुलाया। प्यार से हाथ बढ़ाया, "[illegible] !"

पेगी कुछ नहीं बोला। उनकी ओर देखा भी नहीं। शायद समझ गया था। जानवर भी समझते हैं, जबकि इन्सान भी गलती कर जाते हैं।

"पेगी!"

पेगी को जैसे अच्छा नहीं लगा। काटना नहीं जानता। फिर भी जैसे काटने आया।

अचानक तभी पीछे से अर्दली ने कहा, "साँब, टेलीफोन!"

पेगी के बारे में और नहीं सोच पाये। जल्दी से खास-कमरे में आकर रिसीवर उठाया।

"मैं सदाव्रत बोल रहा हूँ।"

"बोलो।"

"अभी-अभी सॉलिसिटर ने टेलीफोन किया था। हम लोगों के मामले ने एक सीरियस टर्न लिया है।"

"कौन-सा टर्न?"

"वह नहीं जानता। वह सब मुझे नहीं बतलाया। आपको साथ लेकर फौरन अपनी फर्म में आने को कहा है। मामला दूसरी ओर घूम चुका है। आप चले आइये।"

□ □ □

शशिपद बाबू के घर जाकर भी वही एक समस्या। केदार बाबू किसी की एक न सुनते। सुबह होते ही निकल पड़ते। छाता लिये सारे दिन चक्कर काटते। एक बार गुरुपद के घर, वहाँ से अधीर के घर और अधीर के यहाँ से सोमनाथ के घर।

"तुम लोगों का क्या हाल है?"

कोई पास कर गया था, कोई नहीं कर पाया। किसी ने पढ़ना छोड़ दिया है, किसी को नौकरी मिल गयी है। सभी से मिलकर खुश होते। केदार बाबू की बीमारी के बाद से कई लड़के ट्यूटोरियल स्कूलों में भर्ती हो गये थे। वहाँ कई लाभ हैं। मोटी रकम देकर क्वश्चन आउट किये जा सकते हैं। फिर घर लौट आते। मन्मथ की माँ खाना लिए बैठी होती।

एक दिन अकेला पाते ही शैल ने पकड़ लिया।

"काका, तुम क्या हमेशा यहीं रहोगे?"

केदार बाबू चौंक उठे। सिर उठा शैल की ओर ताकने लगे। फिर बोले, "क्यों? यह बात क्यों पूछ रही है? यहाँ क्या तुझे कोई तकलीफ है?"

"नही, मेरा वह मतलब नही है।"

"तब ? ये लोग भरपेट खाना नही देते ? कम देते है ?"

"काका, जरा धीमे बोलो ! कोई सुन लेगा।"

केदार बाबू ने आवाज धीमी की। बोले, "लगता है, यह महाराज चोरी करता है। अच्छा, तू फिक्र मत कर। मै मन्मथ की माँ से कह आऊँ। घर में चोर पालना तो अच्छी बात नही है।"

कहकर उठ ही रहे थे, शैल ने रोककर कहा, "तुम कैसे हो, काका ! तुम क्या कभी भी कुछ नही समझोगे ?"

केदार बाबू फिर भी कुछ नही समझ पाये। बोले, "क्यो ? मैं समझता नही हूँ ? तू कह क्या रही है ? भूखे रहने मे तकलीफ तो होगी ही, खाना न मिलने से तकलीफ़ नही होगी ? मैंने तो उसी दिन कहा था, सदाव्रत के यहाँ चल। वहाँ रहने पर तुझे कोई तकलीफ नही होगी।"

शैल जरा देर चुप रही। फिर बोली, "तुम भी अजीब बात करते हो, काका ! मैंने यह कब कहा।"

"तूने भले ही न कहा हो, मैं क्या समझता नहीं ? देखने में पागल लगता हूँ, तो क्या सचमुच ही मेरा दिमाग खराब हो गया है ? अच्छा, मै आज ही कहता हूँ शशिपद बाबू से।"

"क्या कहोगे ? नही, तुम्हे कुछ भी कहना नही होगा।"

"नही कहूँगा, माने ? जरूर कहूँगा ! महाराज चोरी करे, और घर-वालों को खाना न मिले, यह क्या अच्छी बात है ? मुझे तो खुद ही यहाँ पर अच्छा नही लग रहा। चल न, हम लोग सदाव्रत के यहाँ चलें। वहाँ आराम से रहना। बालीगज इलाके मे।"

अचानक बाहर किसी के पैरो की आहट हुई।

"अरे, क्या हुआ, तुम लोगो को क्या किसी तरह की असुविधा हो गयी ?" मन्मथ की माँ अचानक कमरे मे आ गयी।

"देखिये माँ, आपने जिस महाराज को रख छोड़ा है, वह चोर है। मेरा कहना है, यह चोर है। उसे निकाल दीजिये।"

"चोर ?"

"हाँ, अगर विश्वास न हो तो इस शैल से पूछ लीजिये। बेचारी को भरपेट खाना तक नही मिल पाता। उसे आपके यहाँ बड़ी तकलीफ़ हो रही है।"

मन्मथ की माँ ने शैल की ओर देखा। "क्यो बेटी, तुम्हारा पेट नहीं

भरता ? कभी मुझे तो नहीं बतलाया, बेटी ?"

"आप लोगों से कैसे कहती ? मैं उसका काका हूँ, मुझसे चुपचाप कहने आयी थी। मैंने कह दिया, यह क्या चुपचाप कहने की बात है ? माँ से कहनी चाहिए थी।"

मन्मथ की माँ ने कहा, "वह तो है ही।"

"आप ही कहिये, मैंने ठीक कहा या नहीं। मैंने उससे कहा था, तुझे अगर यहाँ किसी बात की तकलीफ हो रही हो तो चल, सदाव्रत के यहाँ चल। वह इस घर से बहुत अच्छा है। वहाँ कितने ही नौकर-चाकर हैं। वहाँ जाने पर ये सब तकलीफ़ें नहीं होंगी। सदाव्रत की माँ तुझे रानी की तरह रखेगी। बरतन साफ नहीं करने होंगे, कमरों में झाड़ू नहीं लगानी होगी, कुछ भी करना नहीं होगा।"

फिर मन्मथ की माँ की ओर देखकर बोले, "क्यों माँ, मैंने क्या कोई खराब बात कही है ?"

शैल काफी सह चुकी थी, और नहीं सुन पायी। कमरे से निकल गयी। उसे जाते देखकर केदार बाबू हँसने लगे।

बोले, "देखा न माँ, मैंने सब-कुछ कह दिया इसलिए शरमाकर कमरे से भाग गयी है।"

लेकिन मन्मथ की माँ नहीं हँस पायी। वह भी कमरे से जा रही थी कि केदार बाबू ने फिर कहा, "देखिये, माँ !"

मन्मथ की माँ के घूमते ही पास जाकर केदार बाबू ने कहा, "आप उसे कहीं डाँटियेगा तो नहीं !"

"अरे नहीं, मैं क्यों डाँटने लगी ?"

केदार बाबू ने कहा, "इसलिए कह रहा था, बड़ी गुस्सैल और गुम-सुम लड़की है। किसी पर भी गुस्सा होती है, उतारती मुझ पर है। मैं बूढ़ा आदमी ठहरा। इतना सब कैसे सह सकता हूँ, आप ही कहिये ! इसका बाप भी ऐसा ही गुस्सैल था।"

"अच्छा, मैं उसके पास जाती हूँ।"

कहकर मन्मथ की माँ चली गयी। केदार बाबू ने कुर्ता उतारा। फिर टेबल-लैम्प जलाकर किताब खोलकर पढ़ने लगे। शशिपद बाबू ऑफ़िस से अभी तक नहीं लौटे थे। आते ही उनको भी सुनाना होगा। शशिपद बाबू सारे सरकारी अफसरों को चोर कहते हैं। और यहाँ उनके घर में ही चोर घुसा बैठा है। उसका पता ही नहीं है !

दरवाजा खुलने की आवाज आते ही केदार वाबू बोल उठे, "आइये, शशिपद बाबू !"

लेकिन मन्मथ की माँ को फिर से कमरे में आते देखकर चौंक गये।

"क्या हुआ, माँ ? शैल को समझा दिया न ? शान्त हुई ? मुझे भी कभी-कभी ऐसा ही होता है। भूख लगते ही सारा शरीर···"

"अच्छा, मास्टर साहब !"

मन्मथ की माँ अचानक सामने पडी कुर्सी पर बैठ गयी। कहने लगी, "आपकी भतीजी की तो काफी उम्र हो गयी। अभी तक उसके शादी-ब्याह का कुछ ठीक नही कर रहे। मैं यही कहने आयी थी।"

केदार बाबू ने सिर नीचा कर लिया।

"क्यों ? शैल कुछ कह रही थी क्या आपसे ?"

मन्मथ की माँ ने कहा, "नही, यह बात भी क्या कोई लड़की अपने मुंह से कहती है ? वह वैसी लडकी नही है।"

"तब ?"

"मैं खुद ही कह रही हूँ। भले घर की लडकी। उम्र हो गयी है। माँ-मौसी कोई भी नही है। आपको खुद भी तो सोचना चाहिए।"

"मैं तो उसकी शादी की ही कोशिश कर रहा हूँ। सदाव्रत इस समय मुकदमे में फँसा है। और कोई लड़का मिलते ही मोटी रकम माँगेगा। तब तो सदाव्रत के सामने ही हाथ फैलाना होगा। उसकी तनख्वाह दो हजार रुपये है। उसके लिए हज़ार रुपये कोई बड़ी बात नहीं होगी। इसी भरोसे पर तो हूँ।"

मन्मथ की माँ ने कहा, "जिस लड़की के साथ सदाव्रत की शादी होने वाली थी, वह तो अस्पताल मे पड़ी है। सदाव्रत खुद भी तो शादी कर सकता है।"

केदार बाबू के दिमाग मे यह बात कभी नही आयी थी।

"आपने बात तो ठीक कही। यह बात मेरे दिमाग मे आयी ही नही।"

"आप एक बार बात चलाइये न !"

"बात क्या चलानी है, सदाव्रत मेरी बात ठुकरा नही सकता। मैं कल ही जाऊँगा।"

अचानक मन्मथ कमरे में आया।

आते ही बोला, "मास्टर साहब, गजब हो गया !"

मन्मथ की माँ ने उठते हुए कहा, "क्या हुआ ?"

हमेशा के लिए मौरूसी पट्टा लिखाकर नही आया है !

लेकिन इसी शृंखला में जब गाँठ पड़ जाती है, तब गडबड़ शुरू होती है। १७८१ की उस गाँठ पर एक और गाँठ लगी १७८६ में। रूसो की लिखी किताबें जिस देश मे जैसे भी पहुँच गयीं, वहीं गडबड दिखलाई देने लगी। इसके बाद इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन; मशीन, औजार और फैक्टरियों का युग आया। और फिर नैपोलियन से भी ज्यादा बड़े दुर्धर्ष आततायियों का आविर्भाव हुआ। जहाँ-जहाँ कल-कारखाने जमे, वहीं-वहीं पृथक्-पृथक् दल सिर उठाकर खड़े हो गये और हुंकार लगाकर कह उठे—'अयमहं भो!'

इसके वाद का इतिहास भी केदार बाबू का जाना हुआ है। जिस समय से कॉलोनियों की नीव पडनी शुरू हुई थी तभी से। बाद में···

केदार बाबू वसन्त को पढ़ा रहे थे। पढाते-पढाते अचानक मॉडर्न पीरियड मे चले आये।

वसन्त को मॉडर्न पीरियड की जरूरत नही थी। उसने कहा, "सर, फॉर्टी-सेवेन के बाद की हिस्ट्री मेरे कोर्स मे नही है।"

केदार बाबू एकाग्रभाव से पढ़ा रहे थे। अचानक रुक गये।

'क्यों, कोर्स में नही है तो क्या हुआ ?"

"बेकार पढने से क्या फायदा ?"

"जो कुछ कोर्स में नही है बेकार है ? पढ़ना नहीं चाहिए ?"

मत पढ़ो। फिर भी जैसे केदार बाबू को बोलना अच्छा लगता था। सोचना भी अच्छा लगता है। जबकिऔर किसी को भी अच्छा नही लगता। उनको छोड़कर और कोई सोचता भी नही है। चलते-चलते वह जैसे दिन मे ही स्वप्न देखने लगते। लगता आजकल सेवेन्टीन-एट्टी-नाइन चल रहा है। कभी लगता एट्टीन-फिफ्टी-सेवेन है। कभी लगता एट्टीन-थर्टी-थ्री है। राम-मोहनराय हाल में ही मरे है। और कभी लगता, अब डरने की कोई बात नही है, यह एट्टीन-ट्वेन्टी है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने जन्म लिया है। तभी बस से जब सड़क पर नजर जाती है तो देखते है, सिनेमा हाऊस के सामने लोगों की लम्बी लाइन लगी है। उसे देखकर लगता सेवेन्थ सेन्च्यूरी बी० सी० आ गयी है। स्लेव-ट्रेड का युग। सारे स्लेवों को जैसे जंजीर से बाँध-कर कडकडाती धूप में खड़ा कर नीलाम किया जा रहा हो।

वसन्त ने कहा, "सर, आज यही तक।"

केदार बाबू जैसे फिर से वर्तमान मे लौट आये। एकदम नाइन्टीन-सिक्स्टी-टू में। आज तुम अगर व्यापार करना चाहते हो तो बतलाओ

तुम्हारी जाति क्या है ? तुम बंगाली हो या गुजराती, या उड़िया या असमिया, या पंजाबी या और कोई ? राइटर्स बिल्डिंग में मिस्टर 'ए' तुम्हारे साथ मुलाक़ात ही नही करेंगे। लेकिन अचानक डिप्टी ने जाकर कहा— सर, मिस्टर दत्त आये है।

मिस्टर दत्त के पास और कुछ हो न हो, रुपया है। टॉप से बॉटम तक सभी ने उनका चाँदी का जूता खाया है। मिस्टर दत्त का रुपया नही खाया हो ऐसा कोई ऑफिसर, क्लर्क या और कोई हो तो उसे निकाल बाहर करो। बिना घूस लिए नाइन्टीन-सिक्स्टी-टू मे वह मिसफिट है। वह धोखेबाज़ है, वह ट्रेटर है। सरकारी नौकरी मे उसका रहना ग़ैर-कानूनी है। मिस्टर दत्त का नाम सुनते ही मिस्टर 'ए' इतने बड़े डिपार्टमेंट के हैड होते हुए भी कुर्सी छोड़कर सडक तक दौड़े आये।

वसन्त देखकर हैरान रह गया। कड़ी धूप की वजह से बाहर जैसे दिन सायँ-सायँ कर रहा था। सड़क पर रिक्शा, आदमी और गाड़ियाँ चल रही थी। मास्टर साहब सुबह के आये हैं और अब ग्यारह बज रहे हैं। अभी भी उठने का नाम नही है। पढ़ाते-पढ़ाते चुप हो गये। आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे।

वसन्त ने फिर से पुकारा, "सर !"

केदार बाबू ने धोती के छोर से आँखें पोंछी।

"सर, आपकी क्या तबीयत गड़बड़ है ?"

"नहीं," कहकर केदार बाबू उठ खड़े हुए।

"सर, आपके लिए रिक्शा बुला दूँ ?"

केदार बाबू की आँखें अभी तक भरी थी। बोले, "नही रे, मुझे कुछ नही हुआ है। तुम लोगों के बारे मे ही सोच रहा था, तुम लोगों का क्या होगा ?"

"क्यों सर, मेरी प्रिपरेशन तो अच्छी ही हुई है !"

"प्रिपरेशन करने से क्या होता है ! तुम लोगों का कोई भी तो नही है। हम लोग तो बूढ़े हो गये। कुछ दिन और हैं। तुम लोगों के बारे में सोचता हूँ तो मन खराब हो जाता है। तुम्हें देखनेवाला कोई नही है।"

कहकर छाता लिए उसी कड़कती धूप में निकल पड़े।

वसन्त काफी दिन से मास्टर साहब को देख रहा है। लेकिन जितना देखता है, उतना ही हैरान होता है। जिन दिनों पिताजी की हालत खराब थी, महीनों फीस नही दे पाया। फिर भी पढ़ाना बन्द नही किया। इतने

लिया था। वाद में अगर भूल जाये। काका भी सुवह के घर से निकले हैं। मन्मथ भी नहीं है। उसे यूनिवर्सिटी में एडमिशन मिल गया है।

मौसीमा ने पूछा था, "अपने काका के आने तक रुकोगी या पहले ही खाओगी ?"

शैल—"आप मेरी फ़िक्र न करें, मौसीमा, मैं वाद मे ही खाऊँगी।"

तव तो हो लिया। काका के लौटने का जैसे बँधा हुआ समय हो। मौसीमा के बाहर जाते ही शैल जल्दी से साडी वदलकर तैयार हो गयी। जव कभी वाहर गयी है, मन्मथ या सदाव्रत मे से कोई-न-कोई उसके साथ ज़रूर होता।

घर से निकलकर वस पकड़ते समय ही गड़बड हो गयी। अगर कोई देख ले ? लेकिन उसे पहचाननेवाला है ही कौन ! हो सकता है काका मिल जायें। सुवह के वक़्त उनके तीन टच्यूशन है। ट्राम से एक जगह से दूसरी जगह जाते है। काका के पास ट्राम का मन्थली टिकट है।

एक वस के आते ही उठने लगी। तभी अचानक ख़याल आया, यह वस कहाँ जायेगी, पूछ लेना चाहिए।

कंडक्टर के पास आते ही पूछा, "यह वस कहाँ जायेगी ?"

"हावड़ा। आपको कहाँ जाना है ?"

"वेहाला !"

"तव जाकर उस ओर के फ़ुटपाथ पर खड़ी होइये।"

इतने दिनों तक शैल वाहरी दुनिया के लोगों से डरती आयी है। सभी जैसे उसे फँसाने का, उसे मुश्किल मे डालने का काम देख रहे हैं। कलकत्ता में इतने दिन वह यही धारणा लिए थी। उस दिन उस लड़की ने सड़क पर चलते-चलते धक्का मारा था। उसी पर तो मुकदमा चल रहा है। एक वार उसकी चप्पल भी टूट गयी थी। हर तरह की आशंका लिए ही वह वाहर निकली थी। बिना निकले चारा भी तो नही था।

इस वार ठीक वस मिल गयी थी। यह वस सीधे वेहाला पहुँचा देगी। ज़िन्दगी मे कभी इस ओर नही आयी। शैल को लगा जैसे सभी उसकी ओर अजीव निगाहों से देख रहे थे। जैसे सभी जान गये हैं कि उसे रास्ते का पता नहीं है। अगर कोई पीछे लगे ? शैल ने साड़ी को कसकर लपेट लिया, वदन का कोई भी हिस्सा जिससे दिखायी न दे। चेहरा भी अगर ढँक पाती तो अच्छा होता। वस किधर से कहाँ जा रही थी कुछ भी पता नहीं चल रहा था। क्या वजा है, यह भी मालूम करना मु[illegible] था।

मौसीमा को शायद अब तक पता लग गया होगा। शैल को न देख मौसीमा ने ढूंढना शुरू कर दिया होगा।

और अगर काका लौट आये होंगे तो ?

काका तो आते ही ढूंढना शुरू कर देंगे। घर में घुसते ही काका शैल को आवाज़ देते हैं। शैल जहाँ कहीं भी होती, सामने आ खड़ी होती। आज काका उसे नहीं देख पायेंगे।

शैल को याद आया, काफ़ी दिन पहले जब बागमारी में रहती थी, वहीं अगर पानी में डूब गयी होती तो यह सब क्यों देखना होता !

पास में एक महिला बैठी थी।

शैल ने पूछा, "अच्छा, घोपालपाड़ा किस जगह का नाम है, बतला सकती हैं ?"

उस महिला ने ठीक जगह पर ही उतार दिया। एकदम अनजान जगह। किसी को यह पता भी नहीं लगने देना चाहती थी कि वह यहाँ नयी आयी है। फिर बिना पूछे कोई चारा नहीं है। अखबार का पेज निकालकर फिर से विज्ञापन देखा। सड़क के किनारे साइन बोर्ड था। उस पर सड़क का नाम लिखा था। बड़ी मुश्किल से पढ़ पायी। जंग-खायी पुरानी प्लेट लगी थी। नाम धुंधला पड़ गया था।

"अच्छा, इस ओर घोपालपाड़ा लेन कौन-सी है ?"

पोखर के किनारे एक औरत बर्तन साफ कर रही थी। शैल ने उसी से पूछा।

पोखर थी। फिर भी बागमारी से अच्छी जगह थी। लोग भी काफ़ी हैं। किसी तरह ढूंढकर मकान तक पहुँची। दरवाजा खटखटाते ही एक बूढ़ी-सी औरत ने आकर दरवाजा खोल दिया।

"आपके यहाँ कोई मकान खाली है ? अखबार में विज्ञापन देखा···"

बूढ़ी औरत ने ऊपर से नीचे तक शैल को देखा। फिर कहा, "अरे, वह तो आज सुबह ही किराये पर उठ गया !"

"किराये पर उठ गया ?"

शैल जैसे बैठ गयी। इतनी आशा लेकर आयी थी। किसी को बिना बतलाये चली आयी है। सोचा था, घर देखकर पसन्द कर लेगी, फिर काका को बतलायेगी। इतने दिन से पराये घर में पड़ी है। काका को बुरा न लगता हो, शैल को तो लगता है।

"अच्छा, देखिये, यहाँ क्या और कोई मकान खाली है ?"

"यहाँ मकान कहाँ से मिलेगा बेटी, आजकल क्या घर खाली पड़े रहते हैं ? हम लोगों ने छः महीने की सलामी माँगी थी, इसीलिए खाली था, नहीं तो···"

शैल का सिर जैसे चकराने लगा था। धूप तेज हो रही थी। उसी हालत में उसी रास्ते से फिर लौटी। फिर वही ट्राम-लाइन। किस रास्ते से आयी थी, यह भी भूल चुकी थी। लेकिन फिर भी जैसे उस औरत के शब्द गूँज रहे थे : 'घर क्या आजकल खाली पड़े रहते हैं, बेटी ?'

लेकिन सड़क पर एक भी बस या ट्राम दिखलायी नहीं दे रही थी। लोग पैदल ही चल रहे थे। लाइन-की-लाइन लाल पगड़ीधारी पुलिस सड़क के दोनों ओर खड़ी थी। कोई आनेवाला है। इसीलिए सब लोग सड़क के पास जमा हैं।

शैल ने वहाँ खड़ी एक औरत से पूछा, "अच्छा, बस क्या अब आयेगी ही नहीं ?"

"आपको कहाँ जाना है ?"

"बहूबाजार !"

"आपको दो घंटे इन्तजार करना होगा। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद इस ओर आये हैं। इसीलिए ट्राम-बस सब बन्द हैं।"

"तब आप लोग कैसे जायेंगी ?"

"हम लोगों का मकान तो इसी ओर है। बस-ट्राम चलते-चलते दोपहर का एक बजेगा। तब तक अगर रुक सकें तो कहीं बैठ जाइये, नहीं तो···!"

शैल के सिर पर जैसे बिजली गिरी—अब क्या हो ?

□ □ □

सदाव्रत को ऑफिस में ही टेलीफ़ोन मैसेज मिल गया था। खबर मिलते ही उसने मिस्टर बोस को टेलीफ़ोन किया। मिस्टर बोस ने कहा था, वह लंच के बाद आयेंगे। लेकिन काफ़ी देर हो गयी थी। मिस्टर बोस नहीं आये। इसके बाद ही मन्मथ आया। मन्मथ को देखकर सदाव्रत को ज़रा अजीब ही लगा।

"अचानक तुम ?"

"काफ़ी दिनों से तुम्हारे साथ मुलाकात नहीं हुई, इसीलिए चला आया। मास्टर साहब भी तुम्हारी याद करते हैं।"

"आजकल उनकी तबीयत का क्या हाल है ?"

"फिर उसी तरह ट्यूशन करना शुरू कर दिया है। मना करने पर भी

नहीं सुनते। खाने-पीने, किसी भी बात का ठीक नहीं है।"

"लेकिन शैल मना क्यों नहीं करती ?"

"वाह, जाने-बूझे यह बात कह रहे हो ? मास्टर साहब क्या शैल की बात सुनते हैं ? पिताजी की बात भी नहीं सुनते। इसीलिए तो तुम्हारे पास आया हूँ। तुम एक बार चलो, सदाव्रत दा ! ज़रा समझा देना।"

सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। अकेले उस पर कितने सब झमेले। अपने निजी झमेलों के मारे परेशान है। इस पर यह सब अच्छा नहीं लगता। सब-कुछ जैसे उलट-पुलट हो गया है। उसकी ज़िन्दगी इस तरह तो शुरू नहीं हुई थी। और शुरू जैसे भी हुई हो, आज जैसे सब गड़बड़ा गया था। उधर मनिला अस्पताल में पड़ी है। कहने को ज़िन्दा है, माने साँस ले रही है। हालाँकि, जिस लिए उसकी नौकरी लगी है, जिस लिए उसे हर महीने इतनी मोटी रकम दी जाती है, वह काम पूरा होने की अब कोई आशा नहीं है। स्टाफ़ के लोग उसे दया की नज़रों से देखते हैं। सभी को पता है, उसे नौकरी में रखने के कोई माने नहीं है। इतनी मोटी तनख्वाह वह बेकार में मार रहा है। इसके अलावा मुकदमा है। हियरिंग होती है और तारीख़ पड़ती है। महीनों से यही चल रहा है। मौत के मुँह पर खड़ा सदाव्रत जैसे जी-जान से बचने की कोशिश कर रहा है।

"और शैल भी अब हम लोगों के यहाँ नहीं रहना चाहती।"

"क्यों ?"

सदाव्रत नाराज़ हो गया। कहने लगा, "क्यों, वहाँ नहीं रहेगी तो कहाँ जायेगी ? कौन उसकी देखभाल करेगा ?"

"कहती है पराये घर में पड़े रहना अच्छा नहीं लगता।"

सदाव्रत चीख़ उठा। टेबल पर ज़ोर से एक मुक्का मारा।

"इससे तो बागबाज़ार में जैसे थी वैसे ही रहती तो अच्छा था। एक दिन पानी में डूबने चली थी, क्या फिर से मरने की इच्छा हुई है ? सबकी फ़िक्र नहीं कर पाऊँगा, तुम मास्टर साहब से कह देना। जब वक्त था, सुविधा थी, भरसक किया। अब ख़ुद मुझे देखनेवाला ही कोई नहीं है।"

मन्मथ ने समझाने की कोशिश की। "तुम इतना गुस्सा क्यों कर रहे हो, सदाव्रत दा ! ज़रा उसकी हालत समझने की कोशिश करो !"

"लेकिन मेरी हालत देखनेवाला कौन है ? मैं आजकल माँ भी नहीं पाता, पता है ?"

मन्मथ और नहीं रुका, उठ खड़ा हुआ। "अच्छा, मैं चलूँ!"

चले जाने के बाद अचानक सदाव्रत को ख़याल हुआ। मन्मथ से इस तरह का व्यवहार नहीं करना था। लेकिन पता नहीं क्यों सब गड़बड़ हो गया। पूरे ऑफ़िस का भार उस पर है। अपनी ज़िन्दगी का बोझ भी सम्हालना उसके लिए मुश्किल हो रहा है।

अचानक घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया। कहा, "अभी जो बाबू चले गये है, उन्हें बुला लाओ!"

मन्मथ को अन्दर बैठाकर कम-से-कम दो-चार मीठी बातें करनी थीं। मन्मथ को क्या पता! उसका क्या दोष है! मन्मथ के सामने इस तरह बोलने से क्या फ़ायदा! पहले तो कभी इस तरह गुस्सा होता नहीं था।

चपरासी लौट आया। बाबू नहीं मिले।

इच्छा हुई गाड़ी लेकर सीधा इन लोगों के यहाँ जाये। लेकिन जाये भी कैसे? इतनी सारी फ़ाइलें पड़ी हैं।

आखिर जा नहीं पाया। शाम को स्टैंडिंग-कौंसिल के यहाँ इस केस पर सलाह लेने जाना था। वहीं चला गया। सुन्दरियाबाई ने अपने एवीडेन्स में कितनी ही ऐसी बातें कह डाली थीं, जो प्रॉसीक्यूशन के अगेन्स्ट पड़ रही थीं। उसी बारे में सलाह लेनी थी।

"मिस्टर गुप्त, आपने क्या पहले कभी सुन्दरियाबाई को देखा है?"

"जानूँगा कैसे? इतने दिनों से कलकत्ता मे हूँ। यहाँ यह सब भी होता है, मुझे तो पता ही नहीं था।" सदाव्रत ने कहा।

स्टैंडिंग-कौंसिल ने कहा, "केस हम लोगों के फ़ेवर में ही है, लेकिन सुन्दरियाबाई कल क्या कहती है, उस पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। क्रॉस-एग्ज़ामिन आज पूरा कहाँ हुआ है!"

"लेकिन सुन्दरियाबाई हठात् पथरानी के अगेन्स्ट क्यों हो गयी?"

"इसलिए कि उसका रुपया नहीं मिला। और उसका इकलौता लड़का मर गया है। इसी वजह से ज़रा शॉक सा गयी है।"

फिर फ़ाइल वगैरह समेटकर कहा, "लेकिन जो भी हो, मुज़रिम का कन्विक्शन तो होगा ही।"

"होगा ही?" सदाव्रत को ज़रा सहारा मिला।

स्टैंडिंग-कौंसिल ने कहा, "यह एसिड-बल्ब उसे कहाँ से मिला, यही पता नहीं लगा पा रहा हूँ।"

"कन्विक्शन होने पर क्या फाँसी ही होगी?"

"कोशिश तो यही कर रहा हूँ लेकिन इस सुन्दरियाबाई ने सारी गड़बड़ कर दी। उसके क्रॉस-एग्जामिन से पहले कुछ नहीं कहा जा सकता। लगता है उसके मुँह से कुछ और भी निकलेगा। उसने उपर दबरानी भी फेंक रखी!"

"इससे क्या होगा?"

"इससे पता लगेगा, कुन्ती गुहा के पीछे किसी का हैण्ड है या नहीं। मेरा तो ख़याल है उसके पीछे किसी का दिमाग़ काम कर रहा है।

"वह कौन है?"

"वही तो पता नहीं लग रहा। कल सुन्दरियाबाई के बयान से सब साफ़ हो जायेगा। आप कल ज़रूर आइयेगा।"

सदाव्रत ने आते वक़्त कहा था, "ज़रूर आऊँगा।" इसीलिए ऑफ़िस-ऑवर्स में ही गाड़ी लेकर निकल पड़ा। कई सड़कों पर ट्रैफ़िक बन्द था। काफ़ी घूमकर जाना हुआ। बहुत रोड ब्लॉक्ड थी। चक्कर काटते-काटते जब डलहौजी इलाके में पहुँचा, सामने की सड़क भी बन्द हो चुकी थी। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के लिए क्या सारे रास्ते बन्द हो जायेंगे? कोई काम नहीं होगा?

गाड़ी फिर घुमानी हुई।

आजकल प्राय: ही ऐसा हो रहा है। एक-एक वी० आई० पी० आता है और कलकत्ता के सारे क़ायदे-क़ानून टूट जाते हैं।

एक सड़क के मोड़ पर आकर गाड़ी रुकी। लाइन-की-लाइन पुलिस के सिपाही तैनात थे। किसी को रास्ता पार नहीं करने दे रहे थे। अचानक सब लोग एक ओर देखने लगे—वह आ रहे हैं, आ रहे हैं!

सामने से एक मोटर-साइकिल निकल गयी। पुलिस-सार्जेंट था। उसके बाद ही एक गाड़ी थी। गाड़ी के अन्दर पुलिस थी या कोई सरकारी ऑफ़िसर था। इसके बाद फिर एक गाड़ी। बीच में प्रेसिडेंट की गाड़ी थी। सिर पर खद्दर की टोपी। बन्द गले का कोट। शिवप्रसाद गुप्त के दोस्त राजेन्द्रप्रसाद। सदाव्रत ने पिताजी से ही सुना था।

गाड़ी के गुज़रते ही लोग चिल्लाने लगे—यही हैं, यही हैं प्रेसिडेंट!

सभी जैसे प्रेसिडेंट को देखने के लिए आतुर हो रहे थे। एक-दूसरे को धक्का मारते आगे बढ़ रहे थे। लेकिन पुलिस भी तैयार ही थी। किसी को अन्दर नहीं जाने देगी। लॉ एण्ड ऑर्डर मानना ही होगा। सारे काम भाड़ में जायें, प्रेसिडेंट की गाड़ी ठीक वक़्त पर पहुँचनी ही चाहिए।

बारे में पूरा डिसिप्लिन बरतना होगा।

सदाव्रत ने एक बार घड़ी देखी। दो बज चुके थे। लंच के बाद सुन्दरियाबाई का क्रॉस-एग्ज़ामिनेशन शुरू होनेवाला था। सदाव्रत बेचैनी से ट्रैफिक-सिगनल की राह देखने लगा।

आखिर में भी एक मोटर-साइकिल थी। उसके चले जाने के बाद रास्ता क्लियर हो गया।

सदाव्रत गाड़ी स्टार्ट कर ही रहा था कि अचानक भीड़ की ओर नजर जाते ही चौंक उठा। शैल ही है न! शैल अकेली यहाँ क्या करने आयी है? इस ओर? शैल भी क्या प्रेसिडेंट को देखने आयी है? गाड़ी एक ओर पार्क कर सदाव्रत उतरा।

"यह क्या, तुम यहाँ?"

शैल की सूरत देखकर सदाव्रत को जाने कैसा सन्देह हुआ। रूखे बाल, शायद नहायी भी नहीं थी। अनजान की तरह इधर-उधर ताक रही थी। सदाव्रत को देखकर वह भी चौंक उठी, लेकिन मुँह से कुछ नहीं बोली।

"तुम यहाँ इस वक्त दोपहर को दो बजे क्या कर रही हो? साथ में कौन है?"

शैल ने निगाह नीचे किये कहा, "कोई नहीं।"

"कोई नहीं तो यहाँ अकेली क्या कर रही हो?"

"मैं बेहाला गयी थी।"

"बेहाला? वह तो यहाँ से काफी दूर है। यह तो डलहौजी स्क्वायर है! यहाँ आयी कैसे?"

"बस से। बस आज घूमकर आयी थी, इसी से यहाँ उतार दिया।"

"घर में किसी को पता है कि तुम बेहाला गयी हो?"

शैल चुप ही रही।

"अब घर चलोगी न?"

शैल ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

"बेहाला क्या करने गयी थी?"

शैल ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

"बैठो, गाड़ी में बैठो। तुम्हें घर छोड़ दूँ।" सदाव्रत ने कहा।

□ □ □

केदार बाबू ने घर पहुँचते ही हमेशा की तरह पुकारा, "शैल! ओ शैल!"

नाराज होकर पानी में डूबने पहुँची थी। मैं एक बार थाने में खबर कर आऊँ। अभी आया।"

माँ ने कहा, "तुम पहले खाना खा लो, भैया! मन्मथ आकर जहाँ जाना होगा, जायेगा।"

केदार बाबू नहीं माने। उसी हालत में उठ खड़े हुए। शैल नहीं है। शैल ने खाना नहीं खाया। और वह आराम से बैठे रहें, यह नहीं हो सकता। तभी कुछ याद आया। केदार बाबू बाहर जाते-जाते रुक गये। कहने लगे, "इधर मैं शैल की शादी की बात कर आया हूँ। आपने सदाव्रत के पिताजी के पास जाने को कहा था। मैं आज गया था।"

"उन्होंने क्या कहा?"

"उसके पिताजी घर पर नहीं थे, दिल्ली गये हैं। मैं तो सदाव्रत को बचपन से पढ़ा रहा हूँ। मुझे सभी जानते हैं। उसकी माँ से कहा। पूछ लिया—आपने तो शैल को देखा ही है, अब कहिये, वह आपको पसन्द है या नहीं?"

"सदाव्रत की माँ ने क्या कहा?"

"माँ को खूब पसन्द है। सोच रहा हूँ अगहन में शादी कर दूँ। आपका क्या कहना है? साग-सब्जी भी सस्ती होगी। नये-नये गोभी के फूल, मटर। मछली भी सस्ती हो जायेगी।"

फिर जरा रुककर कहा, "लेकिन एक बात है..."

"क्या?"

केदार बाबू ने कहा, "मेरी तो एक यही भतीजी है। इसकी शादी होते ही तो सारा झमेला खतम। फिर मुझे किस बात की चिन्ता! है न? जिधर दो पैर ले जायेंगे चला जाऊँगा। मैं और कुछ भी नहीं सोचूँगा। मैं अकेला इस हड्डिया के लिए कितना सोचूँ! न तो इतना जोर ही है, न अब उतनी ताकत रही है।"

कहकर बाहर जा रहे थे।

लेकिन अचानक दरवाजे पर गाड़ी के रुकने की आवाज सुनकर नजर उस ओर गयी। पहले तो समझ ही नहीं पाये। आँखें जैसे अटक गयी थीं. सदाव्रत की ही गाड़ी है न!

सचमुच सदाव्रत ही तो है!

सदाव्रत ने गाड़ी लाकर ठीक मन्मथ के घर के सामने खड़ी की। उसी के अन्दर शैल बैठी थी।

केदार बाबू हैरान रह गये। मन्मथ की माँ भी हैरान थी।

केदार बाबू से न रहा गया। चिल्ला पड़े, "अरे, तू ? मैं तुझे ढूँढने ही तो थाने जा रहा था ! तुझे सदाव्रत कहाँ मिल गया ?"

□ □ □

इस शहर का यह भी एक रहस्य है। यहाँ आदमी आसानी से दूसरे आदमी को नहीं पहचान पाता। लेकिन एक बार पहचान लेने पर भूलना मुश्किल है। या तो पास खींच लेता है, या दूर ढकेल देता है। लेकिन छोड़ नहीं पाता। सुख-दुःख में लौट-लौटकर आता है। भौतिक रूप में सशरीर न आने पर भी कल्पना में आता है। आधी रात के वक्त नींद टूट जाने पर आता है, गरीब के अकेलेपन में आता है, कभी-कभी विलासिता के आधिक्य में भी आता है। यहाँ पर करोड़ों इन्सान है। कीड़ों की तरह, मक्खी-मच्छरों की तरह यहाँ इन्सान भिनभिना रहे है। इन्सान, इन्सान की छूत से बचने के लिए बेचैन है। फिर भी इसी इन्सान के लिए इन्सान के मन में पता नहीं क्या होता है। इन्सान लौट-फिरकर इसी इन्सान को चाहता है।

अरसे बाद मुलाक़ात हुई थी। फिर भी पहले बात कौन शुरू करे। काफी देर चुप रहने के बाद पहले सदाव्रत ही बोला। जैसे पहले बात शुरू करने का कर्तव्य उसी का था।

सदाव्रत ने पूछा, "कहाँ गयी थी ?"

शैल चुप रही। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

"सच बतलाओ तो, कहाँ गयी थी ? उस दिन मन्मथ आया था। कह रहा था कि मास्टर साहब ने फिर से घूमना-फिरना शुरू कर दिया है।"

इस पर शैल ने कहा, "हाँ।"

"लेकिन तुम रोक नहीं सकती हो ? मैं तो कितने ही दिनों से देख रहा हूँ, लेकिन मेरे अपने भी तो झमेले हैं। मेरी अपनी प्रॉब्लमें भी तो हो सकती है। मैं क्या-क्या देखूँ, तुम्हीं बतलाओ ! कितने ही दिन से रात को नींद भी नहीं आती।"

शैल जैसे चुप थी, वैसे ही रही।

सदाव्रत कहने लगा, "बचपन में और भी एक बार इसी तरह बेचैन हो गया था। किसी ने दिमाग में बैठा दिया था कि मैं अपने माँ-बाप का सगा लड़का नहीं हूँ। उन दिनों मैं कितना बेचैन रहा !···बाद में अचानक एक दिन नौकरी मिल गयी। मोटी तनख्वाह। लेकिन इस नौकरी ने भी जैसे अचानक सब-कुछ उलट-पुलट दिया। सभी मुझसे जलने लगे।"

शैल ने अचानक टोका, "लेकिन आप मुझसे यह सब क्यों कह रहे हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "अगर तुम्हीं से न कहूँ तो किससे कहूँ ? मेरी बात कौन सुनेगा ? यह सब सुनाने के लिए मैं किसे खोजूँ !"

इसके बाद जरा देर रुककर फिर कहा, "तुम लोगों को लगता होगा, मैं बड़े आराम से हूँ। लेकिन सचमुच अगर सुख रह पाता ! जिस तरह ऑफिस के लिए ऑफिसर लोग नौकरी करते हैं, क्लब जाते हैं, ड्रिंक करते हैं, शादी करते हैं और पहली तारीख को गाड़ी में आकर तनख्वाह ले जाते हैं, उसी तरह अगर मैं भी दिन काट पाता ! लेकिन शायद यह सुख मुझे कभी भी नसीब नहीं होगा।"

"लेकिन यह सब मुझे सुनाकर आपका क्या फायदा है ?"

"फायदा ?"

सदाव्रत ने एक बार शैल की ओर ताका। "फायदा कुछ भी नहीं है मैंने किसी से कभी दिलासा नहीं चाही, न मिली ही। यह भी न सोचना कि यह सब तुम्हारी सहानुभूति पाने के लिए कह रहा हूँ। इन्सान को कोई अपने मन की बात सुननेवाला चाहिए, बात करनेवाला चाहिए।"

शैल ने कहा, "आपका खयाल है मेरी बात सुननेवाला कोई मौजूद है ?"

"तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी बात है ?"

शैल ने उसी तरह सामने की ओर देखते हुए कहा, "मेरी भी तो मुश्किलें हो सकती हैं, समस्याएँ हो सकती हैं। मुझे भी तो रात को नींद नहीं आ सकती है। मैं भी तो आखिर इन्सान हूँ।"

सदाव्रत गाड़ी चलाते-चलाते चौंक उठा। मुँह घुमाकर बोला, "सच, मेरी तरह तुम्हें भी रात को नींद नहीं आती है ?"

शैल चुप रही। सदाव्रत ने भी फिर कोई सवाल नहीं किया। गाड़ी घूमकर दूसरी सड़क पर आ पहुँची थी। शैल ने कहा, "आपको और तकलीफ नहीं करनी होगी। मैं रास्ता पहचान रही हूँ। मुझे यहीं उतार दीजिए।"

शैल की बात को अनसुनी करके सदाव्रत गाड़ी ड्राइव करता रहा।

"उतार दीजिए !"

ही है।"

"लेकिन मुझे घर तक पहुँचाकर आपका क्या फायदा ?"

सदाव्रत गाडी ड्राइव करता रहा। उसने शैल की बात का कोई जवाब नही दिया।

"कहिये न, आपका क्या फायदा ?" शैल ने फिर पूछा।

"जरा देर पहले ही तुम्हे बतलाया है। मेरे कितने ही झमेले हैं। मैं कितना बेचैन हूँ। उनमें से कुछ का तुम्हे भी पता है। कुछ अखबारों में भी पढा होगा। सब-कुछ साफ-साफ कहने लायक फिलहाल मेरे मन की हालत भी नही है।"

"लेकिन आप सोचते है, क्या मेरी भी वह हालत है ?"

"फिर भी मेरे साथ तुम्हारी क्या तुलना ?"

"हर कोई अपने दु ख को बड़ा मानता है, दुनिया का यही कायदा है। आपके तो फिर भी माँ-बाप हैं। आपके हाथ मे अच्छी नौकरी भी है। आपके लिए तो फिर भी कुछ करने को है, लेकिन मैं क्या करूँ ? आप मर्द ठहरे, जहाँ चाहें जा-आ सकते हैं। आपके पास कुछ नही तो रुपया तो है। आप अपनी मर्जी से जिसे चाहे दान भी दे सकते हैं। आप आजाद हैं। लेकिन मैं ? एक बार मेरे बारे मे भी सोचिये न !"

सदाव्रत चुपचाप सुनता रहा।

"आप शुरु से माँ-बाप के लाड़-प्यार में पले हैं। स्कूल और कॉलिज में दोस्तों के साथ रहे हैं। इच्छा होने पर झगड़ा किया है, जिद की है। जरूरत होने पर गाड़ी लेकर निकल पड़े हैं। और मैं ? इन पागल काका को लिये किस तरह दिन गुजार रही हूँ, एक बार यदि सोच पाते !"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखा। चेहरा काफी भारी-भारी-सा लग रहा था, आँखें डबडबा आयी थीं।

"आज सुबह प्रतिज्ञा करके निकली थी, जैसे भी हो, जहाँ भी हो, आज कोई घर ठीक करके ही लौटूँगी। लेकिन मैं भी क्या कोई आदमी हूँ, मेरी प्रतिज्ञा !"

"बेहाला क्या इसीलिए गयी थी ?"

शैल ने कोई जवाब नहीं दिया।

"लेकिन कलकत्ता मे खाली मकान मिलना क्या इतना आसान काम समझती हो ? तुम किस बूते पर इतनी दूर गयी थीं, बोलो ? अगर कोई गड़बड़ हो जाती ?"

शैल चुप रही।

"और फिर तुमसे मकान ढूँढने को कहा किसने ? मन्मथ के यहाँ तुम्हें क्या कमी है ? अलग घर लेकर रहने पर तुम लोगों की देखभाल कौन करेगा ? मास्टर साहब तो सारा दिन बाहर घूमेंगे। तुम अकेली पड़ी-पड़ी घर में क्या करोगी ? फिर से क्या वही बागमारी जैसा तमाशा करना चाहती हो ?"

"लेकिन इस तरह आखिर कितने दिन जिन्दा रहा जा सकता है ?"

"मरना तो आसान काम है। एकदम आसान काम। वह तो सभी कर सकते है। जीना कितने लोगों को आता है ! कलकत्ता के कितने लोग सच-मुच जिन्दा रहते है, कहो ?"

"लेकिन मेरी-जैसी हालत होने पर दूसरा रास्ता ही क्या हो सकता है ?"

"रास्ते बहुत-से है। जो जीने का रास्ता नही जानते सिर्फ वे ही लोग मरना चाहते हैं। तुम जरा मेरी ओर देखो। मैं कैसे जी रहा हूँ ?"

शैल ने सिर नीचा किये कहा, "आप ? आपके पास क्या नहीं है? आपके पास जो है, वह सब अगर मेरे पास भी होता ?"

"तुम्हारे पास सब-कुछ है। काका हैं, मन्मथ है, मैं हूँ।"

"अच्छा, अब बन्द करिये ! घर आ गया है।"

सचमुच घर आ चुका था। ब्रेक लगाकर सदाव्रत ने गाड़ी रोक दी।

केदार बाबू बाहर खड़े थे। शैल को देखते ही बोले, "अरे, तू ? तेरा पता लगाने ही तो मैं थाने जा रहा था ! तुझे सदाव्रत कहाँ मिल गया ?"

तब तक सदाव्रत भी उतर चुका था।

केदार बाबू ने सदाव्रत की ओर देखते हुए कहा, "मैं तो तुम्हारे ही घर से आ रहा हूँ। तुम्हारी माँ से सारी बात पक्की कर आया हूँ।"

सदाव्रत समझ नही पाया। उसने पूछा, "कौन-सी बात ?"

"तुम्हारी शादी की बात। तुम्हारी माँ को शैल खूब पसन्द है। सोच रहा हूँ अगहन का महीना ठीक रहेगा। साग-सब्जी सस्ती हो जायेगी। नये-नये फूलगोभी भी आयेंगे···"

पूरे हाईकोर्ट में सन्नाटा छा गया। इन्हीं धर्मावतार महोदय ने एक दिन वॉरेन हैस्टिंग्स के मामले पर विचार किया था। महाराज नन्दकुमार का विचार किया था। इसी तरह धीरे-धीरे यह न्यायदण्ड महात्मा गांधी, देशबन्धु, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, सुभाषचन्द्र बोस के ऊपर से होता हुआ गुज़र गया। इसी न्याय के लिए एक दिन बंगाल के खुदीराम, गोपीनाथ वगैरह ने जान दी। उनके बलिदान के बदले में जो आज़ादी मिली है, वह आज़ादी भी जैसे आज परीक्षा की कसौटी पर है। एकदम अग्नि-परीक्षा। इंडिया से पाप निकाल बाहर करना ही होगा। पापी को सज़ा मिलनी ही चाहिए। कमी रहेगी, लेकिन कोई शिकायत नहीं कर सकता। शिकायत करनी है तो शान्ति से करो। विद्रोह करोगे तो न्यायदण्ड के सामने तुम्हें झुकना ही होगा। ज़रूरत पड़ने पर अपना सिर भी देना होगा।

एक-एक गवाह आता था और इतिहास का एक-एक पेज उलट रहा था। कलकत्ता की यह नियॉन लाइट, गांधीघाट, राजभवन, इसी कलकत्ता की साड़ी, गहने, गाड़ी, ऐश्वर्य, इस कलकत्ता के रँगे हुए चेहरे में से जैसे एक और कलकत्ता उभर रहा था। एक के बाद एक तसवीर उभरती आ रही थी। उस कलकत्ता के फाइव-ईयर-प्लान में ब्लफ़ नहीं है। उस कलकत्ता के भले आदमियों के लड़कों के लिए घर में जगह नहीं है। इसलिए मुहल्ले में किराये का मकान लेकर संस्कृति-संघ बनाते हैं। लड़कियों को नज़दीक पाने के लिए ड्रामेटिक क्लब बनाते हैं। वहाँ थोड़ी देर के लिए शंभू वगैरह जैसे अफ़ीम खाकर ज़िन्दगी का सारा स्वाद भूल जाते हैं। उस कलकत्ता में विनय की तरह के लड़के शादी नहीं कर पाते, क्योंकि उन्हें नौकरी नहीं मिलती। शादी नहीं करते इसलिए बस की भीड़ में खड़े रहते हैं, जिससे लड़कियों के बदन से रगड़ खायें। इस कलकत्ता के जवान लड़के सिनेमा के सामने क्यू लगाते हैं और घंटों बैठकर ताश खेलते हैं। ये ही लोग रात बिताने दूसरे इलाकों में जाते हैं, जहाँ आदमी का लालच और उसकी लालसा अजगर की तरह मुँह फाड़े जैसे सभी को निगलने के लिए तैयार बैठी है; उस कलकत्ता में पति-पुत्र और लड़के-लड़कियों को घर में छोड़कर, गुलाबी वगैरह पद्मरानी के फ्लैट में धन्धा करने जाती हैं। कोर्ट में जो लोग हियरिंग सुनने जाते, वे रोज़ कलकत्ता के बारे में अफ़वाहें सुनते। जो उन लोगों ने नहीं देखा, वे लोग जो नहीं जानते, वही देखने और जानने के लिए बेचैन रहते हैं। और घर आकर छिः-छिः करते। कहते—छिः-छिः, यही है अपना कलकत्ता!

लड़ाई, झगड़ाई, मैनड़ा

कलकत्ता जैसे भाड़ में गया, जहन्नुम में गया ! लोगों का भाव ऐसा है। फिर भी सुनने में अच्छा नहीं लगता। अच्छा लगता है सुबह के अखबार में पहले पेज पर इसी कलकत्ता के लोगों की काली करतूतें पढ़ना। किस तरह पाकिस्तान से आयी एक शरणार्थी लड़की ऑकलैंड-हाउस के बड़े बाबू के चक्कर में फँसकर, इसी शहर की छाती पर आर्टिस्ट बनी। भले लोगों में मिल गयी। उन्हीं भले लोगों के समाज ने किस तरह उस लड़की को इज्ज़त बख्शी ! उसी लड़की को जेल का मैडल इनाम में दिया। उसकी कहानी उपन्यास और नाटक की कहानी से भी ज्यादा अजीब है। सदाव्रत गुप्त, मनिला बोस, सुन्दरियाबाई, सेठ टगनलाल, पप-गनी, गुलाबी, जूथिका, यामन्ती, दुलाल सान्याल, मजय सरकार, शंभु, कालीपद किस तरह उससे बँधे हैं—यह और भी अनोखी कहानी है।

सभी गवाही दे रहे थे। सभी का कहना था—टगर को वे लोग नहीं जानते। वे लोग सिर्फ कुन्ती गुहा को जानते हैं।

कोई-कोई कहता—कुन्ती गुहा को ये लोग नहीं जानते, वे लोग तो टगर को जानते हैं।

जिसको लेकर यह सारा हंगामा मचा था, वह कुन्ती गुहा भूत की तरह अपराधी के कठघरे में खड़ी रहती थी। उसकी छाया में जैसे जहर था। वही जहर-भरा फन उठाकर जैसे वह सबसे कह रही थी—मैंने जो कुछ किया है, वह मुझ अकेली का कसूर नहीं है। मेरा कसूर, तुम्हारा भी कसूर है! इस कलकत्ता के एक-एक आदमी का पाप है! युद्ध-परवर्ती इंडिया के सभी का पाप है।

वही भूत जैसे यह भी कह रहा था—मुझे अकेली को सजा देने से काम नहीं चलेगा। मुझे अकेली को सजा देकर इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं होगा। तुम सभी को इस पाप का भागी बनना होगा। मेरे पापों के साथ तुम लोगों के पाप का भी विचार होगा। जिन लोगों के साथ मैं मिलती रही हूँ, जिन लोगों के साथ मैं सोयी हूँ, जिनके हाथ से मैंने पाप का रुपया लिया है, जिन्होंने मेरे हाथ में शराब का गिलास थमाया है, उन्हें भी बुलाओ। उन्हें सजा दिये बिना मुझे दी हुई सजा बेकार होगी। उन लोगों को सजा दिए बिना तुम्हारा सारा किया-धरा बेकार जायेगा।

उस बड़े और पुराने हाईकोर्ट में जैसे और भी कितनी ही अशरीरी आत्माएँ आकर चुपचाप चक्कर काट रही हैं। एक कबूतर बरामदे में आकर गुटरू-गूँ की आवाज़ करके ज़रा देर के लिए सभी को चौंका देता है।

इकाई, दहाई, सैकड़ा

आसमान में दूर से आते एरोप्लेन की आवाज़ से गुम्बदवाला बड़ा हॉल जैसे गूंजने लगा था। इजलास में इससे पहले जितने लोगों को फाँसी की सज़ा हो चुकी है, सभी जैसे आकर कान लगाये बैठे रहते हैं। अब एक और आ रहा है। एक और आकर उनकी गिनती बढ़ा रहा है।

भूत ने कहा—क्यों, उन लोगों को भी बुलाओ जो लोग दिन-पर-दिन इन्सान के खाने में जहर मिला रहे हैं। दवाओं मे मिलावट कर रहे हैं। जो लोग इन्सान का खाना इन्सान को न दे, गढ़े में डाल रहे हैं। उन लोगों को भी बुलाओ जो जमीन, आसमान और समुद्र मे जहरीले बम गिराकर दुनिया का सर्वनाश करने पर तुले हैं। वे लोग कहाँ हैं, जो आज भी इसी शहर में, यहीं के क्लबों में, महाजाति सदन में, मैदान और चौरंगी के होटलों में छाती फुलाए घूम रहे हैं। वे सब बेकसूर हैं ! और मैं ही कसूर-वार हूँ ? तब किसके लिए हमारे देश के टुकड़े हुए ? किसके लिए हम लोग जानवरों की तरह स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर पड़े रहे ? किन लोगो की वजह से हमारी कॉलोनी जलकर राख हो गयी ? मेरे पिताजी की हत्या किसने की? मेरी बहन को चोरी करना किसने सिखलाया ? वे लोग कहाँ हैं ? उन लोगों के बिना आये, उन्हें सजा बिना मिले मेरा प्रायश्चित्त अधूरा रहेगा। बुलाओ, उन लोगों को बुलाओ !

अब सुन्दरियाबाई की बारी थी।

स्टैंडिंग-कौंसिल ने पूछा, "अच्छा, अगर तुमने मुजरिम को नही भेजा लेकिन और जिन लोगों को भेजा उनका नाम बतला सकती हो ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "उन लोगों के असली नाम बाद में बदल दिये जाते हैं। असली नाम नही रहते।"

"तुमने कहा था, तुम कभी चिट्ठी-पत्री नही लिखती। लेकिन यह किसकी चिट्ठी है ? अच्छी तरह से देखकर जवाब दो !"

कहकर सुन्दरियाबाई के हाथ में एक चिट्ठी दी।

सुन्दरियाबाई पहचान गयी। बोली, "हाँ, यह चिट्ठी मेरी ही है।"

"तब तो तुमने पहले जो कुछ कहा था, वह सब झूठ था ?"

"नहीं, झूठ नहीं, असल में इस चिट्ठी की बात मैं भूल गयी थी।"

"वैसे तुम चिट्ठी लिखती नहीं, इस एक चिट्ठी को छोड़कर और कभी कोई चिट्ठी नही लिखो, यह बात ठीक है ?"

"सच !"

"यह एक क्यों लिखी ?"

"मेरा रुपया बाकी था, इसलिए।"

"तुम्हारा कितना रुपया बाकी था ?"

"यही करीब चालीस हज़ार रुपये ! वह चालीस हजार रुपये देने में देर कर रहो थी।"

"तुम जानती हो, तुम्हारी इस गवाही पर तुम्हें सजा हो सकती है ?"

"मैं उसके लिए तैयार होकर ही आयी हूँ।"

"तुम्हें डर नहीं है ?"

"अब मुझे किस बात का डर ? मेरा है ही कौन ? अब तो मेरा जिन्दा रहना भी बेकार है।"

सदाव्रत चुपचाप बैठा सुन रहा था। सिर्फ़ सदाव्रत ही नहीं, उस-जैसे कितने ही लोग आये थे। ऑफिस छोड़कर शम्भू आया था। विनय आया था। कालीपद भी दिखलायी दे रहा था। और भी कितने ही जाने-पहचाने चेहरे दिखलायी दे रहे थे। अविनाश बाबू, बंकू बाबू वगैरह शिवप्रसाद बाबू के पैदाइशपता दोस्त भी आये थे। ये सब लोग रोज़ ही आते हैं। अखबार में इस केस के बारे में दो थोड़ी-सी खबर पढ़कर किसी का मन नहीं भरता। यहाँ आकर सब-कुछ अपनी आँखों देखना चाहते हैं। मुजरिम को भी यहाँ आकर देखा जा सकता है। इस छोकरी ने ही किया यह सब। हमारी नज़रों के सामने इस लड़की को लेकर इतना झमेला हो गया और हमें पता तक नहीं ! शिवप्रसाद बाबू तो देवता आदमी हैं। उनका लड़का इस मामले में ? कल का लड़का, कॉलिज में पढ़ता था। शर्मीला लड़का। शर्म के मारे हम लोगों से बात भी नहीं करता था। निगाह नीची किये रहता था। उसी की ये करतूतें !

"चालीस हज़ार रुपये मेरे लिए कुछ भी नहीं हैं। मेरा नुकसान उससे भी ज्यादा हुआ है।"

"क्या नुकसान ?"

"जो लोग लाखों रुपये का फ़ायदा कर रहे हैं, उन लोगों ने मेरा भाग मार लिया है।"

"कितना रुपया मार लिया ?"

"मेरा करीब डेढ़ लाख रुपया बाकी पड़ा है, वापस ... मालूम है वह अब नहीं मिलेगा।"

कुन्ती गुहा के वकील ने अचानक प्वाइंट अ... कोर्ट में सन्नाटा छा गया था। कुन्ती गुहा पत्थर

वह अब भी वैसे ही खड़ी थी। उसके भावों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। एक दिन वह इसी कलकत्ता को जीतने का बीड़ा उठाकर बाजार मे आयी थी। उसकी वह जीतने की इच्छा जैसे आज पूरी हुई। अब बतला देने का समय हो चुका है। मैं कसूरवार जरूर हूँ, लेकिन मेरे इस क़सूर के लिए कसूरवार तुम सब हो! मैं तुम लोगों से अलग नहीं हूँ। कलकत्ता शहर मे तुम लोगों ने अलिफ-लैला के जिस किस्से की रचना की है, वह मेरे, श्यामली और वन्दना के हाड-मांस और चर्बी से तैयार हुआ है। तुम लोगों की स्वस्थता के लिए ब्लड-बैंक मे हम लोगों का ही खून जमा है। लग जाय पता। सभी को पता लग जाय कि मैं अकेली नहीं हूँ। मुझ-जैसों को आगे करके यहाँ पर कितने ही मुझसे भी ज्यादा कसूरवार आदमी मौजूद हैं। मैंने सिर्फ़ एक एसिड-बल्ब फेंककर एक इन्सान की जान ले ली है। और तुम लोग रात-दिन लाखों एसिड-बल्ब फेंककर लाखों इन्सानों की जानें ले रहे हो। फिर भी तुम फरियादी और मैं मुजरिम !

"तुम्हें तो पता है कि मुजरिम अपने को बेकसूर कह रही है ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "पता है।"

"तुम्हें मालूम है, एसिड-बल्ब कहाँ बनाये जाते हैं ? कौन बनाता है?"

"नहीं !"

"तुम्हें मालूम है कि फरियादियों के मुख्य गवाह सदाव्रत गुप्त का मुजरिम के साथ कोई रिश्ता था या नहीं ?"

"नहीं !"

"तुम्हे मालूम है कि फरियादियों का मुख्य गवाह सदाव्रत गुप्त कभी पद्मरानी के फ्लैट में गया था या नहीं ?"

"मैं यह कैसे बतला सकती हूँ ?"

"तब इतने लोगों के रहते मुख्य गवाह के साथ जिस लड़की की शादी तय हो चुकी थी, उसका खून करने के पीछे क्या कारण हो सकता है ?"

"मुझे तो यह भी पता नहीं कि मुजरिम ने ही मारा है। ऐसा होने पर शायद कारण पता लगता।"

"तुम्हारे खयाल से क्या मुजरिम बेकसूर है ? उसने एसिड-बल्ब नहीं फेंका ?"

"मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। मुझे सिर्फ़ इतना मालूम है कि मुजरिम का कहना है कि वह बेकसूर है।"

"लेकिन जो लोग मुजरिम की तरह गिरे चरित्र के हैं, जो पैसे के लिए

अपनी देह भी बेच डालते हैं, उन लोगों के लिए ऐसे जुर्म करना क्या मुश्किल काम है ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "मुझे मालूम है, किसी भी आदमी के लिए कोई भी जुर्म करना मुश्किल नहीं है। इतने दिन धन्धा चलाने के बाद मैं इसी निश्चय पर पहुँची हूँ।"

"लेकिन क्या बंगाल के नारी-समाज ने इतने नीच काम के लिए मुजरिम को धिक्कारा नहीं ?"

"मुजरिम कौन है, पहले तो यही ठीक करिये !"

"उस मुजरिम को ढूंढ निकालने के लिए ही हम लोग यहाँ आये हैं।"

सुन्दरियाबाई ज़रा देर के लिए रुकी। फिर बोली, "आप लोग चाहे जितनी ही कोशिश करें, असली मुजरिम को नहीं पकड़ पायेंगे।"

स्टैंडिंग-कौंसिल ने साथ-ही-साथ पूछा, "क्यों ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "असली मुजरिम बहुत ही चालाक और बुद्धिमान आदमी है।"

"कौन है वह ? उसका नाम क्या है ?"

सुन्दरियाबाई जैसे कुछ कहते-कहते हिचक रही थी।

"बोलो, क्या है उसका नाम ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "उसका नाम है शिवप्रसाद गुप्त।"

"तुम कहती क्या हो ?"

सुन्दरियाबाई का चेहरा पत्थर की तरह कठोर और भावहीन हो गया था।

"हाँ, ठीक ही कह रही हूँ। नाम सुन रखिये। उनका नाम शिवप्रसाद गुप्त है। पद्मरानी के फ़्लैट के असली मालिक वही हैं। उनका बँगला, गाड़ी, ज़मीन का धन्धा, कांग्रेस, दिल्ली, खद्दर, इस सबके पीछे पद्मरानी का फ़्लैट ही है।"

अचानक जैसे पूरे हाईकोर्ट में सन्नाटा छा गया। हाईकोर्ट में उन लोगों के अलावा और भी जितनी अदृश्य आत्माएँ फ़ैसला सुनने के लिए आयी थीं, चौंक उठीं। वॉरेन हैस्टिंग्स, महाराज नन्दकुमार, महात्मा गांधी, देशबन्धु, अबुल कलाम आज़ाद, सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम और गोपीनाथ—सभी आर्तनाद कर उठे। इंडिया के सारे लोगों की सारी कोशिशें, सारी चिन्ताएँ १९६२ के आते ही रातोंरात धूल में मिल गयीं।

□ □ □

आदमी के मन की बात जहाँ दूसरे की इच्छा पर छाना चाहती है, दूसरे के भरोसे रहती है, तब उस बात का अपना निजी अस्तित्व नहीं रहता। तब वह पराधीन हो जाती है। इतने दिन तक सदाव्रत के साथ भी यही बात थी। ऊपर से उसे लगता कि वह आज़ाद है। अपनी मर्ज़ी के मुताबिक वह जो चाहे कर सकता है। वह अपने को जो सोचता है, वही है। वह चाहता था सभी का भला हो। वह चाहता था कि कलकत्ता के सारे लोगों को भरपेट खाना मिले। वह चाहता था इन्सान-इन्सान के बीच आपस में कोई फ़र्क न हो। जिस तरह वह सभी का अपना होना चाहता है, दूसरे भी ठीक उसी तरह उसके हों। लेकिन शायद उसे पता नहीं था कि उसका यह चाहना ही झूठ है, उसकी यह इच्छा बनावटी है। उसे यह भी मालूम नहीं था कि इस इच्छा के पीछे और भी कितने ही लोगों की इच्छाएँ काम कर रही हैं। जब वह अपने को आज़ाद कहता था तब वह सचमुच दूसरों का गुलाम था। उसे इस बात का आभास ही नहीं हुआ। उसे इतने दिन बाद जैसे होश आया।

कितनी बार उसने विनय को उपदेश दिये, शम्भू से भी बहुत-कुछ कहा। मन्मथ, शैल सभी को उसने अपनी इच्छा का गुलाम बनाना चाहा। कलकत्ता ही क्यों, सारे इंडिया को ही उसने अपने मन के मुताबिक बनाना चाहा।

सदाव्रत बचपन से ही कहता आया है—जिस रास्ते से सभी गुज़र रहे हैं, वह गलत है। मेरा रास्ता ही ठीक है। साथ ही पिताजी का रास्ता ही ठीक है। मेरे मास्टर साहब केदार बाबू का रास्ता ही ठीक है। दुनिया के सारे इन्सानों की इच्छा को हम लोगों की इच्छा के साथ मिलाना होगा, तभी सबका फायदा है। इसी में सबकी भलाई है।

लेकिन आज पता लगा कि उसका सोचना गलत है। उसकी इतने दिन की सारी कोशिशें बेकार गयीं। वह खुद भी जैसे झूठ है, बनावटी है।

शाम होते-होते कोर्ट खाली हो गया था। लेकिन कोई उसे देखे, इसके पहले ही सदाव्रत सड़क पर निकल आया। हज़ारों-लाखों आदमियों की भीड़ थी। सदाव्रत को उस भीड़ में खो जाना अच्छा लग रहा था। जो भीड़ उसे पहचानती नहीं है, जो भीड़ उसे मानती नहीं है, वही भीड़। उसी भीड़ में अपने-आपको छिपाकर जैसे सदाव्रत ने अपनी जान बचायी।

"अरे, वह देखो, शिवप्रसाद गुप्त का लड़का !"

"अरे, वह भागा जा रहा है! पकड़ो उसे !"

सदाव्रत को लगा जैसे सारा कलकत्ता उसका पीछा कर रहा है। सारा भारत, सारी दुनिया जैसे उसके पीछे दौड़ रही थी। सदाव्रत ने अपनी गाड़ी का ऐक्सीलेटर और भी ज़ोर से दबा दिया। और स्पीड। और तेज़ी। और भी जल्दी।

ज़रा-सी देर में जैसे पूरा कलकत्ता ज़हर हो गया था। तब वह कौन है ? उसके अस्तित्व का आखिरी छोर कहाँ है ? वह क्या उस पद्मरानी के फ़्लैट की कमाई से पली सन्तान है ? उसकी ज़िन्दगी के हर दिन में, हर सेकंड में, उसकी नस-नस में पद्मरानी के फ्लैट का ज़हर क्या इस तरह मिला हुआ है ? यह गुलाबी, यह दुलारी, यह वासन्ती, यह कुन्ती गुहा, टगर और पद्मरानी। जिन-जिन ने कोर्ट में गवाही दी है, जिन्होंने कलकत्ता के लोगों की भीतरी बातों का पर्दाफ़ाश किया है, सदाव्रत के बनाने में भी क्या उन्हीं लोगों का हाथ है ? उन्होंने ही क्या अपने पाप और अभिशाप से उसे बनाया है ? जिनके खिलाफ़ उसे शिकायत है, वे ही लोग क्या उसे इतने दिन से पाल रहे हैं ?

अदालत में सुन्दरियाबाई का जवाब सुनते ही सब-के-सब जैसे सन्नाटे में आ गये। सिर्फ़ सदाव्रत ही क्यों ? सारे कलकत्ता के लोग उस दिन मौजूद थे। इतने दिन से वे लोग कलेजा थामे इस बात की राह देख रहे थे, आखिर मामला पहुँचता कहाँ है ? कितनी दूर जाता है ? कलकत्ता के किस बड़े आदमी के 'स्लीपिंग रूम' में जाकर रुकता है ! आखिर में उन्हें मिला भी वही। खुश भी हुए। खुश हुए और हैरान भी हुए।

सदाव्रत ने गाड़ी की स्पीड और भी बढ़ा दी।

सारा कलकत्ता, सारा इंडिया, सारी दुनिया और सारी सभ्यता को छोड़कर सदाव्रत विनाश की ओर बढ़ने लगा। शायद अपने छुटकारे के लिए बढ़ने लगा। हो सकता है, अपने मन की गहराई की ओर बढ़ रहा था। हाईकोर्ट का इलाका पार कर गाड़ी हैस्टिंग्स स्ट्रीट पर दौड़ने लगी। हैस्टिंग्स स्ट्रीट पार कर बहूबाजार, फिर कॉलेज स्ट्रीट। दायीं ओर ही शंभू वगैरह का क्लब है। आज वहाँ पर गर्मागर्म बहस छिड़ेगी।

शंभू के दुलाल दा की आवाज़ भारी होगी। कहेगा, "तुम लोगों से मैंने कहा था न !"

क्या कहा था, किसी को इसकी याद नहीं दिलानी होगी। सभी को मालूम हो जायेगा। शंभू का दोस्त सदाव्रत उनसे भी नीचे दर्जे का लड़का है। सभी को पता लगेगा कि खद्दर और अपनी देश-सेवा के पीछे शिवप्रसाद

[illegible]

"लड़ाई शुरू हो गयी !" [illegible]

[illegible] कैसी लड़ाई ? किस बात की ? [illegible]

[illegible] १९३९ में भी एक बार यह इसी तरह [illegible] किया था।

[illegible] लड़ाई की खबर देखकर [illegible]

[illegible] लड़ाई फिर से कब शुरू होगी ? लड़ाई हो तो

[illegible] चार पैसे कमा लें।

"लड़ाई शुरू हो गयी !"

अखबारवाला गले की पूरी ताकत से चिल्ला रहा था। सिर्फ़ एक ही नहीं, हर मुहल्ले, हर मोड़, हर नुक्कड़ पर अखबारवाले चिल्ला रहे थे। काफ़ी दिनों बाद मौका मिला है। पिछली लड़ाई में जो लोग फ़ायदा नहीं उठा पाये थे, अब उनका नम्बर था। कुछ भी खरीदकर रख लो। कीमतें बढ़ जाने पर कुछ दिन बाद बेच देना। खूब प्रॉफ़िट होगा।

सारे शहर में एक ही बात। फिर लड़ाई ! फिर सायरन बजेंगे ! बम गिरेंगे ! फिर से ए० आर० पी०, सिविक-गार्ड ! फिर से चावल का भाव बढ़ेगा। अकाल पड़ेगा। सब-कुछ वैसा ही होगा जैसा १९३९ में हुआ था।

हर मोड़ पर लोगों की भीड़ जमा थी। देश की गम्भीर स्थिति पर विचार कर रही थी। अब क्या होगा ? सचमुच क्या फिर से लड़ाई शुरू हो गयी है ?

गाड़ी रोककर सदाव्रत ने अखबार खरीदा।

अब की यूरोप नहीं, अब की एशिया का नम्बर है। यूरोप के लोगों के घाव अभी सूखे भी नहीं हैं। वे लोग शायद आज भी मन-ही-मन डरते हैं। लेकिन हम ? हम लोगों की समझ में नहीं आता। हमने सिर्फ़ अकाल देखे हैं, हम लोगों ने सिर्फ़ साम्प्रदायिक दंगे देखे हैं। हम लोगों को सिर्फ़ इत

ही पता है कि लडाई शुरू होने पर चीजों की कीमतें बढती हैं। लेकिन उन लोगों को पता है कि लडाई के माने ही मौत है। उन्हें पता है लड़ाई के माने विनाश !

सदाव्रत गाडी के अन्दर बैठा-बैठा ही पढने लगा। पूरे पचास डिवीजन सिपाही अचानक इंडिया के बॉर्डर-गार्डों के ऊपर रातों-रात टूट पडे है। नेफा, लद्दाख, पूर्वी-पश्चिमी सीमान्त के पूरे इलाके पर चाइना ने एक साथ हमला किया है।

पढ़ते-पढते सदाव्रत के मन को न जाने कैसी एक तसल्ली-सी मिली। मन के अन्दर जितना भी दु:ख, क्षोभ और जितनी जलन भरी थी, धीरे-धीरे ठंडी पड रही थी। तभी उसने बाहर सड़क की ओर देखा। भीड अभी छटी नही थी। झुंड-के-झुंड लोग अभी तक भयभीत हुए बातें कर रहे थे। बस-ट्राम, हर चीज जैसे किसी के इशारे पर रुक गये थे। यह तो कोई ज्यादा दूर नही है। यह तो बर्मा नही है, ईजिप्ट भी नही है। बर्लिन, लेनिनग्राद, पेरिस या लन्दन का मामला नही है। यह तो एकदम दरवाजे पर है। आसाम ! नेफ़ा से आसाम आने में देर ही कितनी लगती है ? कुछ पहाडियों की ही तो बात है। पहाडियां पार कर तेजपुर और फिर आसाम। सदाव्रत ने गाड़ी को घर की ओर घुमा लिया।

केदार बाबू की याद आयी। शैल और मन्मथ की याद आयी।

केदार बाबू से वायदा कर आया था कि कोर्ट मे लौटते समय मिलता हुआ जायेगा। लेकिन···! लेकिन जैसे सोचने मे भी शर्म आ रही थी। किस मुँह से जायेगा वहाँ ! क्या कहेगा ? उन लोगों के सामने कौन-सा मुँह लेकर खडा होगा ? अगर कोई पूछ बैठे ? अगर कोई उसकी अवहेलना कर दे ? खबर तो अब तक जरूर ही पहुँच चुकी होगी। सब लोगों को पता लग चुका होगा।

शशिपद बाबू उसे देखकर कुछ न भी कहे, लेकिन मास्टर साहब ? वह मास्टर साहब के सामने नजर कैसे उठायेगा ? केदार बाबू शायद सीधे पूछ बैठें, 'क्यों, जो सुन रहा हूँ क्या ठीक है ?'

सिर जैसे चकराने लगा था। केदार बाबू के सामने कुछ भी कह सकता है, और हो सकता है वह विश्वास भी कर ले, लेकिन खुद को कैसे समझाये ?

"सदाव्रत दा !"

अचानक जैसे कलकत्ता शहर ने उसे पीछे से पुकारा।

"सदाव्रत दा !"

तब तक घर के पास आ पहुँचा था। गाड़ी रोककर सदाव्रत ने पीछे देखा। मन्मथ था।

मन्मथ दौड़ते-दौड़ते आ रहा था।

"मैं तो तुम्हारे घर से ही आ रहा हूँ। तुम नहीं थे, इसलिए वापस जा रहा था।"

सदाव्रत गूंगे की तरह मन्मथ की ओर ताकने लगा। आज जैसे जवाब देने को उसके पास कुछ भी नहीं था।

"तुमने तो कहा था, कोर्ट से हमारे यहाँ आओगे। काफी देर तक जब नहीं आये तो बुलाने आया। मास्टर साहब ने मुझे भेजा है।"

"लेकिन मैं इस समय तो जा नहीं पाऊँगा।"

मन्मथ ने कहा, "मास्टर साहब तुम्हारे लिए बैठे हैं। पिताजी भी। सभी तुम्हारी राह देख रहे हैं।"

"लेकिन आखिर क्यों ? मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा ? मेरे न जाने से क्या तुम लोगों के सारे काम रुक जायेंगे ? मुझे तुम लोग बार-बार क्यों बुलाते हो ? मैं कौन हूँ ? और मुझे क्या अपना काम-धन्धा नहीं है ? मेरे अपने झमेले नहीं है ?"

सदाव्रत खुद भी जैसे हैरान रह गया। इतनी कड़ी बात ! मन्मथ भी हैरान था। सदाव्रत ने पहले तो कभी इस तरह का जवाब नहीं दिया।

"अच्छा तो मैं चलूँ।" कहकर मन्मथ चलने लगा।

सदाव्रत ने पुकारा, "सुनो !"

फिर मन्मथ के लौटते ही सदाव्रत ने कहा, "पता नहीं तुमने क्या सोचा होगा। लेकिन शायद तुम्हें पता नहीं है, मैं किस हालत में गुजर रहा हूँ।"

"मुझे मालूम है।"

"तुम कितना जानते हो ! बाहरी आदमियों को क्या पता !"

"आजकल तो सभी को पता चल चुका है।"

"पता चल चुका है ?"

"अखबार में तो सभी-कुछ छप रहा है—सभी पढ़ रहे हैं, तरह-तरह की बातें कर रहे हैं।"

"क्या बातें कर रहे हैं ?"

"सभी-कुछ। कहते हैं, इन शरणार्थियों ने आकर हम लोगों का सब

कुछ खराब कर दिया—थिएटर और ड्रामों के नाम पर इस तरह के सामाजिक पाप चल रहे हैं…"

"सब वाहियात बातें हैं !"

मन्मथ जैसे चौंक उठा।

"और हम लोगों का कोई कसूर नहीं है ? हम लोग जो भले आदमी कहकर अपना परिचय देते हैं ? तुम्हें पता नहीं है, इसलिए तुम उन्हें बुरा कह रहे हो। सबसे ज्यादा दोष तो खुद मेरा अपना है।"

"तुम्हारा ?"

"हाँ, मेरा। कल सभी को पता लग जायेगा। सभी जानेंगे। तब कुन्ती गुहा को कोई भी दोष नहीं देगा। मुझे गाली देंगे। मन्मथ, दोष मेरा ही है। मैंने ही पाप किया है। कुन्ती गुहा का कोई कसूर नहीं है। मेरी वजह से ही मनिला बोम की जिन्दगी खराब हुई। कुन्ती गुहा का कन्विक्शन होने वाला है। उसकी बहन को सजा हो चुकी है। यह सब मेरी वजह से ही तो हुआ। इसकी जड़ में मैं ही तो हूँ।"

"लेकिन सदाव्रत दा, इसमें तुम्हारा क्या कसूर है, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा ?"

"तुम वह सब नहीं समझ पाओगे। इस वक्त मैं इससे ज्यादा समझा भी नहीं पाऊँगा। आज मैं कोर्ट से सीधा दूसरी ओर जा रहा था, सोच रहा था घर नहीं लौटूंगा। अचानक यह अखबार देखकर इरादा बदल गया। घर की ओर चला आया।"

मन्मथ ने धीरे-धीरे कहा, "इसीलिए तो मास्टर साहब ने तुम्हें बुलाया है। मास्टर साहब समझ गये हैं कि तुम्हें ऐसा कुछ होगा।"

"क्यों, मास्टर साहब ने कुछ सुना है क्या ? कोर्ट में जो कुछ हुआ आज उन्हें पता है ?"

"ऑफिस से आकर पिताजी ने सब-कुछ बतलाया।"

"सब बतलाया है ? सुन्दरियाबाई ने क्या-क्या कहा, सब-कुछ बतलाया है ? सुन्दरियाबाई ने किसका नाम लिया, उन्हें वह भी मालूम है ?"

"हाँ !"

सदाव्रत चीख पड़ा, "इस पर भी मुझे बुलाने का मतलब ? मेरा अपमान करने के लिए ? मुझे बुरा-भला कहने के लिए ?"

मन्मथ ने इतना ही कहा, "छि., सदाव्रत दा, तुम क्या कह रहे हो ?"

सदाव्रत फिर भी नहीं रुका।

"सब सुनकर भी उन्होंने मुझे क्यों बुलाया ? इस जिन्दगी में क्या कभी उन्हें मुँह दिखला पाऊँगा ? मैं क्या अब किसी से कह सकता हूँ कि मैं केदार बाबू का विद्यार्थी हूँ ? मास्टर साहब को मेरे ऊपर बड़ा घमण्ड था। आज उस घमण्ड को, उस गर्व को मैंने चूर-चूर कर दिया है।"

"ये सब बातें तुम मुझसे क्यों कह रहे हो, सदाव्रत दा ?"

सदाव्रत कहता रहा. "मन्मथ, तुम जाओ ! तुम्हें मैं ठीक से समझा नहीं पा रहा। तुम जाकर मास्टर साहब से कह दो, सदाव्रत मर गया है। अब कभी भी वह मास्टर साहब को अपनी शक्ल नहीं दिखलायेगा। मैंने उनका मुँह काला कर दिया है।"

अचानक बद्रीनाथ आ पहुँचा। घर के अन्दर ही से उसने छोटे बाबू की गाड़ी देख ली थी।

"छोटे बाबू, बाबू आ गये हैं !"

सुनकर सदाव्रत जैसे चौंक पड़ा। वह यह भी भूल गया कि मन्मथ सामने खड़ा है। जल्दी से गाड़ी स्टार्ट कर घर के सामने आ रुका।

□ □ □
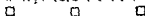
१९६२ के वे दिन। ठीक पूजा के बाद। चारों ओर की आबहवा में इंडिया ने जैसे अपने को भुला दिया था। शंभू वगैरह ड्रामा-थिएटर में मशगूल हैं। विनय जैसे सूट-टाई और शर्ट में निश्चिन्त हैं। मिस्टर बोस डालर कमाने के लिए परमिट की कोशिश में लगे हैं, केदार बाबू मनुष्य-जाति का पतन संशय की निगाहों से देख रहे हैं। पेंशन-होल्डर्स अपने डियर-नेस-एलाउंस के लिए परेशान हैं, और जो लोग वी० आई० पी० के नाम से जाने जाते हैं, वे हर महीने किसी फॉरेन-डेलीगेशन में जाने का बहाना ढूँढ रहे हैं। कभी खाद्य-समस्या पर, कभी मनुष्य-जाति की भलाई के लिए सभाएँ हो रही हैं, गर्मागर्म भाषणों से अखबारों की बिक्री बढ़ रही है। स्कूल-कॉलिज की परीक्षाओं में बेइन्साफ़ी और मनमानी हो रही है। साथ-ही-साथ एक नयी 'क्लास' का उदय हुआ है। वह है 'न्यू क्लास'। अब तक उसका कोई भी अस्तित्व नहीं था। कोई उन्हें जानता नहीं था। इतने दिन वे लोग मोटा खाकर, मोटा पहनकर देश-सेवा कर रहे थे। अब उन लोगों ने बँगले बनवा लिये हैं। गाड़ी खरीद ली है। बिना 'एयर-कंडीशन्ड' कमरे के उन्हें नींद नहीं आती। आज वे लोग वी० आई० पी० कहलाते हैं। इस 'न्यू क्लास' की सहायता के बिना किसी को परमिट नहीं मिल सकता। बिना इसकी सहायता से नौकरी, धन्धा, इंडस्ट्री, फैक्टरी कुछ भी नहीं हो

सकता। जबकि इनकी बेशुमार इन्कम कहाँ से होती है, कहाँ से इनके ठाट-बाट के लिए गाड़ी-बँगला, रेफ्रिजरेटर, रेडियोग्राम आता है, कोई नहीं जानता।

ऐसी ही हालत में एक दिन सभी ने अखबार में पढ़ा, पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर चाइना की पचास डिवीज़न फौजों ने इंडिया के बॉर्डर-गार्डों पर हमला कर दिया है। वार। लड़ाई। युद्ध।

दिल्ली से पंडित नेहरू ने लेक्चर दिया—"ह्वाट द चाइनीज़ मे हैव इन माइण्ड इज़ एनिबाडी'ज गेस। वी आर एट द क्रॉस रोड्स ऑफ हिस्ट्री एण्ड आर फ़ेसिंग ग्रेट हिस्टॉरिकल प्रॉब्लम्स ऑन ह्विच डिपेण्ड्स अवर फ्यूचर। वी हैव टु बी बिग इन माइण्ड, बिग इन विजन एण्ड बिग इन *डिटर्मिनेशन*।"

सदाव्रत के मन में भी उस दिन यही बात आयी। हम लोग काफी छोटे हो गये थे। हम लोग बहुत-सी छोटी-छोटी बातों में मशगूल हो गये थे। उसके मन में यह बात काफी दिन पहले आयी थी। उसे लगता था शंभू ने अपने ध्येय को बहुत ही छोटा बना रखा है। विनय कितनी छोटी-सी चीज में अपने को भूला हुआ है!

सदाव्रत के पैदा होने से पहले एक दिन ऐसा भी था जब भारत के लोगों के दिन इस तरह से नहीं कटते थे। उस समय सामने एक महान् आदर्श था। भारत के लोग ही तब इग्लैंड और अमेरिका जाते। चाइना, जापान, जावा और सुमात्रा गये। वह जाना था राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का। वह रासबिहारी बोस, *सावरकर और महात्मा गांधी का जाना था—सुभाष बोस का जाना था।* आजकल की तरह स्टेट गेस्ट या स्टेट डेलीगेशन होकर जाना नहीं था।

यह जैसे अच्छा ही हुआ।

शिवप्रसाद गुप्त का भी यही कहना था। चाइना के मामले पर इंडिया के सारे लोग जब पंडित नेहरू की ओर आस लगाये बैठे थे, तब शिवप्रसाद गुप्त का कहना था—यह अच्छा ही हुआ।

मिस्टर बोस ने उस ओर से टेलीफोन पर कहा, "आपने कोर्ट की प्रोसीडिंग्स सुनी क्या?"

"नहीं!"

"पता है सुन्दरियाबाई ने क्या कहा है? सुन्दरियाबाई कौन है? आप उसे जानते हैं? यू नो हर?"

शिवप्रसाद बाबू हैरान रह गये। "कौन ? किसकी बात कर रहे हैं?"
"सुन्दरियाबाई ! आप उसे जानते हैं ?"
"सुन्दरियाबाई ?"
शिवप्रसाद बाबू सोचकर याद करने की कोशिश करने लगे।
फिर बोले, "नहीं तो !"
"लेकिन उसने तो आपके ऊपर एलिगेशन लगाया है कि आप ही पद्म-रानी के फ्लैट के ओनर हैं ? आप ही उसके मालिक हैं ?"
"पद्मरानी का फ्लैट ? इसके माने ? यह क्या बला है ?"
मिस्टर बोस ने कहा, "आपको नहीं मालूम ? वह एक ब्रोथल है ! वहीं की एक लड़की ने मनिला के ऊपर एसिड-बल्ब फेंका था !"
"ब्रोथल ? यानी वेश्याओं का चकला ? आप कह क्या रहे हैं ? मैं एक चकले का मालिक क्यों होने लगा ?"
"ट्रू ! मैं भी यही सोच रहा था। ह्वाट ए सिली थिंग ! आप ब्रोथल के ओनर क्यों होने लगे ? देखिए न पॉलिटिक्स कितनी गन्दी चीज है !"
शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "लेकिन इन बातों से डरने से तो काम नहीं चलेगा, मिस्टर बोस! इस तरह की बदनामियाँ हमारे सिर पर हमेशा रहेंगी, जब तक हम लोग सिंसियरली देश का काम करेंगे, यह सब होगा ही ! देखा नहीं, कृष्णमेनन को किस तरह कैबिनेट छोड़नी पड़ी ? उस पर कितने एलिगेशन्स थोपे गये ! लेकिन किया भी क्या जाये ! इन बातों के लिए देश का, अपनी कन्ट्री का काम तो नहीं छोड़ सकता।"
फिर ज़रा रुककर बोले, "मनिला का क्या हाल है ?"
"वही हाल है !"
"पुअर गर्ल ! रियली पुअर !"
इसके बाद चाइना की बात उठी। देश के बुरे दिन चल रहे हैं। चाइना के साथ इतनी दोस्ती बढ़ाकर नेहरूजी ने अच्छा नहीं किया। दिल्ली में मैं तो इसी झमेले में फँसा था। जनरल चौधरी को बुलाया गया है। लगता है, चीफ ऑफ द आर्मी स्टाफ उसे ही बनाया जायेगा। पूरी कैबिनेट नर्वस हो गयी है। एक्सटर्नल अफेयर्स मिनिस्ट्री काफी व्यस्त है। दुनिया की सारी पॉवर्स के पास चिट्ठी चली गयी है। नेहरू ने सभी को लिखा है। चाइनीज़ फौजें लोहित डिवीजन तक आ पहुँची हैं। अब की लगता है, बोमदीला उन लोगों के हाथ में जायेगा।
मिस्टर बोस ने पूछा, "आप सदाव्रत से मिले हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू—"नहीं। वह घर में नहीं है।"

"तब गया कहाँ ? कोर्ट से सीधे यहाँ आने की बात थी, अभी तक नहीं आया।"

"शायद पी० जी० हॉस्पिटल गया होगा ?"

"नहीं, वहाँ भी नहीं गया। मैं तो वहीं से आ रहा हूँ।"

तभी बद्रीनाथ ने आकर कहा, "छोटे बाबू आ गये।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे सुनिये, सदाव्रत आ गया। मैं ज़रा उससे बात करूँ। आपको फिर टेलीफ़ोन करूँगा। छोड़ रहा हूँ।"

□ □ □

उस दिन भी हियरिंग थी। कलकत्ता के हर कोने के लोग जैसे बेचैन हो उठे थे। मामला कहाँ से कहाँ पहुँच गया था। किसी की समझ में ही नहीं आ रहा था। हर मुहल्ले में एक ही बात। वैसे आजकल चर्चा का एक यही विषय नहीं था। इतने दिन सोने के बाद इंडिया के लोग जैसे हड़बड़ाकर जाग उठे थे। अब तक उन लोगों को पता नहीं था कि वे कहाँ खड़े हैं, उनके पैरों के नीचे क्या है, वे लोग कहाँ साँस ले रहे हैं, वे लोग किसके भरोसे जिन्दा हैं। लेकिन आज पता लग गया है। अब की बार पहाड़ और पर्वत पार कर एक कलंक ने उनके अतीत के गौरव को कलुषित कर दिया है।

सब लोग चन्दा दे रहे हैं।

सिर्फ़ चन्दा ही नहीं, ख़ून भी चाहिए। सोना, रुपया, चन्दा, कपड़े, तुम्हारे पास अपना कहने को जो कुछ भी है, सब दो। यह संकट सभी का है। यह अकेली कुन्ती गुहा का कलंक नहीं है। यह अकेली मनिला बोस की अकाल मृत्यु नहीं है। यह सिर्फ़ मिस्टर बोस का दुख नहीं है। यह संकट सभी का है। आज सभी कठघरे में खड़े अपराधी हैं। हर किसी को कहना होगा—मैं बेकसूर हूँ। हर किसी को न्यायाधीश महोदय के [illegible] हाज़िर होना पड़ेगा। बतलाना होगा कि उसने कोई कसूर [illegible]। दुनिया में अगर किसी पर तुमने अत्याचार किया हो, [illegible] यह भी शपथ खाकर कह दो कि तुमने कभी [illegible] अनिष्ट-कामना नहीं की है। तुमने अपने [illegible] अनिष्ट-कामना की है या नहीं। अपने स्वार्थ के [illegible] पर चोट की हो तो आज तुम्हें उसका पश्चाताप [illegible]

भारतीय गणतन्त्र की संसद् में प्रस्ताव

विद डीप ग्रेटिच्यूड दिम माइटी अपसर्ज अमग्स्ट ऑल सेक्शन्स ऑफ अवर पीपुल फॉर हार्नेसिंग ऑल अवर रिसोर्सेज टुवर्ड्स द ऑर्गनाइजेशन ऑफ़ एन ऑल आऊट एफर्ट टु मीट दिस ग्रेव नेशनल इमर्जेन्सी। द फ्लेम ऑफ लिबर्टी एण्ड सैक्रिफाइस हैज बीन किंडल्ड ए न्यू एण्ड ए फ्रेश डेडिकेशन हैज टेकन प्लेस टु द कॉज ऑफ इंडियन फ्रीडम एण्ड इन्टेग्रिटी।

केदार बाबू उस दिन अपने को नहीं रोक पाये। घर से सीधे सदाव्रत के पास चले आये।

बोले, "सदाव्रत, तुमने सुना कुछ?"

सदाव्रत सारी रात सो नहीं पाया। वह किस पर विश्वास करे? आज जैसे उसका अपना घर, आश्रय मिट चुका था।

शिवप्रसाद ने उसे बुलाया था। सदाव्रत जाकर चुपचाप सिर नीचा किये खड़ा हो गया था। बचपन से जिस शिवप्रसाद गुप्त को देखता आया है, आज वही जैसे दुबारा नये सिरे से सीख दे रहे थे। इतने दिनों वह कलकत्ता में नहीं थे। इसी बीच यह सब हो गया। उन्हें क्या एक काम रहता है? पूरे भारत की आजादी को इस वक्त खतरा है। इस समय इन छोटी-छोटी घरेलू बातों में फँसे रहना बड़ी शर्म की बात होगी। नेफ़ा में जब हमारे जवान आजादी के लिए मर रहे हैं, उस वक़्त किसके घर में आग लगी, किसने किसकी जेब काट ली, इन बातों को लेकर सदाव्रत इतना परेशान क्यों है! मनिला बोस का एक्सिडेंट, इंडिया के इस एक्सिडेंट के सामने न के बराबर है।

सदाव्रत ने पूछा, "लेकिन सुन्दरियाबाई ने जो एलिगेशन्स लगाये हैं, उसके बाद मैं मुँह भी नहीं खोल सकता।"

"लेकिन तुमसे मुँह खोलने को कहा किसने है?"

"मेरे मुँह न खोलने पर मुजरिम रिहा हो जायेगा। कुन्ती गुहा को सजा तो मिलनी ही चाहिए!"

"सजा देनेवाले तुम कौन हो?"

"और कौन होगा! मेरे ही एवीडेन्स पर उसका फाँसी होना-न-होना निर्भर करता है।"

सदाव्रत ने इससे पहले कभी पिताजी के सामने इतनी जोर से कोई बात नहीं कही थी।

"झूठ! आज जो इंडिया पर चाइना अटैक कर रहा है, उसके लिए कौन जिम्मेदार है?"

"हम सभी !"

"तब ? तब कुन्ती गुहा को फाँसी पर चढाकर अगर समाज का कुछ भला होता तो मुझे कोई आपत्ति नहीं थी ! उसे फाँसी पर चढ़ा दो न ! मुझे कुछ नही कहना। उससे अगर सोसाइटी का भला हो तो करो न !"

सदाव्रत की समझ में शिवप्रसाद गुप्त की बातें नही आ रही थी।

रात काफी गहरी हो आयी थी, फिर भी सदाव्रत को लग रहा था, इसका कोई-न-कोई रास्ता तो निकालना ही होगा।

"लेकिन, आपके अगेन्स्ट लगाये सारे एलिगेशन्स क्या झूठ हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू मुसकराये।

बोले, "मुझे पता था, तुम एक दिन यह सवाल करोगे। जरा देर पहले मिस्टर बोस भी यही पूछ रहे थे। लेकिन मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ—तुमने क्या विश्वास कर लिया था कि यह सब सच है ?"

सदाव्रत क्या कहे, ठीक नही कर पा रहा था।

"आदमी के लिए विश्वास ही सब-कुछ है। तुम अगर उस विश्वास को खो देते हो तो इससे बडा डाऊनफॉल दूसरा नही हो सकता। कल तो तुम्हारा एवीडेन्स है न ?"

"जी हाँ।"

"तब कोर्ट में तुम वही बात कहना कि इस लड़की ने ही मनिला बोस का खून किया है। इसी ने मनिला बोस के ऊपर एसिड-बल्ब फेंका था।"

"लोअर-कोर्ट मे तो मैंने यही कहा है।"

"और मुजरिम का कहना क्या है ?"

"कहती है, वह इनोसेंट है ! लेकिन मैंने साफ़-साफ़ देखा था, वही सवाल ! मैं उसे पहले से जानता हूँ। वह क्लबों मे नाटक करती है, यह भी मुझे पता था। लेकिन वह उस तरह की लडकी है, यह पता नही था।"

"इसका मतलब तुम उसे पहले से जानते थे ?"

"हाँ !"

"तब तो तुम भी कलप्रिट हो ! खुद कलप्रिट होकर एक दूसरे कलप्रिट के विरुद्ध बयान देने जा रहे हो ? अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकते हो, तुममें कोई कमजोरी नहीं है ? तुममे कोई 'वीकनेस' नही है ? तुम बेकसूर हो ?"

पिताजी के इस सवाल पर सदाव्रत जैसे गिटपिटा गया।

"पहले खुद को देखो, फिर दूसरे को ! जो आज फरियादी हैं, वे सभी

क्या देवता हैं ? सभी बेकसूर हैं ? 'लास्ट वार' के समय में जिन लोगों ने 'न्यूरेमबर्ग ट्रायल' का स्वाँग रचा, जिन्होंने हिटलर और मुसोलिनी का फैसला किया, जिन्होंने गोयरिंग और गोयबल्स को सजा सुनायी, वे सभी क्या बेकसूर हैं ?"

सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था।

"अगर कसूरवार नहीं हैं, तो आज सारी दुनिया में लड़ाई की आग क्यों भड़क रही है ? जो चीन आज भारत पर हमला कर रहा है, ब्रिटेन क्यों उसी को बम, बारूद और फाइटर प्लेन बेच रहा है ? इसका जवाब है तुम्हारे पास ?"

कहाँ की बात कहाँ आ पहुँची।

शिवप्रसाद बाबू कहने लगे, "इसका फैसला कौन करेगा ? आज जो न्याय है कल वही अन्याय साबित हो सकता है। आदमी वही है, लेकिन सौ साल पहले जो कानून, जो विधान ठीक था, आज वही बेठीक है। परसों जो खराब था, आज वही अच्छा माना जाता है। तब ?"

शिवप्रसाद बाबू ने और भी बहुत-कुछ कहा। दिमाग में सारी रात उनकी ही बातें घूम रही थीं।

"तब आपका कहना है, मैं झूठ बोलूँ ?"

"तुमसे झूठ बोलने को कौन कह रहा है ? तुम सब-कुछ पर से पर्दा हटा देना चाहते हो तो जो कहना है वही कहो। उससे आदमी की मर्यादा ऊपर उठती है या नहीं, तुम देखना। तुम खुद समझदार हो। एक दिन खुद भी फादर बनोगे। तब तुम्हारी जिम्मेदारी और ज्यादा होगी। इसलिए तुम्हें क्या करना चाहिए, तुम्हीं ठीक करो। मुझसे क्यों पूछते हो ?"

सदाव्रत अचानक कहने लगा, "लेकिन मैं ? फिर मैं कहाँ जाऊँगा ? मुजरिम के बेकसूर होने की गवाही देकर मैं कहाँ जाऊँगा ?"

"क्यों ? तुम जहाँ हो वहीं रहोगे !"

"लेकिन मुझे क्या वह अधिकार होगा ? मेरे पाँवों के नीचे की ज़मीन खिसक न जायेगी ? मेरे ऊपर की छत न धँस जायेगी ?"

लड़के की ओर हैरान नज़रों से देखते शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "तुम कह क्या रहे हो ?"

"मैं सिर ऊँचा किये कैसे रह पाऊँगा ? इन्सान की ओर निगाह उठाकर कैसे देखूँगा ? किस बूते पर दुनिया की धरती पर घूमूँगा ?"

शिवप्रसाद बाबू को और भी अजीब लगा।

"क्यों ? जैसे घूम रहे हो, जैसे मैं घूम रहा हूँ, तुम भी घूमना।"

"लेकिन अपने-आपको क्या कहकर समझाऊँगा ?"

"जिस तरह सब लोग अपने को समझाते है ! तुम क्या दुनिया मे अलग हो ? तुमसे पहले कोई पैदा नही हुआ ? कोई जिन्दा नही रहा ? मैं जिन्दा नही हूँ ? पंडित नेहरू जिन्दा नही हैं ?"

"इसके माने आप मानते हैं सुन्दरियाबाई ने जो कुछ कहा ठीक है ?"

अचानक टेलीफ़ोन की आवाज़ सुनकर शिवप्रसाद बाबू ने रिसीवर उठा लिया। इसके बाद ही शुरू हो गया चाइना, अमेरिका, सोवियत रूस और यू० के०। डिफेंस बोंड और गोल्ड कंट्रोल ऑर्डर के बीच सदाव्रत का सवाल कहाँ उड़ गया, कुछ पता नही चला।

रात को एक बार मन्दा कमरे मे आयी थी। पूछ रही थी, सदाव्रत ने खाना क्यो नहीं खाया ? सारी रात दिमाग में पिताजी की बातें चक्कर काटती रहीं। सुबह के वक़्त हल्की-सी नीद आयी। और तभी आ पहुँचे केदार बाबू।

केदार बाबू को देखकर सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। वह नहीं चाहता था कि केदार बाबू से उसकी मुलाक़ात हो। उठते ही वह इस घर से भाग जाना चाहता था। लेकिन अब केदार बाबू से बिना मिले चारा नही था।

केदार बाबू ने पूछा, "सदाव्रत, सुना न ?"

सदाव्रत पहले तो समझ ही नही पाया।

पूछा, "क्या ?"

"चाइना और भी बढ आया है। एकदम बोमदीला के पास ?"

सदाव्रत के कुछ कहने से पहले ही केदार बाबू कहने लगे, "मैंने कहा था न, कुछ-न-कुछ होगा ही। इस तरह नही चलेगा।"

सदाव्रत ने कोई जवाब नही दिया।

केदार बाबू कहते रहे, "आदमी अगर इतना गिरेगा तो उसका कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त तो होना ही चाहिए। तुम्हारा क्या खयाल है ?"

सदाव्रत फिर भी चुप रहा।

"तुम्हें क्या हुआ है ? तबीयत तो ठीक है ?"

"नही, मास्टर साहब ! आज मुझे कोर्ट ज़रा जल्दी जाना है। मुझे गवाह के कठघरे में खड़ा होना होगा। आज मेरा आख़िरी दिन है।"

"लेकिन तुम उस दिन तो नहीं आये ? तुमने शैल से वायदा किया

था कि आओगे ! शैल भी तुम्हारे लिए बैठी रही। हम लोग भी काफ़ी देर तक तुम्हारे लिए बैठे रहे।"

सदाव्रत ने अचानक पूछा, "अच्छा, एक बात पूछूं ?"

"कहो न !"

सदाव्रत ने कहा, "आदमी को जब वैराग्य होता है तो क्या लोग उसे पागल कहते है ?"

"क्यो ? यह बात क्यों पूछ रहे हो ?"

"कहिये न, कई दिन से यह बात सोच रहा हूँ। और किसी से पूछ भी नही सकता।"

सदाव्रत की बात सुनकर केदार बाबू भी जैसे हैरान रह गये। बोले, "क्यो, आखिर क्या हुआ, तुम्हे वैराग्य हो गया है क्या ?"

"मैं आपके साथ बात नही कर पाऊँगा, मास्टर साहब ! मेरा मन बड़ा खराब हो रहा है।"

"लेकिन कोर्ट के बाद तुम आ रहे हो न ?"

"नही !"

"नही माने ?"

"नही माने, मैं कहाँ रहूँगा, कुछ ठीक नही है। मैं अगर आप लोगों से न मिल पाऊँ तो आप लोग दया करके बुरा न मानियेगा।"

"इसके माने ? कहाँ जाओगे तुम ?"

"इस समय कुछ भी नही कह सकता।"

"तब मन्मथ से क्या कहूँगा ? शैल से क्या कहूँगा ?"

"उनसे कहियेगा कि उन दोनों को मैंने आशीर्वाद दिया है। दूर से ही उन्हे आशीर्वाद देता हूँ।"

"मेरी समझ मे तो कुछ भी नही आ रहा। तुम कह क्या रहे हो ? तुम्हारा क्या दिमाग खराब हो गया है ? लोग तो मुझे ही पागल कहते है।"

लेकिन सदाव्रत तब तक वहाँ नही था। मास्टर साहब के सामने से जाकर जैसे उसने जान बचायी।

□ □ □

पूरी अदालत मे सन्नाटा छा गया था।

इसी आदमी ने उस दिन अपने इज़हार में कहा था कि उसने अपनी आँखों से मुजरिम को एसिड-बल्ब फेंकते हुए देखा था; और यही आज

दूसरी बात कह रहा है !

सदाव्रत घर से सुबह ही निकला था। फिर करीब पाँच मिनट के लिए ऑफ़िस गया था। इतने दिन का पुराना ऑफ़िस। उसके हाथ में सारी ज़िम्मेदारी छोड़कर मिस्टर बोस निश्चिन्त हो गये थे। शायद इसके अलावा कोई चारा भी नहीं था। मिस्टर बोस की आँखों के सामने कुछ ही दिनों में इतना बड़ा कारखाना उठ खड़ा हुआ था। अपनी ज़िन्दगी का अधिकांश भाग उन्होंने फैक्टरी के झमेलों में ही बिताया था। फैक्टरी खूब फली-फूली भी; लेकिन मिस्टर बोस को इसके लिए जो कीमत चुकानी हुई, वह भी कम न थी। अपनी गृहस्थी की ओर देखने का उन्हें वक़्त ही नहीं मिला। मनिला को दार्जिलिंग के बोर्डिंग स्कूल में भेज दिया था। वहाँ भेजकर ही उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी समझी। घर में थी अकेली उनकी पत्नी। बेबी। प्यार से बेबी कहकर पुकारते थे। बेबी को उन्होंने धन, दौलत, गाड़ी, घर, नौकर, आया—सभी-कुछ दिया। लेकिन बस इतना ही। बेबी अपने दिन किस तरह काटती है, क्या करती है, मिस्टर बोस को यह सब देखने की फ़ुरसत नहीं थी। उन्होंने सिर्फ़ रुपया कमाया—लाखों, करोड़ों रुपया। उसी रुपये के बूते पर बेबी और मनिला का भविष्य निर्भर करके वह निश्चिन्त थे।

सदाव्रत एक बार के लिए कुर्सी पर बैठा था।

लेकिन ज्यादा देर तक बैठना जैसे खलने लगा।

चपरासी को बुलाया। काम बतलाया। आज भी उस चपरासी को याद है, गुप्ता साहब का मुँह जैसे और भी सूख गया था।

चपरासी ने कहा था, "हुजूर, मैं उस दिन भी नहीं समझ पाया कि गुप्ता साहब आज के बाद फिर कभी ऑफिस नहीं आयेंगे।"

सिर्फ़ ऑफिस का चपरासी ही क्यों, कोई भी नहीं समझ पाया। यहाँ तक कि शंभू भी हर रोज़ की खबर रखता था। बहूबाजार क्लब में रोज़ सदाव्रत की बात उठती थी। उसके मुकदमे की चर्चा होती, उसके भाग्य की बात होती। उसने भी कहा था, "पहले दिन मुझे भी मिला था। कसम से, तब भी मैं नहीं समझ पाया कि ऐसा होगा।"

कालीपद बोला, "तेरे दोस्त का दिमाग खराब हो गया था, नहीं तो कोई ऐसे जाता है।"

सच ही तो दो हज़ार रुपये की नौकरी छोड़कर जाना कोई मज़ाक है ! और शैल ?

किसी को इस बात की खबर नहीं थी। किसी ने शक भी नहीं किया। अच्छा-खासा स्वस्थ आदमी। अच्छा खाता, अच्छा पहनता, गाड़ी में सैर करता। उसे क्या तकलीफ हो सकती थी?

इन्सान अपने-आप में मस्त रहता है। शायद इसीलिए दूसरे के मन की बात जानने से डरता है। नहीं तो इतनी छोटी-छोटी बातों को लोग इतना बड़ा क्यों मानते हैं? नहीं तो उसे किस बात की कमी थी? दुनिया के लोग जो चाहते है, उसे सभी-कुछ तो मिला था!

मन्मथ की समझ में भी मामला नहीं आया। आम लोगों के समझने की बात भी नहीं थी।

शैल सिर्फ़ ज़रा देर के लिए चुपचाप खड़ी रही थी।

इसके बाद अपने कमरे में जाकर, दरवाज़ा बन्द कर शैल ने किस देवता से प्रार्थना की, यह किसी को नहीं मालूम। हर आदमी की कितनी ही लेन-देन और हिसाब-किताब की निजी बातें होती है, इनकी खबर कौन रखता है! खबर रखने की ज़रूरत भी नहीं होती।

केदार बाबू हमेशा के आशावादी मनुष्य थे। हमेशा हिस्ट्री के साथ मिलाकर इन्सान की तुलना करते। वह भी हैरान रह गये। हैं! यह बात!

काफी दिन राह देखने के बाद भी सदाव्रत नहीं आया तो केदार बाबू ने हताश हो शशिपद बाबू को बुलाया। बोले, "तो अब क्या किया जाये?"

शशिपद बाबू भी क्या कहते!

एक आदमी बड़ी अवहेलना और तिरस्कार के बीच इस दुनिया में आया था। जन्म से ही उसे दुत्कार मिली। सिर्फ़ कुछ दिनों के लिए किसी एक ने दो मीठी बातें करके उसे हठात् होश दिला दिया। इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं। उतने में ही उसका मन भर गया था। गर्व से छाती फटी पड़ रही थी। फिर भी जाते समय एक शब्द तक नहीं! निन्दा के दो शब्द! यह जैसे अपमान था! इस अपमान की कोई तुलना नहीं हो सकती।

हालांकि अदालत में खड़े होकर सदाव्रत इस तरह की बातें कहेगा, किसी ने सोचा भी नहीं था।

"लोअर-कोर्ट में तो आपने कहा कि मुजरिम की शक्ल की किसी को आपने एसिड-बल्ब फेंकते देखा था?"

"हाँ, कहा था!"

"फिर इस समय यह बात क्यों कह रहे हैं?"

"मैंने सोचकर देखा, मुजरिम की शक्ल ठीक वैसी नहीं है।"

"इसका मतलब है कि आप ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि आपने किसे देखा था ?"

"नहीं।"

"अभी भी समय है। अच्छी तरह से सोच लीजिये। आपकी गवाही पर मुजरिम कुन्ती गुहा की जिन्दगी और मौत निर्भर करती है। आप ही इस मामले के मुख्य गवाह हैं।"

"मैंने अच्छी तरह से सोचकर देखा है।"

"क्या सोचकर देखा है ?"

"मैंने जिसे एसिड-बल्ब फेंकते देखा था, वह कोई और ही थी। और कोई औरत थी।"

"आप ठीक कह रहे हैं न ?"

"जी हाँ, बिलकुल ठीक !"

अदालत में जमा भीड़ के बीच एक गुंजन शुरू हो गया था। जो लोग इतने दिन से इस मुकदमे में हर कदम पर रोमांच खोज रहे थे, आज का रोमांच उन लोगों के लिए जैसे और भी चौंका देने वाला था। जैसे सारा आकाश हिलने लगा था। सारी धरती डगमगाने लगी।

हाईकोर्ट की स्टैंडिंग-कौंसिल जैसे इस बात को सुनने के लिए तैयार नहीं थी। बिना किसी नोटिस के प्रॉसीक्यूशन विटनेस ने उन लोगों को भी आज मुश्किल में डाल दिया था।

काम खत्म होते ही सदाव्रत बाहर निकल रहा था। लेकिन नहीं, जैसे कुछ और भी सुनने के लिए उसका मन हाहाकार कर उठा।

तुम सिर्फ़ एक बार कह दो कि तुमने मुझे माफ कर दिया है। सिर्फ़ मुझी को नहीं ? मैं, शंभू, विनय, कालीपद, शिवप्रसाद गुप्त, मिस्टर बोस, मनिला बोस, जिसने जो भी अत्याचार तुम्हारे ऊपर किये हैं, तुम उन सभी को माफ कर दो !

जिसके लिए यह सब कहा गया, वह शायद पत्थर की मूर्ति बनी मौत की राह देख रही थी। हर रोज़ उसे हथकड़ी पहनाकर यहाँ लाया जाता है और हर रोज़ ही उसने अपनी पत्थर की आँखों से सब-कुछ देखा है, पत्थर के कानों से सब-कुछ सुना है। फाँसी के मुजरिम के लिए शायद इससे ज्यादा किसी चीज की जरूरत भी नहीं होती। ऑकलैंड-हाउस के उन विभूति बाबू से शुरू कर पद्मरानी के फ्लैट के सभी जैसे उसकी ओर देखकर हँस दिये।

कैसा हुआ है ? अब क्या हाल है ? इतना घमण्ड अच्छा नहीं होता। तुम्हारे सारे घमण्ड की इस समय हम लोग पाई-पाई चुका लेंगे। एक दिन तुम्हीं ने तो पूरे कलकत्ता को ख़रीदना चाहा था। अपनी चौबीस साल की जवानी के सामने तुम किसी को कुछ नहीं समझती थीं ! तुम्हीं ने तो सेठ ठगनलाल के दिये पचास हज़ार की गड्डी ज़मीन पर फेंक दी थी ! तुम्हीं तो अपनी बहन को पद्मरानी के फ़्लैट पर लाने को तैयार नहीं थी ! तुम्हीं ने तो शिवप्रसाद गुप्त जैसे आदमी का दिया मेडल ठुकराया था ! अब तुम्हें कौन बचायेगा ? अब तुम किससे बदला लोगी, बोलो ?

अचानक सभी ने देखा आँखों के ऊपर पलकें ज़रा हिलीं। ज़रा सिर इधर-उधर हुआ। माथे की सलवटों पर पसीने की दो-एक बूँदें दिखलायी दीं। तब क्या पत्थर के भी दिल होता है ?

□ □ □

उन दिनों के कलकत्ता की बातों का बहुतों को ध्यान भी नहीं है।

रेडियो के सामने लोगों की भीड़ जमा थी। इसके बाद चाइनीज़ आर्मी और कितना आगे बढ़ी ? तेजपुर पहुँचने में अब कितनी देर है ? वालोंग कहाँ है, बोमदीला कहाँ है और तेजपुर कहाँ है ? लेकिन जैसे सारे इंडिया के लोग घबरा गये थे। इतने दिन तक हम लोगों ने जो कुछ अन्याय किया है, सभी के सारे अन्यायों का बदला लेने का समय आ गया है।

शशिपद बाबू ऑफ़िस से आते और केदार बाबू खबर सुनने के लिए बेचैनी से उनकी राह देख रहे होते। सुबह अखबार पढ़ने से जैसे पेट नहीं भरता था। लड़कों को पढ़ाते-पढ़ाते अचानक अनमने हो जाते।

कहते, "अब ठीक हुआ है। बहुत अच्छा हुआ है।"

उस दिन सदाव्रत के यहाँ से आकर पुकारा, "शैल !"

शैल से कोई जवाब नहीं मिला।

कमरे के अन्दर आये। देखा शैल चुपचाप बैठी है।

"क्यों री, जवाब नहीं दे रही है ?"

फिर भी शैल ने जवाब नहीं दिया।

"मैं सदाव्रत के घर गया था। जानती है, वहीं से आ रहा हूँ।"

शैल ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

"क्या हुआ है तुझे ?"

पास जाकर शैल के माथे पर हाथ रखते ही नींद टूट गयी। ज़रा उनींदा-सा भाव था। जैसे नींद में ही शैल के कमरे में गये थे। शैल के माथे पर हाथ

रखा था। अब ध्यान आया, शैल और मन्मथ तो मकान देखने गये हैं। सच ही तो, कब तक यहाँ पड़े रहेंगे ? वह खुद, सारे दिन घर के बाहर घूमते रहते हैं। लेकिन शैल ? शैल के लिए भी तो सुख-सुविधा जैसी कोई चीज हो सकती है। निश्चिन्त होकर अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गये।

सड़क पर तब मन्मथ का बुरा हाल था।

कह रहा था, "मुझे कहाँ ले चली ?"

उस दिन की तरह शैल आज अकेली नहीं निकली थी। साथ में मन्मथ था। बार-बार रास्ता भूलने की तो बात नहीं है। बस में चढ़कर सीधे वहीं जाकर उतरे। फिर वहाँ से दूसरी जगह जाकर उतरे। फिर भी मन्मथ की कुछ कहने की हिम्मत नहीं थी।

"लेकिन इस तरह कब तक सड़क पर घूमती रहोगी ?"

"मैं जहाँ जाने को कहूँगी, तुम्हें वहीं जाना होगा।"

"वैसे ही तो जा रहा हूँ।"

"तब बात न करो। मैं जहाँ-जहाँ कहूँ, वहीं-वहीं चलो !"

मन्मथ को लग रहा था जैसे इस पागलपन का कोई छोर नहीं है।

कलकत्ता की सड़कों पर दोपहर की तेज धूप छायी हुई थी। इतने दिनों तक कलकत्ता के बन्द और घुटे कमरों में सालों काटने के बाद जैसे शैल मन्मथ से बदला ले रही थी। काफी दिनों से ही मास्टर साहब का मन्मथ के घर आना-जाना है। वह हमेशा से ही उनके हुक्म की तामील करता आया है। गृहस्थी की छोटी-मोटी चीजें भी वही ला देता। कभी विरोध नहीं किया। बदले में कुछ चाहा भी नहीं। आज इतने दिन बाद विरोध करने पर सुनेगा भी कौन ?

मन्मथ ने पूछा, "घर लौटने पर मास्टर साहब पूछें तब क्या कहूँगा ?"

"यह तुम्हें नहीं सोचना होगा।"

"लेकिन आखिर जाना कहाँ है, यह बतलाओ ?"

"जहाँ सदाव्रत दा का मुकदमा चल रहा है, वहीं ले चलो।"

"वह तो हाईकोर्ट है !"

"तो क्या हुआ, मुझे वहीं ले चलो।"

"लेकिन सदाव्रत के पास बात करने की फुरसत होगी ?"

"उनसे बात किसे करनी है ? मुझे तो सिर्फ एक बार वहाँ जाना है।"

बस आते ही दोनों चढ़ गये।

सदाव्रत से सिर्फ एक बात कहेगी, और कुछ नहीं। इन्सान की जिन्दगी में हेर-फेर तो होता ही रहता है। जिन्दगी-भर मुश्किल और अशान्ति रहती है। उस बीच अगर किसी को दो सेकण्ड के लिए भी शान्ति मिल जाये तो उस आदमी को भाग्यवान कहना होगा। तब दुनिया में मीठी बातों की इतनी कीमत क्यों है ? सुन्दर और खिले चेहरे की इतनी कद्र क्यों की जाती है ? जरा-सी शान्ति के लिए इन्सान अपनी जिन्दगी की बाजी लगाने को क्यों तैयार रहता है ? बस सिर्फ यही बात पूछेगी। सदाव्रत अगर जवाब देता है तो ठीक, नहीं देता है तब भी ठीक।

हाईकोर्ट में उस समय सन्नाटा छाया था।

दोनों साइड की हियरिंग हो चुकी है। सभी उत्सुकता से राह देख रहे हैं। हम सभी राह देख रहे हैं। युगों से हम लोग अपना-अपना अस्तित्व सँभाले बैठे हैं। अपनी नजरों से परे की एक दूसरी दुनिया के बारे में अब हम लोग सुनेंगे। वह दुनिया भी इस कलकत्ता शहर का एक भाग है। हम लोग कितने छोटे हैं, हम कितने नीच हैं, कितने खराब और ओछे हैं, वह जाना जा चुका है। हम लोगों की नीचता की ही वजह से आज हमारे घर में आग लगी है। अब देखते हैं, हमें सजा मिलती है या नहीं। हमें छुटकारा मिलता है या नहीं।

सदाव्रत भी एक ओर बैठा था।

सदाव्रत की गवाही पर सब-कुछ निर्भर था। आज उसने अपनी बात को पलटा है। उसने कहा है कि कुन्ती गुहा बेकसूर है। उसने कुन्ती गुहा को कसूर करते नहीं देखा। उसे छोड़ दो। उसे छोड़कर मुझे भी छुट्टी दो।

अब की बार नम्बर था मुजरिम का।

हाईकोर्ट के न्यायाधीश महोदय ने पूछा, "कुन्ती गुहा, अपने खिलाफ़ जो-जो इलजाम तुमने सुने, उनके बारे में तुम्हें कुछ कहना है ?"

१९६२ का साल जैसे निस्तब्ध था।

"बोलो, तुम्हें कुछ कहना है ?"

"मैं कसूरवार हूँ।"

"तुम कसूरवार हो ? तुम अपना अपराध स्वीकार करती हो ? अब तक तो तुम अपने को बेकसूर कह रही थीं ?"

१९६२ जैसे फिर बोल उठा।

"नहीं हुजूर, अब मैं अपना कसूर स्वीकार करती हूँ। मैंने ही मनिला बोस के ऊपर एसिड-बल्ब फेंका था। मैं कसूरवार हूँ। धर्मावतार, आप

मुझे जो सजा देंगे मुझे स्वीकार होगी। मुझे कड़ी-से-कड़ी सजा दीजिये!"

□ □ □

बोमदीला दुश्मन के हाथ में चला गया। इंडियन आर्मी पहाड़ों और चट्टानों को पार करती वापस रास्ते से तेजपुर लौट आयी। अब तेजपुर का नम्बर है। वहाँ से सिविलियन्स को निकालना शुरू हो गया है। उधर अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, ब्राजील, बोलीविया, कनाडा, चिली, डेनमार्क, इथोपिया, फ्रांस, इटली, जापान, जोर्डन, यू० ए० आर०, नार्वे, स्वीडन, स्पेन, यू० के०, यू० एस० ए०, उगान्डा, वेस्ट जर्मनी, युगोस्लाविया, मैक्सिको, मोरक्को वगैरह दुनिया की साठ ताकतों ने इंडिया का पक्ष लिया। सभी ने कहा, अपराधी को सजा मिलनी चाहिए।

कलकत्ता की रातें और भी गहरी हो गयीं। सड़कें खाली-खाली नजर आतीं। ट्रैफिक कम हो गया। और भी अँधेरा। और भी डर। शिवप्रसाद बाबू हिन्दुस्तान पार्क के अपने बँगले में सो चुके थे। एल्गिन रोड पर मिस्टर घोष की आँखों पर स्लीपिंग पिल्स ने अपना असर शुरू कर दिया था। पद्मरानी के फ्लैट में भी धीरे-धीरे सन्नाटा छा गया। शाम से ही शुरू हो गया था—'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नजरों से न देख।' वह भी कभी का रुक गया था।

मन्दाकिनी ने घड़ी की ओर देखा। बद्रीनाथ की नाक भी बोलने लगी थी। लेक की ओर से एक परिन्दा कैंक्-कैंक् करता आसमान में पूर्व की ओर उड़ गया। रासबिहारी एवेन्यू के मोड़ पर सोयी एक लड़की ने करवट बदली। गश्त लगाते सिपाही के पैरों में दर्द होने लगा था। वह भी पनवाड़ी की दूकान के तख्ते पर बैठकर ऊँघने लगा। एक खजेला कुत्ता आसमान में चाँद की ओर मुँह कर भौं-भौं करने लगा। जरा देर भौंकने के बाद वह भी गरदन मोड़कर सो गया।

बाकी था अंधकार। डर। सन्नाटा। कागज के खाली खोखे और पत्तों से बने दोनों के इधर से उधर उड़ने की खस-खस। और सब चुप। सब चुप हो जाओ। अब दुनिया भी करवट बदलकर सोयेगी। इंडिया की नाक भी बोलना शुरू करेगी।

सदाव्रत फिर वापस नहीं आया।

उपसंहार

ऐतरेय ब्राह्मण के राजा रोहित तब भी चल रहे थे। उन्हें न थकन थी, न विश्राम की आवश्यकता। आगे बढ़ना ही तो जीवन है, आगे बढ़ना ही तो यौवन है। उस समय जो प्राण-शक्ति लाखों और करोड़ों क्षोभयुक्त तरंगों से इस पृथ्वी पर लगातार चोट कर रही थी, राजा रोहित के लिए वह सब-कुछ भी नहीं है। अर्थ, यश, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा सब-कुछ उनके लिए तुच्छ हो चुकी थी। राज्यलिप्सा का मोह भी उनके पीछे न था। भय और चिन्ता का बन्धन भी ढीला पड़ चुका था। जो यह कर पाता है वह राजा रोहित की तरह से ही कर पाता है। इसी तरह भय, चिन्ता, मोह, आशा और कामना के बन्धन को तोड़कर लगातार रात-दिन जीवन-परिक्रमा कर सकता है।

कुन्ती गुहा नाम की एक अनजान और बेनाम लड़की ने इस उपन्यास की नायिका के रूप में बंगाल के किसी अनजान देहात में जन्म लिया था। कलकत्ता आकर उसने कब कुछ घरों में उलट-पुलट कर दी, जमी-जमायी गृहस्थी उजाड़ दी, कलकत्ता के नागरिक-जीवन में अपने कलंक की पब्लिसिटी करके कुछ महीनों के लिए जिसने उथल-पुथल मचा दी थी, उसके भी काफ़ी बाद की बात है।

लेकिन इतनी बातों के झमेले में किसे उस बात का खयाल था! जो रोमांच रोजमर्रा की ज़िन्दगी के लिए अटूट है, उसी रोमांच की प्यास में कुन्ती गुहा का कलंक भी धीरे-धीरे मिटने लगा। दूसरे हज़ारों रोमांचों के दबाव में एक दिन कुन्ती गुहा का नाम भी कलकत्ता शहर के लोगों के बीच कहाँ खो गया, इस पर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

□ □ □

नये सिरे से एक लड़ाई शुरू हो गयी थी। १९४७ की पन्द्रहवीं अगस्त के बाद बढ़ते-बढ़ते हम लोग भी काफ़ी आगे निकल आये थे। हमने लड़ाई देखी थी, अकाल देखा, पार्टिशन देखा, रिफ़्यूजी देखे। सारे इंडिया में किसी ने भी हमारी तरह इतना सब नहीं देखा। इन्सान मरता नहीं है, इसीलिए

हम भी नही मरे। नही तो कब के मर गये होते। १९६१ में पोर्चुगीज को हराकर हमने अचानक गोआ ले लिया। और फिर इलेक्शन में हम लोगो ने लाइन लगाकर पोलिंग बूथ मे वोट डाले।

शिवप्रसाद गुप्त ने भी उन दिनों काफी मेहनत की थी।

इलेक्शन-मीटिंग्स में जाकर उन्होंने लेक्चर दिये थे। हिन्दुस्तान के आदमी को खाने के लिए रोटी नही मिलती, उसके पास पहनने के लिए कपडा नही है, इससे कटु और भीषण सत्य और क्या हो सकता है! लेकिन गोआ की लडाई के बाद से कांग्रेस ने साबित कर दिया है कि भारत भौगोलिक दृष्टि से आज़ाद है। इस इलेक्शन के द्वारा कांग्रेस को आगामी पाँच सालों में यह साबित करना होगा कि उसने मनुष्य को भी स्वाधीन किया है। खाने-पीने की आज़ादी, जिस-जिस चीज के लिए हमने अब तक लडाई लडी है, वे सब चीजें ये लोग दे पाये हैं।

उन दिनों पार्को मे शिवप्रसाद गुप्त के लेक्चरों से कलकत्तावासियो को अपना ठीक-ठीक परिचय मिला। सभी ने कहा था—शिवप्रसाद बाबू का कहना ठीक है—शिवप्रसाद बाबू आदमी सच्चे है।

मुहल्ले के पेंशनयाफ्ता बाबू लोग मीटिंग से लौटकर पार्क मे बैठते और बहस करते।

कहते—शिवप्रसाद बाबू किसी से डरनेवाले आदमी नही है। नेहरू के मुंह पर ही कैसी दोटूक बात कह दी, देखा न साहब!

इसके बाद ही लडाई शुरू हो गयी। यह हमारी-तुम्हारी, भारत के करोड़ों लोगों की लडाई है। इस मौके पर भी शिवप्रसाद बाबू ने डिफेन्स फंड के लिए लाखो रुपया इकट्ठा कर दिया। उस वक़्त जैसे होड़ लग गयी थी, कौन कितना चन्दा उगाह सकता है। तुम्हारे पास जो कुछ भी है, सब लाओ। सोना दो। सोना नही हो, अगर सोने के जेवरात हों, तो वही लाओ। ऊपर से नीचे तक सभी चन्दा इकट्ठा करने लगे। अखबारो मे रोज़ चन्दा देनेवालो की लिस्ट छपती। पंडित नेहरू ने कितना रुपया इकट्ठा किया, पद्मजा नायडू ने कितना रुपया उगाहा, अतुल्य घोष ने कितना रुपया इकट्ठा किया, रोज़ इस सबका हिसाब अखबारों में छपता।

इसी लिस्ट मे एक दिन सभी ने देखा 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' की ओर से डिफेंस फंड के लिए एक लाख रुपये दिये गये हैं।

देश के लिए सब लोग कमर कसकर तैयार हो गये।

शम्भू वगैरह भी फिर से लग पडे हैं। लड़ाई के लिए डिफेंस फंड के नाम पर उनकी 'मरी मिट्टी' एक दिन सचमुच स्टेज हो गयी।

लेकिन कुन्ती गुहा के हीरोइन बनने पर जैसा लगता वैसा नहीं हुआ।

कालीपद ने कहा, "आज कुन्ती गुहा होती तो बोर्ड फाड़कर छोड़ता।"

और कुन्ती गुहा! आज कुन्ती गुहा की खबर ही जैसे पुरानी हो गयी है। बासी हो गयी है। चीनियों ने लडाई शुरू करके सब गड़बड कर दी है। नही तो मुकदमा चलते-चलते कुन्ती गुहा को कब बरी कर दिया गया, किसी को पता भी नहीं! लोग कहते, बेनीफिट ऑफ डाउट।

सन्देह की चोर गली के किस रास्ते मे वह निकल भागी, वह सब याद करने के लिए काफी देर तक सोचना होता है।

असल में कुन्ती गुहा बरी होना भी नही चाहती थी। उसने सिर ऊँचा करके कहा था—मैंने कसूर किया है, मुझे सजा दी जाये।

सरकारी वकील। बडा मेधावी और बुद्धिमान। समझ गया कि मुख्य गवाह सदाव्रत और मुजरिम के बीच कहीं कुछ ऐसा है, जो मुकदमे और अदालत की फाइलों में नहीं है। उसका कोई भी रेकार्ड नहीं है, होगा भी नहीं। उन्होंने भी कुन्ती गुहा को पागल करार देकर मामला मुल्तवी करने की अर्जी दे दी।

अपनी मर्जी से कोई फाँसी पर लटकना चाहता है? दुनिया में सिर्फ पागलों को छोड़कर ऐसा बेवकूफ और कोई हो सकता है? लोअर-कोर्ट के बयान मे जो अपने को बराबर बेकसूर कहती आयी है, वही हाईकोर्ट में अचानक अपने को कसूरवार कैसे मान लेती है? जरूर ही कहीं कुछ गड़बड़ है।

वकील ने सदाव्रत से भी जिरह की।

उसने पूछा, "आपने अचानक अपनी राय बदल क्यों डाली?"

सदाव्रत ने जवाब दिया, "अचानक नही, काफी सोच-समझकर ही कहा है।"

"अपने परिवार की बदनामी के डर से?"

"नहीं, यह बात भी नहीं है।"

"तब आपने कुन्ती गुहा को सचमुच एसिड-बल्ब फेंकते नहीं देखा?"

इस एक ही बात का जवाब उसे कितने लोगों को कितनी तरह से देना हुआ, इसका कोई हिसाब नहीं है।

आम आदमी जो क़ानून के बारे में कुछ नहीं जानते, खबर सुनकर

हैरान थे। फिर तो कुन्ती कब और कहाँ खो गयी, किसी ने पता लगाने की कोशिश नहीं की। आवश्यकता भी नहीं हुई।

लेकिन कुछ ही दिनों में लड़ाई का जोर और भी बढ गया। रात के गहरे अँधेरे में स्यालदह स्टेशन से ट्रेनें जातीं। और जाते प्लेन। बैरकपुर एअरपोर्ट से मिलिटरी प्लेन उड़ते।

ये ट्रेनें रास्ते में सामान्यतः कहीं रुकती नहीं थीं। इंजिन में पानी लेने के लिए किसी-किसी स्टेशन पर रुकना होता। यही क़रीब बीस या पचीस मिनट के लिए। इसके बाद फिर से ह्विसिल बजती, पहिये घूमते और छक्-छक् की आवाज होती। इन ट्रेनों से जो लोग जा रहे हैं, वे कभी वापस भी आ पायेंगे या नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी से दूर की पहाड़ियों को घेरती कुछ नज़रें ट्रेन से निकलकर खो जातीं। कभी वे लोग खाली पड़े मैदान में जाकर खेलते रहते, कभी अँधेरी रात में जिस समय गुस्से से फुफकारता इंजिन धुआँ उगलता होता, चुपचाप कान लगा यह आवाज़ सुनते।

नेफ़ा यहाँ नहीं है। वे लोग रात-दिन चल रहे हैं। ट्रेन ने स्यालदह स्टेशन कब का छोड़ा है। लेकिन वहाँ कब पहुँचेगी, इस बात को लेकर किसी ने भी सिर नहीं खपाया। एक-न-एक दिन पहुँचेगी ही। और अगर न भी पहुँचे तो किसी का क्या जाता है ? किसका क्या इरादा है ? वे लोग देशवासियों की रक्षा करेंगे, देश की धरती से चीनियों को भगायेंगे।

इन लोगों ने यह सब-कुछ भी नहीं सोचा। जो लोग इस गाड़ी से जा रहे हैं, वे सब-के-सब अखबार में विज्ञापन पढ़कर निर्देशित स्थान पर हाजिर हुए थे। ब्लैंक-फार्म पर नाम लिखाया था। अपनी-अपनी क्वालिफिकेशन्स लिखीं। अपने-अपने अभिभावकों का नाम भी लिखाया।

सब-कुछ जल्दबाजी में हुआ। चीनी सेना नेफा के कामेंग की ओर से होकर बोमदीला तक आ पहुँची थी। एक दिन बाद ही तेजपुर आ पहुँचेगी। उसके बाद शिलांग और गौहाटी। फिर कलकत्ता।

"आपका नाम ?"

"कल्याणी हाजरा।"

"पिता का नाम ?"

"जगन्हरि हाजरा !"

"अब तक क्या काम करती थीं ?"

"नर्सिंग का डिप्लोमा है।"

"आपका नाम ?"

"कुन्ती गुहा !"
"पिता का नाम ?"
"मनमोहन गुहा—मर चुके हैं।"
"कहीं काम किया है ?"
"नर्सिंग का काम किया है—नर्सिंग-होम में।"
"डिप्लोमा है ?"
"नहीं !"

□ □ □

मन्मथ ने अचानक कहा, "अरे, सदाव्रत दा जा रहे हैं ! बुलाऊँ ? या उधर ही चलें ?"

शैल ने कहा, "नहीं, रहने दो !"

अदालत के उठते ही सबने जाना शुरू कर दिया था। सदाव्रत भी शायद खो ही जाता। आज ही आखिरी जिरह थी। फ़ैसला कल सुनाया जायेगा। सॉलिसिटर के साथ मशविरा करना होगा। जल्दी करो। गड़बड़ हो सकती है ! बेनेट और बन्दूक के पहरे में पुलिस मुजरिम कुन्ती गुहा को ले गयी।

"सदाव्रत, हम लोग यहाँ है !"

सदाव्रत ने मुड़कर देखा। इतने झमेले। सिर्फ़ झमेले ही नहीं, सदाव्रत की इतने दिनों की उपलब्धि में जैसे कहीं कुछ गड़बड़ हो गयी थी। इतने दिन के अस्तित्व के साथ जैसे झगड़ा हो गया था। आज अगर मुजरिम को सजा हो जाये तो उसका सारा-का-सारा भूत झूठा साबित हो जायेगा। और कुन्ती गुहा अगर बरी हो जाये, फिर भी शायद सदाव्रत की जिम्मेदारी खत्म नहीं होगी। दुनिया के सारे गुनाहगारों, सारे अत्याचारियों के कारनामों के लिए उसे प्रायश्चित्त का रास्ता निकालना होगा।

जिसने जहाँ कहीं भी अपमान और लांछना सहकर अकाल मृत्यु के सामने खड़े होकर क्षण गिने हैं, उन सभी के पास जाकर कहना होगा—मुझे माफ़ करो। सिर्फ़ मुझे ही नहीं, मेरे इस देश, यहाँ के लोग, समाज, इन सभी को माफ़ कर दो। इनको क्षमा दिलाए बिना मुझे मुक्ति नहीं है। बिना क्षमा के मैं ऐसे ही भटकता रहूँगा, मुझे मुक्ति मिले बिना मेरी जाति, मेरे समाज का भी कल्याण नहीं होगा।

"सदाव्रत दा !"

सदाव्रत पास आया।

मन्मथ ने कहा, "वह देखो, शैल आयी है।"

"शैल ! लेकिन उसे यहाँ क्यों ले आये ? यह क्या बात करने की जगह है ?"

"मैं शैल को नहीं लाया, शैल ही मुझे ले आयी है।"

"लेकिन मन्मथ, मुझे बिलकुल भी वक़्त नहीं है।"

"मुझे मालूम है, सदाव्रत दा, तुम्हारी हालत मैं समझता हूँ।"

सदाव्रत ने टोका। उसने कहा, "गलत बात ! एक मुझे छोड़कर कोई भी नहीं समझता।"

"सुना है कल रात घर भी नहीं गये ! तुमने कहीं चले जाने का निश्चय किया है ?"

सदाव्रत ने कहा, "मुझे मालूम है, मेरे बारे में सभी का यही खयाल है। सभी का कहना है कि पिताजी के साथ मेरा झगड़ा हो गया है।"

"तुमने क्या नौकरी भी छोड़ दी है ?"

"सारे कलकत्ता के लोगों का भी यही कहना है।"

"लेकिन तुम क्या कहते हो ?"

"मैं कुछ भी ठीक नहीं कर पा रहा, मन्मथ ! इस वक़्त मैं सॉलिसिटर के यहाँ जा रहा हूँ। उसके बाद जब तक केस का जजमेंट नहीं सुनाया जाता, तब तक कुछ भी नहीं कह सकता।"

"तब सॉलिसिटर के यहाँ का काम खत्म करके एक बार शैल से मिल जाना। हम लोग बाहर खड़े हैं।"

सदाव्रत फिर भी हिचकिचा रहा था।

"लेकिन मैं उससे कहूँगा क्या ? उसे भी मुझसे ऐसा क्या कहना है ?"

"यह तुम जानो और वह जाने !"

"लेकिन शैल ने क्या खुद मुझसे मिलने को कहा है ?"

मन्मथ ने कहा, "नहीं, वैसा तो उसने कुछ नहीं कहा। लेकिन उस दिन तुम्हारे घर पहुँचाने के बाद से बड़ी अनमनी हो रही है। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों एक बार मिल लो।"

"लेकिन उससे तुम्हारा क्या फ़ायदा है ?"

"वह तो मालूम नहीं, लेकिन मेरी इच्छा है।"

"तो ज़रा देर रुको। मैं सॉलिसिटर के पास होकर अभी आया।"

"ज़्यादा देर न करना। शैल वहाँ खड़ी है। मैं उसी के पास जा रहा हूँ।"

इसके बाद जैसे कुछ कहना भूल गया हो, इस तरह फिर से सामने आया। बोला, "एक बात ध्यान रखना। शैल को यह मालूम न हो पाये कि मैं तुम्हें जबर्दस्ती उससे मिला रहा हूँ।"

सदाव्रत की समझ में नहीं आया।

बोला, "इसका मतलब ?"

"शैल से तुम खुद ही मिलना चाहते हो, यह जान उसे खुशी होगी।"

"ठीक है, वही होगा। तुम जरा रुको। मैं अभी आया।"

कहकर सदाव्रत चला गया।

मन्मथ फिर से शैल के पास आकर खड़ा हो गया।

शैल ने पूछा, "कहाँ थे इतनी देर से ? मैं यहाँ खड़ी-खड़ी परेशान हो रही हूँ।"

"सदाव्रत दा ने मुझे बुलाया था।"

"किसलिए ?"

मन्मथ ने शैल की ओर देखा। उसका मुँह, कान, नाक, सब जैसे अचानक लाल हो उठे।

"क्यों ? तुम्हें क्या करने को बुलाया था ?"

"सदाव्रत दा एक बार तुमसे मिलना चाहते हैं। तुम उनसे मिलोगी?"

"क्यों ? मुझसे उन्हें ऐसा क्या काम आ पड़ा ?"

"वह तो मालूम नहीं, लेकिन सदाव्रत दा ने मुझसे तुम्हें राजी करने को विशेष रूप से अनुरोध किया है।"

"लेकिन मुझसे कहना क्या है ?"

"पता नहीं क्या बात है। तुमसे जरा अकेले में मिलना चाहते हैं।"

"क्यों ? अकेले में क्यों ?"

"लगता है, तुमसे कहने को ऐसा कुछ है, जिसे मेरे लिए सुनना उचित नहीं है। सदाव्रत दा सॉलिसिटर से मिलने गये हैं। अभी आयेंगे। तुमसे जरा देर रुकने को कह गये हैं।"

□ □ □

पानी और कोयला लेकर मिलिटरी ट्रेन ने फिर धुआँ उगलते हुए चलना शुरू कर दिया। बंगाल की नरम जमीन छोड़कर कठोर और दुर्गम पथ पर यात्रा। जहाँ नदी पार करनी होती वहाँ सब लोग फिर से ज आसमान, पेड़-पौधे, मिट्टी, पत्थर और घास के साथ अपने को सोचते। हो सकता है, यह दृश्य फिर देखने को न मिले। हो

आसमान से बम गिरे, सामने पहाड़ी की चोटी से तोप का गोला आकर लगे। इसीलिए सब लोग दिल भरकर देख लेते।

तभी गार्ड की सीटी बज उठती। हरी झंडी दिखलायी देती। ज़ोर की एक चीख मारकर इंजिन फिर से चलना शुरू कर देता। किसी-किसी प्लेटफ़ॉर्म पर जब ट्रेन रुकती तो प्लेटफ़ॉर्म की उल्टी ओर स्टेशन मास्टर के क्वार्टर की ओर देखने पर जंगलो से झांकते दो-चार चेहरे दिखलायी देते। छोटे-छोटे बच्चे हांफते-हांफते आते और रेलिंग पकड़कर ट्रेन की ओर देखते।

कहते—देख, ये लोग लड़ाई मे जा रहे है। कैसी एक निराशाभरी भयभीत दृष्टि होती वह! ये लोग जैसे अजीब किस्म के जानवर है। ये लोग वापस नही आयेंगे। लड़के-लड़कियाँ और बहुएँ जैसे आखिरी बार के लिए देख लेते।

"अच्छा, कह तो गाडी के ऊपर क्रॉस क्यों लगा है?"

"डॉक्टर-गाड़ी है न इसीलिए। इसमें सिर्फ नर्स, डॉक्टर है, इसीलिए क्रॉस लगा है। दूर से यह चिह्न देख कोई इस पर बम नहीं गिरायेगा।"

रात के वक़्त चेहरो की रंगत दूसरी होती। कुछ लोग अचानक सोते-सोते उठ बैठते और चेहरों की ओर देखते। यहाँ कोई कुछ खरीदेगा। इन लोगो को चाय, बीड़ी, सिगरेट, किसी भी चीज की जरूरत नही होती। इन लोगो को सारी चीजें मिलिटरी से सप्लाई होती हैं।

कल्याणी हाजरा ने अचानक पूछा, "आपके पास डिप्लोमा नही है, फिर भी ले लिया?"

कुन्ती गुहा ने कहा, "हाँ।"

"शायद कोई जान-पहचान का है?"

"नही।"

कई बातें पूछने पर किसी एक बात का जवाब देती है यह लडकी। एक ही डिब्बे में स्यालदह से पास-पास बैठी आ रही हैं। फिर भी लड़की घनिष्ठ नही हो पायी। उठते-बैठते कितनी ही बातें शुरू हुई। लड़ाई मे जाने से डर तो नही लगता? घर पर कौन-कौन हैं? लड़ाई पर जाने के लिए नाम क्यों लिखाया?

लड़की हमेशा ही गम्भीर रहती।

"आपको शायद काफी डर लग रहा है?"

कुन्ती गुहा ने कहा, "नही।"

"किसी की याद आ रही है ?"

"नही।"

"आपके घर में कौन-कौन है ?"

"कोई नही।"

"तब आप इतनी गम्भीर क्यों हैं ?"

जवाब मे कुन्ती गुहा ज़रा-सा मुसकरा दी। हँसी नही कहा जा सकता। रोना भी नही कहा जा सकता। कल्याणी हाजरा इस लड़की के बारे मे जितना सोचती उतना ही हैरान होती।

रात काफ़ी गहरी हो चुकी थी। एक स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही कल्याणी हाजरा अचानक चिल्ला पड़ी, "वह देखो, वही आदमी !"

कुन्ती गुहा लेटी हुई थी। वैसे ही पड़ी रही।

कल्याणी हाजरा ने कहा, "अच्छा, कह सकती हो, यह आदमी कौन है ? कलकत्ता में भी इसे आपकी ओर ताकते देखा था।"

कलकत्ता के रिक्रूटिंग ऑफ़िस के सामने जिस दिन कल्याणी वगैरह नाम लिखाने गयी थी, उस दिन भी यह आदमी दूर खड़ा-खड़ा देख रहा था। उसके बाद जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे हैं, शक्ल उतनी ही खराब होती जा रही है। बढ़ी हुई दाढ़ी। मुरझाया चेहरा। बदन पर का कोट-पैंट गन्दा-चीकट हो गया था।

"आप इस आदमी को पहचानती हैं क्या ?"

कुन्ती गुहा लेटी हुई थी। उसी तरह पड़े-पड़े कहा, "नही।"

ट्रेन फिर चल दी। मिलिटरी-स्पेशल फिर से वन, जगल, नदी पार करती आगे की ओर बढ़ने लगी।

□ □ □

टेम्पल चैम्बर के बन्द होने का समय हो रहा था। मन्मथ बाहर खड़ा था। सदाव्रत और शैल अन्दर गये थे।

कॉरीडोर से बाहरी आदमी नीचे जा रहे थे। छुट्टी हो गयी थी। हाई-कोर्ट बन्द हो गया था। किसी को कोई खास काम नहीं था। जो लोग काम के पीछे पागल होते हैं, जिनके घर में कोई नही है, वे लोग ही रात के आठ-आठ और नौ-नौ बजे तक बैठे यहाँ फ़ाइलें चाटते रहते हैं।

लेकिन सदाव्रत के सॉलिसिटर की फ़र्म बड़ी नामी फ़र्म है। काफी बड़े-बड़े मुवक्किलों के साथ उनका कारबार रहता है। मिस्टर बोस के ही इस केस की वजह से महीनों उनका खाना-पानी हराम हो गया था। आज

हियरिंग खत्म हो चुकी है। अब फैसला होगा।

मिस्टर गांगुली फाइलों में डूबे थे।

सदाव्रत ने कहा, "आपका उस ओर का पार्टीशन खाली है क्या ?"

आज जबकि यह उपन्यास पूरा कर रहा हूँ, अब मे करीब एक साल पहले की बात है। उन दिनों भी यही नवम्बर का महीना था। दोपहर ढलते-ढलते शाम लग रही थी। सारा कलकत्ता डर और आतंक में डूबा था। किसी भी दिन तेजपुर पर बम गिर सकते थे। रिजर्व-बैंक के लोगों ने लाखों रुपये के नोट फाड़कर जला डाले थे—कहीं चीनियों के हाथ न पड़ जायें। कमिश्नर साहब रात के वक्त जीप गाड़ी से कहाँ भाग गये थे, कुछ ठीक नहीं है। इंडियन फौजें पहाड़ी इलाका छोड़कर समतल मैदान में आ गयी थीं। शहर में एक भी होटल नहीं था। ज़रा-सी भी रोशनी नहीं थी। एक भी आदमी नहीं था। जो बचे थे वे बड़े लापरवाह थे। उन लोगों के ऊपर तेजपुर का भार छोड़कर शासक लोग भाग खड़े हुए थे। वह आतंक सिर्फ कलकत्ता ही नहीं सारे भारत में छा गया था। ऐसे गैर-जिम्मेदार शासकों के हाथ में हजारों लोगों की जान-माल का भार छोड़कर हम लोग इतने दिन से चैन की नींद सोये थे। अब तक किसी ने हमला नहीं किया, आश्चर्य तो इस बात का था !

मनुष्य-जाति के इतिहास ने बार-बार यह साबित कर दिया कि दिल के अन्दर एक प्राण भी है। दिल चलता है, दिल टूट रहा है। यह दिल अपनी परिधि मे नहीं रहना चाहता। चाहता नहीं है इसलिए इसको लेकर इतनी खींचतान होती है। दिल की लेन-देन को लेकर इतने काव्य, उपन्यास और कहानियों की रचना हुई है। इसी दिल को बीच में रखकर आदमी-आदमी का झगड़ा होता है, आदमी-आदमी का रिश्ता जुड़ता है। मेरे अन्दर विश्वमन है। इसी वजह से दुनिया-भर में मेरी पहुँच है। आदमी के साथ सम्पर्क टूटते ही मेरा दिल टूट जाता है। हजारों साल पहले इसी दिल को आकर्षित करने के लिए धर्म की अवतारणा हुई। सारी दुनिया को इन्सान ने धर्म की एक डोर मे बाँधना चाहा। बाद में धर्मों में आपस में लड़ाई शुरू हो गयी। ईसाइयों के साथ पोप लोगों की, हिन्दुओं के साथ मुसलमानों की, बौद्धों के साथ ब्राह्मण-धर्म के अनुयायियों की। आज धर्म नहीं है। धर्म के बन्धन को आज कोई खास बन्धन नहीं मानता। उसकी जगह आज राजनीति ने ले ली है। आज बीसवीं शती में धर्म शायद नया

सदाव्रत के यहाँ ! सुनकर मन्मथ हैरान रह गया। "इस वक्त इस हालत में सदाव्रत के यहाँ क्या करने ? वहाँ कौन है ?"

हिन्दुस्तान पार्क में शिवप्रसाद गुप्त के बंगले के सामने टैक्सी के पहुँचते ही शैल दरवाज़ा खोलकर उतर पड़ी।

दरवाजे के सामने पहुँचकर कुंडी खटखटाने लगी।

"मौसीमा, मौसीमा !"

मन्मथ ने पूछा, "टैक्सी रखनी है या छोड़ दूँ ?"

"छोड़ दो !"

□ □ □

कल्याणी हाजरा को वह आदमी फिर दिखलायी दिया। नर्सों के क्वार्टर्स अस्पताल से लगे हुए ही थे। कहाँ-कहाँ के रोगी आते। रात-दिन ड्यूटी बजानी होती।

उस दिन भी कल्याणी चिल्ला उठी, "अरे, देखो-देखो, वही आदमी!"

शक्ल और भी खराब हो गयी थी। दाढ़ी और भी बढ़ गयी थी। बिखरे हुए बाल। कहाँ रहता है, कहाँ खाता है, कहाँ सोता है, कुछ भी पता नहीं चलता।

ड्यूटी पूरी कर क्वार्टर की ओर जानेवाले रास्ते पर वह खड़ा रहता। पुकारता, "कुन्ती !"

कुन्ती गुहा सिर झुकाये, मुँह फेरकर अपने क्वार्टर की ओर तेज़ी से चली जाती।

उसके बाद जब धीरे-धीरे शाम हो आती, रात ठिठुरने लगती, हू-हू करती ठंडी हवा चलती, तब खिड़की के काँचों से दिखलायी देता, अँधेरे में भूत की तरह चुपचाप वही आदमी खड़ा है। धुँधला-सा काला बुत। चारों ओर काले-काले पहाड़। उसके बाद जब अँधेरा और भी घना हो जाता, रात और भी गहरी हो जाती, तब वह आदमी भी जैसे थक जाता। एक पेड़ के सहारे बैठ जाता। लेकिन मिलिटरी पुलिस की नजर पड़ते ही उसे भगा दिया जाता। भागो—भागो यहाँ से !

किसी-किसी दिन उस आदमी की हिम्मत और भी बढ़ जाती।

पीछे से पुकारता, "कुन्ती, मुझे माफ़ कर दो !"

प्रेत जैसी सर्द आवाज़। कोई समझ पाता, कोई नहीं भी समझता। लेकिन कोई समझे या नहीं समझे, मुझे माफ़ी चाहिए। मैं माफ़ी मिलने पर ही वापस जाऊँगा। मुझे माफ़ करो। सिर्फ़ मुझे ही नहीं, मेरी माँ को,

मेरे पिताजी को, मेरे सगे-सम्बन्धी वगैरह सभी को। मेरे कलकत्ता को, मेरे बंगाल को, मेरे भारत को। हम सभी कसूरवार है। हमने इन्सान को इन्सान का अधिकार नही दिया है। उसे लेकर हमने धन्धा चलाया है, स्लेव-ट्रेड की है। आज़ादी के नाम पर हमने इन्सान से जानवर का काम लिया है। मुझे पता नही था, इसीलिए इतने दिन से तुम्हारी बेइज्ज़ती की। तुम्हें मुजरिम के कठघरे मे खड़ा किया। तुम्हें कसूरवार साबित करने की कोशिश की। लेकिन असली कसूरवार हम लोग ही हैं। हम सब अपराधी है, लेकिन हमी लोग फरियादी बनकर छाती फुलाए घूमते है। तुम हम लोगो को सज़ा दो। तुम जो भी सज़ा दोगी, मुझे सिर झुकाकर मंजूर होगी। अगर सज़ा न दे पाओ तो हम लोगों को कम-से-कम माफ़ तो कर ही दो।

कुन्ती गुहा ने उस दिन अचानक स्टाफ़-नर्स के पास कम्प्लेन्ट की—"एक आदमी मेरा पीछा करता है।"

स्टाफ़-नर्स ने नियम के मुताबिक मिलिटरी ऑफ़िसर को रिपोर्ट की।

"उसका नाम क्या है ? हू इज़ ही ? ह्वाट इज़ ही ?"

"मेरी स्टाफ को यह सब नही मालूम।"

"ऑलराइट ! हम लोग देखते हैं।"

□ □ □

किसी को भी समझ में नही आया कि बीसवीं शती के इन्सान की बुद्धि को आखिर हो क्या गया ? आत्मोपलब्धि के साथ-साथ यह बुद्धि, वह विवेक जैसे कलकत्ता मे अचानक लापता हो गया। कलकत्ता के लोग जिस समय इन्सान के मुर्दे पर बैठे मौत की साधना कर रहे थे, पाप की पोटली सम्हाले बेशर्मी से अपने धन्धे में लग थे, उस समय उस विवेक की किसी को याद भी न रही।

ख़याल था सिर्फ़ एक जने को। वह थी शैल।

उस समय भी उसे सदाव्रत की उस दिन वाली बातें याद आ रही थीं।

एटर्नी के ऑफ़िस के सूने और अकेले कमरे में अचानक जैसे उसी विवेक का आविर्भाव हो गया था।

सदाव्रत ने कहा था, "शादी अगर करूँगा तो वह तुमसे ही होगी, शैल ! लेकिन मैं विवेक को किस तरह समझाऊँ ?"

शैल सिर झुकाये सिर्फ रोती रही थी।

सदाव्रत ने फिर कहा, "अगर मैं तुम लोगों की तरह दुनियादारी और

गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों में अपने को खपा पाता तो शैल, मैं बच जाता। लेकिन वह मुझे यहाँ रहने से रोक रहा है।"

शैल ने पूछा, "कौन ?"

"और कौन ? मेरा विवेक !"

इसके बाद जरा देर रुककर कहा, "तुम लोगों में से किसी में विवेक नहीं है। तुम लोग बच गये हो। तुम लोग आराम करो, सुख से रहो। थोड़े में ही तुम लोग सन्तोष कर लेते हो। ज़रूरत होने पर ताश खेलकर, सिनेमा देखकर या गाना सुनकर तुम लोगों को शान्ति मिल जाती है। लेकिन मैं क्या करूँ ? मेरा तो इस समय 'काला शौच' चल रहा है।"

शैल ने अचानक सिर उठाकर पूछा, "काला शौच ? इसके माने ?"

सदाव्रत ने कहा, "चारों ओर का यह पाप, यह अन्याय, अनाचार, व्यभिचार, यही तो जाति की मौत है। एक जाति जब मरने लगती है तो यही सब होता है। ये सब मृत्यु के पूर्वाभास हैं।"

"लेकिन इनके लिए क्या तुम जिम्मेदार हो ?"

"ज़रूर ! यह अगर मेरी ज़िम्मेदारी नहीं है, तो इसकी जिम्मेदारी कौन लेगा ? इंडिया के प्राइम मिनिस्टर के ऊपर सारी जिम्मेदारी डाल-कर हम सब चुपचाप बैठे रहें ?"

"लेकिन तुम्हारे अलावा क्या इसका भार लेनेवाला और कोई भी नहीं है ? सारा कसूर तुम्हारा ही है ?"

"कसूर सिर्फ मेरा ही नहीं है, शैल ! सभी कसूरवार है, वह मैं जानता हूँ। लेकिन पुण्य के भागीदार बहुत-से आ जुटते है, पाप का भाग कोई भी नहीं लेना चाहता।"

"तब मैं क्या करूँ ? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"सब लोगों की ओर से मुझे ही 'काला शौच' पालन करने दो। मियाद पूरी होने पर मैं फिर आऊँगा। तब तक क्या तुम राह नहीं देख पाओगी ?"

"कहाँ देखूँगी राह ?"

"क्यों, मेरी माँ के पास, मेरे घर !"

"कितने दिन राह देखनी होगी ?"

"वह कैसे कह सकता हूँ ! काला शौच पूरा हुए बिना तो मेरा विवेक मुझे छोड़ेगा नहीं। और तुम भी क्या उस आदमी के साथ सुखी हो पाओगी ?"

"तुम जाओगे कहाँ ?"